ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

हिन्दीभाष्यसमन्वितम्

शिवोपदिष्ट पूजा-पद्धतिसहित शैव-शाक्त-वैष्णव-गाणपत्य-
सौर-कार्त्तवीर्यादि मन्त्रों का दक्षिण-वाममार्गानुसारि
साङ्गोपाङ्ग विवेचन एवं कार्त्तवीर्य-दीपदानविधि-
प्रतिपादक सर्वातिशायी तान्त्रिक ग्रन्थ



हिन्दीभाष्यकारः

श्री कपिलदेव नारायण 'स्वरूपावस्थित'

पुस्तक परिचय

महाकालेनयत्प्रोक्तम्पञ्चमीमुक्तिसाधनम्।
सर्वेषांम्मेरुतां यातन्तत्तन्त्रं मेरुसञ्ज्ञितम्॥

जो यह महाकाल द्वारा कहा गया पञ्चमीमुक्ति साधन जहाँ मध्यमणि की तरह गुम्फित है वह तन्त्र मेरुतन्त्र के नाम से जाना जाता है।

कलियुग में मनुष्य अल्पायु होता है। वह केवल शिश्नोदर परायण रहता है ऐसे में मृत्यु के उपरांत वह प्रेत योनि में ही भटकता रहता है। ऐसे कलियुग के पशुओं के उत्थान के लिए भगवान महाकाल ने मुक्ति के साधनों को तन्त्र के मध्यमणि या मेरु की तरह गुम्फित कर दिया है। भगवान शिव के द्वारा भगवती गौरी व देवों को कैलाश पर्वत पर यह उपदिष्ट है। इसमें तंत्र साधना के समस्त पक्षों का सम्यक् वर्णन है।

सामान्यतया दक्षिणमार्गीय ग्रन्थ वाममार्गीय ग्रन्थों की व वाममार्गीय ग्रन्थ दक्षिणमार्गीय ग्रन्थों की निंदा करते नजर आते हैं, लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ दक्षिणमार्ग व वाममार्ग दोनों को बराबर महत्त्व देते हुए दोनों साधना पक्षों का वर्णन किया है। यह इस ग्रन्थ के महाकाल प्रोक्त होने का प्रमाण है।

इस ग्रन्थ में दीक्षा प्रकरण से प्रारंभ कर मंत्र पुरश्चरण, देवता पूजन व प्रयोगों का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में दशमहाविद्या साधना, अन्य भगवती के स्वरूपों की साधना, शिव, विष्णु, सूर्य व गणेश साधना के साथ-साथ नवग्रह साधना का विधान है। इन सब विषयों का एक स्थान पर साधकों को हस्तामलकवत् प्राप्त होना परमेश्वर की कृपा है। आशा है कि साधक इस महद्ग्रन्थ से लाभान्वित हो इष्टाराध्य की साधना करेंगे।

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

525

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

प्रथमो भागः * 1-8 प्रकाशः

भाषाभाष्यकारः

स्वरूपावस्थित

श्री कपिलदेव नारायण

संस्कर्त्ता

आचार्य श्रीनिवास शर्मा

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

मेरुतन्त्रम् (प्रथम भाग)
पृष्ठ : 24+460
ISBN : 978-93-89665-15-4 (Set)

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : +91 542-2335263; 2335264
email : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com
website : www.chaukhamba.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण 2021 ई०
मूल्य : ₹ 5000.00 (1-5 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : +91 11-23286537
email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

•

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

प्रस्तावना

परमकारुणिक परमेश्वर के अपार संसार में विद्यमान अनेक दु:ख-परम्पराओं से मानवों की रक्षा के लिये तत्तत् ऋषियों द्वारा षडङ्ग वेद, दर्शन, आयुर्वेद, उपवेद, पुराण आदि का आविर्भाव किया गया। उनमें पारलौकिक एवं इहलौकिक फल-साधक प्रभूत दुर्लभ अनुष्ठानों के होते हुये भी अल्पायु लोगों के लिये वे शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले नहीं थे; इसीलिये जगत् के कल्याण की कामना से जगदम्बा उमा के द्वारा अल्पायु जनों के कल्याणार्थ चिन्तित होकर जिज्ञासा प्रकट किये जाने पर भगवान् शंकर ने सर्वोत्तम तन्त्रशास्त्र का प्रतिपादन किया। फिर भी 'तन्त्राणां गहनो गतिः' इस उक्ति के अनुसार तन्त्र अपने-आपमें अतिशय गूढ़ अर्थ को समाहित रखने वाला शास्त्र है। 'तन्त्र' शब्द का शाब्दिक अर्थ है—तनोति तन्यते वेति तन्त्रम्। शास्त्रों में तन्त्र का लक्षण इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मन्त्रनिर्णय एव च।
देवतानाञ्च संस्थानं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम्।।
तथैवाश्रमधर्मञ्च विप्रसंस्थानमेव च।
संस्थानञ्चैव भूतानां यन्त्राणाञ्चैव निर्णयः।।
उत्पत्तिर्विबुधानाञ्च तरूणां कल्पसंज्ञितम्।
संस्थानं ज्योतिषाञ्चैव पुराणस्थानमेव च।।
कोशस्य कथनञ्चैव व्रतानां परिभाषणम्।
शौचाशौचस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम्।।
राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च।
व्यवहारः कथ्यते च तथा चाध्यात्मवर्णनम्।।
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तन्त्रमित्यभिधीयते।

अर्थात् जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्त्रनिर्णय, देवताओं का संस्थान, तीर्थ, आश्रम धर्म, विप्रसंस्थान, भूतसंस्थान, यन्त्रनिर्णय, देवताओं की उत्पत्ति, वृक्षों की कल्प-संज्ञात्व, ज्योतिषसंस्थान, पुराणसंस्थान, कोशकथन, व्रतकथन, शौच-अशौच, स्त्री-पुरुष-लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म, व्यवहार, अध्यात्म-वर्णन इत्यादि विषयों का विवेचन रहता है, वह शास्त्र 'तन्त्र' शब्द से अभिहित होता है। मनुष्य की समस्त दैवी साधनायें तन्त्र पर ही अवलम्बित होती हैं; यतः समस्त

साधनाओं के गूढ़ रहस्य तन्त्रशास्त्र में ही प्रस्फुटित होते हैं। इसमें स्थूलतम साधन-प्रणाली से लेकर अतिगुह्य मन्त्रशास्त्र एवं अतिगुह्यतर योग-साधनादि के समस्त क्रियाकौशलों का सांगोपांग विवेचन रहता है। यद्यपि तन्त्रों में समाहित दार्शनिक तत्त्व भी अतीव सूक्ष्म हैं, तथापि वे प्रचलित दर्शनशास्त्रों के समान भाषाजाल से जटिल भाष्यों, टीकाओं, नानाविध मत-मतान्तरों एवं विविध वादों द्वारा दुर्बोध्य नहीं हैं; फिर भी साम्प्रदायिक साधनसंकेतज्ञान से सर्वथा शून्य जनों के लिये तन्त्रोक्त साधनजाल में प्रविष्ट होना कथमपि सम्भव नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य की प्रकृति सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक-भेद से तीन प्रकार की होती है, उसी प्रकार यह तन्त्रशास्त्र भी सात्त्विक, राजसिक, तामसिक भेद से त्रिविध होता है। साथ ही इसकी साधनप्रणाली भी तदनुरूप गुणभेद से तीन प्रकार की व्याख्यात होती है। फलितार्थ यह है कि जो साधक जिस प्रकृति से ओत-प्रोत होता है एवं जैसी उसकी रुचि होती है, तदनुरूप साधनपथ को अंगीकार करके ही वह अपने इस नश्वर जीवन को सार्थक बनाने में समर्थ होता है। जिस प्रकार देवस्वरूप अथवा दैवी गुणयुक्त जीवों की जननीरूपा शक्ति है, उसी प्रकार असुर गुणयुक्त अथवा असुरों की भी जननीरूपा शक्ति ही है। यही कारण है कि देवता एवं असुर दोनों ही उसकी उपासना में प्रवृत्त रहते हैं, दोनों ही अपने-अपने स्वभावानुरूप उपासना की प्रणाली का अवलम्ब ग्रहण करते हैं और साधना की प्रकृति के अनुसार ही साधनफल को अवाप्त करते हैं। यही कारण है कि शास्त्र में दोनों ही साधन-प्रणालियाँ विवेचित रहती हैं।

वेदों का अनुसरण करते हुये साधनपथ पर अग्रसर होने वाले साधक साधारणतः पाँच उपासक-सम्प्रदायों में विभक्त हैं—गाणपत्य, सौर, शाक्त, वैष्णव एवं शैव। लोक की अज्ञानतावश ये लोग अलग-अलग देवताओं के उपासक कहे जाते हैं अथवा अपने को देवविशेष का उपासक उद्घोषित करते हैं। वस्तुतः वे सभी एक ही विश्वतोमुख भगवान् की अलग-अलग पाँच भावों में उपासना करने वाले होते हैं। स्पष्ट है कि समस्त देव-देवियों में भेदकल्पना जीव की अल्पज्ञता का ही द्योतक है। पद्मपुराण में स्वयं श्रीभगवान् ने कहा भी है—

सौराश्च शैवगाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भः सागरं यथा॥
एकोऽहं पञ्चधा भिन्नः क्रीडार्थं भुवनेऽखिले।

साधकश्रेष्ठ पुष्पदन्त भी कहते हैं कि वेद, सांख्य, योग, पाशुपत, वैष्णवमत-प्रभृति भिन्न-भिन्न भावों में तुम्हारी ही उपासना करते हैं। मनुष्य अपनी-

अपनी रुचि के अनुसार कोई सरल, कोई वक्र, नानाविध मार्गों का अवलम्बन कर एकमात्र तुम्हें ही लक्ष्य कर चलते हैं। जिस प्रकार नाना नदियों का पथ विभिन्न होते हुये भी सब एक ही समुद्र में आकर गिरती हैं, उसी प्रकार जिस-किसी मार्ग से होकर जायँ, अन्त में सब कोई भगवान् के चरणतल में ही पहुँचते हैं—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

यही कारण है कि जीव को उपदिष्ट करते हुये शास्त्र भी कहते हैं कि—

यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः।
या काली सैव कृष्णः स्याद्यः कृष्णः सैव कालिका॥
देवदेवीं समुद्दिश्य न कुर्यादन्तरं क्वचित्।
तत्तद्भेदो न मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत्॥

अर्थात् जो ब्रह्म हैं, वही हरि हैं और जो हरि हैं, वही महेश्वर हैं। जो काली हैं, वही कृष्ण हैं और जो कृष्ण हैं, वही काली हैं। देव-देवी को लक्ष्य कर कभी भी अपने मन में भेद उत्पन्न होने देना उचित नहीं है। देवता के चाहे कितने भी नाम और रूप हों, सभी एक ही हैं और यह जगत् भी शिव-शक्तिमय ही है। इसी अभिप्राय से श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में भी कहा गया है कि—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि पञ्चदेवता उस एक ही विश्वतोमुख भगवान् के स्फुरणमात्र हैं, फिर भी मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपने उपास्य देवता का ग्रहण नहीं कर सकता; करना उचित भी नहीं है। शास्त्रविधि के अनुसार ही समस्त कार्य होने आवश्यक होते हैं; अतः सद्गुरु ही जीव की प्रकृति का विचार करके उसके उपास्य देवता को निर्दिष्ट करने में समर्थ होता है। भिन्न-भिन्न मनुष्यों की जिस प्रकार भिन्न-भिन्न रसों में आसक्ति होती है, उसी प्रकार जीव की भी प्राक्तन कर्म और स्वभाव के अनुसार भिन्न-भिन्न देवताओं में आसक्ति होती है; साथ ही अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही किसी जीव की पुरुषदेवता के प्रति तो किसी जीव की स्त्री-देवता के प्रति तथा उन देवताओं के विविध वर्णों के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इन समस्त विषयों का किञ्चित् भी विचार न करके मात्र देवता का नाम-जप एवं रूप-ध्यान करने वाले साधक को शुभ फल की कथमपि प्राप्ति नहीं होती। यही

कारण है कि तन्त्रशास्त्र में इस विषय में प्रभूत विचारों और सिद्धान्तों का वर्णन समुपलब्ध होता है।

तन्त्रमतानुसार देवी की उपासना ही एकमात्र शक्ति की उपासना नहीं है। शक्ति के उपासक गाणपत्य, सौर, वैष्णव, शैव और शाक्त सभी हैं। उनके अनुसार पुरुष निर्गुण है और निर्गुण की उपासना नहीं होती। उपास्य देवता के पुरुष होने पर भी वास्तव में वहाँ उसकी शक्ति की ही उपासना होती है। शक्ति ही हमारे ज्ञान का विषय होती है। शक्तिमान अथवा पुरुष तो ज्ञानातीत सत्तामात्र है; अतः वह किसी भी समय किसी के भी बोध का विषय नहीं होता। वेद एवं तन्त्र में ब्रह्म को सच्चिदानन्द-स्वरूप कहा गया है। इस सच्चिदानन्द में सत् अंश पुरुष अथवा निर्गुण भाव तथा चित् एवं आनन्द अंश गुणयुक्त भाव अर्थात् प्रकृति है और इसी प्रकृति के द्वारा हमें पुरुष का परिचय प्राप्त होता है।

पुरुष और प्रकृति का विचारक ही सांख्य शास्त्र है। यहाँ दुःख के आत्यन्तिक विनाश को ही मुक्ति कहा गया है। सुख-दुःख आदि बुद्धि आदि के ही स्वभाव हैं और स्वभाव कथमपि नष्ट नहीं हो सकता। अतः बुद्धि के अतिरिक्त किसी सत्ता को स्वीकार न करने से दुःख आदि से मुक्तिलाभ असम्भव है; यही कारण है कि बुद्धि के अतिरिक्त सुख-दुःखादि से विरहित एक अतिरिक्त वस्तु अथवा आत्मा को अंगीकार करना पड़ता है और वह आत्मा ही सुख-दुःखादि से रहित निर्गुण पुरुष है। बुद्धि आदि के सुख-दुःखादि धर्म पुरुष में आरोपित होते हैं। इस आरोपित सुख-दुःखादि धर्म के अपगत होने पर ही जीव को मुक्ति-लाभ होता है। बुद्ध्यादि स्वयं में अचेतन पदार्थ हैं और चेतन के सान्निध्य में आने पर ही इनकी प्रवृत्ति देखी जाती है। बुद्धि आदि समस्त जड़ पदार्थ भोग्य पदार्थ हैं; परन्तु भोक्ता के बिना भोग्य सिद्ध नहीं होता। भोग्य पदार्थ का मात्र अनुभव होता है और जो अनुभव करता है या भोग करता है, वही पुरुष है।

सांख्यमत से पुरुष के संयोग द्वारा अचेतन बुद्धि आदि चेतन के समान हो जाते हैं तथा बुद्धि आदि के संयोग से अकर्ता पुरुष कर्ता के समान हो जाता है। सांख्य के पुरुष एवं प्रकृति पारस्परिक साहाय्य के विना संसारी रचना में स्वयं कथमपि समर्थ नहीं होते; किन्तु इसमें भगवदिच्छा का भी कोई प्रयोजन नहीं होता। लेकिन यह सांख्य-सिद्धान्त तन्त्र, उपनिषत् अथवा पुराण-सम्मत नहीं है। गीता के अनुसार भगवान् पुरुषोत्तम ही चरम तत्त्व हैं तथा प्रकृति एवं पुरुष इनकी शक्तिमात्र हैं। तन्त्रोक्त प्रकृति सांख्योक्त प्रकृति के समान जड़ नहीं है; अपितु वह पूर्ण चैतन्यमयी है। तन्त्रमत से शिव साक्षात् परब्रह्म हैं; न कि जाग्रदवस्थाभिमानी,

स्वप्नावस्थाभिमानी एवं सुषुप्त्यवस्थाभिमानी पुरुषविशेष। उनके दो विभाव हैं—सगुण एवं निर्गुण। माया से उपहित परब्रह्म ही सगुण है और माया से अनुपहित होने पर वही निर्गुण कहलाता है। निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप में आने पर ही उसकी कृपा समझ में आती है, उसकी प्रसन्नता का ज्ञान होता है। इसीलिये शास्त्रों में गुणमयी ब्रह्ममूर्ति की उपासना का आदेश है। यह मूर्ति किसी के द्वारा कल्पित नहीं है; अपितु साधकों के कल्याण के लिये ब्रह्म स्वयमेव अपनी रूपकल्पना करता है। यही अरूप का रूप है और रूप होने पर भी वह शुद्ध चिन्मात्र है। सगुण भाव में शक्ति सुप्रकट रहती है और निर्गुण अवस्था में ब्रह्मशक्ति ब्रह्म में तल्लीन रहती है।

प्रकृति के साथ ब्रह्म का अविनाभाव सम्बन्ध है अर्थात् प्रकृति के विना ब्रह्म नहीं रहता और ब्रह्म के विना प्रकृति नहीं रहती। तिल में तेल के समान प्रकृति ब्रह्म में सदा अनुलिप्त, अभेद्य सम्बन्ध से रहती है। यह प्रकृति जब उसमें तल्लीन रहती है तब वह ब्रह्म निर्गुण कहलाता है। तब वह केवल चिन्मात्र, मन-बुद्धि से अतीत एवं समाधि से बोधगम्य होता है। प्रकृति जब उसमें जागृत हो जाती है तब वह केवल बोधमात्र या शून्यमात्र नहीं रह पाता। तब वह जड़ातीत होते हुये भी जड़मध्य में आकर प्रकाशित होता है। इस प्रकटभाव को ही भगवत्कृपा या अनुग्रहभाव कहा जाता है। उस समय मानों चैतन्य और कर्तृत्व दोनों ही उसमें एक साथ दिखाई पड़ते हैं और इसीलिये कहीं-कहीं निर्गुण ब्रह्म को केवल चैतन्यमात्र कहा गया है एवं इसके कर्तृत्व-भोक्तृत्व को अस्वीकार किया गया है; परन्तु पुरुष प्रकृति से समन्वित होने पर ही सगुण ब्रह्म के नाम से अभिहित होता है। उस समय उसमें चैतन्य और कर्तृत्व दोनों वर्तमान रहते हैं; किन्तु इस अवस्था का अभाव होने पर पुनः उसका ईश्वरत्व नहीं रह जाता। ईश्वरत्व के स्थायी भाव में प्रकृति-पुरुषयुक्त भाव ही अनादि है—यही तन्त्र स्वीकार करता है।

तंत्र में आध्यात्मिक मार्ग के उपायरूप से चार प्रकार के मार्गों का उल्लेख किया गया है—पश्वाचार, वीराचार, दिव्याचार एवं कौलाचार। इनमें वेदाचार, वैष्णवाचार एवं शैवाचार में उपदिष्ट आचार का अवलम्बन कर जो साधना की जाती है, वही पश्वाचार होता है। वीर-साधन के विषय में पञ्चतत्त्वों को अपरिहार्य बतलाया गया है; लेकिन कलिकाल के मनुष्यों के लोभी एवं शिश्नोदर-परायण होने के कारण पञ्चतत्त्वों के प्रति उनकी अपरिहार्य आसक्ति को देखते हुये उनके द्वारा साधना सम्भव ही नहीं है। धीर व्यक्ति बार-बार विषय-सेवन करते हुये भी मुकुन्दपदारविन्द से पृथक् नहीं होते। वह हजारो कर्मों में लगे रहने पर भी मुख्य लक्ष्य को कभी विस्मृत नहीं करते। जो साधक संसार के समस्त कर्मों में लिप्त रहते

हुये भी गोविन्द को कभी नहीं भूलते, वे ही यथार्थ धीर होते हैं और वे धीर ही यथार्थ वीर साधक होते हैं। वे वीर साधक जिस प्रकार अपने मस्तक पर अग्नि रखकर दोनों हाथों में तलवार लेकर अपने विविध रूप से अंग-सञ्चालन के द्वारा खेल दिखलाते हैं, उसी प्रकार तन्त्रोक्त वीर साधक भी विमुग्धकारिणी वस्तु लेकर साधना करते हैं; फिर भी वे वस्तुयें कभी-भी उन्हें लक्ष्यभ्रष्ट नहीं करतीं। दिव्य भाव के साधक वीरभाव की अपेक्षा अधिक उच्चावस्था-सम्पन्न पुरुष होते हैं, उनको नीचा दिखला सकने की शक्ति किसी सांसारिक वस्तु में नहीं होती। दिव्य भावापन्न साधक नरदेव होते हैं। वे निरन्तर सन्तोषी, द्वन्द्वसहिष्णु, रागद्वेष-विवर्जित, क्षमाशील एवं समदर्शी होते हैं। वीरसाधकों के समान उनको अपनी असाधारण शक्ति के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं रहती। उनका हृदय सर्वदा प्रशान्त रहता है, उसमें लेशमात्र भी उद्वेग या आशंका नहीं रहती।

कौलाचार अत्यन्त ही जटिल विषय है; परन्तु तन्त्र में इसकी अत्यधिक प्रशंसा की गई है। इसकी साधना वीराचार के ही समान होती है; किन्तु इसमें वीरता प्रदर्शित करने की अपेक्षा वीर बनने की साधना पर ही विशेष लक्ष्य रखा जाता है। कुलाचार में भी पञ्चतत्त्वों का व्यवहार प्रचलित तो अवश्य है; परन्तु वह मत्स्य-मांसासक्त व्यक्ति को संयमपथ में लाने की एक चेष्टामात्र है। जो साधनहीन पुरुष पञ्च मकारों में निमग्न हैं, उनके उस घोर नशे को उतारने के लिये, उन्हें और भी उच्चतर दिव्य मद का मार्ग दिखलाने के लिये जीवों के प्रति भगवान् सदाशिव की अद्भुत करुणा इस साधना में प्रकाशित होती है। कुलाचार के अनुवर्ती होने पर बुद्धि शीघ्र ही निर्मल हो जाती है तथा बुद्धि की निर्मलता से जगज्जननी आद्या के चरणकमल में स्थिर बुद्धि उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि बुद्धि को निर्मल और ब्रह्ममुखी बनाने के लिये ही भोग के द्वारा मोक्ष का द्वार खोलना इस साधना का उद्देश्य है। भगवान् ने इस जगत् की प्रत्येक वस्तु को इस कुशलता से बनाया है कि उनके व्यवहार का यथार्थ ज्ञान होने से उनसे अमृत की प्राप्ति हो सकती है और व्यवहारदोष से उन्हीं से विष भी उत्पन्न हो सकता है। कुलाचार जीवों के भवबन्धन को नष्ट करने की ही चेष्टा करता है। जीव के मद्यपायी होने अथवा लम्पट बनाने के उद्देश्य से शास्त्रविधि की रचना नहीं हुई है। स्त्री के द्वारा कुलाचार का साधन होता है; फिर भी उस स्त्री को भोग की वस्तु नहीं समझा जाता। उसे साक्षात् इष्टदेवी-स्वरूपिणी समझे बिना कोई भी मनुष्य तन्त्रोक्त साधना में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। चण्डीस्तव में कहा भी है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।

स्पष्ट है कि तन्त्र पञ्चमकारों को साधारण दृष्टि से नहीं देखता; अपितु बुद्धि की मलिनता के कारण हम स्वयं तन्त्रों को पवित्रभाव से नहीं देख़ सकते। तन्त्रोक्त साधना में अतिशीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। जो सिद्धिलाभ के लिये समुत्सुक रहते हैं, वे ही तन्त्रोक्त प्रणाली से साधन करने में अग्रसर हो सकते हैं; लेकिन जिस प्रकार थोड़े दिनों में ही इससे साधनसिद्धि प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार इसमें उसी परिमाण में साधना की उत्कटता भी अत्यधिक होती है। तन्त्रोक्त साधना के स्थान और काल के विषय में विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह जीव के साधारण भाव में स्थित चित्त के द्वारा हो ही नहीं सकती। सर्वप्रथम तो साधना का स्थान ही इतना भयंकर बताया गया है कि वहाँ दिन में भी एकाकी जाने में भय होता है। विखरे हुये नरकंकाल, नरमुण्ड एवं विच्छिन्न कंकालराशि से समन्वित, दुर्गन्ध से परिपूर्ण एवं शृगालों के भयोत्पादक रुदन अथवा चिल्लाहट वाले निर्जन श्मशानभूमि में अमावास्या के घोर अन्धकार में मृत शरीर के वक्षःस्थल पर आसीन होने की कल्पना से ही सामान्य मनुष्य जब अचेत होने की स्थिति में पहुँच जाता है, तो फिर वहाँ पर बैठकर साधना करना सम्भव है अथवा नहीं, यह स्वयं विचारणीय है। स्पष्ट है कि जिनका इस मार्ग में अनुराग नहीं है, जिन्हें उक्त वस्तुओं से यथेष्ट घृणा है, उनके लिये यह मार्ग कदापि श्रेयस्कर नहीं है। जीव के रुचिभेद से भिन्न-भिन्न भावमय उपास्य देवता और उनकी साधनप्रणाली में भेद होते हुये भी चाहे जिस मार्ग का अवलम्ब ग्रहण न किया जाय, साधक के लिये लक्ष्य स्थान पर पहुँचने में कोई असुविधा नहीं होती तथा समस्त साधनाओं के चरम लक्ष्यभूत भगवान् भी पृथक्-पृथक् नहीं होते। अतएव साधना की प्रणाली चाहे जो भी हो, भगवत्प्राप्ति के विषय में कोई वैलक्षण्य नहीं घटता। पद्मपुराण में कहा भी है—

सौराश्च शैवगाणेशाः वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भः सागरं यथा॥

तन्त्र में साधक के बाह्य भाव का उल्लेख करके उसके अन्तर्भाव को जागृत करने के लिये संकेत किया गया है। महादेव पार्वती से कहते हैं कि हे प्रिये! तेज ही आद्य तत्त्व, पवन द्वितीय तत्त्व, जल तृतीय तत्त्व, पृथिवी चतुर्थ तत्त्व एवं जगदाधार आकाश पञ्चम तत्त्व है। हे कुलेश्वरि! कुलधर्म के आचार तथा पञ्चतत्त्व जिस साधक को इस प्रकार विज्ञात हैं, वह निश्चय ही जीवन्मुक्त है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये—

आद्यतत्त्वं विद्धि तेजो द्वितीयं पवनं प्रिये।
अपस्तृतीयं जानीहि चतुर्थं पृथिवी शिवे॥

पञ्चमं जगदाधारं वियद्बिन्धि वरानने।
इत्थं ज्ञात्वा कुलेशानि कुलं तत्त्वानि पञ्च च॥
आचारं कुलधर्मस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।

तन्त्रों में कुल का स्वरूप इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

न कुलं कुलमित्याहुः कुलं ब्रह्म सनातनम्।

स्पष्ट है कि तन्त्रशास्त्र में 'कुल' शब्द से वंशपरम्परा अभिप्रेत नहीं है; अपितु सनातन ब्रह्म ही 'कुल' शब्द-वाच्य है। इस ब्रह्म को वास्तविक रूप से जानकर जो पुरुष मोहशून्य अथवा निर्विकार हो सकते हैं; वे ही कुलतत्त्वज्ञ कहलाने के अधिकारी होते हैं। जो इस साधना के साधक हैं, वे ही कुलसाधक अथवा कौल कहलाते हैं। इस प्रकार तन्त्र का कुलतत्त्व कोई सहज बात नहीं है, न ही कौल बनना कोई सामान्य बात है। तन्त्र में कहा भी है—

कुलं कुण्डलिनी शक्तिरकुलं तु महेश्वरः।

अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति ही 'कुल' शब्दगम्य है और महेश्वर ही 'अकुल' शब्द से अभिप्रेत हैं। ध्यातव्य है कि कुण्डलिनी तत्त्व का ज्ञान हो जाने पर साधक ब्रह्मज्ञ हो जाता है और यही तन्त्रोक्त साधना का मर्मस्थान है। कुण्डलिनी ही जीवतत्त्व या मुख्य प्राण है। यही यथार्थतः अध्यात्म या परा प्रकृति है तथा जगत् को यही धारण करती है। योगी लोग इसी को प्राणशक्ति कहते हैं—

प्राणो हि भगवानीशः प्राणो विष्णुः पितामहः।
प्राणेन धार्यते लोकः सर्वं प्राणमयं जगत्॥

अर्थात् प्राण ही ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक है, प्राण ही जगत् को धारण करने वाला है। समस्त जगत् ही प्राणमय है। जो महाशक्ति ब्रह्मरूप से विकसित होकर स्थूल से स्थूलतर जगदादि रूप में परिणत होती है, वह विश्व की मूल या आदि शक्ति बीज ही प्राण या कुण्डलिनी है। राधा के वक्षःस्थल पर स्थित पुरुष ही श्रीकृष्ण अथवा पुरुषोत्तम हैं। श्रीकृष्ण को जानने के लिये सर्वप्रथम राधा को जानना आवश्यक है। वैष्णवों का कथन है कि श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिये राधिका के अनुगत होकर भजन करना होगा, यही परम सत्य है। योगी एवं तन्त्रोक्त उपासक भी यही कहते हैं कि कुण्डलिनी ही चैतन्य शक्ति है और उसकी कृपा के विना कोई भी शुद्ध चैतन्य या निर्गुण ब्रह्म को नहीं जान सकता।

तन्त्र के छः प्रयोगों के साधन में हमारी मनोवृत्ति कैसी रहती है, इसका कतिपय सांकेतिक शब्दों द्वारा भली-भाँति निदर्शन होता है। वे शब्द हैं—नमः,

स्वाहा, वषट्, वौषट्, हुम् और फट्। अन्तःकरण की शान्त अवस्था में 'नमः' का प्रयोग होता है। समस्त दुर्धर्ष, घातक एवं अपकारी शक्तियाँ विनय के समक्ष नत हो जाती हैं। जो मनुष्य यथाशक्ति परोपकार में रत रहकर दूसरों के हित के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देता है, वह अपने शत्रुओं की समस्त विरोधभावनाओं को हटाकर उन पर पूर्ण अधिकार कर लेता है। 'वषट्' अन्तःकरण की उस वृत्ति का लक्ष्य कराता है, जिसमें अपने शत्रुओं के सम्बन्धियों का अनिष्ट-साधन करने अथवा उनका प्राणहरण करने की भावना रहती है। 'वौषट्' अपने शत्रुओं के हृदयों में एक-दूसरे के प्रति द्वेष उत्पन्न करने का सूचक है। 'हुम्' बल तथा अपने शत्रुओं को स्थानच्युत करने के निमित्त क्रोध का ज्ञापक है एवं 'फट्' अपने शत्रु के प्रति शस्त्रप्रयोग को अभिव्यक्त करता है। मन्त्रों की भाँति यन्त्र भी अनेक होते हैं। वे यन्त्र भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्रों के संकेत होते हैं। बहुत से यन्त्र प्रकृति के चरित्र का रहस्य बतलाते हैं और कई यन्त्र ऐसे होते हैं, जो मनुष्यों तथा जानवरों के चरित्र का निरूपण करते हैं। तन्त्रशास्त्र में मन्त्रों एवं यन्त्रों का विशद् विवेचन उपलब्ध होता है। इसीलिये तन्त्रशास्त्र का माहात्म्य प्रदर्शित करते हुये कहा गया है—

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्रदानामुदधिस्तथा।
नदीनाञ्च यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालयः॥
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां राज्ञाभिद्रो यथा वरः।
देवीनाञ्च यथा दुर्गा वर्णानां ब्राह्मणो यथा॥
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्।
सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्रं वै वेदसम्मितम्॥
कीर्त्तनं देवदेवस्य हरस्य मतमेव च।
पावनं श्रद्दधानानामिह लोके परत्र च॥

प्राचीनतम तन्त्रग्रन्थों में रथक्रान्त, विष्णुक्रान्त एवं अश्वक्रान्त—तीनों में चौंसठ-चौंसठ ग्रन्थ दृगोचर होते हैं। इस प्रकार कुल एक सौ बयानबे ग्रन्थों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। उनमें से रथक्रान्त तन्त्रग्रन्थों में मेरुतन्त्र का स्थान छठा है। इसके सम्बन्ध में ग्रन्थ के प्रथम प्रकाश में भगवान् शिव का कथन है कि—

महाकालेन यत्प्रोक्तं पञ्चमी मुक्तिसाधनम्।
सर्वेषां मेरुतां यातं तत्तन्त्रं मेरुसंज्ञितम्॥

महाकाल ने जिस पाँचवीं मुक्तिसाधन का कथन किया है, उनमें मेरुतन्त्र सुमेरु पर्वत के समान सर्वोच्च है। ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, सूर्य, गौरी आदि देव-देवियों तथा गंगा, यमुना आदि नदियों; साथ ही अन्यान्य उपास्य देवों के मन्त्र,

यन्त्र, न्यास, ध्यान, पीठ, शक्ति आवरणार्चन विधियों एवं वैदिक मन्त्रविधियों का भी प्रतिपादक शिव-पार्वती-संवादरूप यह महनीय ग्रन्थ पैंतीस प्रकाशों में विभाजित है। शिव द्वारा उपदिष्ट एक सौ आठ तन्त्रों में सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित होने के कारण ही यह 'मेरुतन्त्र' के नाम से अभिहित है। जलन्धर से भयभीत देवताओं और ऋषियों के लिये भगवान् शिव ने इसका उपदेश किया था। यह महनीय ग्रन्थ लगभग पन्द्रह हजार श्लोकों में निबद्ध है। इस ग्रन्थ में ज्ञान, योग, क्रिया तथा चर्या—इन चारो अंगों के साथ-साथ मन्त्रों के रहस्यात्मक प्रभाव का भी विवेचन किया गया है। यन्त्र-मन्त्र का इसमें विशद् वर्णन है। क्रियाविभाग में मूर्ति एवं यन्त्रपूजन के विधान प्रमुख हैं। चर्याविभाग में दैनिक आचार के साथ-साथ व्रत, उत्सव एवं सामाजिक अनुष्ठानों के विस्तृत विवरण हैं। तर्पण और दीपदान के विधान भी इस ग्रन्थ में विवेचित हैं। इसके अनुसार साधना करके आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—चारो प्रकार के श्रेष्ठ कर्मी अपने मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं। गीता के सातवें अध्याय के सोलहवें श्लोक में कहा गया है कि मनुष्य की ईश्वर या ईश्वरीय सत्ता-सम्पन्न वस्तुओं के प्रति अभिरुचि के चार प्रमुख कारण हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।

अर्थात् भरतवंशियों में श्रेष्ठ हे अर्जुन! चार प्रकार के उत्तम कर्म वाले लोग मेरा अर्चन-पूजन करते हैं, वे हैं—अत्यन्त संकट में पड़ा हुआ, जिज्ञासु अर्थात् यथार्थ ज्ञान का इच्छुक, अर्थार्थी अर्थात् सांसारिक सुखों का अभिलाषी एवं ज्ञानी। इन चार कारणों में से अन्तिम अर्थात् ज्ञानी के अतिरिक्त प्रथम तीन कारण तो ऐसे हैं कि उनसे कोई बचा ही नहीं है। कुछ केवल पीड़ित हैं, कुछ केवल जिज्ञासु हैं तो कुछ केवल अर्थार्थी हैं। इन कष्टों के शमन-हेतु मनीषियों द्वारा अनेक मार्गों का विवेचन किया गया है, जिनमें तन्त्रसाधना श्रेष्ठ है और उनमें भी मेरुतन्त्र श्रेष्ठ है। प्रकृत ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता यह है कि यह ग्रन्थरत्न उक्त चारो ही कारणों का समाधान करने वाला है।

प्रस्तुत संस्करण

तन्त्र-साधना हेतु परमोपयोगी यह महनीय ग्रन्थ जो अद्यावधि उपलब्ध है, वह पूर्णतः संस्कृत वाङ्मय में मूलमात्र है। वर्तमान में अल्पज्ञ पाठकों के संस्कृत भाषा-ज्ञान में पूर्णतः दक्ष न होने के कारण अभीष्ट होते हुये भी वे ग्रन्थ-तात्पर्य को अंगीकार करने में समर्थ नहीं हो पा रहे थे, यही कारण है कि यह ग्रन्थ प्रचलन

में नहीं था। ग्रन्थ की अनिवार्यता एवं ग्रन्थोक्त अनुष्ठानों की उपयोगिता को हृदयंगम करते हुये चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी के अप्रतिम स्वत्त्वाधिकारी गोलोकवासी नवनीतदास जी गुप्त की सतत् प्रेरणा के परिणामस्वरूप इस महनीय ग्रन्थ को भाषाभाष्य से समन्वित करने का दुरूह कार्य पूर्णता को प्राप्त हो सका; यह स्वर्गीय गुप्त जी की उत्कट अभिलाषा एवं उनके अनुवर्ती श्री नवीन एवं नीरज जी के सतत् उत्साहवर्धन का ही प्रतिफल है। आशा एवं विश्वास है कि यह संस्करण अध्येताओं के लिये ग्रन्थ के गूढ़ अर्थ को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

श्रीनिवास शर्मा

विवेच्य विषय

प्रथम प्रकाश में मंगलकामना के अनन्तर ग्रन्थोपदेश का प्रयोजन प्रदर्शित किया गया है। वहाँ कहा गया है कि जलन्धर द्वारा पराजित होकर समस्त सुरासुर महेश की शरण में गये, जो कि दिव्य दस हजार वर्षों से समाधिस्थ थे। समाधि-त्याग के पश्चात् देवादि द्वारा प्रार्थना करने पर एवं वाम-दक्षिण मार्ग द्वारा पूजित होने पर माता जगदम्बा द्वारा भगवान् सदाशिव से प्रश्न किया गया कि ब्रह्मा, हरि आदि सब तो आपका ध्यान करते हैं; फिर आप किसका ध्यान करते हैं? अम्बा की जिज्ञासा का शमन करते हुये सदाशिव कहते हैं कि मैं महाकाल का ध्यान करता रहता हूँ। महाकाल के विषय में देवताओं द्वारा जिज्ञासा प्रकट किये जाने पर महादेव कहते हैं कि महाकाल के ही प्रभाव से वेदवाक्य ज्ञात होते हैं और यह समस्त जगत् भी महाकाल द्वारा ही अपनी माया से रचित है। उन्हीं के प्रभाव से मेरे द्वारा एक सौ आठ तन्त्रों का प्रणयन किया गया है, उनमें यह मेरुतन्त्र सर्वश्रेष्ठ है। इसके बाद मुक्ति का चातुर्विध्य-निरूपण करते हुये कलिप्रभाव से नानाविध कष्टों का कथन कर उपासना की प्रक्रिया बतलायी गई है। तदनन्तर वाम-दक्षिणभेद से पाँच-पाँच उपासनाओं का कथन है। वाममार्ग के कौलादि पाँच भेदों का निरूपण करने के पश्चात् दक्षिण मार्ग में विद्यमान वैदिक आदि उपासनाभेदों का विवेचन किया गया है। तदनन्तर गुरु एवं शिष्य कैसे होने चाहिये—इसका विवेचन है। इसमें कहा गया है कि कलियुग में गुरु धन-कामी एवं शिष्य सिद्धि-कामी होते हैं; इसीलिये वे दोनों ही सिद्धि-रहित होते हैं। यहाँ बतलाया गया है कि अदीक्षित मनुष्यों का देवार्चन में कोई अधिकार नहीं होता; इसीलिये सर्वप्रथम स्वयं को मन्त्रसंस्कृत करना आवश्यक होता है। दीक्षा ज्ञान प्रदान करने वाली एवं पापों को नष्ट करने वाली होती है। असत् गुरु जब स्वयं नष्ट होता है तो फिर वह दूसरे का उद्धार कैसे कर सकता है; अतः बीस विश्वोपक गुणों से गुरु को युक्त होना चाहिये। गुरु को उत्कृष्ट अंगों वाला, शुद्ध वेषधारी, मनोहर, समस्त अंगमार्गों का ज्ञाता, समस्त मन्त्रविधान को जानने वाला, दुर्जनों को चेष्टामात्र से ही दूर कर देने वाला, अन्तर्मुखी एवं बहिर्दृष्टि वाला, देश-काल का ज्ञाता, आज्ञासिद्ध, दयायुक्त, शान्त, वेदाङ्गों सहित वेद का ज्ञाता, अनिन्दित, नित्य-नैमित्तिक एवं काम्य कर्म का अनुष्ठाता, अलोलुप, अहिंसक एवं शिष्य का पक्षपाती होना चाहिये। इसके बाद शिष्य किस प्रकार का होना चाहिये एवं किस प्रकार के शिष्य बनाना चाहिये—

इसका कथन करते हुये यह बताया गया है कि लोभ आदि के वशीभूत होकर जिस किसी को भी दीक्षा प्रदान करने से गुरु देवता के शाप का भागी होता है। यहीं यह भी कहा गया है कि वेद के द्वारा ही ग्रह-यज्ञादिक का साधन सम्भव है, वेद के विना यज्ञ और यज्ञ के विना वेद का कोई अस्तित्व नहीं है; इसीलिये मन्त्र वेदपरक ही होते हैं, अवैदिक नहीं। यह भी बताया गया है कि मन्त्र में शूद्रों का कोई अधिकार नहीं होता; इसलिये उनको सर्वप्रथम संस्कृत करना आवश्यक होता है। विधवा को उसके पुत्र के आदेश से एवं कन्या को उसके पिता के आदेश से ही दीक्षित करना चाहिये। स्त्री के लिये उसका पति ही गुरुरूप होता है; अतः स्त्री को अपने पति से ही दीक्षा ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार विस्तृत रूप से दीक्षा-विधान, वर्णानुसार पञ्चविध मन्त्र, वर्णानुसार बीजमन्त्र आदि का विवेचन किया गया है। उपासना सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक-भेद से त्रिविध होती है, इसका विवेचन करते हुये इस प्रथम व्यवस्था-प्रकाश का समापन किया गया है।

द्वितीय संस्कारप्रकाश के आरम्भ में देवी द्वारा तन्त्रमार्गानुयाषियों के सिद्धिविहीन रहने, आराधना के पश्चात् भी दुःखी रहने में क्या कारण है— एतत्सम्बन्धी जिज्ञासा प्रकट करते हुये ईश्वर से प्रश्न किया गया है कि तान्त्रिकों का संस्कार किस प्रकार किया जाता है? गौरी की जिज्ञासा का शमन करते हुये ईश्वर ने बतलाया है कि संस्कार सोलह होते हैं। उनमें से तीन संस्कार गर्भावस्था में एवं दस संस्कार उत्पन्न होने पर किये जाते हैं। इसके बाद तीन कर्म किये जाते हैं। इन सोलह संस्कारों का विस्तारपूर्वक विवेचन करने के क्रम में ताराचक्र, गणचक्र, शशिचक्र, कौलों के लिये पाञ्चभौतिक चक्र, सिद्धादि चक्र, अकडम चक्र, षड्दलमातृका चक्र, युद्ध में विजय-प्रदायक मल्लमातृका चक्र, चौरमातृका चक्र, राजाओं की विजय-प्राप्ति हेतु राजमातृका चक्र, कामना-जयप्रद मातृकाचक्र, सेनापति जयप्रद मातृकाचक्र एवं दूत की स्थिति का ज्ञान कराने वाले मातृकाचक्र का विवेचन करने के पश्चात् अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, दीक्षा, प्राजापत्य, आग्नेय, वैश्वदेव, गोदान, समावर्तन, विवाह एवं पितृमेध संस्कार का स्वरूप विवेचित किया गया है। इसके बाद यन्त्रसिद्धि के उपाय प्रदर्शित करते हुये मन्त्रों के जनन, जीवन, ताडन, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन एवं गोपन संस्कारों का विधिपूर्वक विवेचन करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

दीक्षा-नामक तृतीय प्रकाश के आरम्भ में वाम एवं दक्षिणमार्ग में दीक्षा-ग्रहण के स्वरूप-विषयक देवी द्वारा किये गये प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव द्वारा

उनकी जिज्ञासा का शमन करते हुये दीक्षा की विधि निरूपित की गई है। दीक्षा-हेतु कुण्ड-मण्डप आदि का विवेचन करते हुये मण्डप के विविध भेद एवं उनका निर्माण, वेदी का निर्माण, कुण्ड का मान, चतुष्कोण कुण्ड-निर्माण की विधि, वृत्तकुण्ड का निर्माण बतलाने के पश्चात् षडस्र, अष्टास्र, अष्टदल, पञ्चास्र एवं सप्तास्र कुण्डों के निर्माण की विधि निरूपित की गई है। इसके बाद वास्तुपूजन को विवेचित करते हुये पूजनक्रम में पूजनीय देवताओं का कथन किया गया है। तत्पश्चात् दीक्षा-दान के लिये ग्राह्य-अग्राह्य मास, नक्षत्र, तिथि, वार, योग, करण एवं लग्न का परिगणन करते हुये उनका फल बतलाया गया है। इसके बाद स्वप्न की परीक्षा किस प्रकार की जाती है, इसका विवेचन करते हुये शुभ-अशुभ स्वप्न विवेचित किये गये हैं। तदनन्तर वैदिक एवं तान्त्रिक सर्वतोभद्र मण्डल का विवेचन करते हुये विभिन्न देवों के लिये सर्वतोभद्र मण्डल की विधि प्रदर्शित की गई है। साथ ही मण्डलविधि एवं वारुण मण्डल का विवेचन किया गया है। इसके बाद देवता-पूजन का विधान वर्णित है। वर्णौषधियों का कथन करने के उपरान्त गन्धाष्टक का कथन किया गया है। वर्णमयी दीक्षा, कलावती दीक्षा, अष्टत्रिंशत् कला-दीक्षा, ज्ञानवती दीक्षा एवं वाग्दीक्षा अथवा शाम्भवी दीक्षा का विवेचन करने के पश्चात् पूर्णाभिषेक विधि का निरूपण करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

होमविधि-नामक चतुर्थ प्रकाश के आरम्भ में मन्त्रों के सात्त्विक आदि तीन भेदों का विशद् विवेचन करने के पश्चात् तन्त्रमार्गानुसारी अट्ठारह प्रकार के कुण्ड-संस्कार प्रदर्शित किये गये हैं। इसके बाद अग्नि-स्थापन की विधि निरूपित की गई है। कुण्ड के मध्य में अष्टदलात्मक पूजनपीठ की निर्माण विधि का निरूपण करने के अनन्तर तान्त्रिक होमविधि का विवेचन करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

पञ्चम आह्निकप्रकाश का आरम्भ आह्निक-विचार से किया गया है। इसके बाद स्नान-विधि, तिलक-धारण एवं तान्त्रिकी सन्ध्या का कथन करने के पश्चात् शिवगायत्री बतलायी गई है। अनन्तर पूजाद्रव्यों के स्थापन का क्रम निरूपित है। भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र, अन्तर्मातृका एवं बहिर्मातृका न्यास का विवेचन करने के उपरान्त वाम-दक्षिण मार्ग से देवता का ध्यान बतलाया गया है। तत्पश्चात् क्रमशः कलामातृका, केशवादि मातृका, श्रीकण्ठादि मातृका, भुवनेश्वरी बीजमातृका, श्रीलक्ष्मीबीजमातृका, कामबीजमातृका, शक्तिश्रीकामबीजमातृका एवं गणेशमातृका न्यासों का विवेचन करते हुये प्रपञ्चयाग न्यास का विवेचन किया गया

है। इसके बाद गणेशमालामन्त्र को निरूपित कर योगपीठ न्यास का कथन करने के उपरान्त पूजा-योग्य शालिग्राम शिलाओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। वैष्णव, शैव, शाक्त, सूर्य, गणेश, दिक्पालों एवं ग्रहों के लिये विहित अलग-अलग शालिग्रामों के स्वरूपादि का विस्तृत विवेचन करने के पश्चात् मूर्ति आदि में आवाहन की विधि प्रदर्शित की गई है। तत्पश्चात् मूर्ति की पूजा-विधि, दीपदान-विधि, नैवेद्य-समर्पण विधि एवं नैवेद्य-समर्पण के पश्चात् भूतबलि विवेचित है। अन्त में सामान्यत: त्रिविध पूजन का निरूपण करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

पुरश्चर्या-नामक षष्ठ प्रकाश का आरम्भ पुरश्चरण के तात्पर्य-निरूपण से किया गया है। इसके बाद पुरश्चरण के पूर्वकृत्य निरूपित किये गये हैं। तदनन्तर पुरश्चरण-हेतु जपयोग्य स्थान का निरूपण करते हुये जप के योग्य माला का विचार विवेचित करने के बाद माला-स्थित रुद्राक्ष आदि का फल बतलाकर रुद्राक्ष की महिमा का निरूपण किया गया है। अनन्तर माला के संस्कार एवं मालाभेद का कथन करते हुये शूद्रों एवं स्त्रियों के लिये प्रयोज्य माला किस प्रकार संस्कृत होती है, इसका विवेचन है। करमाला का कथन करने के उपरान्त जप के समय त्याज्य कर्मों को कहा गया है। इसके बाद जप का स्वरूप एवं उसका भेद निरूपित है। आसनों का विवेचन करते हुये कौन-कौन आसन निषिद्ध हैं, इसे बतलाया गया है। इसके बाद पुरश्चरण करने वालों द्वारा किये जाने वाले भोजन को बतलाकर जप का समय एवं मन्त्रसिद्धि का उपाय बतलाया गया है। इसके बाद शाबरमन्त्रों की पुरश्चरण-विधि भी उल्लिखित की गई है। तान्त्रिक मन्त्र की दीक्षाविधि का निरूपण करते हुये प्रकाशान्त में जप द्वारा ही मोक्ष-साधन को बतलाया गया है।

सिद्धिस्थिरीकरण नामक सप्तम प्रकाश के आरम्भ में निषिद्ध आचारों का कथन करते हुये आवश्यक कर्तव्यों को संसूचित किया गया है। इसके बाद दमनोत्सव पूजा आदि का विवेचन करते हुये पवित्रारोपण का सविधि कथन किया गया है। अनन्तर शान्ति आदि काम्य कर्मों का सविधि विवेचन करने के उपरान्त वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, मारण आदि कर्मों का विधान बतलाया गया है। इसके बाद काम्य आदि कर्मों में पूजनीय देवताओं का कथन करते हुये सिद्धि को स्थिर रखने के लिये किये जाने वाले उपायों को बतलाते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

मुद्रालक्षण-नामक अष्टम प्रकाश में देवता को प्रसन्न करने वाले मुद्राओं के लक्षण को स्पष्ट करते हुये क्रमश: अंकुश, कण्ठ, वह्निप्राकार, अंगुलिन्यास,

हृदय, शिर, शिखा, कवच, त्रिनेत्र, द्विनेत्र, ललितानमस्कार, क्षोभिणी, द्राविणी, आकर्षिणी, हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र, गालिनी, धनुः, शंख, योनि, मत्स्य, आवाहनी, स्थापनी, सम्मुखीकरणी, सकलीकरणी, अवगुष्ठन, सन्निधापन, सन्निरोधन, दन्त, पाश, वशंकरी, उन्मादिनी, महांकुशा, विघ्न, परशु, मोदक, बीजपूरणी, वर, अभय, चर्म, मुसल, दुर्गा, बाण, चक्र, गदा, पद्म, वेणु, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, ज्ञान, विश्व, प्रकोष्ठ, खेचरी, योनि, गरुड़, नृसिंह, वाराही, हयग्रीव, कामाख्या, त्रैलोक्य मोहिनी, चन्द्र, सौर, लिङ्ग, त्रिशूल, माला, मृग, खट्वाङ्ग, कपालिनी, डमरु, पद्मासन, कुशल, सौभाग्यदायिनी, शत्रुनाशिनी, स्वागत, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, आभूषण, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ग्रास, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, महायोनि, शक्त्युत्थापन, सप्तजिह्व, भूतबलि, नाराच, संहार, अशनि, विधु, कालकर्णी, विस्मय, नाद, प्रार्थना, लक्ष्मी, अन्त्र, दंष्ट्रा, पृष्ठक, गजकर्ण, वस्त्रस्फालन, वापी, शकट, गायत्री की चौबीस मुद्रायें, सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पञ्चमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकाञ्जलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सम्मुखोन्मुख, विलम्ब, मुष्टि, मत्स्य, कूर्म, वाराही एवं सिंहाक्रान्त मुद्राओं के स्वरूप निरूपित किये गये हैं।

विषयानुक्रमणी

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
प्रथमः प्रकाशः	
(व्यवस्थाप्रकाशः)	
जलन्धरविजितदेवानो हितं कथं भविष्यतीति देवानां शिवसमीपे गमनम्	१
समाधिविसर्जनोत्तरं त्वया किं ध्यायत इति शिवं प्रति गौरीप्रश्नः	२
उपासनायाः वामदक्षिणभेदकथनम्	३
कोऽसौ महाकालः, मुक्तिः कतिधा, सा कथं लभ्यत इत्यादिदेवताप्रश्नः	४
वेताप्रश्नोत्तरदानाय महाकालप्रीत-मेरुतन्त्रारम्भकरणम्	५
उपासनायाः वामदक्षिणभेदकथनम्	७
वाममार्गस्य कौलादिपञ्चभेदाः	११
दक्षमार्गस्थितवैदिक्याद्युपासनाभेदः	११
वामदक्षिणमार्गयोः संक्षेपेण कथनम्	१८
द्वितीयः प्रकाशः	
(संस्कारप्रकाशः)	
तन्त्रमार्गिणां बहूनां सिद्धिलाभोऽपि न भवति कुतो मोक्ष इति तद्विषये गौरीप्रश्नः	१९
देहसंस्काराभावात्सिद्धिर्न भवति ततो देहस्य शुद्ध्यर्थं षोडशसंस्कार-कथनम्	१९
ताराचक्रम्	२३
गणविचारः	२४
शशिचक्रविचारः	२५
कौलानां कृते पाञ्चभौतिकविचारः	२६
सिद्धादिचक्रम्	२८
सिद्धिमातृकाचक्रम्	२९
सिद्धिमातृका चक्र	३०
षड्दलमातृका चक्र	३२
ऋणी-धनीचक्रम्	३३
युद्धे जयार्थं मल्लमातृकाचक्रम्	३५
चौरमातृकाचक्रम्	३६
राजानं विजयार्थं राजमातृकाचक्रम्	३६
विजयप्रदं कलहमातृकाचक्रम्	३७
कामजयप्रदमातृकाचक्रम्	३८
चमूपतिजयप्रदमातृकाचक्रम्	३८
दूतस्य स्थितिज्ञानार्थं मातृकाचक्रम्	३९
अन्नप्राशनसंस्कारः	३९
चूडाकरणसंस्कारः	४०
उपनयनसंस्कारः	४०
दीक्षासंस्कारः	४१
प्राजापत्यसंस्कारः	४२
आग्नेयसंस्कारः	४३
वैश्वदेवसंस्कारः	४३
गोदानसंस्कारः	४३
समावर्त्तनसंस्कारः	४४
विवाहसंस्कारः	४५
पितृमेधसंस्कारः	४५
मन्त्राणां षोडशसंस्काराः	४६
मन्त्रसिद्धेरुपायः	५६
जननसंस्कारः	५७
जीवनसंस्कारः	५९
ताडनसंस्कारः	५९
बोधनसंस्कारः	५९
अभिषेकसंस्कारः	६०
विमलीकरणसंस्कारः	६१
आप्यायनसंस्कारः	६१
तर्पणसंस्कारः	६२
दीपनसंस्कारः	६२

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
गोपनसंस्कारः	६२
अथ तृतीयः प्रकाशः	
(दीक्षाप्रकाशः)	
वाम-दक्षिणमार्गे कथं दीक्षाग्रहणमिति देवीप्रश्नः	६४
दीक्षाविधिनिरूपणम्	६४
दीक्षाविधौ कुण्डमण्डपादिविचारः	६४
मण्डपभेदास्तन्निर्माणञ्च	६७
वेदीनिर्माणम्	७४
कुण्डमानम्	७५
चतुष्कोणकुण्डविधानम्	७७
वृत्तकुण्डनिर्माणम्	८०
षडस्रकुण्डनिर्माणम्	८०
अष्टदलकुण्डनिर्माणम्	८१
अष्टास्रकुण्डनिर्माणम्	८२
पञ्चास्रकुण्डनिर्माणम्	८२
सप्तास्रकुण्डनिर्माणम्	८२
वास्तुपूजनम्	८४
वास्तुपूजनक्रमे पूज्याः देवाः	८७
दीक्षायां .म्नसविचारः	९७
दीक्षायां तिथिफलम्	९९
दीक्षायां वारफलम्	१००
दीक्षायां योगफलम्	१०१
दीक्षायां करणफलम्	१०१
दीक्षायां लग्नफलम्	१०१
स्वप्नपरीक्षाविधिः	१०६
कायकर्मणि शुभस्वप्नाः	११०
अशुभस्वप्नाः	११४
सर्वतोभद्रचक्रविधिः	११८
तान्त्रिकसर्वतोभद्रमण्डलविधिः	११९
देवयोनीनां कृते सर्वतोभद्र मण्डलविधिः	१२१
वारुणमण्डलकथनम्	१२३
देवतापूजनम्	१२९

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
गन्धाष्टकम्	१३१
वर्णमयी दीक्षा	१४७
कलावती दीक्षा	१४८
अष्टत्रिंशत्कला दीक्षा	१४९
ज्ञानवती दीक्षा	१४९
वाग्दीक्षा शाम्भवी दीक्षा वा	१५१
पूर्णाभिषेकविधिः	१५३
अथ चतुर्थः प्रकाशः	
(होमविधिप्रकाशः)	
मन्त्राणां सात्त्विकादिभेदत्रैविध्यम्	१५६
तन्त्रमार्गानुसारेणाष्टादशकुण्ड-संस्काराः	१५९
अग्निस्थापनविधिः	१६३
कुण्डमध्येऽष्टदलपूजापीठम्	१६८
तान्त्रिकहोमविचारः	१७५
अथ पञ्चमः प्रकाशः	
(आह्निकप्रकाशः)	
आह्निकविचारः	१८१
स्नानविधिः	१८८
तिलकधारणम्	१९३
तान्त्रिकी सन्ध्या	१९७
शिवगायत्री	१९८
पूजाद्रव्यस्थापनक्रमः	२०८
भूतशुद्धिः	२११
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रः	२१४
अन्तर्मातृकान्यासः	२२३
बहिर्मातृकान्यासः	२२४
वामदक्षमार्गेण देवताध्यानम्	२२७
कलामातृकान्यासः	२२८
केशवादिमातृकान्यासः	२३१
श्रीकण्ठादिमातृकान्यासः	२३४
भुवनेशीबीजमातृकान्यासः	२३८
श्रीलक्ष्मीबीजमातृकान्यासः	२४०
कामबीजमातृकान्यासः	२४१

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
शक्तिश्रीकामबीजमातृकान्यासः	२४३
गणेशमातृकान्यासः	२४४
प्रपञ्चयागन्यासः	२४६
गणेशमालामन्त्रः	२४८
योगपीठन्यासः	२५१
पूजार्हशालिग्रामशिला	२७०
वैष्णवशालग्रामाः	२७२
शैवशालग्रामाः	२७८
शाक्तशालग्रामाः	२७९
सूर्यशालग्रामाः	२८०
गणेशशालग्रामाः	२८०
दिगीशशालग्रामाः	२८०
ग्रहशालग्रामाः	२८०
मूर्त्यादावावाहनादिकम्	२८१
पूजाविधिः	२८६
दीपदानविधः	२९७
नैवेद्यसमर्पणविधिः	२९९
नैवेद्यान्ते होमविधिः	३०२
भूतबलिः	३०२
सामान्यतः पूजात्रैविध्यम्	३१३
षष्ठः प्रकाशः	
(पुरश्चर्याप्रकाशः)	
पुरश्चरणव्याख्या	३१६
पुरश्चरणपूर्वकृत्यम्	३१८
जपस्थानानि	३४१
जपार्हमालाविचारः	३४७
रुद्राक्षमहिमा	३५४
मालासंस्कारः	३५५
मालाभेदाः	३५९
शूद्राणां स्त्रीणाञ्च कृते मालासंस्कारः	३६०
मलभेदाः	३६१
करमाला	३६३
जपकाले त्याज्यकर्माणि	३६४
जपस्वरूपं तद्भेदांश्च	३६७

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
आसनानि	३६८
निषिद्धासनानि	३६९
पुरश्चरणकर्तृणां कृते भोजनम्	३७५
जपकालः	३७९
मन्त्रसिद्धेरुपायाः	३८३
शाबरमन्त्राणां पुरश्चरणविधिः	३८७
तान्त्रिकमन्त्रदीक्षाग्रहणविधिः	३८७
जपस्यैव सिद्धिमोक्षसाधकत्वम्	३८८
सप्तमः प्रकाशः	
(सिद्धिस्थिरीकरणप्रकाशः)	
निषिद्धाचारकथनम्	३९२
अवश्यकर्त्तव्यानि	३९६
दमनकोत्सवपूजादि	३९८
पवित्रारोपणम्	४०५
शान्त्यादिकाम्यकर्माणि	४०७
वशीकरणम्	४०८
स्तम्भनम्	४०९
विद्वेषणम्	४१०
उच्चाटनम्	४१०
मारणम्	४११
प्रकीर्णाभिचारकर्माणि	४१२
काम्यादौ पूज्या देवताः	४१४
सिद्धिस्थिरीकरणोद्यमः	४१७
अष्टमः प्रकाशः	
(मुद्रालक्षणप्रकाशः)	
दैवतप्रीतिकरमुद्रालक्षणानि	४२०
अङ्कुशमुद्रा	४२०
कण्ठमुद्रा	४२०
वह्निप्राकारमुद्रा	४२१
अङ्गुलिन्यासमुद्रा	४२१
हृदयमुद्रा	४२१
शिरोमुद्रा	४२१
शिखामुद्रा	४२१
कवचमुद्रा	४२१

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
त्रिनेत्रमुद्रा	४२२	वरमुद्रा	४२८
द्विनेत्रमुद्रा	४२२	अभयमुद्रा	४२८
ललितानमस्कारमुद्रा	४२२	चर्ममुद्रा	४२८
क्षोभिणीमुद्रा	४२२	धनुर्मुद्रा	४२९
द्राविणीमुद्रा	४२३	मुसलमुद्रा	४२९
आकर्षिणीमुद्रा	४२३	दुर्गामुद्रा	४२९
हृदयमुद्रा	४२३	बाणमुद्रा	४२९
शिरोमुद्रा	४२३	चक्रमुद्रा	४२९
शिखामुद्रा	४२३	गदामुद्रा	४३०
कवचमुद्रा	४२४	पद्ममुद्रा	४३०
नेत्रमुद्रा	४२४	वेणुमुद्रा	४३०
अस्त्रमुद्रा	४२४	श्रीवत्समुद्रा	४३०
गालिनीमुद्रा	४२४	कौस्तुभमुद्रा	४३०
धनुर्मुद्रा	४२४	वनमालामुद्रा	४३०
शङ्खमुद्रा	४२४	ज्ञानमुद्रा	४३१
योनिमुद्रा	४२५	विश्वमुद्रा	४३१
मत्स्यमुद्रा	४२५	प्रकोष्ठमुद्रा	४३१
आवाहनीमुद्रा	४२५	खेचरीमुद्रा	४३१
स्थापनीमुद्रा	४२५	योनिमुद्रा	४३१
सम्मुखीकरणीमुद्रा	४२५	गरुड़मुद्रा	४३२
सकलीकरणीमुद्रा	४२५	नृसिंहमुद्रा	४३२
अवगुण्ठनमुद्रा	४२६	वाराहीमुद्रा	४३२
महामुद्रा	४२६	हयग्रीवमुद्रा	४३२
सन्निधापनमुद्रा	४२६	कामाख्यामुद्रा	४३३
संरोधिनीमुद्रा	४२६	त्रैलोक्यमोहिनीमुद्रा.	४३३
दन्तमुद्रा	४२६	चन्द्रमुद्रा	४३३
पाशमुद्रा	४२७	सौरमुद्रा	४३३
वशकरीमुद्रा	४२७	लिङ्गमुद्रा	४३३
उन्मादिनीमुद्रा	७२७	त्रिशूलमुद्रा	४३३
महाङ्कुशामुद्रा	४२७	मालामुद्रा	४३४
विघ्नमुद्रा	४२७	मृगमुद्रा	४३४
परशुमुद्रा	४२८	खट्वाङ्गमुद्रा	४३४
मोदकमुद्रा	४२८	कपालिनीमुद्रा	४३४
बीजपूरणीमुद्रा	४२८	डमरुमुद्रा	४३४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
पद्मासनमुद्रा	४३४
कुशलमुद्रा	४३५
सौभाग्यदायिनीमुद्रा	४३५
शत्रुनाशिनीमुद्रा	४३५
स्वागतमुद्रा	४३५
अर्घ्यमुद्रा	४३५
पाद्यमुद्रा	४३५
आचमनमुद्रा	४३६
मधुपर्कमुद्रा	४३६
स्नानमुद्रा	४३६
वस्त्रमुद्रा	४३६
आभूषणमुद्रा	४३६
उपवीतमुद्रा	४३६
गन्धमुद्रा	४३७
पुष्पमुद्रा	४३७
धूपमुद्रा	४३७
दीपमुद्रा	४३७
नैवेद्यमुद्रा	४३७
ग्रासमुद्रा	४३७
प्राणमुद्रा	४३८
अपानमुद्रा	४३८
व्यानमुद्रा	४३८
उदानमुद्रा	४३८
समानमुद्रा	४३८
महायोनिमुद्रा	४३९
शक्त्युत्थापनमुद्रा	४३९
सप्तजिह्वामुद्रा	४३९
भूतबलिमुद्रा	४३९
नाराचमुद्रा	४३९
संहारमुद्रा	४४०
अशनिमुद्रा	४४०
विधुमुद्रा	४४०
कालकर्णीमुद्रा	४४०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
विस्मयमुद्रा	४४०
नादमुद्रा	४४०
प्रार्थनामुद्रा	४४१
लक्ष्मीमुद्रा	४४१
अन्नमुद्रा	४४१
दंष्ट्रामुद्रा	४४१
पृष्ठकमुद्रा	४४१
गजकर्णमुद्रा	४४२
वस्त्रस्फालनमुद्रा	४४२
वापीमुद्रा	४४२
शकटमुद्रा	४४२
गायत्र्याश्चतुर्विंशतिमुद्राः	४४२
सुमुखमुद्रा	४४२
सम्पुटमुद्रा	४४३
विततमुद्रा	४४३
विस्तृतमुद्रा	४४३
द्विमुखमुद्रा	४४३
त्रिमुखमुद्रा	४४३
चतुर्मुखमुद्रा	४४४
पञ्चमुखमुद्रा	४४४
षण्मुखमुद्रा	४४४
अधोमुखमुद्रा	४४४
व्यापकाञ्जलिमुद्रा	४४४
शकटमुद्रा	४४४
यमपाशमुद्रा	४४५
ग्रथितमुद्रा	४४५
सम्मुखोन्मुखमुद्रा	४४५
विलम्बमुद्रा	४४५
मुष्टिमुद्रा	४४५
मत्स्यमुद्रा	४४६
कूर्ममुद्रा	४४६
वाराहीमुद्रा	४४६
सिंहाक्रान्तमुद्रा	४४६

॥ श्रीः ॥

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

अथ प्रथमः प्रकाशः

(व्यवस्थाप्रकाशः)

मङ्गलाचरणम्

ययाऽसत्सदिवाभाति न च भाति कदापि सत्।
यस्मिञ्ज्ञाते न सा भाति तस्यै तस्यै नमो नमः ॥१॥

जिस परा शक्ति की माया से मोहित सबों को असत् सत् के समान प्रतीत होता है और सत् का ज्ञान कदापि नहीं हो पाता, उस शक्ति को बारम्बार प्रणाम है। जिस सत् रूपी परशिव के ज्ञान होने पर माया का अज्ञान नष्ट हो जाता है, उस शिव को बारम्बार प्रणाम है। तात्पर्य यह है कि परब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर क्या असत् है और क्या सत् है? इसका ज्ञान हो जाता है। माया का प्रभाव समाप्त हो जाता है। इसलिये ब्रह्म और शक्ति—दोनों को बारम्बार प्रणाम है।।१।।

जलन्धरविजितदेवानां हितं कथं भविष्यतीति देवानां शिवसमीपे गमनम्

जलन्धरेण विजिते सुरासुरनरेऽखिले।
सूक्ष्मरूपेण ते सर्वे महेशं शरणं गताः ॥२॥

देव-दानव युद्ध में समस्त सुर, असुर और नर सभी जलन्धर द्वारा परास्त हो जाने पर सूक्ष्म रूप से महादेव की शरण में गये।।२।।

दिव्यान्यब्दसहस्राणि समाधिस्थं विलोक्य तम्।
प्रार्थिता चार्च्चिता तैस्तु वामदक्षिणमार्गिभिः ॥३॥

महादेव जी के स्थान पर पहुँचकर सबों ने देखा कि शिवजी हजारों दिव्य वर्षों

से समाधि में स्थित हैं। यह देखकर उन सबों ने वाम-दक्षिण दोनों मार्गों से उनका अर्चन और वन्दन किया।।३।।

समाधिविसर्जनोत्तरं त्वया किं ध्यायत
इति शिवं प्रति गौरीप्रश्नः

अम्बा तदा बोधयुता नत्वा तं संव्यजिज्ञपत्।
ध्यायन्ति विधिहर्याद्यास्त्वां त्वं ध्यायसि कं पुनः ॥४॥

समाधि से प्रकृत अवस्था में आने के पश्चात् शिवजी को चैतन्य देखकर गौरी ने उन्हें प्रणाम किया और उनसे पूछा किं ब्रह्मा तथा विष्णु—ये दोनों ही आपका ध्यान करते हैं, तब आप किसका ध्यान करते हैं?।।४।।

मां वदन्ति परां शक्तिं त्वां वदन्ति परं शिवम्।
आवयोरपि किं ध्येयं तत्त्वं मे कृपया वद ॥५॥

मुझे सभी पराशक्ति कहते हैं और आपको सभी परमशिव कहते हैं। ऐसी स्थिति में हम दोनों द्वारा ध्येय कौन है? कृपया इस गूढ़ तत्त्व का विवेचन करें।।५।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः स्मित्वा किञ्चिन्महेश्वरः।
उपवेश्य विधीन्द्रादीन् वाक्यमेतदुवाच ह ॥६॥

माता गौरी के इस प्रकार के वचनों को सुनकर थोड़ा मुस्कुराते हुये भगवान् शिव ने ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं को बैठाकर इस प्रकार से कहा।।६।।

सदाशिव उवाच

नराणां परमं वृद्धेरायुः सौर्यश्शतं समाः।
तदब्दं देवयोनीनां दिनमायुश्च तच्छतम् ॥७॥

सदाशिव बोले—मनुष्यों की आयु सौर वर्षमान से एक सौ वर्ष की होती है। मनुष्यों की आयु के एक वर्ष के बराबर देवताओं का एक अहोरात्र होता है अर्थात् छः महीने का दिन और छः महीनों की रात। इस मान से देवताओं की आयु मनुष्यों की आयु के ३६००० वर्ष के बराबर होती है।।७।।

वृद्ध्यते परमं तस्य मानं कलियुगस्य तत्।
धर्मार्धं सार्धसम्पूर्णं धर्मशास्त्रप्रमाणतः ॥८॥

देवताओं की आयु से बारहगुना अधिक इन्द्र की आयु होती है अर्थात् ३६००० × १२ = ४३२००० वर्षों की होती है। धर्मशास्त्र के प्रमाण से कलियुग में धर्म सतयुग का चौथा भाग ही रहता है।।८।।

इदन्तु शैविविहतमैन्द्रायुर्मानवं परम्।
कृतिप्रमाणमब्दन्तु समयः कायपूरकः ॥९॥

ब्रह्मा के एक कल्प के दिन में १००० महायुग होते हैं। एक कल्प के चौदहवें भाग के बराबर इन्द्र की आयु होती है।।९।।

चतुर्दशेन्द्रसंस्थैव ब्रह्मणो दिनमुच्यते।
या ध्यायते महामाया मया तच्छ्वासनिर्गमः ॥१०॥

चौदह इन्द्रों और चौदह मनुओं की आयु के बराबर ब्रह्मा का एक कल्प का दिन होता है। ब्रह्मा जी का एक दिन जिस महामाया का एक श्वास है, मैं उसी का ध्यान करता हूँ।।१०।।

प्रपञ्चो ब्रह्मदिवसः कुम्भको रात्रिरस्य तु।
एवं तस्या घटिकया वर्षमेकं विधेस्स्मृतम् ॥११॥

ब्रह्मा के एक कल्प के दिन के प्रपञ्च एक कल्प की रात्रि महामाया के एक श्वास और उसके कुम्भक के बराबर हैं। महामाया की एक घटी के बराबर ब्रह्मा का एक वर्ष होता है।।११।।

घटीशतमितं तस्या ब्रह्मा जीवति कीटवत्।
पक्षमेकं सतीरूपं शुक्लं कृष्णं तु पार्वती ॥१२॥

महामाया की एक सौ घटी तक ब्रह्मा कीटवत् जीवित रहते हैं। महामाया सती-रूप से शुक्ल पक्ष में एवं पार्वतीरूप से कृष्ण पक्ष में रहती है।।१२।।

ऋतुमात्रं हरिर्जीवेद्वर्षमात्रमहं शिवः।
एवं सा शतवर्षा वै महाकालस्य गेहिनी ॥१३॥

महामाया के दो महीने की ऋतु के बराबर विष्णु की आयु है और उसकी आयु के एक वर्ष के बराबर मुझ शिव की आयु है। इस प्रकार के सौ वर्षों की आयु वाली महाकाल की गृहिणी वह महामाया हैं।।१३।।

महाकालवशात्सर्वे विलयं यान्ति ततः स एव
मया ध्यात इति शिवकथनम्

सर्पकञ्चुकवद्देहं त्यक्त्वा त्यक्त्वा पुनर्युवा।
महाकालः सदा तिष्ठेत्स मया विषयीकृतः ॥१४॥

जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुली का बार-बार त्याग करके युवा बना रहता है, उसी प्रकार महाकाल भी पुनः-पुनः देह बदलकर विद्यमान रहता है। वह मेरे द्वारा विषया-भिभूत रहता है।।१४।।

एवं श्रुत्वा वचस्तस्य देवी ब्रह्मा हरिः सुराः ।
अहङ्कारस्य विलयं कृत्वा भीता नताः पुनः ॥१५॥

शिवजी के ऐसे वचन सुनकर देवी, ब्रह्मा, विष्णु और देवताओं का अहंकार नष्ट हो गया और भयभीत होकर उन्होंने शिवजी को बार-बार प्रणाम किया।।१५।।

कोऽसौ महाकालः, मुक्तिः कतिधा, सा कथं
लभ्यत इत्यादिदेवताप्रश्नः

देवा ऊचुः

त्राहि त्राहि महादेव शरणागतवत्सल ।
साहङ्कारा वयं सर्व ईश्वरा इति वादिनः ॥१६॥

देवताओं ने कहा—हे भक्तवत्सल महादेव! हमारी रक्षा कीजिये। हम लोगों ने अहंकार के वशीभूत होकर आप-जैसे सर्वेश्वर से इस प्रकार से पूछा।।१६।।

निर्जिता अपि निर्लज्जा जलन्धरवधैषिणः ।
मशकाश्च वयं देव न च त्वं मशकायसे ॥१७॥

हमलोग पराजित होकर भी निर्लज्ज होकर जलन्धर के वध की कामना कर रहे हैं। हम सभी देव मच्छर के समान हैं, लेकिन आप मच्छर के समान नहीं हैं।।१७।।

यस्याग्रे सोऽपि यस्त्वञ्च पादार्धांशेन नो समः ।
महाकालः कथञ्ज्ञेयः कथयस्व सदाशिव ॥१८॥

हमारे सामने आप हैं; जबकि आपसे भी आगे महाकाल है। हम सब आपके पाँव की धूलि के बराबर भी नहीं हैं। जब हम सब आपको ही नहीं समझ सके, तब उस महाकाल को कैसे जान सकते हैं? हे सदाशिव! आप ही बतलाइये कि वह महाकाल को किस प्रकार जाना जा सकता है।।१८।।

मुक्तयः कतिधा देव श्रेष्ठा का किञ्च साधनम् ।
वदास्माकं यदि कृपा देव्यां विष्णौ सुरेषु च ॥१९॥

महाकाल की महामाया के प्रभाव से कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है? हे देव! इसके लिये कौन-से श्रेष्ठ साधन हैं? यदि हम देवों, विष्णु और देवताओं पर आपकी कृपा हो तब इसके विषय में हमें बतलाने की कृपा करें।।१९।।

ईश्वर उवाच

ज्ञायते तत्प्रभावेण सकलं वेदवाक्यतः ।
पुनर्मोदयते वृद्धिं तस्य मायाकृतञ्जगत् ॥२०॥

शिवजी ने कहा—महाकाल के प्रभाव से वेदवाक्यों द्वारा इसका ज्ञान हो सकता है। सभी वेदवाक्यों द्वारा यह अनुमोदित है कि यह सारा संसार महामाया की कृति है। वेदान्तवाक्य भी है कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है; शेष सृष्टि माया है, मिथ्या है।।२०।

मया कृतानि तन्त्राणि सङ्ख्ययाऽष्टोत्तरं शतम्।
येन येन प्रार्थितोऽहं देवी सम्प्रार्थिता मया ॥२१॥

मैंने एक सौ आठ तन्त्र-ग्रन्थों की रचना की है। जिन-जिन तन्त्रों की रचना के लिये देवी ने मुझसे जब-जब प्रार्थना की, तब-तब मैंने उनकी रचना की।।२१।।

देवीभिः प्रमथैर्देवैस्तत्तन्मोक्षश्चतुर्विधः।
येन मार्गेण भवति स स मार्गः प्रकाशितः ॥२२॥

देवी, प्रमथगण और देवों के लिये मोक्ष के चार विधान कहे गये हैं। जिस-जिस मार्ग से मोक्ष प्राप्य है, वे सभी मार्ग प्रकाशित किये जा चुके हैं।।२२।।

तस्माद्देवेशि ते देवा अहङ्कारेण मोहिताः।
अन्यान् देवान् विनिन्दन्ति षट्कर्मनिरताः सदा ॥२३॥

हे देवेशि! वे सभी देव अहंकार के वशीभूत होकर दूसरे देवताओं की निन्दा करते रहते हैं और सदैव षट्कर्म में लगे रहते हैं।।२३।।

कलिना हृतसौभाग्या भक्ष्ये पाने च मैथुने।
जायन्ते निरतास्तेन निर्धनाः प्रेतरूपिणः ॥२४॥

कलियुग के द्वारा सौभाग्य हरण कर लिये जाने के पश्चात् लोग खान-पान और मैथुन में निरत रहने के कारण निर्धन होकर प्रेत के समान हो जाते हैं।।२४।।

दृश्यन्ते तु तथा देवा भवद्भिः सम्यगीरितम्।
वेदसारं धर्मसारं तन्त्राणां हृदयं परम् ॥२५॥

साथ ही देवता भी उसी प्रकार के हो जाते हैं। इसलिये आप लोगों से वेदों के सारस्वरूप, धर्मों के तत्त्वस्वरूप एवं तन्त्रों के हृदयस्वरूप सर्वश्रेष्ठ तन्त्र को मैं सम्यक् रूप से कहता हूँ।।२५।।

देवताप्रश्नोत्तरदानाय महाकालप्रणीत-
मेरुतन्त्रारम्भकरणम्

महाकालेन यत्प्रोक्तं पञ्चमीमुक्तिसाधनम्।
सर्वेषां मेरुतां यातं तत्तन्त्रं मेरुसञ्ज्ञितम् ॥२६॥

महाकाल के द्वारा वर्णित मुक्तिप्रदायक पञ्चम मार्ग, जो कि मेरु पर्वत के समान समस्त तन्त्रों में श्रेष्ठ है, उसका नाम 'मेरुतन्त्र' है।।२६।।

शृण्वन्तु तद् दृश्यमानं मनोह्लादकरञ्च यत्।
पृच्छया निजसन्देहान् दूरीकुर्वन्त्वशङ्किताः ॥२७॥

अब उस दृश्यमान एवं मन को आनन्दप्रदायक मेरुतन्त्र का वर्णन सुनिये। जिन सन्देहों को दूर करने के लिये आप लोगों ने प्रश्न किया था, अब उन सन्देहों को निर्भय होकर दूर कीजिये।।२७।।

यथा तोयाञ्जलनिधेर्गृहीत्वाब्दाः स्वधारया।
वर्षन्ति क्षत्रवायुस्तं बिन्दुरूपं करोति च ॥२८॥
तद्वन्महाकाललवान् महामाया प्रकर्षति।
कर्मभिश्चैव सम्भिन्नास्ते देवाः कोटिशो भवन् ॥२९॥

मेघ जिस प्रकार समुद्र के जल को ग्रहण करके अपनी धारा के रूप में वर्षा करते हैं और वायु अपने वेग से उसे बूँदरूप में परिणत कर देता है, उसी प्रकार महाकाल के लवों को महामाया खण्ड-खण्ड कर देती है। साथ ही वे देवता भी अपने कर्म से सम्भिन्न होकर करोड़ों-करोड़ हो जाते हैं।।२८-२९।।

यथा नैकट्यगुणतो बिन्दवो यान्ति चोद्यताम्।
तथैवोपासनामार्गगुणा यान्ति च देवताम् ॥३०॥

जिस प्रकार निकटता के गुण से बिन्दु उद्यमी हो जाते हैं, उसी प्रकार उपासना मार्ग के गुण से मनुष्य भी देवत्व को प्राप्त कर लेते हैं।।३०।।

यथा सरिद्भ्यो गर्त्ताभ्भःपतितं ह्रदतां व्रजेत्।
स च दूरतलः स्याद्वै तद्वद्देवोऽपि मोहितः ॥३१॥

जैसे नदियों का जल गर्त में गिरकर तालाब या झील बन जाता है, वैसे ही दूर तल पर रहकर द्वैतभावयुक्त होकर देवता भी मोहित हो जाते हैं।।३१।।

पुनर्नरः पुनस्तिर्यक् शेषं यद्वज्जलाशयः।
पुनः सूर्यकरे न्यस्तः पुनर्वृष्टिः पुनर्जलम् ॥३२॥
तद्वद्दुष्कर्मणा जीवो नानायोनिषु जीर्यते।

मोहित देवता पुनः मनुष्य हो जाते हैं, फिर तिर्यक् योनि में जन्म ग्रहण करते हैं, ठीक उसी प्रकार से जैसे कि जलाशय पुनः सूर्य-किरणों में समाहित हो जाते हैं, फिर वर्षारूप में परिणत हो जाते हैं एवं फिर जल के रूप में जलाशय में वापस आ जाते

हैं। इसी प्रकार अपने सुकर्मों या दुष्कर्मों के अनुसार जीव भी अनेक योनियों में जन्म-मरण का दुःख भोगता रहता है।।३२।।

यथा जलौघः सन्मार्गात्तटिनीतो महानदीम् ॥३३॥
प्रविष्टस्तोयधिं पश्चादपुनर्भवतां व्रजेत् ।
वाडवोदरसंवेशात्तद्वज्जीवोऽपि देवताम् ॥३४॥

जिस प्रकार सन्मार्ग को ग्रहण करके जल नदियों की सहायता से महानदी में प्रविष्ट होकर समुद्र में समाहित हो जाता है और बडवानल के उदर में समाविष्ट होने के पश्चात् पुनः वापस नहीं आता, उसी प्रकार जीव भी देवत्व को अवाप्त करने के पश्चात् पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता।।३३-३४।।

विष्णुतां शिवतां लब्ध्वा महाकालोऽभिजायते ।
समुद्रादाहृतः कश्चिद्दैवात्त्यक्तस्तु तत्र तु ॥३५॥
यथा समुद्रो भवति तद्वद् ब्रह्मसुता अपि ।
ब्रह्मज्ञानाद्विनिर्मुक्ता हित्वा चोपासनाक्रमम् ॥३६॥

उपासना से जीव भी विष्णुत्व एवं शिवत्व को प्राप्त कर महाकाल हो सकता है। समुद्र से निकलकर जिस प्रकार दूसरा समुद्र निर्मित हो जाता है, वैसे ही देवत्व का त्याग करके कतिपय देव भी ब्रह्मपुत्रत्व को प्राप्त होते हैं और वे ही पुनः ब्रह्मज्ञान से विनिर्मुक्त होकर उपासना-क्रम का भी त्याग कर देते हैं।।३५-३६।।

श्रीदेव्युवाच

वामदक्षिणभेदेन पञ्चपञ्चक्रमेण च ।
उपासना वामदक्षा तत्र तत्र प्रशस्तिका ॥३७॥

श्रीदेवी ने कहा—उपासना के वाम-दक्षिणभेद से पाँच-पाँच क्रम हैं। वाममार्गी अपनी उपासना को प्रशस्त मानता है और दक्षिणमार्गी अपनी उपासना को प्रशस्त मानता है।।३७।।

तत्र भोगक्रिया मोक्षक्रिया युग्मक्रियापि च ।
लभ्यते देवता का च सर्वाभ्यस्तूत्तमोत्तमा ॥३८॥

वाम-दक्षिण दोनों ही मार्गों में भोगक्रिया और मोक्षक्रिया दोनों हैं। इसमें सबसे उत्तम कौन-सी क्रिया है, जिससे देवता का साक्षात्कार होता है?।।३८।।

उपासनायाः वामदक्षिणभेदकथनम्

शिव उवाच

देवासुरैः पुरा कल्पे मथ्यमाने महोदधौ ।
तत्र श्यामा समुत्पन्ना सुराकलशधारिणी ॥३९॥

शिवजी ने कहा—प्राचीन कल्प में देव और दानवों ने मिलकर क्षीरसागर का मन्थन किया था। तब सुरा-कलश हाथों में लेकर एक श्यामा प्रकट हुई।।३९।।

गौराङ्ग्यरुणचैला च भास्वद्धरितकञ्चुका।
श्वेतोत्तरच्छदा देवी त्रैलोक्यस्यापि मोहिनी ॥४०॥

वह श्यामा गौर वर्ण की थी। उसके वस्त्र लाल थे, हरित वर्ण की कंचुकी से वह सुशोभित थी। श्वेत उत्तरीय से आच्छादित वह देवी तीनों लोकों को मोहित करने वाली थी।।४०।।

दृष्ट्वा तां दानवाः सर्वे शुक्राचार्यवरात्सुरान्।
जित्वा ताञ्जगृहुस्तस्याः कलशाच्च पपुः सुराम् ॥४१॥
देवान् पलायितान् दृष्ट्वा शक्तयस्तत्र संस्थिताः।
पपुस्ता अपि तां पुण्यां सुरां दैवतमातरम् ॥४२॥

सभी दानवों ने उस देवी को देखते ही शुक्राचार्य के आशीर्वाद से देवताओं को पराजित कर उसे अपने अधिकार में कर लिया और उसके कलश से सुरा का पान करने लगे। देवताओं के भाग जाने पर भी शक्तियाँ वहीं अवस्थित रहीं एवं उन सबों ने भी उस पवित्र सुरा का पान किया।।४१-४२।।

वरानपि बहून् दद्युः सुरायाः सुरमातरः।
अनयास्मान् तर्पयन्ति शेषं गृह्णन्ति ये नराः।
तेऽस्मद्रूपा न सन्देहो भुक्तिमुक्त्येकभाजनम् ॥४३॥

देवमाताओं ने प्रसन्न होकर उस सुरा को बहुत से वरदान दिये। उन्होंने कहा कि जो मनुष्य इस सुरा से तर्पण करके अवशिष्ट सुरा का पान करेंगे, वे मनुष्य निस्सन्देह हमारे समान होकर भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति के पात्र होंगे।।४३।।

सुरा गङ्गा सुरा सिन्धुः सुरा देवी सरस्वती।
सुरा गोदावरी रेवा सुरैव परमम्पदम् ॥४४॥
सुरां निन्दन्ति ये मूढास्ते मूढा जन्मजन्मनि।

देवमाताओं ने कहा कि सुरा गङ्गा है, सुरा सिन्धु है और सुरा ही देवी सरस्वती है। सुरा गोदावरी एवं नर्मदा है। सुरा ही परम पद है।जो मूर्ख सुरा की निन्दा करते हैं, वे प्रत्येक जन्म में मूर्ख ही होंगे।।४४।।

गन्धर्वैः स्तूयमानास्ताः शक्तयस्ते च दानवाः ॥४५॥
पुनर्ममन्थुर्जलधिं बलहीनैः सुरैः सह।
धन्वन्तरिः समायातः सुधाकलशहस्तवान् ॥४६॥

गन्धर्वों एवं शक्तियों के द्वारा प्रशंसित उन दानवों ने बलहीन देवताओं के साथ मिलकर पुन: सागर का मन्थन किया, जिसके फलस्वरूप हाथों में अमृत-कलश लिये हुये धन्वन्तरि प्रकट हुए।।४५-४६।।

सुरामत्तास्तु ते प्रोचु: किमिदं पुरुषाहृतम्।
उवाच मधुरं विष्णु: सान्त्वयंश्च प्रतारयन्॥४७॥

सुरामद से मत्त उन दानवों ने कहा—यह पुरुष क्या लिये हुये है? तब उन्हें सान्त्वना के साथ-साथ नियन्त्रित करते हुये विष्णु ने मधुर वाणी में इस प्रकार कहा।।४७।।

पूर्वदेवा: सन्तु यूयं मद्यस्यास्य च पानत:।
अग्रे यदिदमुत्पन्नं पीयूषं तत्प्रकीर्तितम्।
अग्रेऽप्येतत्तु देवार्थं निस्सारं पुरुषाहृतम्॥४८॥

हे दानवों! पूर्वप्राप्त मद्य का पान करने के कारण तुम लोग देवता हो गये हो। अब यह जो द्रव प्राप्त हुआ है, उसे पीयूष कहते हैं। अब आगे जो यह पुरुष देवों के लिये जो द्रव लाया है, वह निस्सार है।।४८।।

ततो हरिर्मोहिनीरूपधारी वामेन तां पाययेत्पूर्वदेवान्।
शक्ती: सर्वास्त्वरुणान् भैरवादीनेतन्मन्त्रानुद्धरेदभ्यवर्षन्॥४९॥

तदनन्तर विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण करके उस पीयूष को देवों को पिलाने के पूर्व बाँये हाथ से समस्त शक्तियों एवं अरुण वर्ण भैरवों को पिलाया। इन सबों ने अमृत पीकर इन मन्त्रों का उद्धार किया, वे वाममार्गी मन्त्र हुए।।४९।।

दक्षेण देवानमृतं पाययंस्ते तत्तन्मन्त्रा: पूर्वदेवानबाधन्।
हाहाभूतं समरे तत्समस्तं शुक्राचार्यो ज्ञातवांस्तत्समग्रम्॥५०॥

श्रीविष्णु जब अपने दाँये हाथ से देवताओं को अमृत पिलाने लगे तब जो मन्त्र कहे, वे दक्षिणमार्गी हुए। इस पर दानवों ने झगड़ा करना आरम्भ कर दिया एवं समर में हाहाकार मच गया। तब शुक्राचार्य को सब भेद ज्ञात हो गया।।५०।।

तत: स क्रोधताम्राक्षो जलं कृत्वा करेऽशपत्।
धिग्धिगज्ञानं सुरारीणामनया सुरया हृतम्॥५१॥

तब शुक्राचार्य की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं और उन्होंने हाथ में जल लेकर इस प्रकार शाप दिया—दानवों को धिक्कार है कि उनके ज्ञान का हरण इस सुरा ने कर लिया है।।५१।।

तस्मादिमां ये पिबन्ति सर्वे पातकिनस्तु ते।
प्रयान्तु निरयं घोरं तिष्ठन्त्विह पिशाचवत् ॥५२॥

इसलिये इस सुरा का जो भी पान करेंगे, वे सभी पातकी होंगे। वे मरणोपरान्त घोर नरक में जायेंगे और (जबतक जीवित रहेंगे) यहाँ पिशाच के समान रहेंगे।।५२।।

श्रुत्वा तं दारुणं शापं प्रजज्वाल तदा सुरा।
निर्दहन्तीव लोकांस्त्रीन् प्राकम्पन्त सुरासुराः ॥५३॥

ऐसे कठोर शाप को सुनकर सुरा प्रज्ज्वलित हो उठी और अपनी ज्वाला से तीनों लोकों को जलाती हुई देव-दानवों को प्रकम्पित करने लगी।।५३।।

ततो मया स्तुता देवी बीजगर्भैः स्तवोत्तमैः।
पादयोः पातितः शुक्रः पुत्रोऽयन्तेमियोज्यताम् ॥५४॥
मायया रमया वाद्या सम्बुध्यन्ता त्रिवर्षकाः।
शुक्रशापं विमोचय पुनस्तद्वर्णकान्तिकाः ॥५५॥

तब मैंने सुरा का वन्दन किया और कहा कि आपका अभिमन्त्रित रूप उत्तम होगा। मैंने अपने पाँव से वीर्यपात किया, जिससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्र से ही सुरा का विवाह कर दिया। उन्होंने तीन वर्षों तक रमण किया, तब सुरा प्रबुद्ध हुई। इस प्रकार वह सुरा शुक्रशाप से विमुक्त होकर पुनः अपने वर्ण और कान्ति से युक्त हो गई। शुक्र-शाप से सुरा को विमुक्त करने वाला सोलह अक्षरों का मन्त्र है—शां शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशापात् विमुक्ता भव।।५४-५५।।

यस्या उपासना तस्या बीजेन पुटितो मनुः।
षोडशार्णस्तवाख्यातो मन्त्रिताष्टोत्तरं शतम् ॥५६॥

उपास्य इष्ट के बीज मन्त्र से सुरा को अभिमन्त्रित करने से वह शापमुक्त होकर अमृत के समान हो जाती है। इस मन्त्र के सोलह वर्ण हैं। इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके सुरा को अभिमन्त्रित किया जाता है और शुक्रशाप से उसे विमुक्त किया जाता है।।५६।।

निश्शापं कुरुते साध्यं भुक्तिमुक्त्येकभाजनम्।
इति दीक्षाक्रमो येषां वंशे देवि समागतः ॥५७॥
स कौलो दुर्लभो देवि दाता भोक्ता च पावकः।
यस्मिन्मार्गे प्रधानोऽयं स तु वामपथः स्मृतः ॥५८॥

शाप से विमुक्त होने पर यह सुरा सभी साध्य प्राप्त कराती है; साथ ही भोग और मोक्ष—दोनों का एकमात्र साधन हो जाती है। जिसे इस क्रम से दीक्षा प्राप्त होती है,

उसके वंश में देवी का समागम होता है। इस प्रकार का कौल दुर्लभ होता है। हे देवि! वह कौल दाता, भोक्ता और अग्नि के समान होता है। जिस मार्ग का वह प्रमुख होता है, उसे ही वाममार्ग के नाम से जाना जाता है।।५७-५८।।

वाममार्गस्य कौलादिपञ्चभेदाः

मद्यं मांसं च मत्स्याश्च मुद्रा मैथुनमेव च।
कुलमार्गप्रविष्टेन सदा सेव्यं सुहर्षिणा ।।५९।।

कुलमार्गियों को अतीव प्रसन्नतापूर्वक मद्य, मांस, मछली, मुद्रा और मैथुन का सदैव सेवन करना चाहिये।।५९।।

कौलिकोऽङ्गुष्ठतां प्राप्तो वामः स्यात्तर्जनीसमः।
चीनक्रमो मध्यमः स्यात्सिद्धान्ती योऽवरो भवेत् ।।६०।।

पहला कौल होता है, जो हाथ के अंगूठे के समान होता है। दूसरा वाममार्गी होता है, जिसका स्थान हाथ की तर्जनी अंगुली के समान है। तीसरा चीनक्रम का उपासक होता है, जिसका स्थान हाथ की मध्यमा अंगुली के समान होता है। चौथा सिद्धान्ती होता है, जिसका स्थान हाथ की अनामिका अंगुली के समान होता है।।६०।।

कनिष्ठः शाबरो मार्ग इति वामस्तु पञ्चधा।
यैः पीतममृतं ते ते सोमपा बलदर्पिताः ।।६१।।

शाबर मार्गी पाँचवाँ होता है। इसका स्थान हाथ की कनिष्ठिका अंगुली के समान होता है। इस प्रकार वाममार्ग के पाँच भेद होते हैं—कौल, वाममार्गी, चीनक्रम के उपासक, सिद्धान्ती और शाबरमार्गी। जिन्होंने अमृत-पान किया है, वे सोमपान करने वालों से अधिक शक्तिशाली होने के कारण प्रदीप्त होते हैं।।६१।।

दक्षमार्गस्थितवैदिक्याद्युपासनाभेदः

लक्ष्म्या सह समुद्भूताः शतयत्नाश्च सोमपाः।
तेषामुपासना प्रोक्ता दक्षमार्गेण सा द्विजैः ।।६२।।

सौ प्रकार के यत्न करने वाले सोमपायियों की उत्पत्ति लक्ष्मी के साथ हुई है। द्विजों के द्वारा उनकी उपासना को दक्षिणमार्ग कहा जाता है।।६२।।

कर्तव्या वैदिकी श्रेष्ठा स्मार्ती स्यान्मध्यमोत्तमा।
पौराणी मध्यमा ख्याता तान्त्रिकी त्ववरा स्मृता ।।६३।।
दैशी च कालीजातीया कनिष्ठा स्यादुपासना।

वैदिक कर्मों का अनुष्ठान करने वाला श्रेष्ठ होता है। स्मार्त कर्मों का अनुष्ठान करने वाला अर्थात् स्मृतियों के अनुसार आचरण करने वालों को स्मार्ती कहा जाता

है। इनका स्थान मध्यम होते हुए भी उत्तम माना जाता है। तीसरा स्थान पौराणिकों का है, इन्हें मध्यम माना जाता है। चौथा तान्त्रिक होते हैं। ये तन्त्रमार्ग का अनुसरण करते हैं। इन्हें श्रेष्ठ माना जाता है। पाँचवें देशी होते हैं, जो काली की उपासना करते हैं। इस उपासना को कनिष्ठा कहा जाता है।।६३।।

वाममार्गो यदा दक्षं प्रविशेत्तत्सुरैः स तु ।।६४।।
विघ्नेन पीड्यते चापि न सिद्धिमधिगच्छति ।
दक्षमार्गो यदा वामं प्रविशेत्तत्सुरास्तदा ।।६५।।
लोकद्वयाद्यापयन्ति तं ग्रसन्ति च वामिनम् ।
तस्मात्स्वकुलमार्गं तु ज्ञात्वा कुर्यादुपासनाम् ।।६६।।

वाममार्गी यदि दक्षिणमार्ग में प्रवेश करता है तो वह साधक दक्षिणमार्गी देवताओं के द्वारा बहुविध विघ्नों से पीड़ित किया जाता है; साथ ही उसे सिद्धि भी प्राप्त नहीं होती। इसी प्रकार दक्षिणमार्गी यदि वाममार्ग का आश्रयण करता है, तो उस साधक को वे वाममार्गी देवता दोनों लोकों से बहिष्कृत कर देते हैं। इस प्रकार ऐसा दक्षिणमार्गी लोक-परलोक दोनों ही को खो देता है और वह वाममार्गियों का ग्रास बन जाता है। इसलिये अपने कुलमार्ग का ज्ञान प्राप्त करके उसी के अनुसार उपासना करनी चाहिये।।६४-६६।।

गुरुशिष्यविचारः

भक्तिश्रद्धान्वितौ शिष्यगुरू सम्पूर्णलक्षणौ ।
सर्वोऽपि मार्गस्तत्कालं भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ।।६७।।

शिष्य यदि श्रद्धा-भक्ति से युक्त हो और गुरु भी सभी लक्षणों से सम्पन्न हो तब सभी मार्ग तत्काल ही भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करने वाले होते हैं।।६७।।

धनार्थिनस्तु गुरवः शिष्याः सिद्ध्यर्थिनः कलौ ।
तस्मान्न चोभयोः सिद्धिर्देवतानां विडम्बनम् ।।६८।।

कलियुग में गुरु को धन की चाह होती है और शिष्य को सिद्धि की चाह होती है। जहाँ ऐसे गुरु-शिष्य होते हैं, वहाँ न भोग सिद्ध होता है और न ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः कलियुग में देवताओं की उपासना केवल विडम्बनामात्र होती है।।६८।।

द्विजानामनुपेतानां स्वकर्माध्ययनादिषु ।
यथाधिकारो नास्तीह स्याच्चोपनयनादिषु ।।६९।।
तथा चादीक्षितानां च मनुदेवार्चनादिषु ।
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं मन्त्रसंस्कृतम् ।।७०।।

जैसे द्विजों में यज्ञोपवीत-विहीन लोगों को स्वकर्म-अध्ययन आदि में अधिकार नहीं होता; साथ ही उपनयन हो जाने पर भी दीक्षा-रहित मनुष्यों को मन्त्र-देवार्चनादि में अधिकार नहीं होता। अतः सबसे पहले आत्मा और मन्त्र को संस्कारित करना आवश्यक होता है।।६९-७०।।

दीयते ज्ञानविज्ञानं क्षीयन्ते पापराशयः।
तेन दीक्षा इति प्रोक्ता प्राप्ता चेत्सुगुरोर्मुखात् ।।७१।।

ज्ञान-विज्ञान प्रदान करने वाला एवं पापराशियों का विनाश करने वाला होने के कारण ही इसे 'दीक्षा' कहा गया है। यह दीक्षा गुरुमुख से ही प्राप्त होती है।।७१।।

असद्गुरुः स्वयं नष्टः कथं तारयते परम्।
विंशद्विश्वोपकगुणैर्युक्तो यः स गुरुर्भवेत् ।।७२।।

जो सद्गुरु नहीं है, वह जब स्वयं ही विनष्ट हो जाता है तो फिर वह शिष्य का उद्धार कैसे कर सकता है? जिसमें बीस विंश्वोपक गुण होते हैं, वही गुरु होने के योग्य होता है।।७२।।

योऽत्युत्कृष्टो यथोक्ताङ्गः शुद्धवेषो मनोहरः।
सर्वाङ्गमार्गतत्त्वज्ञः सर्वमन्त्रविधानवित् ।।७३।।

जो शास्त्रोक्त अति उत्कृष्ट अंगों से युक्त होता है; जिसका वेष शुभ्र, पवित्र एवं मनोहर होता है; जो मार्ग के सर्वांगीण तत्त्वों का ज्ञाता होता है; साथ ही सभी मन्त्रों के विधानों का जिसे ज्ञान होता है, वही गुरु होने के योग्य होता है।।७३।।

इङ्गिताकारचेष्टाविद्दूरतः कृतदुर्जनः।
अन्तर्मुखोऽबहिर्दृष्टिः सर्वज्ञो देशकालवित् ।।७४।।

जिसके संकेतमात्र से ही दुष्ट लोग दूर भाग जायँ, जो अन्तर्मुखी होते हुये भी बहिर्दृष्टि वाला हो, जो सब कुछ जानने वाला हो एवं जिसे देश-काल का ज्ञान हो, वही गुरु होने के योग्य होता है।।७४।।

आज्ञासिद्धो दयायुक्तः शान्तो वेदाङ्गवेदवित्।
नित्ये नैमित्तिके काम्ये रतः कर्मण्यनिन्दिते ।।७५।।

गुरु को आज्ञासिद्ध, दयावान, शान्त, वेद-वेदांग का ज्ञाता एवं अनिन्दित नित्य-नैमित्तिक और काम्य कर्मों में निरत रहने वाला होना चाहिए।।७५।।

अलोलुपोऽहिंसकश्च पक्षपाती गुरुर्मतः।
अनीदृशगुरोर्मन्त्रो मरणायासदुःखकृत् ।।७६।।

विप्र एवेदृशः कार्यो गुरुर्नो चेत्तदेदृशः ।
क्षत्रविट्छूद्रजातीयः प्रतिलोमं न दीक्षयेत् ॥७७॥

गुरु को अलोलुप, अहिंसक और पक्षपाती होना चाहिये। जो गुरु इन उपर्युक्त लक्षणों से रहित होता है, उसके द्वारा प्रदत्त मन्त्र भी मरणान्तक कष्ट देने वाले होते हैं। इस प्रकार के ब्राह्मण को ही गुरु बनाना चाहिये। ब्राह्मण गुरु को क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं अन्त्यजों को दीक्षित नहीं करना चाहिये।।७६-७७।।

दक्षमार्गे तु निर्वीर्यः पितुर्मातामहस्य च ।
सोदरस्य गृहस्थस्य वाममार्गेति वीर्यवान् ॥७८॥

दक्षिणमार्ग में पिता और मातामह से प्राप्त मन्त्र निर्वीर्य होते हैं। वाममार्ग में माता से प्राप्त मन्त्र गृहस्थों के लिये वीर्यवान् होते हैं अर्थात् शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं।।७८।।

परीक्षेत गुरुः शिष्यं विद्वद्भिर्लक्षणैर्युतम् ।
द्वादशाब्दं तदर्धं वा तदर्धं वाथ दीक्षयेत् ॥७९॥

दीक्षा देने के पहले गुरु को विद्वानों द्वारा कथित लक्षणों के अनुरूप बारह वर्ष तक, छः वर्ष तक अथवा तीन वर्ष तक शिष्य की परीक्षा करनी चाहिये; तत्पश्चात् ही उसे दीक्षित करना चाहिये।।७९।।

गुरुवाक्यप्रमाणज्ञं गुरुशुश्रूषणे रतम् ।
लज्जाभिमानगर्वादिवर्जितं कुलनायकम् ॥८०॥

शिष्य को गुरुवाक्य को प्रमाण मानने वाला होना चाहिए। गुरु की सेवा में उसे सदैव तत्पर रहने वाला होना चाहिये। शिष्य में लज्जा, अभिमान एवं गर्व नहीं होना चाहिये तथा उसे कुलनायक होना चाहिये।।८०।।

निरपेक्षं गुरुद्रव्ये तत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणम् ।
जपध्यानाभिनिरतं मोक्षमार्गाभिगामिनम् ॥८१॥

शिष्य को गुरु से द्रव्य-प्राप्ति की इच्छा वाला नहीं होना चाहिये; अपितु उसे गुरु के प्रसाद की अभिलाषा रखने वाला होना चाहिये। उसे सदैव जप एवं ध्यान में लगा रहने वाला होने के साथ-साथ मोक्षमार्ग पर चलने वाला होना चाहिये।।८१।।

समाधिसाधनोपेतं शुद्धदेहं च धार्मिकम् ।
दृढव्रतं सदाचारं श्रद्धाभक्तिसमन्वितम् ॥८२॥

शिष्य को समाधि-साधन से युक्त होना चाहिये, दैहिक शुद्धि के साथ-साथ

धर्माचरण करने वाला होना चाहिये। साथ ही उसे दृढ़व्रती और श्रद्धा-भक्ति से समन्वित सदाचारी होना चाहिये।।८२।।

दीनसत्यमितस्निग्धभाषिणं साधुसम्मतम्।
अनुकूलप्रियायुक्तं धीरं सर्वोपकारकम् ॥८३॥

शिष्य को नम्र, सत्यवक्ता, मितभाषी, स्निग्ध भाषी होने के साथ-साथ साधु-सम्मत होना चाहिये। उसे अनुकूल प्रिया से युक्त तथा धैर्यवान होने के साथ-साथ सबों का उपकार करने वाला होना चाहिये।।८३।।

सदैव सुमुखं कुर्याच्छिष्यं दैवततुष्टये।
दत्त्वा दीक्षां तु लोभाद्यैर्देवताशापमाप्नुयात् ॥८४॥

गुरु को देवता की तुष्टि के लिये सदैव प्रसन्न रहने वाला शिष्य बनाना चाहिये। यदि गुरु धन के लोभ से दीक्षा प्रदान करता है, तो उसे देवता के शाप का भागी होना पड़ता है।।८४।।

परशिष्ये चेष्टवंशे धूर्ते पण्डितमानिनि।
स्त्रीद्विष्टे सामये त्रस्ते व्यङ्गे दीक्षा तु निष्फला ॥८५॥

दूसरे के शिष्य, घुमक्कड़ जाति वाले, धूर्त, अभिमानी, स्त्रीद्वेषी, सामयिक, भयभीत एवं व्यंग अर्थात् टेढ़े-मेढ़े अंग वाले व्यक्ति को दी गयी दीक्षा निष्फल होती है अर्थात् कभी भी सफलीभूत नहीं होती।।८५।।

न वेदः प्रणवं त्यक्त्वा मन्त्रो वेदसमुत्थितः।
तस्माद्वेदपरो मन्त्रो वेदाङ्गश्चागमः स्मृतः ॥८६॥

प्रणव से रहित वेद नहीं होता और मन्त्र वेद से ही उद्भूत हैं; अतः मन्त्रों को वेदपरक जानना चाहिये एवं आगम को वेदाङ्ग जानना चाहिये।।८६।।

वश्याकर्षादिकं कर्म दृष्टादृष्टफलप्रदम्।
वेदेन साध्यते सर्वं ग्रहयज्ञादिकं किल ॥८७॥

वशीकरण, आकर्षण आदि कर्म दृष्ट-अदृष्ट फलों को प्रदान करने वाले होते हैं। निश्चित रूप से वेद के द्वारा ही ग्रहयज्ञादि साधित किये जाते हैं।।८७।।

न वेदेन विना यज्ञा न वेदा यज्ञवर्जिताः।
तस्माद्वेदपरो मन्त्रो नावेदो मन्त्र ईरितः ॥८८॥

वेद के विना यज्ञ नहीं हो सकते और यज्ञवर्जित वेद नहीं हो सकते। इसलिये मन्त्र वेदपरक ही होते हैं, वेदरहित मन्त्र नहीं होते।।८८।।

न मन्त्रे चाधिकारोऽस्ति शूद्राणां नियमात्परः ।
यावन्त्यर्णानि मन्त्राणां शूद्राय प्रतिपादयेत् ॥८९॥
तावन्त्यो ब्रह्महत्याः स्युस्तस्मात्संस्कारयेच्च तम् ।
स्वाहोङ्कारेण रहितं दद्यात्पश्चाच्च तान्त्रिकम् ॥९०॥

नियमतत्पर शूद्रों का भी मन्त्रों में अधिकार नहीं होता। जितने वर्णों के मन्त्र शूद्र को प्रदान किये जाते हैं, उतने ही ब्रह्महत्या के पाप मन्त्रदाता को लगते हैं। इसलिये शूद्र को संस्कारित करने के उपरान्त स्वाहा एवं ओंकार से रहित तान्त्रिक मन्त्र ही प्रदान करना चाहिये।।८९-९०।।

स्वागमोक्तेन मार्गेण स्त्रीशूद्रैरपि पूजनम् ।
कर्त्तव्यं संस्कृतैस्तैश्च स्वागमोक्तेन वर्त्मना ॥९१॥

अपने-अपने आगमोक्त मन्त्रों से स्त्रियों और शूद्रों का भी पूजन करना चाहिये। उपासना प्रारम्भ करने के पूर्व दीक्षा लेना और दीक्षा के समय आगमोक्त विधि से उनका संस्कार करना अपेक्षित होता है।।९१।।

विधवायाः सुतादेशात् कन्यायाः पितुराज्ञया ।
भर्त्रैव दीक्ष्यते भार्या यतोऽसौ सर्वदा गुरुः ॥९२॥

विधवा स्त्री को दीक्षा देते समय गुरु का यह देखना कर्त्तव्य है कि विधवा को दीक्षा के लिये पुत्र की अनुमति है या नहीं। इसी प्रकार कुमारी कन्या को दीक्षा देते समय पिता का आदेश अपेक्षित होता है। पत्नी को पति से ही दीक्षा ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि पति पत्नी के सदा-सर्वदा गुरुरूप ही होता है।।९२।।

तथापि पूज्यो देवस्य बुद्ध्याऽसौ सर्वसाधनैः ।
शैवो वा वैष्णवो वापि स्त्रीशूद्राणां नमोऽन्तकः ॥९३॥
नाममन्त्र इति ज्ञात्वा चाण्डालानपि दीक्षयेत् ॥९४॥

फिर भी 'अपने समस्त साधनों से ये देवता के पूजक हैं' इस बुद्धि से स्त्रियों एवं शूद्रों को भी 'नमः' अन्त वाले शैव अथवा वैष्णव मन्त्र प्रदान करने चाहिये। इसी प्रकार से नाममन्त्र ज्ञात करके चाण्डालों को भी दीक्षा दी जा सकती है।।९३-९४।।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः पौलस्त्यजातयः ।
पञ्चधा मनवः ख्याताः प्रदेयाश्चानुलोमतः ॥९५॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और पौलस्त्य जाति के कुल पाँच प्रकार के मनुष्य होते हैं। इन्हें अनुलोमक्रम से मन्त्र प्रदान करना चाहिये।।९५।।

मायाबीजं ब्राह्मणः स्याच्छ्रीबीजं क्षत्रियः स्मृतः ।
कामबीजं भवेद्वैश्यो वाग्भवं शूद्र ईरितः ॥९६॥

मायाबीज 'ह्रीं' से युक्त मन्त्र ब्राह्मणों के लिये, श्रीबीज 'श्रीं' से युक्त मन्त्र क्षत्रियों के लिये, कामबीज 'क्लीं' से युक्त मन्त्र वैश्यों के लिये एवं वाग्भवबीज 'ऐं' से युक्त मन्त्र शूद्रों के लिये कहा गया है।।९६।।

चतुर्बीजपरित्यक्तो मनुः पौलस्त्यसञ्ज्ञकः ।
हीनवर्णाय नो दद्यान्मन्त्रं त्वधिकवर्णकम् ॥९७॥

पौलस्त्य जाति अर्थात् राक्षसों को उपर्युक्त चारो बीजों से समन्वित मन्त्र नहीं देना चाहिये एवं हीनवर्ण अर्थात् अन्त्यजों को अधिक अक्षर वाले मन्त्र नहीं प्रदान करने चाहिये।।९७।।

आनुष्टुभाश्च ये शक्तिमन्त्रा नीलसरस्वती ।
कल्पोक्ता वैदिकी विप्रैर्देया विन्ध्यनिवासिनी ॥९८॥

नीलसरस्वती के अनुष्टुप् शक्तिमन्त्र एवं विन्ध्यवासिनी के कल्पोक्त वैदिक मन्त्र विप्रों को प्रदान करना चाहिये।।९८।।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैश्चापि देया पाशुपताभिधा ।
सौदर्शनी नारसिंही कार्तवीर्यस्य नान्यतः ॥९९॥
वर्णत्रयेऽपि दातव्यं दक्षिणामूर्त्यघोरकम् ॥१००॥

ब्राह्मणों और क्षत्रियों को पाशुपत, सौदर्शनी, नारसिंही और कार्त्तवीर्य मन्त्र के अतिरिक्त अन्य मन्त्र नहीं प्रदान करना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों ही वर्णों को दक्षिणामूर्ति के मन्त्र और अघोर मन्त्र प्रदान करना चाहिये।।९९-१००।।

अष्टाक्षरं हयग्रीवमुमामाहेश्वरं तथा ।
लक्ष्मीनारायणं वासुदेवताकं वराहकम् ॥१०१॥
अग्निः सूर्यघृणेर्यस्तु ताराद्याश्चारुणेश्वराः ।
सर्ववर्णेषु दातव्याः कालिका श्यामला तथा ॥१०२॥

अष्टाक्षर हयग्रीव मन्त्र, उमामाहेश्वर मन्त्र, लक्ष्मीनारायण मन्त्र, वासुदेव मन्त्र, वराह मन्त्र, अग्नि मन्त्र, सूर्यमन्त्र, घृणिमन्त्र, तारामन्त्र, अरुणेश्वर मन्त्र, काली मन्त्र, एवं श्यामा मन्त्र सभी वर्णों को दिये जा सकते हैं।।१०१-१०२।।

छिन्नमस्ता च मातङ्गी बगला चोग्रतारिका ।
योगिनी यक्षपत्नीनां त्रैपुरा बटुकादयः ॥१०३॥

शाबराश्च पुलस्त्यानि न जप्याद् द्विजजन्मनि।

छिन्नमस्ता, मातङ्गी, बगला, उग्रतारा, योगिनी, यक्षिणी, त्रिपुरभैरवी, बटुकादि, शाबर एवं पौलस्त्य मन्त्र का जप द्विजों को नहीं करना चाहिये।।१०३।।

वामदक्षिणमार्गयोः संक्षेपेण कथनम्

उपासना त्रिधा प्रोक्ता श्रेष्ठा तत्र तु सात्त्विकी ॥१०४॥
तस्यां तु मानसी पूजा पौजे मुख्यतमा स्मृता।
राजसो दक्षिणो मार्गः प्रतिमायाञ्च पूजनम् ॥१०५॥

उपासना तीन प्रकार की कही गई है। उनमें सात्विकी उपासना श्रेष्ठ होती है। उसमें भी मानसिक पूजन सभी पूजनों में मुख्यतम कहा गया है। दक्षिण मार्ग एवं प्रतिमा-पूजन को राजस उपासना कहा गया है।।१०४-१०५।।

वाक्योपचारैः सकलैस्तदाद्यन्ताद्विशिष्यते।
तामसोपासनं प्रोक्तं पीठादौ बलिदानतः ॥१०६॥

सभी पूजन में मन्त्र बोलकर उपचार निवेदित करना विशिष्ट माना जाता है। पीठों में बलिदान देना तामसिक उपासना माना जाता है।।१०६।।

वाममार्गस्ततश्चाद्यवर्णं हित्वा प्रशस्यते।
एषा पद्धा तु सम्प्रोक्ता वामदक्षिणयोः परा ॥१०७॥
गोपिता सर्वतन्त्रेषु किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥१०८॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीत-
व्यवस्थाप्रकाशः प्रथमः।।१।।

●

वाममार्ग में मन्त्र के आद्य वर्ण का परित्याग प्रशस्त माना जाता है। इस प्रकार सभी तन्त्रों में गुप्त वाम एवं दक्षिण मार्ग का विवेचन किया गया; अब और क्या सुनने की इच्छा है।।१०७-१०८।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत
'व्यवस्था' नामक प्रथम प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ

●

अथ द्वितीयः प्रकाशः

(संस्कारप्रकाशः)

तन्त्रमार्गिणां बहूनां सिद्धिलाभोऽपि न भवति
कुतो मोक्ष इति तद्विषये गौरीप्रश्नः

श्रीदेव्युवाच

शतशोऽत्र जना देव तन्त्रमार्गे व्यवस्थिताः ।
सिद्धिर्न दृश्यते क्वापि किम्परत्र भविष्यति ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा—तन्त्रमार्ग में लोगों के लिये यद्यपि सैकड़ों व्यवस्थाओं का वर्णन है; फिर भी किसा भी व्यवस्था का आश्रयण करके उपासकों को सिद्धि नहीं दिखाई देती तो दूसरे कार्य मोक्ष आदि कैसे प्राप्त हो सकते हैं।।१।।

यदि कर्म प्रधानं च देवताराधनेन किम् ।
देवताराधनं सत्यं साधका दुःखिताः कथम् ॥२॥

यदि कर्म ही प्रधान है तब देवों के आराधना की क्या आवश्यकता है? यदि देवों की आराधना सत्य है तब साधक दुःखी क्यों दृष्टिगत होते हैं?।।२।।

एतन्मे संशयं छिन्धि किं चक्रैश्चापि मान्त्रिकैः ।
संस्काराश्च कथं कार्यास्तान्त्रिकाणां वदस्व तत् ॥३॥

मेरे इस संशय का निवारण कीजिये। तान्त्रिकों के लिये कौन-सा चक्र है। हे प्रभो! आप बतलाने की कृपा कीजिये कि तान्त्रिकों के लिये कौन से संस्कार अपेक्षित हैं? इसके लिये उन्हें क्या करना आवश्यक है?।।३।।

देहसंस्काराभावात्सिद्धिर्न भवति ततो देहस्य
शुद्ध्यर्थं षोडशसंस्कारकथनम्

ईश्वर उवाच

गर्भे कर्मत्रयं कुर्याज्जायमाने तथा दश ।
ततः कर्मत्रयं चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ॥४॥

शिव जी बोले—हे देवि! मनुष्यों के तीन संस्कार गर्भ में होते हैं एवं जन्म लेने

के उपरान्त दस संस्कार किये जाते हैं। इसके बाद पुनः तीन संस्कार होते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर षोडश संस्कार कहे गये हैं।।४।।

द्विजातीनां तथा मन्त्रे कुर्यात्कर्मत्रयं गुरुः।
दश शिष्यांस्ततः कुर्यात्सिद्धे मन्त्रे पुनस्त्रयम् ॥५॥

द्विजों के लिये मन्त्र देते समय गुरु उनके तीन संस्कार करते हैं। इसके बाद शिष्य दश संस्कार करते हैं। पुनः मन्त्र सिद्ध होने पर तीन संस्कार किये जाते हैं।।५।।

षडेव जन्मसंस्काराः प्रोक्ताः स्त्रीशूद्रयोरपि।
तथैव मन्त्रसंस्काराः षडेव परिकीर्त्तिताः ॥६॥

स्त्रियों और शूद्रों के लिये मात्र छः संस्कार ही कहे गये हैं। इसी प्रकार मन्त्रों के भी छः ही संस्कार कहे गये हैं।।६।।

चाण्डालादिषु चत्वारो मन्त्रे प्रोक्तास्त एव हि।
त्रयो यवनकल्पोक्तास्तन्मन्त्रेष्वपि ते त्रयः ॥७॥

मन्त्र देते समय चाण्डालादिकों के भी चार संस्कार अपेक्षित हैं। यवनकल्प के अनुसार मन्त्रदान के समय तीन ही संस्कार आवश्यक हैं।।७।।

वामदक्षिणभेदेन तेषां कर्त्तव्यतां शृणु।
आज्यस्थाने सुरां वामे होमाद्यर्थं प्रकल्पयेत् ॥८॥
पाकादिषु च मांसं स्याच्छैलादौ नियमाः स्मृताः।
मैथुनं ब्रह्मचर्यं च मुद्रास्तत्कर्मिकास्तथा ॥९॥

वाम-दक्षिण भेद से उन संस्कारों को कैसे करना चाहिये, उसका वर्णन सुनो। गोघृत के स्थान पर वाम भाग में सुरा को हवन के लिये रखा जाता है। मांस आदि के पाचन काल में पहले शैलेय गन्ध रखने का नियम है। मैथुन और ब्रह्मचर्य मुद्रा उसकी कर्म्मिका है।।९।।

गर्भाधानं स्वकल्पोक्तवर्त्मना प्रथमं भवेत्।
दक्षिणानामथो वामे द्वितीयाङ्गं समाचरेत् ॥१०॥
सन्तर्पयेदङ्गदेवं मन्त्रैर्योनिञ्च तीर्थतः।
अस्या अङ्गे देवताया मन्त्रन्यासं समाचरेत् ॥११॥
सर्वान्न्यासान् स्वस्य देहे भावयेत्तां च भैरवीम्।
स्वयं च भैरवो भूत्वा रतिकर्म समाचरेत् ॥१२॥
सुखासनस्थो भगगं ध्वजं कृत्वा जपेदमुम्।
मन्त्रं पञ्चसहस्रं च यथेष्टं लभते सुतम् ॥१३॥

लक्ष्मी प्राणेश्वरी चेति मम पाहि नवाक्षरः।
तस्याः सोमस्तस्य सूर्यो गर्भस्तिष्ठेद्धरातले ॥१४॥

१. गर्भाधान संस्कार—दक्षिण मार्ग में अपने कल्पोक्त मार्ग से गर्भाधान करना प्रथम संस्कार होता है एवं वाम मार्ग में दूसरा संस्कार किया जाता है। इसके अनुसार सुरारूपी तीर्थ से योनि का तर्पण किया जाता है। इसके अंगस्वरूप स्त्री के अंगों में देवताओं के मन्त्रों से अंगन्यास किया जाता है। तदनन्तर साधक को अपने शरीर में भी सभी न्यासों को करके स्त्री को भैरवी-स्वरूपा एवं स्वयं को भैरवस्वरूप मानकर मैथुन का समाचरण करना चाहिये। इसमें सुखासन में बैठकर भग में लिंग को प्रविष्ट कराकर वक्ष्यमाण मन्त्र का जप किया जाता है। इस प्रकार भग में लिंग को स्थापित करके मन्त्र का पाँच हजार जप करने से यथेष्ट पुत्र की प्राप्ति होती है। जप का नवाक्षर मन्त्र है—लक्ष्मी प्राणेश्वरी मम पाहि। साथ ही यह प्रार्थना करनी चाहिये कि उन दोनों के चन्द्र एवं सूर्यरूपी गर्भ धरातल पर प्रतिष्ठित हों।।१०-१४।।

अथ द्वितीयसंस्कारः कार्यः पुंसवनाभिधः।
तृतीये मासि कुर्वीत अथ पुंसवनं बुधः ॥१५॥
वेदोक्तप्रोक्तदिवसे स्वकल्पोक्तेन वर्त्मना।
तत्र वैदिकमुख्यस्य होमस्थाने स्वदेवताः ॥१६॥
जुहुयात्कारणेनैव चतुराहुतिसंख्यया।
तदावरणदेवानां पुरुषाणां द्वयं द्वयम् ॥१७॥
एका स्त्रीणां वाममार्गे शेषं पूर्ववदीरितम्।
सतीर्थं सपशुं 'दद्यान्निशायां भैरवं बलिम् ॥१८॥

२. पुंसवन संस्कार—दूसरा संस्कार 'पुंसवन' संस्कार होता है। गर्भ जब तीन माह का होता है, तब विद्वानों को यह संस्कार करना चाहिये। वेदोक्त विधि से शुभ दिन में अपने कल्प में कथित मार्ग के अनुसार यह संस्कार किया जाता है। हवन स्थान में अपने प्रमुख वैदिक देवता को पावन मदिरा की चार आहुति दी जाती है। इस मदिरा को तीर्थ कहा जाता है। आवरण देवताओं में पुरुषों को दो-दो आहुतियाँ और देवियों को एक-एक आहुति दी जाती है। देवियों को एक आहुति वाम मार्ग से दी जाती है एवं शेष आहुतियाँ पूर्ववर्णित विधि के अनुसार दी जाती हैं। रात में तीर्थसहित पशु की बलि भैरव को प्रदान की जाती है।।१५-१८।।

अथ तृतीयसंस्कारः सीमन्ताख्यः प्रकीर्तितः।
चतुर्थषष्ठाष्टमेषु मास्सु सन्मध्यमाधमः ॥१९॥

ज्योतिश्शास्त्रोक्तदिवसे स्वकल्पोक्तेन वर्त्मना।
वामी तु देवतामन्त्रं सीमन्ते सुरुचा लिखेत् ॥२०॥
न्यासं कुर्यात्तदङ्गेषु तन्मन्त्रं रोगहारिणम्।
ततो न गच्छेत्तां भार्यां देवताशापभीतितः ॥२१॥
कामेन वाऽथ मोहेन दुष्काले वा विधानतः।
अन्यायेन कृतः सङ्गः सीमन्तस्तदधोवहः ॥२२॥

३. सीमन्तोन्नयन संस्कार—तृतीय संस्कार को सीमन्तोन्नयन संस्कार कहते हैं। यह संस्कार चौथे माह में उत्तम, छठे माह में मध्यम और अष्टम माह में अधम माना जाता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शुभ दिन में अपने कल्पोक्त मार्ग से वाम मार्ग का आश्रयण करने वाला स्रुची से सीमन्त में देवता का मन्त्र लिखता है। रोग हरण करने वाले उन मन्त्रों से भार्या के अंगों में न्यास किया जाता है। इसके बाद अपनी भार्या के पास जाने से अर्थात् मैथुन करने से देवता क्रुद्ध हो जाते हैं; इसलिये न्यासोपरान्त उसके साथ रमण नहीं करना चाहिये। काम के वशीभूत होकर अथवा मोहित होकर दुष्काल में अथवा विधान के विरुद्ध अन्यायपूर्वक पत्नी के साथ मैथुन करने से यह सीमन्त जातक को अधोगामी बना देता है।।१९-२२।।

अथ तुर्यन्तु संस्कारं कुर्यात्स्त्रीशूद्रयोरपि।
जातकर्माभिधं विप्रः स्वकल्पोक्तेन वर्त्मना ॥२३॥
कन्याजन्मनि विप्राणां शूद्रस्य सुतजन्मनि।
तूष्णीमेव क्रियां कुर्याद्विष्णुस्मरणपूर्वकम् ॥२४॥
वाममार्गी न कुर्वीत मेधाजननसंस्कृतिम्।
किन्तु स्वर्णस्य लेखन्या विलिखेत्करणाग्रया ॥२५॥
तालुदेशे मूलबीजं रसनायां तथा मनुम्।
देवतां तर्पयेत्पश्चादन्यत्कर्म तु दक्षवत् ॥२६॥

४. जातकर्म संस्कार—ब्राह्मण को 'जातकर्म' नामक यह चतुर्थ संस्कार स्वकल्पोक्त मार्ग से स्त्रियों और शूद्रों का भी करना चाहिये। ब्राह्मणों को जब कन्या जन्म ले और शूद्रों को जब पुत्र जन्म ले तब विष्णु के स्मरणपूर्वक यह संस्कार मौन रहकर ही करना चाहिये। इसमें मन ही मन इस प्रकार कहा जाता है—गोविन्द तूष्णीं बभूव। वाममार्गियों को मेधाजनन संस्कार नहीं करना चाहिये; अपितु सोने की शलाका से अनुष्ठान के पूर्व तालु पर मूल बीज और जीभ पर मन्त्र लिखना चाहिये।

इसके बाद देवता का तर्पण करके दक्षतापूर्वक अन्य आवश्यक कर्म करना चाहिये।।२३-२६।।

अथ पञ्चमसंस्कारो नामकर्माह्वयो ध्रुवम्।
सर्वेषामेवमुद्दिष्टः सूतकान्ते शुभे दिने ॥२७॥
स्वकल्पोक्तविधानेन नामकर्म समाचरेत्।
तन्त्रेषु यानि चोक्तानि मात्राचक्राणि षोडश ॥२८॥
विचार्य तानि कुर्वीत नाम यत्सफलं भवेत्।
न कृतं चेदत्र नाम तादृशश्चेद् गुरुस्तदा ॥२९॥
पूर्णाभिषेके कुर्वीत तत्सबीजं निरूप्यते।
यस्मादक्षगुणैः सिद्धिर्विप्राणां सम्प्रजायते ॥३०॥

५. नामकरण संस्कार—पाँचवाँ 'नामकरण' संस्कार सभी को अवश्य करना चाहिये। सूतक के अन्त में शुभ दिन में अपने कल्पोक्त विधान के अनुसार यह नामकरण संस्कार करना चाहिये। तन्त्रों में इसके लिये जिस सोलह मात्रा के चक्रों का वर्णन किया गया है, उन चक्रों के अनुसार विचार करके यह संस्कार करने से नाम सफल होता है। यदि साधक का नामकरण संस्कार न हुआ हो तो दीक्षा के समय गुरु को शिष्य का यह संस्कार पूर्णाभिषेक के समय बीजमन्त्रों के सहित करना चाहिये। इससे विप्रों को दक्षता के साथ-साथ सिद्धि की भी प्राप्ति होती है।।२७-३०।।

ताराचक्रम्

ताराचक्रं प्रवक्ष्यामि बालानां मन्त्रसिद्धये।
अ आ हये इर्यमे च ई उ ऊ वह्निभे तथा ॥३१॥
ऋ ॠ ऌ ॡ च रोहिण्यां ए मृगे शिवभे च ऐ।
ओ औ पुनर्वसौ पुष्ये ककारः सर्पभे खगौ ॥३२॥
पैत्रे घङौ भगर्क्षे च आर्यमर्क्षे छजौ मतौ।
हस्ते झञौ टठौ त्वाष्ट्रे स्वात्यां डो द्वीशभे ढणौ ॥३३॥
तथदा अनुराधायां ज्येष्ठायां धोऽथ मूलभे।
नपफाः पूर्वाषाढायां बकारो भस्तु वैश्वभे ॥३४॥
मः कर्णेऽथ धनिष्ठायां यरौ लः शततारके।
वशौ तु पूर्वभाद्रायां षसहाः स्युरुपान्तिमे ॥३५॥
लं क्षं अं अश्च रेवत्यां गण्या मन्त्राक्षरर्क्षतः।
साध्यनामादिवर्णर्क्षत्रिरावृत्त्या फलानि तु ॥३६॥
स्थाननाशः सतां सङ्गो बहुमैत्री मृतेः समम्।
आधिं वा व्याधिमाप्नोति साधकः कार्यसिद्धये ॥३७॥
बहुभिः शत्रुताक्षेपो विपत्तिः सम्पदात्ययः।
एतत्तु ताराचक्रस्य फलं ज्ञात्वा चरेदिदम् ॥३८॥

तारोक्तमातृकाभिर्भे ज्ञात्वा साधकसाध्ययोः ।
स्त्रीपुंसोर्वा व्यस्तयोश्च गणचक्रं विचारयेत् ॥३९॥

ताराचक्र—अब बालकों की मन्त्रसिद्धि के लिये ताराचक्र का विवेचन करता हूँ। इस चक्र में अश्विनी से आरम्भ कर रेवती तक के सत्ताईस नक्षत्रों का वास निम्न प्रकार से होता है—

१. अश्विनी—अ, आ।
२. भरणी—इ।
३. कृत्तिका—ई, उ, ऊ।
४. रोहिणी—ऋ, ॠ, ऌ, ॡ।
५. मृगशिरा—ए।
६. आर्द्रा—ऐ।
७. पुष्य—ओ, औ।
८. पुनर्वसु—क।
९. आश्लेषा—ख, ग।
१०. मघा—घ, ङ।
११. पूर्वा फाल्गुनी—च।
१२. उत्तरा फाल्गुनी—छ, ञ।
१३. हस्त—झ, ञ।
१४. चित्रा—ट, ठ।
१५. स्वाति—ड।
१६. विशाखा—ढ, ण।
१७. अनुराधा—त, थ, द।
१८. ज्येष्ठा—ध।
१९. मूल—न, प, फ।
२०. पूर्वाषाढ़—ब।
२१. उत्तराषाढ़—भ।
२२. श्रवण—म।
२३. धनिष्ठा—य, र।
२४. शतभिषा—ल।
२५. पूर्वा भाद्रपद—व, श।
२६. उत्तरा भाद्रपद—ष, स, ह।
२७. रेवती—ळ, क्ष, अं, अः।

मन्त्र के अक्षर से साध्य के नाम के प्रथमाक्षर तक नक्षत्रों की तीन आवृति करने पर इसका फल प्राप्त होता है। साधक के प्रथम नामाक्षर से प्रारम्भ करके मन्त्र के प्रथम अक्षर तक गणना करने पर १ में स्थाननाश, २ में सत्संग, ३ में अधिक मैत्री, ४ में मृत्यु, ५ में आधि, ६ में व्याधि, ७ में शत्रुता, ८ में विपत्ति एवं ९ में सम्पत्ति-नाश होता है। इनमें १, ४, ५, ६, ७, ८ एवं ९ त्याज्य हैं तथा शेष ग्रहण के योग्य हैं। तारोक्त वर्णों से गणना करके साधक साध्य अनुकूलता प्रतिकूलता जानी जा सकती हैं। अब स्त्री-पुरुषों के अलग-अलग या एक साथ गणचक्र का विचार करना चाहिये।।३१-३९।।

गणविचारः

स्थिराणि विमघोग्राणि रौद्रं नरगणः स्मृतः ।
हर्यन्त्यमित्रादित्येन्दुवाय्विज्यकरघोटकाः ॥४०॥
देवाः शेषा राक्षसाः स्युः साध्यसाधकयोः फलम् ।
नृदेवयोः फलं शीघ्रं व्यस्तयोः कष्टतः फलम् ॥४१॥

नृदैत्ययोर्मनुग्राहाद्व्यस्तयोर्मरणं भवेत्।
देवदानवयोर्युद्धं व्यस्तयोर्निष्फलं भवेत् ॥४२॥

गणविचार—अश्विनी, मृगशिर, रेवती, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा, श्रवण एवं स्वाती नक्षत्रों को देवतागण कहा गया है। तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद), तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद), आर्द्रा, रोहिणी और भरणी नक्षत्र को मनुष्यगण कहते हैं। कृत्तिका, मघा, आश्लेषा, विशाखा, शतभिषा, चित्रा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा एवं मूल नक्षत्र को राक्षसगण कहते हैं। साधक के जन्मनक्षत्र से गण विचार होता है। साधक मनुष्यगण का और साध्य मन्त्र देवगण का हो तब शीघ्र फल की प्राप्ति होती है। यदि गण व्यस्त हो तो कष्ट से फलप्राप्ति होती है। मनुष्यगण के साधक द्वारा दैत्यगण के देवता के मन्त्रजप से मृत्यु होती है। देव-दानव युद्ध व्यस्त गण होने के कारण निष्फल होता है।।४०-४२।।

शशिचक्रविचारः

ग्रहोपग्रहमन्त्रेषु शशिचक्रं विचारयेत्।
वेदा रामास्त्रयो युग्मं युग्मं युग्मं वदन्ति षट् ॥४३॥
षड्वर्गाश्च ततः षट्सु नामवर्णस्थलान्मनोः।
भवेद्यत्रादिगो वर्णः फलं तत्र भवेदिदम् ॥४४॥
इष्टो दासः पोषकश्च रोगकृत्पुत्रदः शुभः।
स्त्रीसौख्यकृद्घातकारी भाग्यदः कार्यसिद्धिकृत् ॥४५॥
लाभकृद्व्ययकृच्चेति प्रोक्ता यन्त्रेषु मातृकाः।
स्त्रीशूद्रप्रतिलोमानां नाममन्त्रैरुपासना ॥४६॥
पूर्वोक्ता राशयो ज्ञेया मीनाद्याश्च द्विजादयः।
वर्णोत्तमो मनुर्ग्राह्यो वैदिकोऽत्र विशेषतः ॥४७॥

शशिचक्र-विचार—मन्त्रों में ग्रह-उपग्रह का विचार चन्द्रचक्र से करना चाहिये। वेद तीन होते हैं—ऋक्, यजुः एवं साम तथा राम भी तीन ही हैं—परशुराम, राम और बलराम। इस प्रकार ये कुल मिलाकर छः होते हैं। इससे षड्वर्ग बनता है। इसके सभी वर्गों में नामवर्ण और मन्त्रवर्ण के स्थल होते हैं। जिसके प्रारम्भ में नाम का प्रथमाक्षर पड़ता है, उसी के अनुसार फल होता है।

स्पष्टार्थ यह है कि अपनी राशि का चन्द्रमा कल्याणकारक एवं अपनी राशि से दूसरी राशि का चन्द्रमा मनःसन्तोषकारक होता है। इसी प्रकार तीसरी राशि का चन्द्र धन-सम्पत्ति देने वाला, चौथी राशि का चन्द्रमा कलहकारक, पाँचवी राशि का चन्द्रमा ज्ञान की वृद्धि करने वाला, छठी राशि का चन्द्रमा लाभकारक, सातवीं राशि का

चन्द्रमा राज्य-सम्मानकारक, आठवीं राशि का चन्द्रमा मारक, नवीं राशि का चन्द्रमा धर्म तथा लाभ-दायक, दशवीं राशि का चन्द्र अभिलाषापूरक, ग्यारहवीं राशि का चन्द्रमा लाभदायक एवं बारहवीं राशि का चन्द्रमा हानिकारक होता है।

स्त्रियों, शूद्रों तथा प्रतिलोमों के लिये नाममन्त्र से ही उपासना का विधान है।

द्विजों के लिये राशि-गणना प्रतिलोम से करनी चाहिये। जैसे—मीन, कुम्भ, मकर आदि। वैदिकों को विशेषतः वर्णोत्तम मन्त्र का ग्रहण करना चाहिये।।४३-४७।।

कौलानां कृते पाञ्चभौतिकविचारः

वक्ष्येऽथ कौलिके मार्गे सिद्धिकृत्पाञ्चभौतिकम्।
वाय्वग्निभूजलाकाशपञ्चतत्त्वानि विन्यसेत् ॥४८॥
द्वौ द्वौ स्वरौ तले लेख्यौ यकाराद्यास्ततः पुनः।
कादिकाश्चापि षड्वर्गाः शषसा हश्च क्षस्तथा ॥४९॥
पुनः पुनर्नाम लेख्यं मन्त्राक्षरसमो मनुः।
तस्मात्पुनर्मनुर्लेख्यो युगपत्स्यात्समापनम् ॥५०॥
यावत्तावल्लिखित्वाथ वर्णतत्त्वं विचारयेत्।
स्थाप्यं रूपं त्वेकतत्त्वे मित्रतत्त्वे च तद्दलम् ॥५१॥
उदासीने पादमेकं तद्योगः पञ्चभाजितः।
इष्टं स्यादथ कष्टं तु शत्रौ रूपं समे दलम् ॥५२॥
पादो मित्रे तु तद्वत्तु तत्कष्टं स्यात्कलात्मकम् ॥५३॥
इष्टेऽधिकेऽल्पकष्टे तु मन्त्रसाधनमाचरेत्।
कुर्वन्ति भूतवेतालाः पिशाचाश्चान्यथा मनुम् ॥५४॥
महीसलिलयोर्मैत्रमनलानिलयोरपि ।
सामान्यमग्निभूम्योस्तु सलिलानिलयोस्तथा ॥५५॥
शात्रवं वैपरीत्येन चक्रं स्यात्पाञ्चभौतिकम्।

कौलों के लिये पाञ्चभौतिक विचार—अब कौलिकों के लिये सिद्धिदायक पाँचभौतिक चक्र का वर्णन किया जाता है। वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल, आकाश—पाँच तत्त्वों का विन्यास करना चाहिये। पहले एक-एक के नीचे दो-दो स्वरों को लिखे, फिर उनके नीचे एक-एक स्वर लिखे।

इसके बाद कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग के अक्षर लिखे। इसके बाद य र ल व श लिखे। इसके बाद ष स ह ल क्ष लिखे। चक्र का स्वरूप निम्न प्रकार का होगा—

वायु	अग्नि	भूमि	जल	आकाश
१	२	३	४	५
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ळ	स	ह

मन्त्राक्षरों के बराबर पुनः-पुनः नामाक्षर लिखे तब युगपत समापन तक पुनः-पुनः मन्त्राक्षरों को लिखे। इस प्रकार लिखने के बाद वर्णतत्त्व का विचार करे। एक तत्त्व में रूप स्थापित करके मित्रतत्त्व में उसके दल का स्थापन करे।

उदासीन में एक पद देकर उनको जोड़े। योगफल में ५ का भाग दे। शेष १ बचे तो कष्ट, २ बचे तो शत्रु, ३ बचे तो मित्र, ४ बचे तो कष्ट समझे। इष्ट अधिक हो तो अल्प कष्ट समझकर मन्त्रसाधन करे। ऐसा नहीं करने से भूत, वेताल और पिशाच मन्त्र सिद्ध नहीं होने देते।

भूमिवर्ण जलवर्ण के मित्र एवं अग्निवर्ण वायुवर्ण के मित्र होते हैं। अग्निवर्ण और भूमिवर्ण सामान्य होते हैं। पञ्चभौतिक चक्र में इसके विपरीत वर्णों में शत्रुता होती है।

विशेष—कुलाकुल-विचार में उपर्युक्त नियम थोड़ा क्लिष्ट और अस्पष्ट है। अतः स्पष्ट करने के लिये दूसरी विधि का वर्णन किया जाता है।

मन्त्रों के स्वकुल और अन्य कुल नामक दो भेद होते हैं। प्रकृति पञ्चभूतात्मक है। इसलिये मातृका और वर्ण भी पञ्चभूतमय हैं। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट हो गया है कि पाँचों तत्त्वों के कौन-कौन से वर्ण हैं।

अब कौन वर्ण साधक के कुल का है और कौन वर्ण उसके कुल का नहीं है, यह देखना आवश्यक है। इसके लिये निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

१. पृथ्वीतत्त्व के वर्णों के जलतत्त्व वाले वर्ण मित्र, अग्नितत्त्व वाले शत्रु एवं वायुतत्त्व वाले वर्ण उदासीन होते हैं।

२. जलतत्त्व वाले वर्णों के पृथ्वीतत्त्व वाले वर्ण मित्र, अग्नितत्त्व वाले शत्रु तथा वायुतत्त्व वाले वर्ण उदासीन होते हैं।

३. अग्नितत्त्व वाले वर्णों के वायुतत्त्व वाले वर्ण मित्र, जलतत्त्व वाले शत्रु और पृथ्वीतत्त्व वाले वर्ण उदासीन होते हैं।

४. वायुतत्त्व वाले वर्णों के अग्नितत्त्व वाले वर्ण मित्र, पृथ्वीतत्त्व वाले शत्रु तथा वायुतत्त्व वाले वर्ण उदासीन होते हैं।

५. आकाशतत्त्व वाले वर्णों के लिये अन्य चारो तत्त्वों के वर्ण मित्र होते हैं।

अत: मन्त्र तथा साधक के नाम के प्रथमाक्षरों के आधार पर स्वकुल आदि का विचार करके मन्त्र का ग्रहण करना चाहिये। गुरु का भी कर्त्तव्य है कि वह विचार करके ही शिष्य को मन्त्र प्रदान करे।

स्वकुल के मन्त्र से अभीष्ट-सिद्धि होती है। मित्रकुल के मन्त्र भी सिद्धिप्रद होते हैं। शत्रुकुल के मन्त्र रोग एवं मृत्युप्रद होते हैं एवं उदासीन कुल के मन्त्र लेने से कोई फल नहीं प्राप्त होता; अत: शत्रु एवं उदासीन कुल के मन्त्रों का त्याग कर देना चाहिए।

स्वकुल और मित्रकुल का मन्त्र ही ग्रहण करना चाहिये। नाम और मन्त्र का एक ही नक्षत्र हो तो उसे भी स्वकुल ही माना जाता है।।४८-५५।।

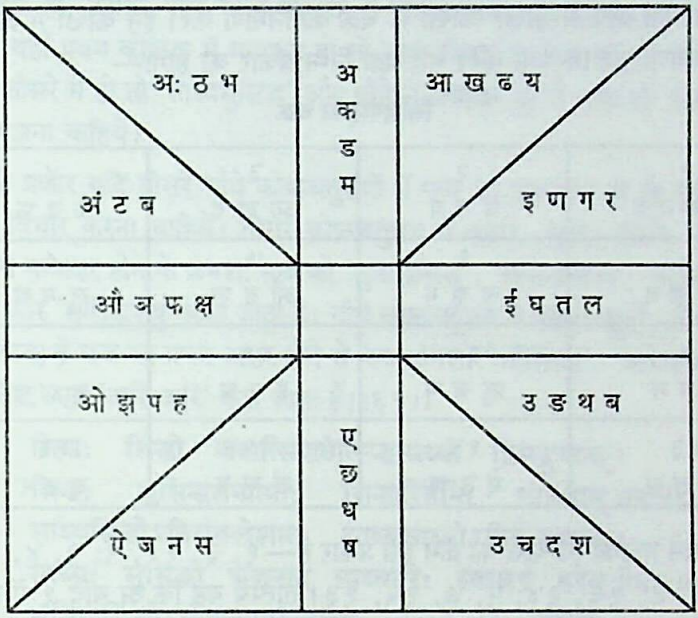
सिद्धादिचक्रम्

सिद्धादिचक्रं वक्ष्येऽहं यज्ज्ञात्वा नाम कारयेत् ॥५६॥
दक्षिणोपासनामार्गे स्वमन्त्रं स्वस्य देवताम् ।
द्वादशारे तथा चक्रे कूटषण्ढविवर्जितान् ॥५७॥
आदिक्षान्ताल्लिँखेद्वर्णान्पूर्वतो यावदीश्वरम् ।
स्वनामाक्षरमारभ्य ज्ञेयो मन्त्राक्षरावधिः ॥५८॥
सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिर्विज्ञेयश्च पुनः पुनः ।
सिद्धः सिद्ध्यति कालेन साध्यः सिद्ध्यति वा न वा ॥५९॥
सुसिद्धग्रहणादेव रिपुमूलं निकृन्तति ।

सिद्धादि विचार—अब सिद्धादि चक्र का वर्णन किया जाता है, जिसके अनुसार जातक का नाम-निर्धारण करना चाहिये।

दक्षिणमार्ग की उपासना में मन्त्र ही अपना देवता होता है। बारह कोष्ठकों की तालिका बनाकर उनमें ऋ ॠ ऌ ॡ छोडकर 'अ' से 'क्ष' तक के वर्णों को लिखे।

अकडम चक्र



उपर्युक्त चक्र में 'अ' से 'क्ष' तक के वर्णों को ऋ, ॠ, ऌ, ॡ छोड़कर दक्षिणावर्त क्रम से लिखे और अपने नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र के प्रथमाक्षर तक गिने। इस प्रकार गणना करने पर मन्त्रों के सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और शत्रु स्वभाव ज्ञात हो जाते हैं। साधक के नाम के प्रथमाक्षर वाले कोष्ठक से १, ५, ९वें कोष्ठक में पड़ने वाले मन्त्र के प्रथमाक्षर से मन्त्र सिद्ध; २, ९, १०वें कोष्ठक में पड़ने वाला मन्त्र साध्य; ३, ७, ११वें कोष्ठक में पड़ने वाला मन्त्र सुसिद्ध और ४, ८, १२वें कोष्ठक में पड़ने वाला मन्त्र शत्रु होता है। सिद्ध मन्त्र कुछ समय में सिद्ध होते हैं। साध्य मन्त्र सिद्ध हो सकते है या नहीं भी सिद्ध हो सकते है। सुसिद्ध मन्त्र ग्रहण करते ही सिद्ध हो जाते हैं एवं शत्रुमन्त्र मृत्युकारक होते हैं।।५६-५९।।

सिद्धिमातृकाचक्रम्

अथ वक्ष्ये महाविद्यासाधने सिद्धिमातृकाम् ॥६०॥
मूलक्रमेण ज्ञेयानि तत्र कोष्ठानि षोडश।
क्रमादेतेषु कोष्ठेषु मातृकार्णान् सुविन्यसेत् ॥६१॥
कुत्रीष्वङ्कमहीन्द्वब्धिसूर्यदिक्षण्नृपा वृषाः।
पञ्चाङ्कतिथिविश्वे च कोष्ठास्तत्र प्रकीर्तिताः ॥६२॥

सिद्धिमातृका चक्र—अब महाविद्या-साधना में सिद्धिमातृका-चक्र का वर्णन सुनिये। मूल क्रम से सोलह कोष्ठों के चक्र का निर्माण करे। इन कोष्ठों में क्रम से मातृका वर्णों का विन्यास करे। यह चक्र निम्न प्रकार का होगा—

सिद्धिमातृका चक्र

१ अ क थ ह	२ उ ड प	३ आ ख द	४ ऊ व फ
५ ओ ड व	६ ऌ झ म	७ औ ढ श	८ ॡ म य
९ ई ध न	१० ॠ ज भ	११ इ ग ध	१२ ॠ छ व
१३ अः त स	१४ ऐ ठ ल	१५ अं ण ष	१६ ए ट र

इसमें मातृका-विन्यास का क्रम इस प्रकार है—१, ३, ११, ९; २, ४, १२, १०; ६, ८, १६, १४; ५, ७, १५, १३। तात्पर्य यह कि अ यदि १ में रहेगा तब आ ३ में, इ ११ में, ई ९ में, उ २ में, ऊ ४ में—इसी प्रकार अन्त तक तीन आवृति में सभी मातृकाओं का अंकन होगा।।६०-६२।।

आदौ ज्ञेयाश्चतुष्केषु सिद्धाद्या विदिशासु च।
तत्तत्स्थानाप्तकोष्ठात्तु पूर्वाङ्गुल्या गुरूक्तितः ॥६३॥

उक्त चक्र में नाम के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर तक क्रमशः १ सिद्ध, २ साध्य, ३ सुसिद्ध और ४ अरि कहा जाता है। उस स्थान के कोष्ठ में आगे का मार्ग गुरु से जानना चाहिये।

विशेष—यहाँ पर अन्य तन्त्रग्रन्थों के अनुसार प्रकाश डाला जाता है। जिन चार कोष्ठकों में साधक के नाम का प्रथमाक्षर हो, उन्हें सिद्धचतुष्टय कहते हैं। प्रदक्षिणक्रम में उससे अगले चार कोष्ठकों को सुसिद्धचतुष्टय तथा अन्तिम चार कोष्ठकों को शत्रु-चतुष्टय कहते हैं।

यदि साधक तथा मन्त्र—दोनों के नाम का प्रथमाक्षर एक ही कोष्ठक में हो तो मन्त्र 'सिद्धसिद्ध' कहलायेगा। साधक के नाम के प्रथमाक्षर वाले कोष्ठक से दूसरे कोष्ठक में मन्त्र का प्रथमाक्षर हो तो मन्त्र 'सिद्धसाध्य', उससे तीसरे में हो तो 'सिद्ध-सुसिद्ध' एवं उससे चौथे कोष्ठक में मन्त्राक्षर हो तो मन्त्र 'सिद्धारि' कहलायेगा।

नाम के प्रथमाक्षर वाले ४ कोष्ठकों में मन्त्र का प्रथमाक्षर हो तो जिस कोष्ठक में नामाक्षर हो, उसकी पंक्ति वाले कोष्ठक से प्रारम्भ करके पूर्ववत् गणना करनी चाहिये। यहाँ प्रथम कोष्ठक में मन्त्राक्षर हो तो 'साध्यसिद्ध' दूसरे में हो तो 'साध्य-साध्य', तीसरे में हो तो 'साध्यसुसिद्ध' और चौथे में मन्त्राक्षर हो तो मन्त्र को 'साध्य-शत्रु' समझना चाहिये।

इसी प्रकार यदि तीसरे चौथे कोष्ठचतुष्टयों में मन्त्र का प्रथमाक्षर हो तो पूर्वोक्त रीति से विचार करना चाहिये। तीसरे कोष्ठचतुष्टय में पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे कोष्ठक में मन्त्राक्षर होने के क्रमशः मन्त्र को 'सुसिद्धसिद्ध', 'सुसिद्धसाध्य', 'सुसिद्ध-सुसिद्ध' और 'सुसिद्धशत्रु' कहा जाता है। चौथे कोष्ठचतुष्टय में पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे कोष्ठक में मन्त्र का प्रथम अक्षर होने से मन्त्र क्रमशः 'अरिसिद्ध', 'अरिसाध्य', 'अरिसुसिद्ध' एवं 'अरि-अरि' कहा जाता है।।६३।।

सिद्धः सिद्धो जपात्सिद्ध्येत्सिद्धसाध्यो द्विसङ्ख्यात्।
सिद्धः सुसिद्धसम्प्राप्तः सिद्धारिर्हन्ति गोत्रजान्।।६४।।
साध्यसिद्धोऽतिसंक्लेशात् साध्यसाध्योऽतिदुःखकृत्।
साध्यः सुसिद्धो भजनात् साध्यारिः स्वाश्रयं हरेत्।।६५।।
सुसिद्धसिद्धोऽर्धजपाद्बहुरूपाच्च तत्परः।
अतिद्रुतं द्विः सुसिद्धः सुसिद्धारिः कुलापहः।।६६।।
अरिसिद्धः सुतं हन्यादरिसाध्यस्तु कन्यकाम्।
अरिः सुसिद्धः पत्नीघ्नोऽथार्य्यरिः साधकापहः।।६७।।

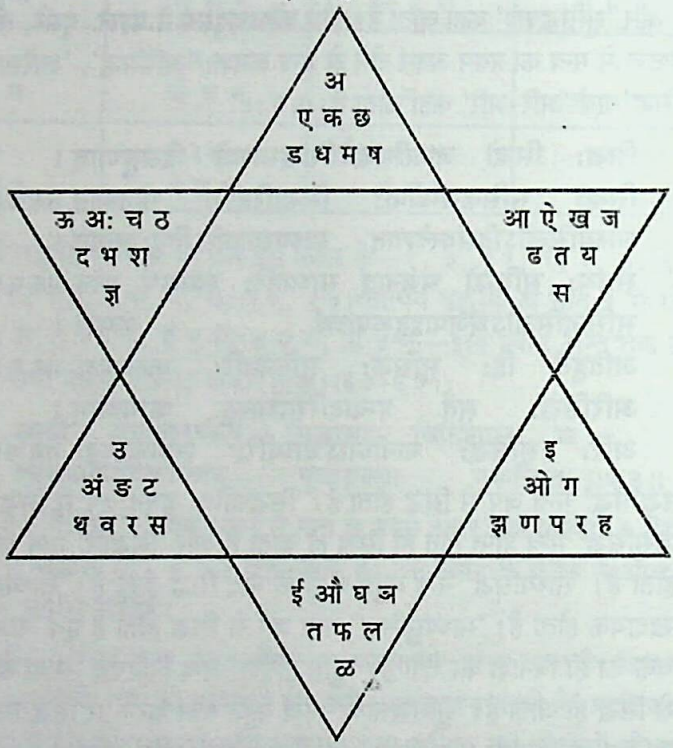
'सिद्धसिद्ध' मन्त्र जप से सिद्ध होता है। 'सिद्धसाध्य' दुगुने जप से सिद्ध होता है। 'सिद्धसुसिद्ध' मन्त्र प्राप्त होते ही सिद्ध हो जाता है और 'सिद्धारि' मन्त्र गोत्र का घातक होता है। 'साध्यसिद्ध' मन्त्र बहुत कष्टों के बाद सिद्ध होता है। 'साध्यसाध्य' मन्त्र दुःखदायक होता है। 'साध्यसुसिद्ध' मन्त्र जप से सिद्ध होता है एवं 'साध्यारि' मन्त्र साधक का ही विनाश कर देता है। 'सुसिद्धसिद्ध' मन्त्र निश्चित संख्या से आधे ही जप से सिद्ध हो जाता है। 'सुसिद्धसाध्य' मन्त्र बहुत यत्न करने पर सिद्ध होता है। 'सुसिद्धसुसिद्ध' मन्त्र बहुत शीघ्र सिद्ध होता है एवं 'सुसिद्धारि' मन्त्र कुल का नाश करने वाला होता है। 'अरिसिद्ध' मन्त्र पुत्र-विनाशक, 'अरिसाध्य' मन्त्र पुत्री का विनाशक, अरि-सुसिद्ध मन्त्र पत्नी का विनाशक एवं 'अरि-अरि' मन्त्र साधक का विनाशक होता है।।६४-६७।।

अत्र प्रसिद्धं नाम स्यात्प्रयुक्तो येन जागृयात्।
यस्तु बीजात्मको मन्त्रस्तत्र षड्दलमातृकाः।।६८।।

विज्ञेयास्तत्र पद्मं तु रचयेत्षड्दलं शुभम्।
तत्र न्यसेन्मातृकार्णान् कूटषण्ढविवर्जितान् ॥६९॥
स्वनामाद्यक्षरं यत्र तदारभ्य विचारयेत्।
सम्प्रद्वारिद्र्यधैर्य्याणि बन्धुविग्रहसंशयौ ॥७०॥
सर्वनाशः क्रमादेव नामाद्यर्णैश्च कोष्ठतः।

उपर्युक्त रूप में प्रसिद्ध नाम का प्रयोग किया जाता है, जिससे मन्त्र जागृत होता है। बीजात्मक मन्त्रों में षड्दल मातृका का प्रयोग होता है।

षड्दलमातृका चक्र



पहले षड्दल पद्म बनावे। उसमें ऋ ॠ ऌ ॡ—इन चार वर्णों को छोड़कर 'अ' से 'क्ष' तक के सभी वर्णों को प्रदक्षिणक्रम से लिखे। साधकनाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र के प्रथमाक्षर तक गणना करनी चाहिये। चक्र में नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र का प्रथमाक्षर पहले कोष्ठ में हो तो सम्पत्ति का लाभ, दूसरे में हो तो धन की हानि, तीसरे में हो तो धैर्य, चौथे में हो तो बन्धुओं से कलह, पाँचवें में आधि-व्याधि के साथ-साथ जीने में भी संशय एवं छठे कोष्ठक में हो तो सर्वनाश होता है।।६८-७०।।

ऋणी-धनीचक्रम्

कथं मन्त्रस्य सिद्धिः स्यादेतदर्थमहं ब्रुवे ॥७१॥
धनर्णमातृकां खेषुषट्त्रीन्द्वब्ध्यङ्गषट्कृताः ।
वक्ष्येऽत्र तु यथा लेख्या अङ्का एकादश स्वराः ॥७२॥
तत्तले काच्च ढाद्वाच्च लेख्या वर्णा हरोन्मिताः ।
तदधो द्विकुसप्ताब्धिखत्रिसप्तेषुसागराः ॥७३॥
षट्पञ्च साधकस्याङ्का मन्त्राङ्काः पूर्वमीरिताः ।
स्वरव्यञ्जनभिन्नानां मन्त्राणानां पृथक्पृथक् ॥७४॥
अङ्कयोगस्तथा कार्यः साधकस्य तु नामतः ।
भागशेषावुभौ स्थाप्यौ यावन्नामाङ्कता मनोः ॥७५॥
अधिका स्यात्साधकस्य देयं मन्त्रः स साधितः ।
तावत्सङ्ख्यान्समायोगानसाध्यानपि साधयेत् ॥७६॥
हीनाँश्च ग्रहयोगेन तथा ऋक्षोपपत्तितः ।
पुरश्चर्यां पुनः कुर्यान्मन्त्रसन्दीप्तये पुनः ॥७७॥
ऋणी तु साधको ज्ञेयः साधकाङ्को यदाधिकः ।
यावत्स्यादधिकस्तावत् सङ्ख्याङ्कानि यदा चरेत् ॥७८॥

ऋणी-धनी चक्र—अब मन्त्र कैसे सिद्ध होते हैं? इसके बारे में बतलाता हूँ। बाँये से दाँये ७ और ऊपर से नीचे १२ रेखाओं के द्वारा ६६ कोष्ठकों वाला एक चक्र तैयार करे। पहली पंक्ति में क्रमशः १४, २७, २, १२, १५, ६, ४, ३, ५, ८, ९ लिखे। दूसरी पंक्ति में पाँच दीर्घ स्वरों को आ ई ऊ ॠ ॡ को छोड़कर शेष ११ स्वरों को लिखे। तीसरी पंक्ति में क से ट तक के ११ वर्ण, चौथी पंक्ति में ठ से फ तक के ११ वर्ण एवं पाँचवीं पंक्ति में ब से ह तक के ११ वर्णों को लिखें। छठी पंक्ति में क्रमशः १०, १, ७, ४, ८, ३, ७, ५, ४, १ तथा ७ लिखे। चक्र का स्वरूप इस प्रकार से बनेगा—

१४	२७	२	१०	१५	६	७	३	५	८	९
अ	इ	उ	ऋ	ऌ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
१०	१	७	४	८	३	७	५	४	१	७

इस चक्र में पहली पंक्ति में मन्त्रवर्ण के अंक हैं एवं छठी पंक्ति में साधक के नामवर्णों के अंक हैं। मन्त्रवर्णों के स्वर-व्यंजनों को अलग अलग करे। फिर जिन कोष्ठकों में जो-जो अक्षर पड़े, उसके ऊपर वाले कोष्ठक से अंक ले। इस प्रकार सब अक्षरों के अंक ले। आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ—इन दीर्घ स्वरों के स्थान पर ह्रस्व स्वरों के अंक लेना चाहिये। फिर सभी स्वर-व्यंजनों के अंकों को जोड़कर उसमें ८ से भाग देने पर जो शेष बचे, उसे मन्त्रराशि समझना चाहिये।

इसके बाद साधक के नामाक्षरों के स्वर-व्यंजनों के अंक नीचे वाली पंक्ति से लेकर उसमें जोड़कर ८ से भाग देने पर जो शेष बचे, उसे नामराशि समझना चाहिये। इनमें जिस राशि के अंक अधिक हों, वह ऋणी तथा जिसके अंक कम हों, वह धनी होगी। यदि मन्त्र की राशि ऋणी हो तो उसे ग्रहण करना चाहिये; अन्यथा नहीं ग्रहण करना चाहिये।

उदाहरण—देवदत्त (कल्पित नाम) 'ऐं नमः भगवती वद वद वाग्देवि स्वाहा' मन्त्र को ग्रहण करना चाहता है। तब ऋणी-धनी का विचार निम्नांकित रूप में करना चाहिये।

देवदत्त के नामाक्षर के अंक—द=७, ए=३, व=७, अ=१०, द=७, अ=१०, त् = ८, त=८, अ=१०—कुल योग ७०।

मन्त्राक्षर के अंक—ऐं=४, ॐ=८, न्=५, अ=१४, म्=२, अः=९, व्=४, अ=१४, द्=४, अ=१४, व्=४, अ=१४, द्=४, अ=१४, व्=४, आ=१४, ग्=२, द्=४, ए=६, व्=४, इ=२७, स्=८, व्=४, आ=१४, ह=९, आ=१४। कुल योग २२४।

उक्त विधि से मन्त्र के स्वर-व्यंजनों का योग २२४ हुआ। इसमें ८ से भाग देने पर शेष ८ बचा। इसी प्रकार देवदत्त के नाम के स्वर-व्यंजनों का योग ७० है। उसमें ८ का भाग देने पर शेष ६ बचा। अतः नियमानुसार नामराशि धनी हुई और मन्त्रराशि ऋणी हुई। फलतः यह मन्त्र देवदत्त का ऋणी हुआ। अतः यह मन्त्र देवदत्त को ग्रहण करने योग्य है।।७१-७८।।

पुरश्चरणसञ्ज्ञानि तदास्य समता भवेत्।
पुरश्चर्यां पुनः कृत्वा तदा स्यात्कार्यसाधकः ॥७९॥
एकस्मिन् साधिते कार्ये पुनर्याति स कुण्ठताम्।
तावज्जपं पुनः कृत्वा चैककार्यक्षमो भवेत्।
तत्त्वमत्र प्रकटितं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥८०॥

पुरश्चरण करने पर मन्त्र की समता प्राप्त होती है। मन्त्र को सन्दीप्त करने के लिये दुबारा पुरश्चरण करना चाहिये। इससे कार्यसिद्धि के लिये प्रयोग करने की क्षमता साधक में आती है। एक कार्यसिद्धि के बाद मन्त्र कुण्ठित हो जाता है। अतः पुनः पुरश्चरण करने पर ही साधक कार्यसिद्धि में सक्षम होता है। इस प्रकार सभी तन्त्रों में गुप्त इस तत्त्व को यहाँ प्रकट किया गया।।७९-८०।।

युद्धे जयार्थं मल्लमातृकाचक्रम्

योधयोर्विजयार्थं तु प्रसङ्गान्मल्लमातृकाम्।
वक्ष्यामि तस्याश्चक्रे तु रचयेदेवमेव हि ॥८१॥
पञ्चपञ्चाग्निरामाग्निरसर्तूग्रमुखानि खम्।
भूश्चाथ पञ्च सँल्लेख्यास्तदधः षण्ढवर्जिताः ॥८२॥
एकादशस्वराश्चान्त्यहीना लेख्याश्च तत्तले।
कचटाद्याँल्लिखेद्वर्णान् ङञणाक्षरवर्जितान् ॥८३॥
नामाक्षराङ्कयोगस्तु द्वयोर्योगावशेषितः।
तुल्यतायां द्वयोर्योगः कार्यश्चाष्टावशेषितः ॥८४॥
स्ववेदर्तुशरागाग्निभूशेषेष्वग्रतो जयी।
समयोरुभयोरत्र मन्त्रं यन्त्रं विना कलिः ॥८५॥

युद्ध में विजयार्थ मल्लमातृका चक्र—अब युद्ध में विजय-प्राप्ति के लिये मल्लमातृका का विचार किया जाता है। उस चक्र को बनाने की विधि का यहाँ वर्णन किया जा रहा है। चक्र का स्वरूप निम्नवत् होता है—

२	५	३	३	३	६	८	१	१	२	५
अ	इ	उ	ऋ	ऌ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श	ष	स	ह	ळ	क्ष	ज्ञ

बाँये से दाँये ६ और ऊपर से नीचे १२ रेखाओं को खींच कर ५५ कोष्ठकों का चक्र बनावे। पहली पंक्ति में ५, ५, ३, ३, ३, ६, ८, १, १, २, ५ लिखे। दूसरी पंक्ति में आ ऊ ई ऋ ऌ—इन पाँच स्वरों को छोड़कर ११ स्वरों को लिखे। तीसरी पंक्ति में ङ ञ ण को छोड़कर क से ड तक के वर्णों को लिखे। चौथी पंक्ति में ढ से म तक के वर्णों को और पाँचवी पंक्ति में य से ज्ञ तक के वर्णों को लिखे। तदनन्तर

दोनों परस्पर स्पर्धी योद्धाओं के नामाक्षरों के अंक जोड़कर प्राप्त योग में आठ का भाग दे। जिसके नामाक्षरों के योग का शेष २, ३, ५, ३, १ बचे, वह विजयी होगा। उपर्युक्त दोनों चक्र कलियुग में बिना मन्त्र-यन्त्र के ही फल-प्रदायक कहे गये हैं।।८१-८५।।

चौरमातृकाचक्रम्

चौरमात्रां प्रवक्ष्यामि विज्ञेयाधानचौरयोः ।
षड्वेदत्रीषुसप्ताब्धिनगगद्विरसखंधराः ॥८६॥
ऊर्द्ध्वाङ्काः पूर्ववच्छेषमङ्कयोगोऽष्टशेषितः ।
हीनस्य हानिराधिक्ये जपो गोप्यमिदं भराः ॥८७॥

चौरमातृका चक्र—चोरों की सफलता के लिये चौरमातृका चक्र का वर्णन किया जाता है। बाँयें से दाँयें ६ और ऊपर से नीचे १२ रेखाओं को खींच कर ५५ कोष्ठों का चक्र बनावे। पहली पंक्ति में ६, ३, ३, ७, ४, ७, २, ६, १, १, २ लिखे। शेष कोष्ठों में मल्लमातृका चक्र के समान वर्णों को अंकित करे। चोर और जिसके घर चोरी करना हो, दोनों के नामाक्षरों के अंकों को अलग-अलग जोड़कर अलग-अलग ८ से भाग दे। दोनों के शेषों की तुलना करने पर जिसका शेष कम होगा, उसकी हानि होगी एवं जिसका शेष अधिक होगा, वह विजयी होगा। चक्र का स्वरूप निम्नांकित है—

६	३	३	७	४	७	२	६	१	१	२
अ	इ	उ	ऋ	ऌ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	ण
य	र	ल	व	श	ष	स	ह	ळ	क्ष	ज्ञ

राजानं विजयार्थं राजमातृकाचक्रम्

राजमात्रां प्रवक्ष्यामि भूपयोर्विजयप्रदाम् ।
वर्गाष्टकाङ्का वह्नीषुषड्वेदाङ्केन्दुवह्नयः ॥८८॥
द्वयोश्च भाजयेद्वर्णान्सप्ततष्टेऽधिके जयः ।
तुल्यशेषे वर्गबलाद्वर्गैक्यप्राणवीर्य्यतः ॥८९॥

राजाओं को विजयप्रद राजमातृका चक्र—अब राजाओं के लिये विजयप्रद राजमातृका चक्र का वर्णन करता हूँ। आठ वर्गों के अंक ३, ६, ३, ७, १, ३, ३, ३ हैं। परस्पर प्रतिद्वन्द्वी राजाओं के नामाक्षरों के वर्गांकों के जोड़ में ८ का भाग

दे। ७, ८ शेष बचने पर विजय होती है। शेष के तुल्य ही वर्गबल और वर्गैक्य बल होता है। इसके लिये वर्ग का ज्ञान होना आवश्यक है। किस अक्षर का कौन-सा वर्ग होता है, इसे निम्नलिखित तालिका के अनुसार जानना चाहिये—

वर्ग	वर्गाक्षर	वर्ग	वर्गाक्षर
१. गरुड़	अ इ उ ए	५. सर्प	त थ द ध न
२. बिलाव	क ख ग घ	६. मूषक	प फ ब भ म
३. सिंह	च छ ज झ	७. मृग	य र ल व
४. श्वान	ट ठ ड ढ ण	८. मेढ़ा	ष ब स ह

विजयप्रदं कलहमातृकाचक्रम्

मातृकां कलहां वक्ष्ये कलहे विजयप्रदाम्।
वह्नीन्दुवेदयुग्मेन्दुरङ्का पञ्च स्वराँल्लिखेत् ॥९०॥
कादीनां तदधो नामवर्णसंख्या द्वयोस्तु या।
पञ्चभक्तेऽधिके शेषे जयो हीने पराजयः ॥९१॥

विजयप्रद कलहमातृका चक्र—अब कलहमातृका चक्र का वर्णन किया जा रहा है, जिसके प्रयोग से कलह में जीत प्राप्त होती है। ३, १, ३, २, १ के नीचे पाँच स्वरों को लिखे, उसके नीचे 'क' से 'क्ष' तक के वर्णों को लिखे। कलहकर्त्ता और साध्य के नामाक्षरों से अंक निकाले। दोनों के अंक को पृथक्-पृथक् जोड़े। दोनों के वर्णसंख्या के योगफल में ५ का भाग दे। जिसका शेष अधिक होगा, वह विजयी होगा एवं जिसका शेष कम होगा, उसकी पराजय होगी। चक्र का स्वरूप निम्न प्रकार का होता है—

३	अ	क	च	ट	त	प	य	ष
१	इ	ख	छ	ठ	थ	फ	र	स
३	उ	ग	ज	ड	द	ब	ल	ह
२	ऋ	घ	झ	ढ	ध	भ	व	ळ
१	ऌ	ङ	ञ	ण	न	म	श	क्ष

स्वर एवं व्यंजन को भिन्न करके अंक निकालने की विधि का वर्णन ऋणी-धनी चक्र में किया जा चुका है। उसे देखकर विचार करना चाहिये।।९०-९१।।

कामजयप्रदमातृकाचक्रम्

कामे रणे वा स्त्रीपुंसोर्जयदां मातृकां शृणु।
भूषट्पञ्चाग्निवेदाग्निद्विभूखेषु शराः कृताः ॥९२॥
त्रिद्विभूस्तदधो वर्णांल्लिखेत्कादीन्पुरेरितान्।
संगृह्य नामवर्णाङ्कान् मात्राभेदक्रमोदितान् ॥९३॥
सप्ततष्टेऽधिके शेषे जयो हीने पराजयः।
समशेषे विवेकस्तु कुर्य्यात्प्राणाच्च वर्गतः ॥९४॥

मैथुन जयप्रद मातृका चक्र—स्त्री-पुरुष के मैथुन युद्ध में जिससे विजय प्राप्त हो सकती है, उस मातृकाचक्र का अब वर्णन सुनो। बाँयें से दाँये ४ और ऊपर से नीचे १४ रेखाओं को खींच कर ३९ कोष्ठक बनावे। उन कोष्ठकों को पहले ऊपरी पंक्ति में भू=१, षट्=६, पंच=५, अग्नि=३, वेद=३, अग्नि=३, द्वि=२ भू=१, ख=१, शर=५, त्रि=३, द्वि=२, भू=१ लिखे। उसके नीचे की दो पंक्तियों में क से य तक के २६ वर्णों को लिखे। फिर स्त्री और पुरुष के नामाक्षरों की संख्याओं को अलग-अलग जोड़े। संख्या मात्राभेद के अनुसार पूर्ववर्णित विधि से ग्रहण करे। योगफल में १३ का भाग दे। जिसकी शेष संख्या ७ या ८ से अधिक होगी, उसी की विजय रतिरण में होगी। जिसकी संख्या अधिक होगी, उसकी जीत और जिसकी कम होगी, उसकी हार होगी। दोनों का शेष यदि बराबर हो तो विवेकानुसार वर्ग के आधार पर निर्णय लेना चाहिये। चक्र का स्वरूप इस प्रकार होता है—

१	६	५	३	३	३	२	१	१	५	३	२	१
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ढ	ड
ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य

चमूपतिजयप्रदमातृकाचक्रम्

सेनापतिजयार्थन्तु मात्रां शृण्वन्तु देवताः।
रसाग्निलोचनयुगा नागषड्गोऽब्धिवह्नयः ॥९५॥
खं भूश्च तदधो लेख्याः स्वरा अत्र पुरेरिताः।
आद्यास्तदङ्कयोगोऽत्र हीनेऽष्टाङ्केऽधिके जयः ॥९६॥

सेनापति के लिये जयप्रद मातृका चक्र—हे देवताओं! अब आप सब युद्ध में सेनापति की जय-पराजय का ज्ञान करने के लिये मातृकाचक्र का वर्णन सुनें। बाँये से दाँये ३ और ऊपर से नीचे १२ रेखाओं को खींचकर २२ कोष्ठक बनावे। प्रथम पंक्ति के कोष्ठों में रस=६, अग्नि=३, लोचन=२, युग=४, नाग=४, षड्=६,

गो=१०, अब्धि=४, वह्नि=३, ख=१, भू=१ लिखकर दूसरी पंक्ति में आ ई ऊ ऋ ॡ को छोड़कर शेष ११ स्वरों को लिखे। दोनों प्रतिद्वन्द्वी सेनापतियों के गोत्रों का अंक निकाले। जिसके गोत्र की संख्या ८ से कम होगी, उसकी पराजय और जिसके गोत्र की संख्या ८ से अधिक होगी, उसकी जीत होगी।।९५-९६।।

दूतस्य स्थितिज्ञानार्थं मातृकाचक्रम्

कादिहान्ताँल्लिखेद्वर्णान् ङञषण्ढविवर्जितान्।
रसाग्निवेदयुग्माङ्कषट्कृताग्नीन्दुशून्यभूः ॥९७॥
विलिख्याङ्कानधो दूतगदिनोरङ्कसम्मितिः।
तष्टाष्टभिश्चेदधिका गदिनो जीवितं भवेत् ॥९८॥
साम्ये पूर्ववदित्युक्ता एताः षोडश मातृकाः।
विद्यादेतद् गुरुमुखान्नामकर्म समाचरेत् ॥९९॥

दूत के मृत या जीवित होने के ज्ञानार्थ मातृका चक्र—बाँये से दाँये ५ रेखा एवं ऊपर से नीचे १० रेखाओं को खींच कर ३६ कोष्ठों का चक्र बनावे। पहली पंक्ति में ६, ३, ४, २, ६, ३, १, ०, १ अंक लिखे। शेष कोष्ठकों में क से ह तक के वर्णों में से ङ ञ ष ण ढ को छोड़कर शेष वर्णों को लिखे। इससे चक्र का स्वरूप निम्न प्रकार का होगा—

६	३	४	२	६	३	१	०	१
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट
ठ	ड	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	श	स	ह

पूर्वोक्त रीति से दूत के नामाक्षरों के अंक को प्राप्त करके जोड़े। योगफल में ९ का भाग दे। शेष यदि ८ से अधिक प्राप्त हो तब दूत जीवित है, ऐसा जानना चाहिये। अंकों में साम्य होने पर पूर्ववत् विचार करे। इस प्रकार षोडश मातृकाचक्र का विवेचन किया गया। इस विद्या के नाम एवं कर्म को आवश्यकतानुसार गुरुमुख से ज्ञात करके कार्य-साधन करना चाहिये।।९७-९९।।

अन्नप्राशनसंस्कारः

अन्नप्राशनसंस्कारः षष्ठः सार्वजनीनकः।
स्वकल्पोक्तविधानेन शूद्रादीनाममन्त्रकः ॥१००॥
पितरस्तत्र संयुक्ता वाममार्गे तु भैरवाः।
अष्ट देवाश्च चक्रस्य पूजान्तेष्ववशेषितम् ॥१०१॥

सतीर्थं सपलं दद्यान्मूलमन्त्रमुदीरयन्।
एवं कृतविधानस्य क्षुद्विपत्तिर्न जायते ॥१०२॥

६. अन्नप्राशन संस्कार—सभी लोगों को छठा अन्नप्राशन संस्कार अपने-अपने कल्प में उक्त रीति के अनुसार अवश्य करना चाहिये। शूद्रों को मात्र नाममन्त्र के द्वारा यह संस्कार करना चाहिये। द्विजों के अन्नप्राशन संस्कार में पितरों की पूजा होती है एवं वाममार्गी उपासकों के संस्कार में भैरवों की पूजा होती है। चक्र में आठ भैरवों की पूजा होती है। पूजा के अन्त में अवशिष्ट को मूल मन्त्र से मद्य के साथ बलि प्रदान की जाती है। इस विधान को करने से भूख अर्थात् दरिद्रता एवं विपत्तियों का आगमन नहीं होता।।१००-१०२।।

चूडाकरणसंस्कारः

अथ सप्तमसंस्कारं चौडाख्यं शृणु पार्वति।
सर्वेषामेवमुद्दिष्टं बाल्यपातकनाशनम् ॥१०३॥
बौद्धानां यवनानां च शिखाऽत्र स्थाप्यते न च।
स्त्रीणामपि च कर्त्तव्यं सौभाग्यारोग्यवृद्धये ॥१०४॥
वामे चूडा तु कर्त्तव्या मन्त्रबीजसमाः कचाः।
तीर्थे क्षिप्त्वा खनेद् भूमौ विशेषो वामिनामिति ॥१०५॥

७. चूड़ाकरण या मुण्डन संस्कार—हे पार्वति! अब सातवें चूड़ाकरण संस्कार का वर्णन सुनो। यह संस्कार सभी जाति के बालकों का करना चाहिये। इसके करने से बाल्य पातकों का नाश होता है। इस संस्कार को करने के क्रम में बौद्धों एवं मुसलमानों को शिखा नहीं स्थापित की जाती। सौभाग्य एवं आरोग्य में वृद्धि के लिये स्त्रियों का भी यह संस्कार कराना चाहिये। वाममार्ग में मन्त्रबीज के बराबर बालों की शिखा रखनी चाहिये। मुण्डन के बालों का तीर्थ में विसर्जन करना चाहिये। वाममार्गियों के बालों को जमीन में गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिये।।१०३-१०५।।

उपनयनसंस्कारः

अथाष्टमं तु संस्कारं मौञ्जीबन्धमहं ब्रुवे।
गुरोः समीपे नयनं तच्चोपनयनं स्मृतम् ॥१०६॥
स्वकल्पोक्तविधानेन तत्कुर्याद् ब्रह्मवर्च्चसम्।
वामाचारैर्द्विजैः पूर्वं कर्तव्यं कुलदीक्षणम् ॥१०७॥

८. उपनयन संस्कार—अब आठवें मौञ्जीबन्धन अर्थात् उपनयन संस्कार को मैं कहता हूँ। यह संस्कार जातक को गुरु के समीप ले जाता है, इसीलिये इसे 'उपनयन' कहा जाता है। ब्रह्मवर्चस् अर्थात् ब्रह्मतेज की प्राप्ति के लिये अपने कल्पोक्त विधान

से यह संस्कार करना चाहिये। वामाचारी द्विजों को भी कुलदीक्षा के पहले यह संस्कार कर लेना चाहिये।।१०६-१०७।।

दीक्षासंस्कारः

पश्चाद्दीक्षा तु सावित्र्या व्यत्यासात्पतितो भवेत्।
दीक्षा तु लघुदैवत्या प्राक्पश्चान्महतस्तथा ॥१०८॥
बृहद्दैवतमन्त्रे तु सिद्धे क्षुद्राः स्वयं वशाः।
तेषां ग्राह्या मन्त्रदीक्षा पुरश्चर्य्यां समारभेत् ॥१०९॥
प्रयोगांश्चापि कुर्वीत न चेष्टस्य कदाचन।
सच्छिष्यं वा सुपुत्रं वा विनेष्टं दापयेन्न च ॥११०॥
लोभाद्भयाद्वा यो दद्यादन्यस्मै सिद्धमन्त्रकम्।
शिष्यस्य जायते सिद्धिर्गुरोः शापः प्रजायते ॥१११॥
यस्या यस्या देवतायाः प्रसक्तिर्यत्र यत्र च।
तत्तन्मार्गे प्रसक्ता सा स्वविद्या राजवद्भवेत् ॥११२॥
तन्त्राण्यष्टोत्तरशतं मया प्रोक्तानि पार्वति।
येन येन तु यत्पृष्टं तस्याधिक्यं तु वर्णितम् ॥११३॥
निष्पक्षपातं वक्ष्यामि मेरुतन्त्रे यथार्थतः।
सर्वेभ्यो वैदिकं श्रेष्ठं ततश्च स्मार्तमुत्तमम् ॥११४॥
ततस्तन्त्रं तु तत्रापि संहिता अर्णवास्ततः।
यामलास्तत्सङ्गमाच्च मन्त्रीशानी च ताण्डवम् ॥११५॥
इन्द्रजालं कक्षपुटी बौद्धं जैनं च शाबरम्।
क्रमादपचितं ज्ञेयं यथायोग्येन मुख्यता ॥११६॥
नीचे ह्युपास्ये पातः स्यान्नीच उच्चात्पतेद् ध्रुवम्।
ज्ञानं दद्याच्च सर्वस्मै स्वाचारात्कर्म कुर्वते ॥११७॥

९. दीक्षा संस्कार—कुलदीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जो गायत्री मन्त्र को ग्रहण करता है, वह पतित हो जाता है। कुलदीक्षा तो लघुदैवत है। वृहद् देवता के मन्त्र सिद्ध हो जाने पर लघुदैवत स्वयं वशीभूत हो जाते हैं। इसलिये उपनयन संस्कार के बाद ही मन्त्र-दीक्षा लेकर पुरश्चरण करना चाहिये।

पुरश्चरण से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर प्रयोग करने की चेष्टा कदापि नहीं करनी चाहिये। अच्छे शिष्य और सुपुत्र को भी बिना इष्ट के यह मन्त्र नहीं देना चाहिये। लोभवश या भयवश यदि सिद्ध मन्त्र दूसरे को दिया जाता है तो शिष्य तो सिद्ध हो जाता है; लेकिन गुरु को शाप का भागी होना पड़ता है। जिसकी जिस मन्त्र के देवता

में आसक्ति होती है, उसके लिये उस मार्ग के देवता की विद्या राजवत् श्रेष्ठ होती है।

हे पार्वति! इस प्रकार मेरे द्वारा १०८ तन्त्रों का प्रतिपादन किया गया है। जो-जो आपने पूछा है, उससे अधिक ही मेरे द्वारा विवेचित किया गया है। इस मेरुतन्त्र में विना किसी पक्षपात के यथार्थ वर्णन मैं कर रहा हूँ। सभी मार्गों में वैदिक मार्ग श्रेष्ठ है। उसके पश्चात् स्मार्तों का मार्ग श्रेष्ठ है। उसके बाद तन्त्रमार्ग का स्थान आता है और उसमें भी पहले संहिता, तत्पश्चात् अर्णव श्रेष्ठ हैं। तदनन्तर क्रमशः यामल, मन्त्र, ईशानी, ताण्डव का स्थान आता है।

उन तन्त्रों में इन्द्रजाल, कक्षपुटी, बौद्ध, जैन और शावर तन्त्र को क्रमशः न्यून जानना चाहिये। निकृष्ट उपासना से पतन होता है एवं उच्च उपासना से भी नीचे पतन होता है। अतः उपासना का ज्ञान तो सबों को प्रदान करना चाहिये; लेकिन उपासक को कर्म अपने आचार के अनुसार करना चाहिये।।१०८-११७।।

प्राजापत्यसंस्कारः

संस्कारं दशमं विद्यात्प्राजापत्यव्रताभिधम्।
स्वकल्पोक्तेन मार्गेण वैदिकस्तान्त्रिकः पुनः ॥११८॥
एतद् व्रतस्य संस्कारे गाणपत्यो मनुः स्मृतः।
वक्रतुण्डादिका दक्षे उच्छिष्टाद्यास्तु वामके ॥११९॥
संस्कारं दशमं सौम्यं व्रतं वैदिकमाचरेत्।
स्वकल्पोक्तेन मार्गेण तत्स्थाने तान्त्रिकः पुनः ॥१२०॥
गृह्णीयाद्भैरवं मन्त्रं बटुकाख्यस्य वामके।
कालभैरवभेदस्य यस्य कस्यापि दक्षिणे ॥१२१॥
पुरश्चर्योपासकानां नाशको भैरवो यतः।
दरिद्रैः साधकैर्ग्राह्यः स्वर्णाकर्षणभैरवः ॥१२२॥

१०. प्राजापत्य संस्कार—दसवें संस्कार का नाम विद्याप्राजापत्य व्रत है। वैदिक और तान्त्रिक—दोनों को यह संस्कार अपने-अपने कल्पोक्त रीति के अनुसार करना चाहिये। इस व्रत संस्कार में गणपति के मन्त्र होते हैं। दक्षिण मार्ग का मन्त्र है—ॐ वक्रतुण्डाय हुम् एवं वाममार्ग का मन्त्र है—ॐ नमः उच्छिष्टगणेशाय। वैदिकों को सौम्य व्रत का आचरण करना चाहिये एवं तान्त्रिकों को अपने कल्पोक्त मार्ग का आचरण करना चाहिये। वाममार्गियों को वटुकभैरव का मन्त्र ग्रहण करना चाहिये एवं दक्षिणमार्गियों को कालभैरव के मन्त्र का आराधन करना चाहिये। पुरश्चरणकर्ताओं के लिये भैरव विनाशक होते हैं। दरिद्र साधकों को स्वर्णाकर्षण भैरव के मन्त्र का ग्रहण करना चाहिये।।११८-१२२।।

आग्नेयसंस्कारः

एकादशं तु संस्कारमाग्नेयाख्यं व्रतं द्विजः।
कुर्य्याद् गृह्योक्तमार्गेण तस्मिन्स्थाने तु तान्त्रिकः ॥१२३॥
गृह्णीयादङ्गदेवानां मन्त्रानादौ गुरोर्मुखात्।
पूजादिमन्त्राँस्तच्छिक्षां तद्द्रव्यनियमाँस्तथा ॥१२४॥

११. आग्नेय संस्कार—द्विजों के लिये ग्यारहवाँ संस्कार अग्निव्रत होता है, जिसके स्थान पर तान्त्रिकों को अपने गृह्योक्त मार्ग का आचरण करना चाहिये।

गुरुमुख से प्रारम्भ में अंगदेवताओं के मन्त्रों का ग्रहण करना चाहिये। गुरुमुख से ही पूजा के मन्त्र और उसकी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये एवं गुरुमुख से ही पूजा-द्रव्य और नियमों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।।१२३-१२४।।

वैश्वदेवसंस्कारः

द्वादशं चापि संस्कारं वैश्वदेवव्रताभिधम्।
तस्मिन् स्थाने भवेद्दीक्षा स्वेष्टमन्त्रे तु तान्त्रिके ॥१२५॥

१२. वैश्वदेव संस्कार—बारहवें संस्कार का नाम वैश्वदेव व्रत है, यह वैदिकों के लिये करणीय होता है। तान्त्रिकों द्वारा इसके स्थान पर अपने इष्ट मन्त्र की दीक्षा ग्रहण की जाती है।।१२५।।

गोदानसंस्कारः

त्रयोदशं तु संस्कारं गोदानाख्यं प्रकीर्तितम्।
तस्थाने तान्त्रिकः कुर्यात् सर्वपापविमोक्षणम् ॥१२६॥
सत्स्थले तु समासीन आदर्शं वा घटोदकम्।
संस्थाप्याग्रे सत्यवाचा ततः सम्प्रार्थयेदिति ॥१२७॥
पुरश्चरणकामोऽहं पापं क्षपितुमुद्यतः।
आपराह्णं जपं कुर्वे देवताः सन्तु साक्षिणः ॥१२८॥
पृथिव्यप्तेजआकाशवायुसूर्येन्दुभानि च।
यावच्छरीरे पापानि तिष्ठन्ति मम देवताः ॥१२९॥
तावच्च प्रतिबिम्बो मे मिलनो भातु पातकैः।
शान्ते पारदमध्ये च यथा सन्दृश्यतां तथा ॥१३०॥
शुद्धः सच्चिन्मयो भूत्वा चिन्तयन्पापपूरुषम्।
दक्षकुक्षिस्थितं कृष्णमङ्गुष्ठपरिमाणकम् ॥१३१॥
विप्रहत्याशिरोयुक्तं कनकस्तेयबाहुकम्।
मदिरापानहृदयं गुरुतल्पकटीयुतम् ॥१३२॥

पापसंयोगपद्द्वन्द्वमुपपातकरोमकम् ।
दद्रूचर्मधरं दुष्टमधोवक्त्रं सुदुस्सहम् ॥१३३॥
एवं सञ्चिन्तयित्वाथ जपं कुर्वन्विचिन्तयेत् ।
क्षीयमाणं पापनरं जपान्ते प्रेक्षयेत्पुनः ॥१३४॥
आदर्शादि यदा स्वच्छं सर्वच्छाया प्रदृश्यते ।
तदा तु निर्गतं पापं पुरश्चरणयोग्यता ॥१३५॥

१३. गोदान संस्कार—वैदिकों के लिये तेरहवाँ संस्कार गोदान होता है। इसके स्थान पर तान्त्रिकों को अपने सभी पापों का विमोक्षण करना चाहिये। एतदर्थ तान्त्रिक पाप-विमोक्षण के स्थल पर जलपूर्ण कलश की स्थापना करे और उसके आगे प्रार्थना करे कि मेरी वाणी सत्य हो। पुरश्चरण की इच्छा से मैं अपने सभी पापों का विमोक्षण आज से करता हूँ। मैं अपराह्न तक मन्त्रजप करूँगा, जिसके साक्षी सभी देवता हैं। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र और तारे-नक्षत्र सभी इसके साक्षी हैं। जब तक मेरे शरीर में पापों का वास रहेगा तब तक सभी देवता प्रतिबिम्बरूप से मुझसे मिलकर मेरे पापों का विनाश करते रहेंगे। जिस प्रकार शान्त पारद में सब कुछ दिखलायी पड़ता है, उसी प्रकार शुद्ध सत् चित् मय होकर साधक को अपने दक्षिण कुक्षि में स्थित कृष्ण वर्ण के अंगुष्ठ के बराबर प्रमाण वाले पापपुरुष का चिन्तन करना चाहिये। उस पापपुरुष का शिर विप्रहत्या है, सोने की चोरी उसकी भुजायें हैं, मदिरा-पान उसका हृदय है एवं गुरुशय्या ही उसकी कमर है। उस पापपुरुष के दोनों पाँव पाप से संयुक्त हैं। उपपातक उसके रोम हैं। उसे चर्मकुष्ठ है एवं उसके निम्न ओष्ठ विकृत हैं। इस प्रकार वह दुस्सह है।

इस प्रकार से उसके रूप की कल्पना करते हुये जप के समय भी उसका चिन्तन करते रहना चाहिये एवं जप के अन्त में उस पापपुरुष को क्षीण होते हुये देखना चाहिये। शीशे में यदि सभी प्रकार की छाया स्वच्छ दिखलायी पड़ने लगे तब यह समझना चाहिये कि पापपुरुष मेरे शरीर से निकल गया है और पुरश्चरण की योग्यता मुझे प्राप्त हो गयी है।।१२६-१३५।।

समावर्त्तनसंस्कारः

चतुर्दशस्तु संस्कारः समावर्त्तनमुच्यते ।
तस्य स्थाने पुरश्चर्य्या कर्तव्या तान्त्रिकैर्जनैः ॥१३६॥
आदौ सङ्क्षेपपूजां तु दिने कृत्वा तु कौलिकः ।
आसायं तु जपं कुर्याच्चक्रपूजां तथा निशि ॥१३७॥
शक्तिभिः सहितः पञ्चमकारादिसमन्वितः ।
एवं सिद्धिमवाप्नोति नान्यथा जपकोटिभिः ॥१३८॥

१४. समावर्तन संस्कार—वैदिकों के लिये चौदहवाँ संस्कार समावर्तन संस्कार होता है। तान्त्रिकों को इसके स्थान पर पुरश्चरण करना चाहिये। कौलिकों को दिन के प्रारम्भ में संक्षिप्त पूजन करने के उपरान्त सायंकाल तक जप करना चाहिये तथा रात्रि में शक्ति के साथ पञ्च मकार—मछली, मदिरा, मुद्रा और मैथुन से समन्वित चक्र-पूजन करना चाहिये। ऐसा करने से ही उन्हें सिद्धि प्राप्त होती है; अन्यथा करोड़ों जप करने पर भी सिद्धि नहीं मिलती।।१३६-१३८।।

विवाहसंस्कारः

विवाहः पञ्चदशमः सर्वेषां संविधीयते।
विधवाया विवाहन्तु पिप्पलेनैव कारयेत् ॥१३९॥
सर्वपापविनिर्मुक्ता सा तु विष्णुपदं व्रजेत्।
अब्राह्मणी च चेत्कुर्यादन्यमेकं तथा पतिम् ॥१४०॥

१५. विवाह संस्कार—पन्द्रहवें विवाह संस्कार का विधान सबों के लिये है। विधवाओं का विवाह पीपल वृक्ष के साथ कराना चाहिये। इससे विधवा सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर विष्णुपद को प्राप्त करती है। यह पीपल विवाह ब्राह्मणी विधवाओं के लिये कहा गया है। ब्राह्मणियों के अतिरिक्त अन्य जातियों की विधवाओं का दूसरे पति से विवाह किया जा सकता है।।१३९-१४०।।

पितृमेधसंस्कारः

षोडशः पितृमेधाख्यः स्वगृह्योक्तेन वर्त्मना।
वैदिकस्तान्त्रिकस्तत्र देवस्थाने स्वदेवताम् ॥१४१॥
स्थापयित्वाचरेच्छ्राद्धं ब्राह्मणा मृतपन्थिनः।
अथवा यजमानस्य मार्गस्थस्तदभावतः ॥१४२॥
आमश्राद्धं प्रकुर्वीत वामी तु पलपैतृकम्।
शक्तियुक्ता द्विजाः कौलमार्गाश्चक्रार्चने मताः ॥१४३॥
वर्ज्जयेत्तुलसीं तत्र भृङ्गराजेन पूजयेत्।
पाकः कौलिकवस्तूनां पिण्डाश्च रुधिरोक्षिताः ॥१४४॥
एतैः षोडशसंस्कारैः संस्कृतः साधकोत्तमः।
जीवन्मुक्तस्तदा ज्ञेयः सामर्थ्ये देवतासमः ॥१४५॥

१६. पितृमेध संस्कार—सोलहवें संस्कार को पितृमेध संस्कार कहते हैं। वैदिकों और तान्त्रिकों—दोनों को यह संस्कार अपने-अपने देवस्थान में अपने-अपने गृह्यसूत्रों के अनुसार करना चाहिये। ब्राह्मण अपने मृत पितरों का या यजमान के मृत पितरों का श्राद्ध अपने-अपने मार्ग से करे या करवावे। पितरों की स्थापना करके यह श्राद्ध करना चाहिये।

वाममार्गियों को पितरों का श्राद्ध कच्चे मांस से करना चाहिये। चक्रार्चन में कौल द्विजों को अपनी शक्ति के साथ पूजन करना चाहिये। चक्रार्चन में वाममार्गियों को तुलसीदल नहीं चढ़ाना चाहिये; अपितु उसके बदले में भृंगराज से पूजन करना चाहिये। कौलिक वस्तुओं को पकाकर उसमें रुधिर मिलाकर पिण्ड बनाना चाहिये।

इन सोलह संस्कारों से संस्कृत उत्तम साधक को जीवन्मुक्त जानना चाहिये। वह साधक सामर्थ्य में देवताओं के समान हो जाता है।।१४१-१४५।।

मन्त्राणां षोडशसंस्काराः

अथ षोडश वक्ष्येऽहं संस्कारान्मन्त्रसंस्थितान्।
शापैर्मन्त्रा विमुच्यन्ते यान्कृत्वा देवनिर्मितैः ॥१४६॥

मन्त्रों के सोलह संस्कार—अब मन्त्रों के सोलह संस्कारों का वर्णन मैं करता हूँ, जिनके करने से वे मन्त्र देवताओं के शाप से मुक्त हो जाते हैं।।१४६।।

अथादौ सर्वमन्त्राणां जागृतिः प्रोच्यते मया।
गुरुणा सा प्रकर्तव्या शिष्यस्य सिद्धिहेतवे ॥१४७॥
ताराग्निबीजं विजपेद्यस्मिन्नाग्नेयकः स तु।
अन्यः सौम्यः स्वापकाल इडायामग्निरूपिणः ॥१४८॥
सौम्यस्य पिङ्गलायां स्यात्तयोरन्यत्र जागृतिः।
प्रबोधकाले सञ्जप्तो जागृतो जायते मनुः ॥१४९॥

सबसे पहले मैं मन्त्र-जागृति का कहता हूँ। यह कार्य शिष्य को सिद्धि प्राप्त कराने के लिये गुरु के द्वारा किया जाना चाहिये। आग्नेय मन्त्र की जागृत करने के लिये ताराबीज प्रणव=ॐ का और अग्निबीज 'रं' का जप करना चाहिये। अन्य सौम्य मन्त्रों सुषुप्तिकाल में इडा नाड़ी में अग्निरूप होते हैं। सौम्य मन्त्र पिंगला नाड़ी में तथा अन्यत्र भी जाग्रतावस्था में ही रहते हैं। मन्त्रदीक्षा के समय जपमात्र से ही ये मन्त्र जागृत हो जाते हैं।।१४७-१४९।।

अथवा सम्पुटीकृत्य लान्तानाद्यान् सबिन्दुकान्।
पुनश्च सविसर्गांस्तांस्त्रिकालं केवलं जपेत् ॥१५०॥
एवं जप्तो यदीष्टश्च प्रबुद्धः शीघ्रसिद्धिदः।

अथवा 'अ' से 'ल' तक के वर्णों में विन्दु लगाकर जैसे—अं आं.....रं लं मन्त्र का सम्पुटित जप तीनों काल में करे। फिर इन सभी वर्णों में विसर्ग लगाकर सम्पुटित जप तीनों काल में करे। जैसे—अः आः.....रः लः इत्यादि। इस प्रकार के जप से जो इष्टदेवता है, वह जागृत हो जाता है और प्रबुद्ध होने पर शीघ्र सिद्धि-प्रदायक हो जाता है।।१५०।।

अथ शाबरमन्त्राणां जागृतिं शृणु पार्वति ॥१५१॥
कांस्यभाजनमानीय शुद्धं भस्मादिभिः कृतम्।
प्रजपेद्रविरात्रौ तु यामे यामे शताष्टकम् ॥१५२॥
खादिर्या ताडयेद्यष्ट्या कांस्यपात्रं वदेदिति।
जागृतो भव मन्त्र त्वं भाषयाथ तुरीयके ॥१५३॥
यामे दद्याद्बलिं कांस्ये मण्डजं भैरवस्य तु।
कुक्कुटं चान्यदेवेषु स्फोटयेन्नारिकेलकम् ॥१५४॥

हे पार्वति! अब शाबर मन्त्रों की जागृति का वर्णन सुनो। काँसे का बर्तन लेकर उसे भस्म आदि से साफ करना चाहिये। रविवार की रात के प्रत्येक प्रहर में १०८ वार मन्त्र का जप करे। खैर के डण्ठल से उस बर्तन पर प्रहार करे, जिससे उसमें से आवाज निकले। प्रत्येक प्रहार करते समय यह कहे—हे मन्त्र! तुम जागो=मन्त्र! त्वं जागृतो भव। तदनन्तर चौथे प्रहर में उस कांस्य पात्र में ही भात के माँड़ की बलि भैरव को प्रदान करे। मुर्गे की बलि भी देनी चाहिये। अन्य देवताओं को नारियल फोड़कर बलि प्रदान करना चाहिये।।१५१-१५४।।

सुरया सुधया पूर्वदेवा देवा विमोहिताः।
यदा तदा तु भगवान् प्रोवाच मधुसूदनः ॥१५५॥
कः पूज्यो भवतां मध्ये कः श्रेष्ठस्तन्निगद्यताम्।
उन्मत्तास्तु तदा देवाः श्रेष्ठोऽहमिति चाब्रुवन् ॥१५६॥
किञ्चित्स्मित्वा तु भगवान् मोहयन्नात्ममायया।
इत्यवोचद्यस्य वाक्यं शापे चानुग्रहे क्षमम् ॥१५७॥
स एव देवश्रेष्ठोऽत्र पूर्वो वाऽप्यपरोऽथ वा।
इति श्रुत्वा वचो विष्णोः शेपुश्चैव परस्परम् ॥१५८॥
मन्त्ररूपाण्यतो देवि संस्कारैः शापमोक्षणम्।
विना तु शापमोक्षेण कः सिद्धिं प्राप्नुयाज्जनः ॥१५९॥

प्राचीन काल में जब अमृत से देव और मदिरा से दानव लोग विमोहित हो गये थे, तब भगवान विष्णु ने कहा था कि हम लोगों के मध्य में कौन पूज्य है, कौन श्रेष्ठ है? इसे बतलाओ। तब उन्मत्त देवताओं ने कहा कि हम देवगण ही श्रेष्ठ हैं। देवताओं के ऐसा कहने पर विष्णु ने कुछ मुस्कुराते हुये अपनी माया से उन्हें विमोहित करते हुये कहा कि जिसकी वाणी में शाप और अनुग्रह करने की क्षमता होगी, वही देवता यहाँ श्रेष्ठ है, वही पहले भी श्रेष्ठ था और बाद में भी रहेगा। श्रीविष्णु के यह वचन सुनकर मन्त्ररूप उन देवताओं ने एक-दूसरे को शाप दे दिया। इसलिये हे देवि!

संस्कारों के द्वारा ही वे शापमुक्त होते हैं। शाप-विमोचन-संस्कार किये विना कौन मनुष्य सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।।१५५-१५९।।

श्रीदेव्युवाच

शापः केन कथं दत्तः शप्ते जप्ते च किं फलम्।
निश्शापत्वं कथं तेषु सिद्धिः स्यादिति मे वद ॥१६०॥

श्रीदेवी ने कहा—किसके द्वारा कौन-सा शाप दिया गया? शापित मन्त्र के जप करने का क्या फल होता है? शाप से वे विमुक्त होकर वे सिद्ध कैसे होते हैं? यह सब आप मुझसे कहिये।।१६०।।

ईश्वर उवाच

आदिमध्यावसानेषु वायुर्यस्य व्यवस्थितः।
चतुराद्यश्चैकबीजो निधायैकत्र सङ्गमः ॥१६१॥
केनापि च समाक्रान्तो जप्तो मन्त्रश्च येन वै।
कार्त्तिकेयस्य शापात्तु च्छिद्यन्तेऽस्य मनोरथाः ॥१६२॥

श्रीशिव ने कहा—जिस मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में वायुबीज 'यं' व्यवस्थित रहता है, जिसके प्रारम्भ में चारों बीजों का एकत्र सङ्गम होता है, वह मन्त्र किसी के भी द्वारा समाक्रान्त होने पर जप करने पर कार्तिकेय के शाप से उस साधक के मनोरथों का विनाश हो जाता है।।१६१-१६२।।

आदौ मध्येऽवसाने वा भूबीजयुगलं भवेत्।
आदौ यद्वा द्विधा वज्री त्रिधा मध्यं ततो द्विधा ॥१६३॥
रुद्धौ शुक्रस्य शापेन भुक्तिमुक्तिविवर्जितौ।
जातौ मन्त्रौ वामदक्षमार्गयोरपि विश्रुतौ ॥१६४॥

जिस मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में दो भूमिबीज 'लं' रहते हैं तथा जिस मन्त्र के प्रारम्भ में वज्री पाँच वर्णों इ औ म ल फट् में से दो वर्ण, तीन वर्ण मध्य में और दो वर्ण अन्त में रहते हैं, वह मन्त्र शुक्र के शाप से रुद्ध रहता है। ऐसा मन्त्र न तो भोगप्रद होता है और न ही मोक्षप्रद। चाहे वह मन्त्र वाममार्ग का हो या दक्षिणमार्ग हो। प्रसिद्ध भी हो तो भी वह निष्फल होता है।।१६३-१६४।।

ह्रीं सौंप्रेंश्रींष्वेकतमं यत्र बीजं न दृश्यते।
हुङ्कारो वा स मन्त्रस्तु शक्तिहीनः कृतः सुरैः ॥१६५॥
एतादृशश्च सञ्जप्तः सामर्थ्यं हन्ति मन्त्रिणः।
शक्तिहीनस्य वामस्य मरणन्नात्र संशयः ॥१६६॥

जिन मन्त्रों में ह्रीं, सौं, प्रें, श्रीं, हुं बीज नहीं होते, उन मन्त्रों को देवताओं के द्वारा शक्तिहीन कर दिया गया है। शक्तिहीन मन्त्रों के जप से साधकों को शक्तिहीनता प्राप्त होती है। उनके सामर्थ्य का नाश हो जाता है। वाममार्गी यदि शक्तिहीन मन्त्र का जप करता है, तब निश्चित ही उसकी मृत्यु हो जाती है।।१६५-१६६।।

नादौ ह्रीं न च मध्ये क्लीं क्रोऽन्ते वा न प्रदृश्यते।
असौ पराङ्मुखो मन्त्रो जातः सूर्यस्य शापतः ॥१६७॥
पराङ्मुखं भजन्मन्त्रं देवता स्यात्पराङ्मुखी।
दैवात्कार्येऽपि संसिद्धिर्लोकः स्याच्च पराङ्मुखः ॥१६८॥

जिस मन्त्र के आदि में न 'ह्रीं' हो, न मध्य में 'क्लीं' हो और न ही अन्त में 'क्रों' हो, वह मन्त्र सूर्य के शाप से पराङ्मुखी होता है। पराङ्मुख मन्त्र के जप से देवता भी पराङ्मुख हो जाते हैं। यदि भाग्यवशात् कार्य सिद्ध भी हो जाय तो उस साधक से संसार पराङ्मुख हो जाता है।।१६७-१६८।।

आदावन्ते तथा मध्ये हं वा सं वा न दृश्यते।
बधिरास्ते कृता मन्त्रा देवाचार्येण शापिताः ॥१६९॥
जप्ते तु बधिरे मन्त्रे विस्मृतिस्तस्य जायते।
जायते बधिरो नूनं महाकालेन भाषितम् ॥१७०॥

जिस मन्त्र के आदि, अन्त और मध्य में 'हं' अथवा 'सं' नहीं दिखलायी पड़ते, वह मन्त्र देवाचार्य वृहस्पति द्वारा शापित होने के कारण वधिर होता है। वधिर मन्त्र के जप से साधक अपनी स्मरण शक्ति खो देता है। महाकाल के कथनानुसार उस मन्त्र के जप से साधक वधिर हो जाता है।।१६९-१७०।।

सूर्यबीजं हकारः स्याच्चन्द्रबीजं तु सः स्मृतः।
रेफोऽग्निबीजमुद्दिष्टमेएत्रेत्रत्रयं मम ॥१७१॥
पञ्चाक्षरे यत्र मन्त्रे यत्रैकोऽपि च नास्ति चेत्।
मम शापान्नेत्रहीनो दुःखशोकामयप्रदः ॥१७२॥

सूर्य का बीजमन्त्र 'हं' है और चन्द्रमा का बीजमन्त्र 'सः' है, 'रं' अग्नि का बीज-मन्त्र है। इसी उद्देश्य से मेरे तीन नेत्र हैं, जो सूर्य-अग्नि-सोमात्मक हैं। जिन पञ्चाक्षरी मन्त्रों में कोई बीज नहीं होता, वे मेरे द्वारा शापित होते हैं। नेत्रहीन मन्त्र दुःख, शोक एवं रोगप्रदायक होते हैं।।१७१-१७२।।

नादौ मध्ये न चान्ते वा ह्सौं वा हंस वाथ ह्रीं।
एँ वा श्रूं वाथवा ह्लूं वा नमो वा ह्रीं मनुः स तु ॥१७३॥

शापेन कीलितो मन्त्रो देवराजेन पार्वति।
जप्तस्तु कीलितो मन्त्रो न सिद्धिमधिगच्छति ॥१७४॥

जिन मन्त्रों के आदि में, मध्य में और अन्त में ह्सौं, हं, सः, हौं, ऐं, श्रूं, हूं, नमः या ह्रीं नहीं होता, वे मन्त्र देवराज इन्द्र के शाप द्वारा कीलित होते हैं। हे पार्वति! कीलित मन्त्र के जप से सिद्धि नहीं प्राप्त होती है।।१७३-१७४।।

मध्य एको रकारो वा फडन्ते लद्वयं यदि।
फड्द्वयं वा लत्रयं वा न चेत्संस्तम्भितो मनुः ॥१७५॥
शापेन नो भैरवस्य सिद्धिर्भवति शोभना।
कदापि नैव दुःखं च प्रायशो बहुलं भवेत् ॥१७६॥

जिन मन्त्रों के मध्य में एक 'र' या दो 'फट्' के बाद दो 'ल' या दो 'फट्' या तीन 'ल' नहीं होता, वे मन्त्र स्तम्भित होते हैं। भैरव के शाप से अच्छी सिद्धि कभी नहीं मिलती; अपितु बहुत दुःख उठाना पड़ता है।।१७५-१७६।।

आदौ तु यस्य मन्त्रस्य क्रमात्सप्ताक्षराणि चेत्।
रेफेण वा यकारेण संयुक्तानि मनुः स तु ॥१७७॥
वाय्वग्निशापसन्दग्धः साधकं परितापयेत्।
तस्मात्संस्कारयेद्देवि सिद्धये साधकोत्तमः ॥१७८॥

जिन मन्त्रों में क्रम से सात अक्षर 'र' 'य' से युक्त होते हैं, वे मन्त्र वायु और अग्नि के शाप से सन्दग्ध होते हैं। उन मन्त्रों का जप करने पर उक्त दोनों ही देवता साधक को परितप्त करते हैं। अतः सिद्धि की प्राप्ति के लिये उत्तम साधकों को इन मन्त्रों का संस्कार अवश्य करना चाहिये।।१७७-१७८।।

द्वाभ्यां त्रिभिरथो षड्भिरष्टभिर्वा प्रदृश्यते।
यदक्षरैरन्तरितः फट्कारः स निगद्यते ॥१७९॥
नारसिंहस्य शापेन त्रस्तः सन्त्रासयेत्सदा।
स्वप्नादौ साधको नैव सिद्धः सन्दृश्यते क्वचित् ॥१८०॥

जिन मन्त्रों में दो, तीन, छः या आठ बार फट् शब्द उच्चरित सुनाई पड़ते हैं, वे मन्त्र नृसिंह के शाप से त्रस्त होने के कारण साधक को सदा त्रस्त करते रहते हैं। स्वप्न में भी ऐसे साधकों को सिद्ध होते नहीं देखा गया है।।१७९-१८०।।

ॐ वा हं वा सकारो वा नाभौ भीतो मनुः स तु।
ब्रह्मशापाद्धीनसिद्धिर्भवेदत्यन्तकष्टदः ॥१८१॥

जिन मन्त्रों की नाभि में ॐ या हं या सं हो, वे मन्त्र भीत होते हैं। ये मन्त्र ब्रह्मा के शाप से अत्यन्त हीन सिद्धि प्रदान करने वाले तथा कष्टप्रद होते हैं।।१८१।।

आदिमध्यावसानेषु मिलित्वा मञ्चतुष्टयम्।
स मन्त्रो मलिनो मायाशापान्मालिन्यकारकः ॥१८२॥

जिन मन्त्रों के आदि, मध्य और अन्त में चार 'म' मिले हुए होते हैं, वे मन्त्र माया के शाप से मलिन होते हैं और साधकों के लिये मालिन्यकारक होते हैं।।१८२।।

हुं चादौ मन्त्रमध्ये वा वान्ते फड्युगलम्भवेत्।
तिरस्कृतो रुद्रशापात्साध्यं कुर्यात्तिरस्कृतम् ॥१८३॥

जिन मन्त्रों के आदि में हुं तथा मध्य या अन्त में दो फट् होते हैं, वे मन्त्र रुद्र के शाप से तिरस्कृत होते हैं और उनके अनुष्ठान से साधक को भी तिरस्कार प्राप्त होता है।।१८३।।

आदौ तारद्वयं चान्ते वषड्वात्र वरानने।
कुटुम्बकलहं कुर्याद्बालाशापेन भेदितः ॥१८४॥

जिन मन्त्रों के प्रारम्भ में दो 'ॐ' और अन्त में वषट् हों, वे मन्त्र बाला के शाप से भेदित होते हैं और कुटुम्ब में कलहकारक होते हैं।।१८४।।

हकारेण सकारेण रहितस्त्र्यक्षरस्तु यः।
सुषुप्तः सिंहशापेन प्रोक्तोऽभीष्टफलापहः ॥१८५॥

'ह' और 'स' से रहित त्र्यक्षर मन्त्र सिंह के शाप से सुषुप्त होते हैं। ये मन्त्र अभीष्ट फल के नाशक होते हैं।।१८५।।

अष्टादशाक्षरो योऽत्र पञ्चफट्कारपूर्वकः।
चामुण्डाशापतो जातो मदोन्मत्तो न शोभनः ॥१८६॥

प्रारम्भ में पाँच फट् से युक्त जो अट्ठारह अक्षरों के मन्त्र होते हैं, उन्हें चामुण्डा के शाप के कारण मदोन्मत्त कहा जाता है, वे शुभ नहीं होते हैं।।१८६।।

मध्ये चेत्पञ्च फट्काराः कालिकाशापतः स तु।
मूर्च्छितो मूर्च्छितं कुर्याद्वामिनं तु विशेषतः ॥१८७॥

जिन मन्त्रों के मध्य में पाँच फट् होते हैं, वे मन्त्र कालिका के शाप से मूर्च्छित होते हैं। ये मन्त्र विशेषतः वाममार्गियों को मूर्च्छित कर देते हैं।।१८७।।

एवं मन्त्रे च फट्काराः पञ्चान्ते स तु रम्भया।
हतवीर्यस्तु शापेन कृतः क्षीणत्वकारकः ॥१८८॥

जिन मन्त्रों के अन्त में पाँच फट् होते हैं, उनके वीर्य का रम्भा ने अपने शाप के द्वारा हरण कर लिया है; अत: ऐसे मन्त्र साधक को क्षीण करते हैं।।१८८।।

चत्वारो यत्र फट्कारा आदिमध्यावसानिकाः ।
अष्टादशाक्षरो हीनो हानिभैंरवशापतः ॥१८९॥

जिन अट्ठारह अक्षरों के मन्त्रों के आदि, मध्य और अन्त में चार फट् होते हैं, उन्हें भैरव ने शाप देकर हीन कर दिया है। साधक को इनसे हानि होती है।।१८९।।

एकोनविंशद्वर्णश्चेत् क्रींक्रोमोङ्कारसंयुतः।
प्रध्वस्तः कामशापेन ध्वंसयेत्कामकारणात् ॥१९०॥

जिन उन्नीस अक्षरों के मन्त्रों में क्रीं क्रों ॐ होते हैं, उन्हें कामदेव ने अपने शाप से प्रध्वस्त कर दिया है। इनसे साधक का काम ध्वस्त होता है।।१९०।।

सप्तवर्णो मनुर्बालः कुमारोऽष्टाक्षरः स्मृतः ।
षोडशार्णस्तु तरुणः प्रौढो व्योमाब्धिवर्णकः ॥१९१॥

सात अक्षरों के मन्त्र बाल, आठ अक्षरों के मन्त्र कुमार, षोड़श वर्ण वाले मन्त्र तरुण एवं इकतालीस वर्ण वाले मन्त्र प्रौढ़ होते हैं।।१९१।।

त्रिंशत्कलाः शतं वेदकाष्ठावर्णास्तु यत्र च ।
सकृद्धि एते कालेन शप्ता दुःखानि कुर्वते ॥१९२॥

जहाँ भी १३० वर्णात्मक अथवा ११० वर्णात्मक मन्त्र हैं, वे काल के द्वारा शापित हैं। इनसे साधक को दुःख प्राप्त होता है।।१९२।।

नवार्ण ओङ्कारयुतश्चामुण्डाशापतो मनुः ।
निर्बीज इति संशप्तो नित्यं नैराश्यकारकः ॥१९३॥

ॐ से युक्त नवार्ण मन्त्र 'ॐ ऐं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' भगवती चामुण्डा के द्वारा शापित है। इस प्रकार संशप्त यह मन्त्र निर्बीज होने के फलस्वरूप साधकों के लिये नैराश्यकारक है।।१९३।।

निस्त्रिंशः साधकं छिन्द्यान्निस्त्रिंशेन न संशयः ।
अन्ते नमो वा स्वाहा वा नास्ति वा यस्य मध्यमः ॥१९४॥
वषड्वौषट् च हुम्फड् वा प्रोक्तो नैवास्त्यसौ मनुः ।
सेवां कुर्वल्लभेद्देशनाशं वर्षत्रयादितः ॥१९५॥

निस्त्रिंश अर्थात् क्रूर मन्त्र निश्चय ही क्रूरतापूर्वक साधक का विनाश कर देते हैं। जिन मन्त्रों के अन्त में नमः अथवा स्वाहा नहीं होता; जिनके मध्य में वषट्, वौषट्

अथवा हुं फट् नहीं होते, उन्हें मन्त्र नहीं कहा जाता। इनकी साधना करने से तीन वर्षों में देश का नाश हो जाता है।।१९४-१९५।।

आदिमध्यावसानेषु फट्काराः सन्ति यस्य तु।
कौमार्यास्तु स शापेन सिद्धिहीनो न सिद्धिकृत्॥१९६॥

जिन मन्त्रों के आदि, मध्य और अन्त में फट् होता है, वे मन्त्र कुमार के द्वारा शापित होते हैं। ऐसे सिद्धिहीन मन्त्रों से सिद्धि नहीं मिलती।।१९६।।

दशाक्षरस्तु यो मन्त्रः स गणेशस्य शापतः।
मन्दो जप्तस्तु मूर्खत्वं कुर्याज्जन्मनि जन्मनि॥१९७॥

जो दशाक्षर मन्त्र हैं, वे गणेश के द्वारा शापित हैं। ये मन्त्र मन्द होते हैं। इनके जप से साधक प्रत्येक जन्म में मूर्ख होता है।।१९७।।

आदौ व्यञ्जनसंयोग एक एव स्वरो भवेत्।
तत्कूटं कूटतो हानिर्मातङ्ग्याः शापतः स्मृता॥१९८॥

जिन मन्त्रों का प्रारम्भ व्यञ्जन वर्ण से होता है और उनमें एक ही स्वर होता है, उन्हें मातङ्गी के द्वारा शापित कहा गया है। उन कूटों के जप से हानि होती है।

द्विवर्णः सत्त्वहीनः स्यादाश्विनेयस्य शापतः।
नाशयेत्साधकबलं राज्ञः सेनां विनाशयेत्॥१९९॥

दो वर्णात्मक मन्त्र अश्विनीकुमारों के शाप से सत्त्वहीन होते हैं। इनके जप से साधक के बल का विनाश होता है और राजा की सेना विनष्ट हो जाती है।।१९९।।

चतुर्वर्णः केकरस्तु जातः सर्पारिशापतः।
जपित्वा केकरं मन्त्रं चक्षुषा नैव पश्यति॥२००॥

गरुड़ के शाप से चतुरक्षर मन्त्र केकर होते हैं। केकर मन्त्रों का जप करने वाला साधक आँखों से नहीं देख पाता।।२००।।

षडक्षरा बीजहीना जाता रावणशापतः।
तज्जपाद्वंशवृद्धिर्न चान्यथा स्त्रीसुखं न हि॥२०१॥

छः अक्षरों के मन्त्र रावण के शाप से बीजहीन होते हैं। इनके जप से वंशवृद्धि नहीं होती; साथ ही साधक को स्त्री-सुख भी नहीं प्राप्त होता।।२०१।।

सार्धत्रिसप्तसूर्याणां धूमावत्याः सशापतः।
तज्जपे व्याकुलं चित्तं जायते साधकस्य तु॥२०२॥

ॐ ह्रीं घृणीः सूर्य आदित्य श्रीं—यह सूर्यमन्त्र धूमावती के द्वारा शापित है। इसके जप से साधक के चित्त में व्याकुलता होती है।।२०२।।

विंशत्तथैकविंशच्च त्रिंशद्वर्णस्तु तारया।
शप्त आलिङ्गितेनायं जपात्सत्वरतो मृतिः ॥२०३॥

२०, २१ और ३० वर्णों के मन्त्र तारा के द्वारा शापित हैं। इनके जप से साधक की मृत्यु शीघ्र हो जाती है।।२०३।।

द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रः सरस्वत्यास्तु शापतः।
मोहितः साधकं कुर्यात्पानादिव्यसनाकुलम् ॥२०४॥

२२ अक्षरों के मन्त्र सरस्वती के द्वारा शापित हैं, जो साधक इनका जप करता है, उसे सरस्वती मोहित करके मद्यपान आदि के व्यसन से व्याकुल कर देती है।

मन्त्रो वरानने यस्तु चतुर्विंशतिवर्णकः।
क्षुधार्त्तो राजमातङ्ग्याः शापाद्दारिद्र्यकारकः ॥२०५॥

हे वरानने! २४ अक्षरों के मन्त्र राजमातङ्गी द्वारा अभिशप्त हैं; यह साधक को दरिद्रता प्रदान करने वाला होता है। इसीलिये इस मन्त्र का साधक सर्वदा भूख से पीड़ित रहता है।।२०५।।

त्रयोविंशाक्षरो रुद्रवर्णः कौलिकशापतः।
मन्त्रो दृप्तस्तु तेनैव मन्दता जायते नृणाम् ॥२०६॥

२३ अक्षरों के मन्त्र कौलिक के शाप से रुद्रवर्णक हैं, इसकी साधना से साधक मन्द बुद्धि हो जाता है।।२०६।।

षड्विंशदेकोनत्रिंशत् त्रिंशत्षड्विंशदक्षरः।
पूष्णः शापादङ्गहीनः कामनापूरको न हि ॥२०७॥

२६, २९, ३० और ३६ अक्षरों के मन्त्र पूषा के शाप से अङ्गहीन होते हैं।ये मन्त्र मनोकामना पूर्ण करने वाले नहीं होते।।२०७।।

अष्टाविंशदेकत्रिंशद्वर्णो नन्दीशशापतः।
अतिक्रूरः साध्यनाशं कृत्वा नश्येच्च साधकः ॥२०८॥

२८ एवं ३१ वर्णों के मन्त्रों को नन्दीश अर्थात् भगवान् ने शापित किया है। ये अति क्रूर होने के कारण साध्य का नाश करने के साथ-साथ साधक का भी विनाश कर देते हैं।।२०८।।

अष्टत्रिंशाक्षरो मन्त्रो मातृकाणां च शापतः।
अतिक्रुद्धस्तज्जपेन स्वकृते स्वस्य संक्षयः ॥२०९॥

३८ अक्षर के मन्त्रों को मातृकाओं का शाप प्रसप्त है। ये अति क्रुद्ध होते हैं; अतः इनका अपने लिये जप करने से अपना ही विनाश हो जाता है।।२०९।।

चत्वारिंशत्समारभ्य त्रिषष्टिर्यावदक्षरम्।
सव्रीडामातृकाशापात् सव्रीडास्तस्य साधकाः ॥२१०॥

४४ से लेकर ६३ अक्षरों तक के मन्त्र मातृकाशाप के कारण लज्जित होते हैं; अतः इनके साधक भी लज्जित हो जाते हैं।।२१०।।

पञ्चषष्ट्यक्षरा ये स्युर्मन्त्रास्ते शान्तमानसाः
कामशापेन तज्जापादुद्योगस्य फलं न हि।
धात्रीधृतिद्विधृत्यङ्काङ्काङ्कयुग्मद्विगोकराः ।
शतत्रयं यत्र वर्णाः शापिताश्छिन्नमस्तया ॥२११॥

६५ अक्षरों के मन्त्र शान्त प्रकृति के होते हैं। कामदेव के शाप से इनका जप निष्फल होता है। ३०० वर्ण वाले मन्त्र में यदि ञ, ल, इ, उ, ऊ ऋ, दो ग, अंक हो तो यह मन्त्र छिन्नमस्तिका के द्वारा अभिशप्त हैं।।२११।।

यूयं भवन्तु निःस्नेहाः साधकानां भयावहाः।
निष्कामैर्याजिभिर्जप्ता संसारस्नेहनाशनाः ॥२१२॥

हे पार्वति! आप सब दयाहीन होकर साधकों के लिये भयावह हो जाती हैं। निष्काम होकर भी यदि इसका जप किया जाता है, तब भी इससे संसार में स्नेह का विनाश होता है।।२१२।।

चतुश्शतान्यथारभ्य यावद्वर्णसहस्रकम्।
अतिवृद्धा यज्ञशापात्पौष्टिकादिषु वर्जिताः ॥२१३॥

जिन मन्त्रों में ४०० से १००० तक वर्ण होते हैं, उन मन्त्रों को अतिवृद्ध कहा जाता है। ये सभी यज्ञ भगवान् द्वारा अभिशप्त हैं; अतः पौष्टिक अदि कर्मों में इनका प्रयोग वर्जित है।।२१३।।

सहस्राणाधिका मन्त्रा दण्डनेतुस्तु शापतः।
दण्डकाख्याः पीडिताश्च तज्जपात्कष्टमाप्नुयात् ॥२१४॥

एक हजार से अधिक वर्ण वाले मन्त्र दण्डाधिपति द्वारा शापित हैं। 'दण्डक' नाम वाले ये मन्त्र पीड़ित भी हैं; अतः इनके जप से कष्ट प्राप्त होते हैं।।२१४।।

द्विसहस्राधिका मन्त्रा भार्गवस्य तु शापतः।
खण्डीकृताः सप्तधा ते सिद्धिखण्डकराः स्मृताः ॥२१५॥

दो हजार से अधिक वर्ण वाले मन्त्र शुक्र के द्वारा शापित होकर सात खण्ड में विभक्त हैं; अतः ये मन्त्र सिद्धि को भी खण्डित कर देते हैं।।२१५।।

अन्यच्छृण्वन्तु भो देवा मुनीनां जपतां यदा।
सिद्धिर्न जाता तु तदा दत्तः शापः सुदारुणः ॥२१६॥

हे देवताओं! और भी सुनें। जिन मन्त्रों के जप से मुनियों को सिद्धि नहीं प्राप्त हुई है, उन मन्त्रों को ऋषियों ने दारुण शाप दिया हैं।।२१६।।

आश्वासनं देवतानां जातं सिद्धेरकारणात्।
उपदेशे गुरुः कुर्यात्तस्मात्तन्मन्त्रशोधनम् ॥२१७॥

देवताओं के आश्वासन से ही अकारण सिद्धि प्राप्त होती है; अतः गुरु के द्वारा शिष्य को यह उपदेश देना चाहिये कि मन्त्र-शोधन के पश्चात् ही उनका जप करना चाहिये।।२१७।।

मन्त्रसिद्धेरुपायः

तत्प्रकारं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु सकलाः सुराः।
गुरुः सिद्धासनस्थश्च गुदमेढ्रान्तरं दृढम् ॥२१८॥
वामेन पार्ष्णिनापीड्य तस्योपरि तु विन्यसेत्।
पादं तु दक्षिणं गुल्फग्रन्थ्योरन्योन्यमर्दनम् ॥२१९॥
यथा स्यात्तत्प्रकर्त्तव्यं ततो दक्षिणपार्ष्णिना।
लिङ्गमूलं विनिष्पीड्य स्थिरकाय उपाविशेत् ॥२२०॥
गुदमाकुञ्च्य पवनमपानाख्यं तदा गुरुः।
उत्थापयेत्ततः प्राणान्वायुं सम्यङ्निरोधयन् ॥२२१॥
अपानप्राणयोः कुर्यात्संहतिं चैकदृङ्मनाः।
मूलाधारे चित्स्वरूपे कुण्डल्यां परमात्मनि ॥२२२॥
जातदोषं स्वस्य मन्त्रं चिन्तयेत्तत्र सद्गुरुः।
तस्य मन्त्रस्याक्षराणि क्रमादेकैकशस्ततः ॥२२३॥
सुषुम्णायास्तु मार्गेण मूलाधारे प्रवेशयेत्।
स्वाधिष्ठाने ततश्चक्रे मणिपूरे त्वनाहते ॥२२४॥
विशुद्ध आज्ञाचक्रे च भित्त्वा भित्त्वा प्रवेशयेत्।
एवं नीत्वा ब्रह्मरन्ध्रं सोमस्य मण्डलामृतात् ॥२२५॥
संसिक्तान्मन्त्रवर्णांस्तु सुधीः सम्यग्विभावयेत्।
ततस्तन्मन्त्रमृष्यादिन्यासपूर्वं जपेत्ततः ॥२२६॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु तेन शुद्धो भवेन्मनुः।
उक्तशापाद्विनिर्मुक्तं पश्चादुपदिशेच्च तम् ॥२२७॥

मन्त्र-सिद्धि के उपाय—शिवजी ने कहा—हे देवताओं! मन्त्र-सिद्धि किस प्रकार प्राप्त हो, उसका वर्णन मैं करता हूँ, आप सब सुनिये। गुरु सिद्धासन में इस प्रकार विराजमान हो कि उसके बाँयें पैर की एँड़ी गुदा और लिङ्ग के बीच में रहे एवं उस स्थान पर एँड़ी का दबाव भी हो। अब दाहिने पैर को बाँये पैर पर इस प्रकार रखे कि दाँयें टखने का दबाव बाँयें टखने पर पड़े। ऐसा करते समय दाँयी एँड़ी का दबाव लिङ्गमूल पर पड़ना चाहिये एवं शरीर स्थिर होना चाहिये। अब गुरु गुदा को सिकोड़कर मूलबन्ध लगावे अर्थात् अपान वायु को ऊपर उठाकर प्राणवायु को निरुद्ध करके कुम्भक करे। इस प्रकार दृढ़ संकल्प से अपान और प्राण को एक करे। मूलाधार में चित्स्वरूप कुण्डलिनी का चिन्तन करे एवं इस प्रकार का चिन्तन करे कि मेरा दोष और मन्त्र का दोष—दोनों ही समाप्त हो गये। अब उस मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को गुरु मूलाधार के सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश करावे। पुनः उन अक्षरों को मूलाधार से स्वाधिष्ठान में, स्वाधिष्ठान से मणिपूर में, मणिपूर से अनाहत में, अनाहत से विशुद्धिचक्र में और विशुद्धिचक्र से आज्ञाचक्र में ले आवे। आज्ञाचक्र से ब्रह्मरन्ध्र में लाकर उसके सोम-मण्डल के अमृत से संसिक्त होने की भावना करे। तत्पश्चात् उस मन्त्र का न्यासपूर्वक एक हजार आठ की संख्या में जप करे। इतने जप से वह मन्त्र शुद्ध हो जाता है एवं प्रदत्त शाप से मुक्त भी हो जाता है। इस प्रकार के शुद्ध मन्त्र का ही उपदेश गुरु को शिष्य के लिये करना चाहिये।।२१८-२२७।।

आशीर्वादफलं स्तोकं पूर्वपापादिजं फलम्।
वाचिकानां तु शापानां नाशाद्यर्थमथोच्यते ॥२२८॥

पूर्वकृत पापों के फलस्वरूप आशीर्वाद का फल अल्प होता है। इसलिये वाचिक शापों के विनाश के लिये किये जाने वाले उपायों को अब कहा जा रहा है।

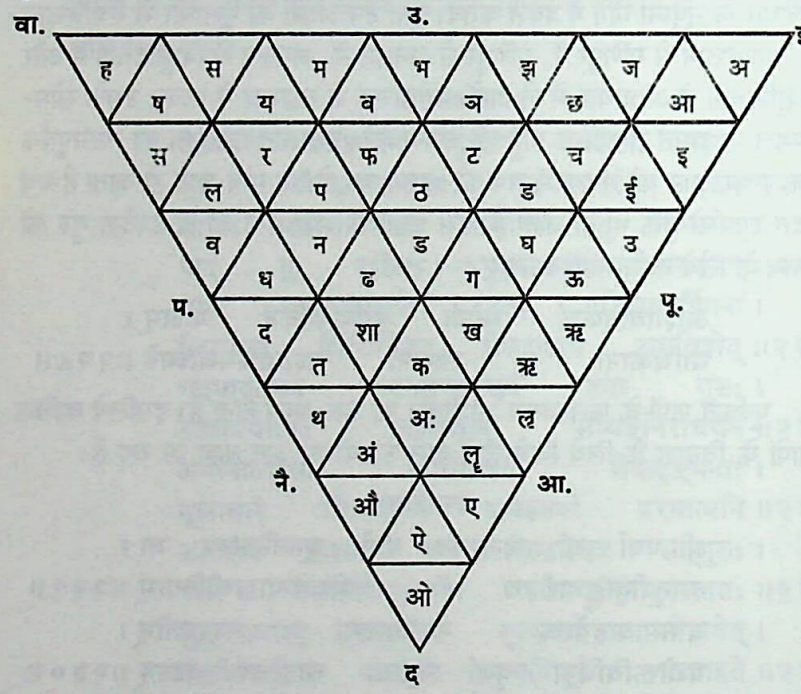
जननसंस्कारः

श्रीपर्ण्या वा चन्दनस्य पीठे चूतादिकस्य वा।
कस्तूरीकुङ्कुमाद्यैश्च विलिखेत्पाञ्चभौतिकम् ॥२२९॥
चक्रमावाहयेत्तत्र मातृकाख्यां सरस्वतीम्।
यथोक्तविधिना पूजां कृत्वा चाष्टोत्तरं शतम् ॥२३०॥
जपित्वा मातृकां तस्या मध्यात्स्वाभीष्टमन्त्रकम्।
स्वरव्यञ्जनबिन्दूंश्च सर्गयोग्याक्षराणि च ॥२३१॥
पृथक्पृथगथोद्धृत्य चैकीकृत्य गुरूक्तितः।
गृहीतं जनयेन्मन्त्रं प्रोक्तं सञ्जननं त्विदम् ॥२३२॥

चन्दन अथवा आम की लकड़ी की चौकी पर श्रीपर्णी, कस्तूरी, कुमकुम आदि

से पाञ्चभौतिक चक्र अर्थात् कुलाकुल चक्र का निर्माण करे। उस चक्र में मातृका सरस्वती का आवाहन करके यथोक्त विधि से पूजन करे। पूजा के बाद मातृका सरस्वती मन्त्र का १०८ बार जप करें। तदनन्तर अभीष्ट मन्त्र का भी जप करे। मन्त्राक्षरों के स्वर-व्यञ्जन-विन्दु-विसर्ग—सभी का पृथक्-पृथक् उद्धार करके गुरु के निर्देशानुसार सबको पुनः एकीकृत करने के बाद स्पष्ट हुये स्वरूप वाले उस मन्त्र को ग्रहण करे। इसे मन्त्र का जनन संस्कार कहा जाता है।।२२९-२३२।।

विशेष—भोजपत्र के ऊपर गोरोचन या लाल चन्दन से एक सम त्रिभुज बनाकर उसे पश्चिम कोण से प्रारम्भ करके ७ समान विभागों में विभक्त करे। इसी प्रकार ईशान और आग्नेय कोणों से भी उसे सात-सात समान विभागों में बाँट दे। ऐसा करने से कुल ४९ योनियाँ बनती हैं। जननसंस्कार का यन्त्र निम्न प्रकार का होता है—



इस चक्र में ईशान कोण से आरम्भ करके पश्चिम तक 'अ' से 'ह' पर्यन्त समस्त वर्णों को लिखे। फिर उस पर मातृका देवी का आवाहन करके चन्दनादि से उनका पूजन करे। फिर उससे मन्त्र के एक-एक वर्ण का उद्धार करे। इसके बाद उसमें विविध मातृका देवी का आवाहन करके पूजन करे। इससे अलग भोजपत्र पर अपने मन्त्र के प्रत्येक वर्ण का उद्धार करे। फिर इन वर्णों का मार्जन करके पूरा मन्त्र लिख लेना चाहिये।

जीवनसंस्कारः

आद्यन्ते प्रणवं कृत्वा प्रणवान्तरितं जपेत्।
अष्टोत्तरशतं मन्त्रवर्णानितत्तु जीवनम् ॥२३३॥

जीवन संस्कार—मन्त्र के पहले और बाद में 'ॐ' लगाकर सम्पुटित करके और बीच के प्रत्येक अक्षर को पहले ॐ लगाकर प्राप्त मन्त्र का जप १०८ बार करे। इसे जीवन संस्कार कहते हैं। जैसे—ॐ नमः शिवाय का जनन संस्कार करना हो तो ॐ ॐ ॐ न ॐ मः ॐ शि ॐ वा ॐ य ॐ के रूप में जप करे।।२३३।।

ताडनसंस्कारः

रोचनाकुङ्कुमाभ्यां तु भूर्जपत्रे लिखेन्मनुम्।
प्रत्यक्षरं शतावृत्त्या ताडयेच्चन्दनाम्भसा ॥२३४॥
समुच्चरन् वायुबीजमेतत्ताडनमुच्यते।
कुण्ठिताः शाबरा मन्त्रास्ताडिताः सिद्धिकारकाः ॥२३५॥

ताड़न संस्कार—गोरोचन और कुमकुम की स्याही से भोजपत्र पर मन्त्र को लिखकर प्रत्येक अक्षर को एक-एक सौ बार चन्दनमिश्रित जल से ताड़ित करे अर्थात् जल का छींटा मारे। जल का छींटा वायुबीज बोलकर देना चाहिये। वायुबीज 'यं' होता है। ऐसा करने से कुण्ठित शाबर मन्त्र सिद्धिकारक हो जाते हैं।।२३४-२३५।।

विशेष—ताड़न की विधि स्पष्ट रूप में इस प्रकार जाननी चाहिये—'यं ॐ' बोलकर १०० बार 'ॐ' पर छींटा दे। 'यं न' कहकर १०० बार छींटा दें, 'यं मः' कहकर १०० बार छींटा दे, 'यं शि' कहकर १०० बार छींटा दे, 'यं वा' कहकर १०० छींटा दें। 'यं य' कहकर १०० बार छींटा दे।

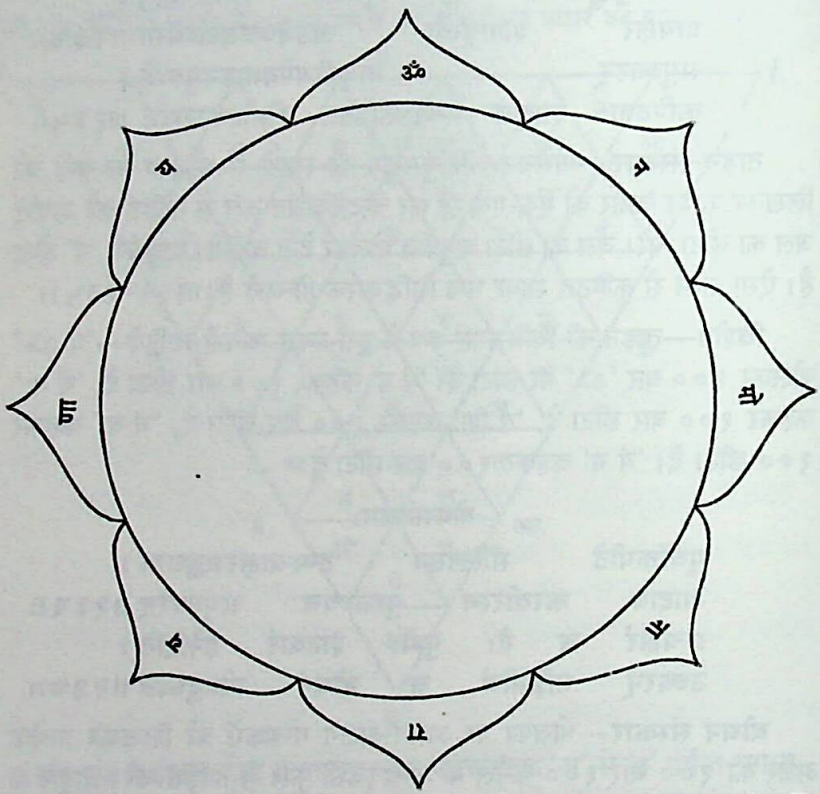
बोधनसंस्कारः

पूर्वोक्तपीठे सँल्लिख्य तन्मन्त्राक्षरसङ्ख्यया।
आदाय करवीरस्य पुष्पाण्यथ समुच्चरेत् ॥२३६॥
प्रत्यक्षरं च तैः पुष्पैः शतवारं हनेदिति।
उच्चरन् वह्निबीजं च बोधनं त्वेतदुच्यते ॥२३७॥

बोधन संस्कार—भोजपत्र पर अलग-अलग मन्त्राक्षरों को लिखकर प्रत्येक अक्षर को १०० बार १०० कनैल या अन्य किसी फूल से ताड़ित करे। ताड़न के समय अग्निबीज 'रं' का उच्चारण करना चाहिये। अर्थात् रं ॐ कहकर १०० बार, 'रं न' कहकर १०० बार, रं मः कह कर १०० बार, 'रं शि' कहकर १०० बार, 'रं वा' कहकर १०० बार एवं 'रं य' कहकर १०० बार फूल से ताड़न करे। इसे ही मन्त्रों का बोधन संस्कार कहते हैं।।२३६-२३७।।

अभिषेकसंस्कारः

प्राग्वत्पीठे च तैर्द्रव्यैः पद्ममष्टदलं लिखेत्।
तत्कर्णिकायां मालत्या लिखेत्कलिकयैकया ॥२३८॥
एकैकार्णन्तु मन्त्रस्य तन्मन्त्राक्षरसङ्ख्यया।
बोधिद्रुपल्लवाँश्चैव गृहीत्वा मन्त्रमुच्चरेत् ॥२३९॥
अभिषिञ्चाम्यमुं मन्त्रं नम इत्यभिषेचयेत्।
नानासुगन्धिनोपेतपल्लवैर्यावदक्षरम् ॥२४०॥
एकमष्टोत्तरशतमभिषेकस्त्वयं मतः।
अभिषेको मन्त्रशुद्धिं कुर्यान्नृणां यथा जलम् ॥२४१॥



अभिषेक संस्कार—पूर्ववत् चौकी पर सफेद कपड़ा बिछाकर श्रीपर्णी, कस्तूरी, कुमकुम आदि से मालती=बेला की कलम या कली से अष्टदल कमल बनावे। प्रत्येक कमलदल पर मन्त्र का एक-एक अक्षर लिखे। पीपल का पत्ता हाथ में लेकर मन्त्राक्षरों की संख्या के बराबर 'अभिषिञ्चाम्यमुं मन्त्रं नमः' कहकर जल

गिरावे। अभिषेक के जल में विविध सुगन्धित द्रव्य, चन्दन, कस्तूरी, कुमकुम, कपूर आदि मिलाकर अभिषेक करे। इस प्रकार का अभिषेक १०८ बार करे। जैसे मनुष्य स्नान करने से शुद्ध हो जाता है, वैसे ही अभिषेक से मन्त्र भी शुद्ध हो जाते है। अष्टदल कमल निम्न प्रकार का होता है—

इस पर 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्र का अभिषेक करने के लिये उपर्युक्त प्रकार से लिखा जायगा और प्रत्येक अक्षर का अभिषेक होगा।।२३८-२४१।।

विमलीकरणसंस्कारः

ज्योतिर्मन्त्रश्चिन्तनीयो मूलाधारोऽग्निमण्डले।
संस्कर्तव्यं मनोस्तस्य दाग्ध्यमेवं विभावयेत्॥२४२॥
आननाख्यः साहजिक आगन्तुः कार्मणः स्मृतः।
योगाख्यो मायिकः प्रोक्तस्तन्मन्त्रे तु मलत्रयम्॥२४३॥
ज्योतिर्मन्त्रेण निर्दग्धमेकमेकं विचिन्तयेत्।
एवं तु विमलो जातः स्वमन्त्र इति चिन्तयेत्॥२४४॥
ज्योतिर्मन्त्रस्तु वेदादिहौमिति द्व्यक्षरो मतः।
विमलीकरणं त्वेतत्प्रयोगं चापि कारयेत्॥२४५॥

विमलीकरण संस्कार—मूलाधार के अग्निमण्डल में ज्योतिर्मन्त्र के द्वारा मन्त्राक्षरों के भस्म होने का चिन्तन मन ही मन करे। आनन, साहजिक, आगन्तु, कार्म्मण, योग, मायिक मन्त्रों में तीन प्रकार की मलिनता होती है। इन मन्त्रों के प्रत्येक वर्णाक्षर को ज्योतिर्मन्त्र से भस्म होने का चिन्तन करे। तदनन्तर इस प्रकार चिन्तन करे कि 'मेरा मन्त्र अब विमल अर्थात् निर्मल हो गया।' ज्योतिर्मन्त्र में 'ॐ' और 'हौं'—ये दो अक्षर होते हैं। विमलीकरण में इन्हीं का प्रयोग किया जाता है।।२४२-२४५।।

आप्यायनसंस्कारः

प्राग्वत्पीठे कुङ्कुमादिद्रव्यैर्मन्त्रं विलेखयेत्।
ताम्रादिपात्रे कर्पूरवासितेन जलेन च॥२४६॥
शुद्धेनापूर्य विलिखेन्मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतम्।
अभिमन्त्र्य जलं तेन मन्त्रेण कुशबिन्दुभिः॥२४७॥
प्रत्यक्षरं प्रोक्षयेत्त्रिरेतदाप्यायनं स्मृतम्।
पुरश्चर्याक्लेशितानां समावर्त्तनवत्त्विदम्॥२४८॥

आप्यायन संस्कार—पूर्ववत् पीठ पर कुमकुमादि से मन्त्र को लिखे। एक ताँबे का पात्र में कपूर आदि से सुगन्धित शुद्ध जल को १०८ बार मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उस जल से मन्त्र को लिखे। फिर उस अभिमन्त्रित शुद्ध जल में कुशा भिगोकर उसके

बिन्दुओं से मन्त्र के प्रत्येक अक्षर का प्रोक्षण करना चाहिये। इसे ही आप्यायन कहते हैं। पुरश्चरण करने के कारण थके हुए लोगों के लिये किये जाने वाले समावर्त्तन संस्कार के समान ही यह आप्यायन संस्कार भी होता है।।२४६-२४८।।

तर्पणसंस्कारः

कस्तूर्याद्यैस्ताम्रपात्रे मध्ये मन्त्रं विलेखयेत्।
पात्रान्तरे च कर्पूरगुटिकावासितं जलम् ॥२४९॥
गृहीत्वा चार्घ्यपात्रेण पठन्मन्त्रमिमं मनुम्।
तर्पयामि नमोऽन्तेन तर्पयेदिति तर्पणम् ॥२५०॥

तर्पण संस्कार—ताम्रपात्र के मध्य में कस्तूरी आदि से मन्त्र को लिखे। एक दूसरे पात्र में कपूर से सुगन्धित जल लेकर अर्घ्यपात्र के द्वारा 'मन्त्रं तर्पयामि नमः' कहते हुए तर्पण करे। इसे ही तर्पण संस्कार कहते हैं।।२४९-२५०।।

दीपनसंस्कारः

ॐ ह्रींश्रींपूर्वकं मन्त्रं जपेदष्टोत्तरं शतम्।
जपेदेतद्दीपनं स्यात् सर्वमन्त्रेष्वपीष्यते ॥२५१॥

दीपन संस्कार—मन्त्र के पहले ॐ ह्रीं श्रीं लगाकर १०८ बार जप करने से मन्त्र दीप्त होते हैं। इसी प्रकार से सभी मन्त्रों को दीप्त किया जाता है और इसे ही दीपन संस्कार कहते हैं।।२५१।।

गोपनसंस्कारः

जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं त्वप्रकाशनम्।
संस्कारा दश सम्प्रोक्ताः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ॥२५२॥

गोपन संस्कार—जप किये जाने वाले मन्त्र को किसी के समक्ष प्रकाशित न करना ही उस मन्त्र का गोपन संस्कार कहलाता है। ये दश संस्कार सभी तन्त्रों में गुप्त रूप से विद्यमान हैं।।२५२।।

एवमेकादश प्रोक्ताः संस्कारा दश पञ्च च।
प्रतिमन्त्रं वक्ष्यमाणा जपो होमश्च तर्पणम् ॥२५३॥
मार्जनं भोजनं चापि द्विजानामिति षोडश।
प्रोक्ता मन्त्रस्य संस्काराः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२५४॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
संस्कारप्रकाशो द्वितीयः ।।२।।

इस प्रकार ग्यारह संस्कारों का वर्णन किया गया। सभी तन्त्रों में प्रत्येक मन्त्रों के पन्द्रह संस्कारों को वर्णन है। सभी तन्त्रों में प्रत्येक मन्त्र का जप, हवन, तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मण-भोजन मिलाकर कुल सोलह संस्कारों को कहा गया है। इस प्रकार मन्त्रों के संस्कारों का विवेचन किया गया; अब आप लोग इसके बाद क्या सुनना चाहते हैं?।।२५३-२५४।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत
'संस्कार' नामक द्वितीय प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ

अथ तृतीयः प्रकाशः

(दीक्षाप्रकाशः)

वाम-दक्षिणमार्गे कथं दीक्षाग्रहणमिति देवीप्रश्नः

श्रीदेव्युवाच

वाममार्गे कथं दीक्षा दक्षिणे च कथं भवेत्।
किं तत्रावश्यकं कर्म चेति मे निर्णयं वद ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा—दीक्षा वाम मार्ग में किस प्रकार से होती है और दक्षिण मार्ग में किस प्रकार से? उनमें आवश्यक कर्म कौन-कौन से होते हैं? इनके सम्बन्ध में मुझसे अपना निर्णय सुनाने की कृपा करें।।१।।

दीक्षाविधिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
दीक्षाविधिं पञ्चविधं तद्राज्ञामुत्तमोत्तमम् ॥२॥
उत्तमं महदाद्यानां सामान्यानां तु मध्यमम्।
ब्राह्मणानामल्पमुक्तं यतीनामपि चाल्पकम् ॥३॥
तस्मादादौ प्रवक्ष्यामि तुभ्यं यच्चोत्तमोत्तमम्।
यस्मिञ्ज्ञाते चोत्तमादिभेदानां विषयो भवेत् ॥४॥

श्री शिव ने कहा—हे देवि! सभी तन्त्रों में गुप्त दीक्षाविधि को मैं कहता हूँ। यह दीक्षा समस्त तन्त्रों में पाँच प्रकार की कही गई है—उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम, अल्प एवं अत्यल्प। इनमें से उत्तमोत्तम दीक्षा राजाओं के लिये, महदादि के लिये उत्तम दीक्षा, सामान्यों के लिये मध्यम दीक्षा, ब्राह्मणों के लिये अल्प दीक्षा एवं संन्यासियों के लिये अत्यल्प दीक्षा का विधान बताया गया है। इसलिये सर्वप्रथम प्रथम स्थान पर पठित जो उत्तमोत्तम दीक्षा है, उसका वर्णन मैं करता हूँ; क्योंकि इसका ज्ञान प्राप्त हो जाने पर उत्तम आदि भेद के विषय भी ज्ञात हो जाते हैं।।२-४।।

दीक्षाविधौ कुण्डमण्डपादिविचारः

तत्रादौ मण्डपं कुर्यादुत्तमोत्तमकर्मणि।
स्थलादर्काङ्गुलोच्छ्रायं मण्डपस्थलमीरितम् ॥५॥

भूमिस्तु खननाच्छोध्या स्वेष्टकुण्डादितस्त्वधः ।
अस्थिकीटतुषाङ्गारमलहीनं शुभावहम् ॥६॥
अन्यथा तां मृदं त्यक्त्वा पूरयेच्छुभया मृदा ।
ग्रामाद्बहिःस्थया तत्र विप्राद्यैश्च स्ववर्णया ॥७॥

मण्डप-निर्माण—उत्तमोत्तम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ दीक्षा में सबसे पहले मण्डप का निर्माण करना होता है। मण्डप-स्थल की भूमि को धरातल से १२ अंगुल ऊँची होनी चाहिये। जिस स्थान पर इष्ट कुण्ड खोदना हो, उस भूमि को शुद्ध एवं श्रेष्ठ होना चाहिये। उसमें हड्डी, कीड़ा, भूसी, अंगार आदि नहीं होना चाहिये। भूमि को गन्दगी-रहित एवं शुभ होना चाहिये।

जिस भूमि में उपर्युक्त दुर्गुण हों, उसका परित्याग करके शुभ भूमि को ढूँढ़ना चाहिये। गाँव के बाहर उस भूमि का चयन करे, जो ब्राह्मण के लिये ब्राह्मण वर्ण की, क्षत्रियों के लिये क्षत्रिय वर्ण की, वैश्यों के लिये वैश्य वर्ण की एवं शूद्रों के लिये शूद्र वर्ण की हो। ब्राह्मणी भूमि का वर्ण श्वेत, क्षत्रिया भूमि का वर्ण लाल, वैश्या भूमि का वर्ण पीला और शूद्रा भूमि का वर्ण काला होता है।।५-७।।

तत्र तां सुसमां कृत्वा विस्तीर्णे भाजने जलम् ।
अष्टांशेन सुरेख्या तत्पूरयित्वा प्रचालयेत् ॥८॥
तत्पात्रं यत्र लेख्याया जलमूर्द्ध्वं समागतम् ।
तत्पूरयेद्वा यत्रोनं निम्नयेत्तत्स्थलं बुधः ॥९॥

उस भूमि को समतल करे। भूमि को समतल करने की विधि यह होगी कि एक बड़ी थाली में अष्टांश जल भरे। जल के स्तर तक एक रेखा खींच करके उस थाली को चारो तरफ मण्डप-स्थल पर रखे। जिस स्थान पर थाली का जल जिस दिशा में रेखा से ऊपर उठे, वहाँ मिट्टी डालकर उसे बराबर करे; क्योंकि उधर की भूमि नीची होती है।।८-९।।

विशेष—जिस समय यह ग्रन्थ लिखा गया होगा, उस समय स्प्रिट लेवल का प्रचलन नहीं था, इसलिये थाली में जल रखकर भूमि के ऊँच-नीच का ज्ञान किया जाता था। वर्त्तमान में स्प्रिट लेवल की सहायता से भूमि को समतल बनाने का कार्य सरलता-पूर्वक किया जा सकता है।

एवं समीकृतायां तु भूमौ दिक्साधनं चरेत् ।
सूत्रकर्कटकीलानि गृहीत्वा वै निशान्तरे ॥१०॥
आद्यन्तरन्ध्रसंयुक्ता नलिका ध्रुववेधिका ।
याम्योत्तराशा तन्मध्ये केन्द्राद्वृत्तं समालिखेत् ॥११॥

लेखां ततो वृत्तमध्ये तेन कर्कटकेन तु।
धनुष्कुर्यात्ततश्चापं धनुष्कुर्यात्ततः पुनः ॥१२॥
एवं चापानि षट् तत्र पद्मं भवति षड्दलम्।

इस प्रकार से समतल की गयी भूमि में दिक्साधन करे। इसके लिये रात में धागा, वृत्त और काँटी (कील) लेकर यज्ञ-स्थल पर जाय। कील गाड़ कर धागे के आदि और अन्त के छोर मिलाकर कील में फँसाकर उसे ध्रुवतारा की तरफ ताने। इससे उत्तर दिशा का ज्ञान हो जाता है। फिर उस सूत्र के मध्य में कील गाड़ कर उस वृत्त में छः बार धनुष एवं चाप की आकृति बनावे। ऐसा करने से षड्दल पद्म का स्वरूप बन जाता है।।१०-१२।।

सौम्ये याम्ये त्रयं कृत्वा दलानां मध्यदेशतः ॥१३॥
दीर्घा रेखा कृता सा तु भवेत्पूर्वापरा त्रिधा।
याम्यपश्चिमयोः सौम्यपूर्वयोरुपरिस्थयोः॥१४॥
चापयोरूद्ध्वंगं सूत्रमीशानी राक्षसी भवेत्।
अन्ययोश्चापयोरेवमाग्नेयी वायवी भवेत् ॥१५॥

तीन दल उत्तर में और तीन दल दक्षिण में वृत्तकेन्द्र से बनावे। वृत्तमध्य से दीर्घ रेखा खींचे, जो पूरब से पश्चिम की ओर लम्बी हो। यह रेखा तीन भागों में विभक्त होती है—दक्षिण-पश्चिम, उत्तर-पूर्व और उपर। जो रेखा चाप के बीचो-बीच ऊपर की ओर जाती है, वह ईशान कोण होता है; जो नीचे की ओर जाती है, वह नैर्ऋत्य कोण होता है। दोनों चापों के समीप से जो रेखा जाती है, उससे अग्नि और वायुकोण निश्चित किये जाते हैं।।१३-१५।।

विदिक्संस्थानि सूत्राणि समान्येव हि वृत्ततः।
यथेष्टं बहिरानीय निखनेत्तत्र कीलकान् ॥१६॥
बद्धं चतुर्णां कीलानां मस्तके दृढसूत्रकम्।
समकर्णं दिगन्तं तच्छुब्धं स्याच्चतुरस्रकम् ॥१७॥
गणेशं पूजयित्वादौ पुण्याहं वाचयेत्सुधीः।
ततः पञ्चनिनादैश्च मण्डपं रचयेच्छुभम् ॥१८॥

चारो कोनों में कील गाड़े, जो कि वृत्त की दिशा-विदिशा में वृत्त के बाहर हों। चारो कीलों के शिरे पर समकर्ण सूत्र बाँधे। इससे एक समकोण चतुर्भुज निर्मित हो जाता है। उसमें सबसे पहले गणेश का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् विद्वान् लोगों को पुण्याहवाचन करना चाहिये। तदनन्तर पाँच बार शङ्ख बजाकर शुभ मण्डप की रचना करनी चाहिये।।१६-१८।।

मण्डपभेदास्तन्निर्माणञ्च

मण्डपं कुलदीक्षाया कुर्याद्विंशतिहस्तकम्।
मद्यमांसपुरन्ध्रीणां समावेशो यथा भवेत्॥१९॥

मण्डप के प्रकार और निर्माण—कुलदीक्षा के लिये जो मण्डप बनता है, उसकी लम्बाई-चौड़ाई बीस हाथों की होती है। जिससे कि उसमें मद्य, मांस और कुलनायिकाओं का समावेश हो सके।।१९।।

मण्डपोऽष्टादशकरः सिद्धान्ते वाममार्गके।
अल्पत्वात्तत्र कुण्डानामधिकेऽपि सपञ्चके॥२०॥

कम कुण्ड वाले होने के कारण वाममार्गी दीक्षा के लिये अट्ठारह हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप बनता है। इसमें अधिक से अधिक पाँच कुण्ड बनते हैं।।२०।।

वैदिके बहुसामग्र्यां नवकुण्डे तु षोडश।
कुण्डाल्पतायां सामग्र्यामल्पायां वेदहस्तकः॥२१॥

वैदिकी दीक्षा में सामग्री की अधिकता के कारण सोलह हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप बनता है; साथ ही इसमें कुण्डों की संख्या भी नव होती है। सामग्री की न्यूनता एवं कुण्डों में भी न्यूनता रहने पर चार हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप भी बनता है।।२१।।

दक्षिणे बहुसामग्र्यां सूर्यहस्तस्तु मण्डपः।
अल्पायां दशहस्तः स्यान्नवहस्तः सदा विशान्॥२२॥
शूद्राणां सप्तहस्तः स्यात्सङ्कराणां च पञ्च च।
प्रोक्तं मानं मण्डपानां सर्वतन्त्रेषु गोपितम्॥२३॥

दक्षिणमार्गी दीक्षा में सामग्रियाँ अधिक रहती हैं, इसलिये बारह हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप बनता है। जहाँ सामग्री अल्प होती है, वहाँ दश हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप बनता है।

इसी प्रकार वैश्यों का मण्डप नव हाथ लम्बा-चौड़ा होता है। शूद्रों का मण्डप सात हाथ का और वर्णसंकरों का मण्डप पाँच हाथ का बनता है। मण्डपों का यह प्रमाण समस्त तन्त्रों में गुप्त है।।२२-२३।।

प्रोक्ता नानाविधा हस्तास्तन्निर्णयमथो शृणु।
यस्मिन्देशे च काले च समुत्पन्ना यथा यवाः॥२४॥
तेषामष्टोदराणां स्यादङ्गुलं तद्द्विजन्मनाम्।
सप्तोदरैस्तु शूद्राणां सङ्करादौ तथा रसैः॥२५॥

इस प्रकार नानाविध हाथों का वर्णन किया गया। अब हस्तमान का निर्णय सुनो। जिस देश और काल में जिस प्रकार का यव उत्पन्न होता है, उस आठ यव के माप

के बराबर एक अंगुल का मान द्विजों के लिये होता है। सात यव का एक अंगुल मान शूद्रों का और छः यव का अंगुल वर्णसंकरों के लिये माना जाता है।।२४-२५।।

अवैदिकस्य विप्रादेरेतत्सङ्ख्यार्द्धशालिभिः ।
यत्र कर्ता स्वयं तत्र मानमेतदतोऽन्यथा ॥२६॥

अवैदिकों के लिये विप्रों की संख्या के आधे यव का मान होता है अर्थात् विप्रों के लिये आठ यव का एक अंगुल होता है तो अवैदिकों के लिये चार यव का एक अंगुल होता है। जहाँ कर्त्ता स्वयं होता है, वहाँ यह मान होता है; अन्यथा दूसरे प्रकार का मान ग्रहण किया जाता है।।२६।।

आचार्यदक्षिणकरे मध्यमाङ्गुलिमध्यगम् ।
पर्वणोरन्तरं दीर्घमात्राङ्गुलमुदाहृतम् ॥२७॥
उच्छ्रायः प्रतिमायाश्च प्रासादादेश्च निर्मितः ।
वेदिकापीठशिबिकारथाद्येतत्प्रमाणतः ॥२८॥

आचार्य के दाँयें हाथ की मध्यमा के मध्य पर्व के बराबर एक अंगुल का मान होता है। प्रतिमाओं की ऊँचाई, गृह-निर्माण, वेदिका-पीठ, पालकी और रथ-निर्माण में यही मान ग्राह्य होता है।।२७-२८।।

विनाङ्गुष्ठेन शेषाभिर्मुष्टिरङ्गुलिभिः कृतः ।
चतुर्द्धा विभजेदेको भागो मुष्ट्यङ्गुलं तु तत् ॥२९॥
होमाङ्गानि स्रुवादीनि कुण्डस्थण्डिलवेदिकाः ।
यज्ञोपवीतमुञ्जादि कुर्यान्मुष्ट्यङ्गुलेन तु ॥३०॥

अंगूठे को छोड़कर शेष चार अंगुलियों से मुट्ठी बाँधने पर उस मुट्ठी के मान को चार चार भाग में विभाजित करने पर एक अंगुल का मान ज्ञात होता है। हवन में उपयोगी उपकरणों; जैसे—स्रुव आदि, कुण्ड, स्थण्डिल, वेदी, यज्ञोपवीत, मुञ्ज आदि के निर्माण में उक्त मुष्टि अंगुल का मान ग्राह्य होता है।।२९-३०।।

यं कञ्चित्पौरुषायामं विभज्य दशधा पुनः ।
एकं द्वादशभागन्तु कृत्वा तेष्वेकमङ्गुलम् ॥३१॥
देहलब्धाङ्गुलं मानं जानीयात्तस्य तत्पुनः ।
एभिश्चतुर्विंशतिभिर्हस्तः स्यादङ्गुलैः पुनः ॥३२॥

पुरुष की लम्बाई का दश भाग करके फिर उसके एक भाग को बारह भाग में विभक्त करने पर भी एक अंगुल का मान होता है। देहलब्ध अंगुल मान को जानकर एक हाथ का मान निकालना चाहिये, ऐसे चौबीस अंगुल के बराबर एक हाथ का मान होता है।।३१-३२।।

अनेन प्रतिमाङ्गानां मानमुन्मानमेव च।
नराणां चापि नारीणां कुर्याद्धोप्यं प्रकाशितम् ॥३३॥

इसी मान का प्रयोग नारी या पुरुष की प्रतिमा के निर्माण में किया जाता है। इसी मान से प्रतिमा के अंगों और रूप को भी प्रकाशित किया जाता है।।३३।।

चतुर्दशकरं कोटिहोमे सम्पत्तिसंयुते।
अन्यथा द्वादशकरं लक्षहोमेषु दिक्करम् ॥३४॥

उपर्युक्त मान से ही चौदह हाथ का मण्डप कोटि होम के लिये बनाया जाता है; अन्यथा बारह हाथों का मण्डप बनाया जाता है। लक्ष होम के लिये दश हाथ का मण्डप बनाया जाता है।।३४।।

मण्डपं नवधा कृत्वा मध्ये भागेऽस्य वेदिका।
स्तम्भास्तु वेदिकाकोणे मण्डपार्धोच्छ्रिता बहिः ॥३५॥

मण्डप को नव भागों में बाँटकर मध्य भाग में वेदी बनायी जाती है। वेदिका के बाहर के चारो कोणों में स्तम्भ गाड़े जाते हैं, जो कि मण्डप की छाजनी से ऊपर निकले होते हैं।।३५।।

पञ्चमांशं न्यसेद् भूमौ पुष्टतांऽऽशांशसूत्रतः।
मस्तके कलशाकारं तद्दशांशेन कारयेत् ॥३६॥

स्तम्भ का पाँचवाँ भाग जमीन में गाड़ना चाहिये। यह अंशांश धागे से निकालना चाहिये। स्तम्भ का दशवाँ भाग उसके मस्तक पर कलशाकार होना चाहिये।।३६।।

स्वायामोच्चा भवेद्वेदी नवकाष्ठोत्थसन्धिषु।
मण्डपस्य तृतीयांशदीर्घान् स्तम्भान् सुविन्यसेत् ॥३७॥

अपने हाथ से एक हाथ ऊँची वेदी होती है। नयी लकड़ी की सन्धि से स्तम्भ बनाना चाहिये। मण्डप के तीसरे अंश के बराबर स्तम्भ बनाना चाहिये।।३७।।

द्वादशैवं तु पञ्चांशभूमौ कूटं दशांशतः।
मध्यस्तम्भस्थितं कूटं मृदङ्गाभं प्रकल्पयेत् ॥३८॥
बाह्यस्तम्भार्धतो देया वलयो द्वादशैव हि।

कुल बारह स्तम्भ मण्डप के बाहरी भाग में लगते हैं। इन स्तम्भों का पाँचवाँ अंश भूमि में गाड़ना चाहिये। कूट दशांश होना चाहिये। मण्डप के मध्य स्थित स्तम्भों का शिखर मृदंगाकार होना चाहिये।।३८।।

दक्षदीक्षाविधौ पद्मनिभं कूटं तु कारयेत् ॥३९॥

बाहरी स्तम्भों के आधे भाग पर बारह वलय देना चाहिये। दक्षिणमार्गी दीक्षा में स्तम्भों का शिखर कमल के समान बनाना चाहिये।।३९।।

त्रिधारं वामदीक्षायां शङ्खाभं वैष्णवे मुखे।
चतुरस्रा चतुष्कोणा वेदी सर्वफलप्रदा ।।४०।।

वाममार्गी दीक्षा में स्तम्भ तीन पहलों का होना चाहिये। वैष्णव दीक्षा में स्तम्भ के शिखर का आकार शंख के समान होना चाहिये। चारभुजी चतुष्कोणीय वेदी समस्त फलों को देने वाली होती है।।४०।।

तथाङ्गादिप्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसन्निभा।
राज्ञां स्यात्सर्वतोभद्रा चतुर्भद्राभिषेचने ।।४१।।
विवाहे श्रीधरा वेदी विंशत्यस्रसमन्विता।
वाममार्गेण दीक्षायां गुप्ता त्र्यस्रा तु वेदिका ।।४२।।

इसी प्रकार अंगादि की प्रतिष्ठा में बनने वाली वेदी कमल के समान होती है। राजाओं के लिये सर्वतोभद्र वेदी होती है एवं अभिषेक में चतुर्भद्रा वेदी होती है। श्रीधरा वेदी विवाह में बनती है, जिसमें बीस कोष्ठ होते हैं। वाममार्गी दीक्षा में त्रिकोणाकार अथवा गुप्त वेदी बनाई जाती है।।४१-४२।।

स्तम्भानामुपरि स्थाप्यान्यव्रणानि सजूंषि च।
एकजातीनि पत्राणि बध्वा स्तम्भगले न्यसेत् ।।४३।।
नारिकेलदलैर्वंशैश्छादयेत्तत्समन्ततः ।
झञ्झामारुतवृष्ट्यादिभयं न स्याद्यथा तथा ।।४४।।
पूर्वोक्तसंसाधितदिक्षु कुर्याद् द्वाराणि चत्वारि तु मण्डपस्य।
पञ्चांशमाना खलु देहली स्याद् द्विधोच्छ्रिते तत्र कपाटशाखे ।।४५।।
वाममार्गे द्वारमिदं दक्षिणे श्रेष्ठमण्डपे।
कुर्यद्देहलिकां रम्यां साष्टाङ्गुलकरद्वयाम् ।।४६।।
मध्यमे मण्डपे कुर्यात्सार्द्धाङ्गुलकरद्वयम् ।।४७।।

स्तम्भों के ऊपर व्रणरहित सजूष की स्थापना करली चाहिये। स्तम्भ के गले में एक जाति के पल्लवों को बाँधना चाहिये। बाँस और नारियल के पत्तों से मण्डप को चारो ओर से आच्छादित करना चाहिये, जिससे तेज हवा, वृष्टि आदि का भय उपस्थित होने पर बचाव हो सके। पूर्वोक्त संसाधित मण्डप की चारो दिशाओं में एक-एक द्वार बनाना चाहिये, जिससे उसमें चार द्वार बन जायँ। उन द्वारों में पाँच अंश की देहली और उससे दुगुना ऊँचा चौखट होना चाहिये। यह द्वार वाममार्गियों के लिये कहा गया

है। दक्षिणमार्गियों के लिये बनने वाले उत्तम मण्डप में दो हाथ आठ अंगुल की सुन्दर देहली बनानी चाहिये। यह दक्षिण मार्ग का द्वार होता है। मध्यम मण्डप में द्वार दो हाथ डेढ़ अंगुल का होता है।।४३-४७।।

हीने करद्वयं तस्य चोच्चता द्विगुणा मता।
पूर्वद्वाराद्बहिर्हस्तमात्रं त्यक्त्वा तु वेश्मतः ॥४८॥
श्रेष्ठे मध्ये कनिष्ठे तु सप्तषट्पञ्चहस्तकम्।
उच्छ्रितं फलकं कुर्याद्विस्तृतं तद्गुणाङ्गुलम् ॥४९॥
तथा पञ्चाङ्गुलं स्थूलं विषमं चतुरस्रकम्।
वितस्त्या चोन्नतशिखं द्वारस्योभयपार्श्वयोः ॥५०॥

हीन मण्डप में द्वार की चौड़ाई दो हाथ और ऊँचाई चार हाथ की होती हैं। पूर्व द्वार के बाहर एक हाथ जगह वेश्म के लिये छोड़ना चाहिये। वेश्म प्रवेशद्वार के बाहर रहने वाले खाली स्थान को कहते हैं। श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ मण्डप में फलक की ऊँचाई क्रमशः सात, छः और पाँच हाथ होती है। इसका विस्तार ऊँचाई के दुगुना होता है। द्वार के दोनों ओर पाँच अंगुल मोटा एवं चौकोर एक बीत्ता ऊँचा शिखर लगाना चाहिये।।४८-५०।।

स्थापयेत्फलकौ द्वौ तु श्रेष्ठे मध्ये कनिष्ठिके।
मण्डपे तौ दीर्घतायां क्रमात्सार्द्धकरद्वयम् ॥५१॥
सपादद्वितयं युग्महस्तं पञ्चाङ्गकं भुवि।
निखनेदग्निमीडेति गायत्र्या पार्श्वयोर्द्वयोः ॥५२॥

श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ मण्डपों में दो फलकों की स्थापना करनी चाहिये, जिसकी लम्बाई क्रमशः ढाई; सवा दो और दो हाथों की होनी चाहिये। अग्निमीड और गायत्री मन्त्र बोलते हुए जमीन में गड्ढा खोदकर दोनों बगल लकड़ी का पंचाङ्ग गाड़ना चाहिये। पंचाङ्ग में जड़, धड़, टहनी, फूल और फल आते हैं।।५१-५२।।

तत्सजातीयकाष्ठेन तावद्विस्तारगर्भकम्।
चतुरस्रं तु विषमं द्वयोरुपरि कीलयेत् ॥५३॥
दर्भमालाञ्च बध्नीयात्पूर्वद्वारे विधिस्त्वयम्।
एवं तु दक्षिणे द्वारे तद्द्वारं प्लक्षकाष्ठजम् ॥५४॥
इषे त्वेति न्यसेन्मालां बन्धयेत्पूर्ववत्ततः।
औदुम्बरमयं कुर्यात्पश्चिमद्वारतस्त्विदम् ॥५५॥

जिस वृक्ष की लकड़ी का पञ्चाङ्ग होता है, उसी लकड़ी का विषम चतुरस्र आकृति द्वार के माप का बनाकर द्वार के ऊपर बाँध देना चाहिये। पूर्वद्वार पर कुशों की माला

बाँधनी चाहिये। इसी प्रकार पाकड़ की लकड़ी से बने दक्षिण द्वार को भी 'इषे त्वोर्जे त्वा' मन्त्र से माला से सुसज्जित करना चाहिये। गूलर की लकड़ी से निर्मित पश्चिम द्वार में गूलर की लकड़ियों से निर्मित सामान लगाना चाहिये।।५३-५५।।

अग्न आयाहि मन्त्रेण प्लक्षजं वैदिके मखे।
प्राग्वदेवं प्रकुर्वीत वटवृक्षमयं तथा ॥५६॥
शन्नो देवीति मन्त्रेण सौम्यदिग्द्वारतो न्यसेत्।
तेषामुपरि तिर्यक्स्थकाष्ठानां मध्यतो बिलम् ॥५७॥
कृत्वा तोरणजातीयकाष्ठेन रचयेच्छुभम्।

वैदिक यज्ञ में पाकड़ की लकड़ी लगाते समय 'अग्न आयाहिं' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। पूर्ववत् उत्तर द्वार में वट वृक्ष की लकड़ी का उपयोग करना चाहिये। इस द्वार पर 'शं नो देवी' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। इसके ऊपर अन्य काष्ठों की तिरछी लकड़ी लगानी चाहिये। जातीय काष्ठों के द्वारा सुन्दर तोरण बनाना चाहिये। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट शैव यागों में त्रिशूल बनाना चाहिये।।५६-५७।।

श्रेष्ठमध्यजघन्येषु शैवयागे त्रिशूलकम् ॥५८॥
विश्वेशाङ्गाङ्गुलं दीर्घं तच्चतुर्थांशविस्तृतम्।
वैष्णवे द्वादशांशेन शङ्खचक्रगदाम्बुजम् ॥५९॥

शैव याग में त्रिशूल की लम्बाई ११ अंगुल और विस्तार ३ अंगुल होना चाहिये। वैष्णव याग में शंख, चक्र, गदा, पद्म द्वादशांश होते हैं।।५८-५९।।

प्रागादिक्रमयोगेन न्यसेत्सौरोऽपि वैष्णवः।
ऋजु वै मध्यमं शृङ्गं किञ्चिद्वक्रन्तु पार्श्वयोः ॥६०॥
एवं शूलो गणपतिः शिवाद्याः शिववन्मताः।
ततस्तु मण्डपस्याग्रे भूम्यूर्द्ध्वदशहस्तकः ॥६१॥
भूमौ करद्वये वंशः स्वच्छवस्त्रावगुण्ठितः।
विस्तृतश्चैकहस्तेन दीर्घः पञ्चकरैर्ध्वजः ॥६२॥

वैष्णव तथा सौर याग में भी पूर्व में शंख, दक्षिण में चक्र, पश्चिम में गदा और उत्तर में कमल लगाना चाहिये। सीधा मध्यम शृंग कुछ तिरछा करके गाणपत्य और शिवा आदि देवी के यागमण्डप के बगल में लगाना चाहिये। इन्हें शैव याग के समान ही लगाने का विधान है। तब मण्डप के आगे भूमि से ऊपर १० हाथ और भूमि के नीचे २ हाथ बाँस गाड़कर उसे स्वच्छ वस्त्र से वेष्टित कर देना चाहिये। उस बाँस में एक हाथ चौड़ा और पाँच हाथ लम्बा झण्डा लगाना चाहिये।।६०-६२।।

मन्त्रदेवं लिखेत्तत्र सायुधञ्च सवाहनम्।
चामरसंयुक्तं देवतावर्णवर्णकम् ॥६३॥

झण्डे में मन्त्र और देवता का अंकन करना चाहिये; साथ ही उनके वाहन और आयुध का भी अंकन करना चाहिये एवं उसे घण्टा तथा चामर से संयुक्त करना चाहिये। यह ध्वज देवता के वर्ण का होना चाहिये।।६३।।

स्थापयित्वा ध्वजं पश्चाद्दशदिक्षु प्रकल्पयेत्।
दिगीशानां पताकाश्च ध्वजस्यार्धप्रमाणतः ॥६४॥

ध्वज को स्थापित करने के पश्चात् मण्डप में दश दिशाओं में का निर्धारण कर तत्तत् दिशाओं में तत्तत् दिक्पालों की पताका लगानी चाहिये। इन पताकाओं की लम्बाई-चौड़ाई धर्मध्वज की आधी होनी चाहिये।।६४।।

तत्र वेदोक्तमन्त्रेण तत्तद्वर्णाश्च तद्दिशि।
त्रातारमिन्द्रमिति च पीतवर्णा हरेर्दिशि ॥६५॥

पूर्व दिशा में लगाई जाने वाली पताका का रंग पीला होता है। वैदिक मन्त्र 'त्रातारमिन्द्र' का उच्चारण करके यह पताका स्थापित करनी चाहिये।।६५।।

आग्नेय्यां पिङ्गला त्वन्नो अग्नेर्वरुणमन्त्रतः।
सुगन्नः पन्थामनुना कृष्णवर्णा यमे स्मृता ॥६६॥

अग्निकोण में पिङ्गल वर्ण की पताका 'त्वन्नो अग्ने' वरुण मन्त्र से स्थापित करनी चाहिये। दक्षिण दिशा में 'सुगन्नः पन्था' मन्त्र से काले रंग की पताका स्थापित करनी चाहिये।।६६।।

असुन्वन्तेतिमनुना नैर्ऋत्यां धूम्रवर्णिका।
तत्त्वायामि ब्रह्मणेति वारुण्यां सितवर्णिका ॥६७॥

नैर्ऋत्य कोण में 'असुन्वन्ते' मन्त्र से धूम्र वर्ण की पताका लगानी चाहिये। पश्चिम दिशा में स्थापित की जाने वाली पताका का रंग श्वेत होता है, इसे 'तत्त्वायामि ब्रह्मणा' मन्त्र से स्थापित करना चाहिये।।६७।।

आनोनियुद्भिरिति च वायव्यां हरिता भवेत्।
वयं सोमव्रत इति सौम्यायां चन्द्रवर्णिका ॥६८॥

वायव्य कोण में पताका का रंग हरा होता है, इसे 'आनो नियुद्भि' वैदिक मन्त्र से स्थापित करना चाहिये। उत्तर दिशा में पताका का रंग चाँदनी के समान होता है। 'वयं सोमव्रत' वैदिक मन्त्र से इस पताका की स्थापना की जाती है।।६८।।

तमीशानमितीशान्यामतिश्वेता पताकिका ।
ईशानपूर्वयोर्मध्ये शेषं रक्तपताकिनम् ।।६९।।
तोयनैर्ऋत्ययोर्मध्ये विधिं रक्तपताकिनम् ।

ईशान कोण में पताका का रंग अति श्वेत होता है। 'तमीशान' वैदिक मन्त्र से इसकी स्थापना की जाती है। ईशान-पूर्व के मध्य में स्थापित की जाने वाली शेष की पताका का रंग लाल होता है। पश्चिम और नैर्ऋत्य के मध्य में ब्रह्मा की स्थापित पताका का रंग लाल होता है।।६९।।

वाममार्गे वेदमन्त्रो वज्रपातसमः स्मृतः ।।७०।।
ब्राह्मणानां वाममार्गो नरकायैव जायते ।
मन्त्राभावे नाममन्त्रान् प्रणवाद्यान् हृदन्तकान् ।।७१।।
पठेद्दक्षिणमार्गे तु वामे प्रणववर्जितान् ।

वाममार्ग में वेदमन्त्र वज्रपात के समान माने जाते हैं। वाममार्गी ब्राह्मण नरक-गामी होते हैं, यदि वे वाममार्गी पूजा में वैदिक मन्त्र प्रयुक्त करते हैं। वैदिक मन्त्र के अभाव में दक्षिणमार्ग में देवता के नाममन्त्र के पहले 'ॐ' और अन्त में 'ह्रीं' लगाकर पूजन करना चाहिये; किन्तु वाममार्ग में प्रणव नहीं लगाना चाहिये।।७०-७१।।

मण्डपोपरि बध्नीयादतिश्वेतं वितानकम् ।।७२।।
अलङ्कुर्यात्पुष्पमालादिभिरेवं तु वेष्टयेत् ।
आम्राश्वत्थदलोत्पन्नयुक्तया दीर्घमालया ।।७३।।
स्तम्भान् दुकूलैः संवेष्ट्य मध्ये कुर्याच्च वेदिकाम् ।

मण्डप के अन्दर छत में अत्यन्त श्वेत वितान-चन्दोवा तानना चाहिये। यज्ञ-मण्डप को पूर्णतः सुसज्जित करना चाहिये। स्तम्भों में फूल-माला लपेटना चाहिये। आम्रपल्लव और पीपल के पत्ते की लम्बी माला बनाकर स्तम्भ से स्तम्भ तक बाँधनी चाहिये। तदनन्तर उस मण्डप के मध्य में वेदी बनानी चाहिये।।७२-७३।।

वेदीनिर्माणम्

इष्टिकाभिरपक्वाभिर्हस्तविस्तृतपिण्डिकाम् ।।७४।।
मण्डपायामरुद्रांशनवसप्तेषुरामकैः ।
अंशैः समुन्नतां वापि तारतम्यं विलोक्य च ।।७५।।

वेदी का निर्माण—एक हाथ की लम्बाई-चौड़ाई वाली वेदी का निर्माण कच्चे ईंट से करना चाहिये। मण्डप की लम्बाई का ग्यारहवाँ, नवाँ, सातवाँ या तीसरे भाग के बराबर वेदी की ऊँचाई होनी चाहिये अथवा मण्डप से तारतम्य मिलाकर वेदी की ऊँचाई रखनी चाहिये।।७४-७५।।

सामग्र्यादेः समावेशो यथा स्यादिति मण्डपः ।
अयुताहुतिहोमस्तु विधेयः स्थण्डिलोपरि ॥७६॥

सामग्री के अनुपात में मण्डप बनाया जाता है। दश हजार आहुतियों के लिये स्थण्डिल ही पर्याप्त होता है।।७६।।

कुण्डमानम्

एकहस्तमितं कुण्डं दशलक्षावधि स्मृतम् ।
लक्षाणां दशकेनैकं हस्तं हस्तं विवर्द्धयेत् ॥७७॥
दशहस्तकोटिहोमे वैदिकानामितीरितम् ।
मद्यमांसादिहोमस्तु कुण्ड एव विधीयते ॥७८॥
पञ्चाशत्प्रमिते होमे प्रकोष्ठं कृतमुष्टिकम् ।
कुण्डस्य मानं भवति शतेऽरत्निसमं भवेत् ॥७९॥
सहस्रे हस्तमात्रं स्याद्द्विहस्तमयुते मतम् ।
चतुर्हस्तमितं लक्षे षट्करं दशलक्षके ॥८०॥

एक हाथ के कुण्ड में दस लाख आहुतियाँ पड़ती हैं। प्रत्येक दस लाख की आहुति के लिये कुण्का मान एक-एक हाथ बढ़ाना चाहिये। एक करोड़ आहुतियों के लिये दस हाथ का कुण्ड बनाना चाहिये। कुण्ड का यह माप वैदिकों के लिये कहा गया है। मद्य, मांस आदि का हवन भी कुण्ड में ही किया जाता है। पचास आहुतियों के लिये एक मुट्ठी का कुण्ड होता है। एक सौ आहुतियों के लिये बीत्ता भर का कुण्ड बनता है। एक हजार आहुति के लिये एक हाथ का कुण्ड होता है। दश हजार हवन के लिये दो हाथ का कुण्ड होता है। एक लाख हवन के लिये चार हाथ का एवं दस लाख हवन के लिये छः हाथ का कुण्ड बनाया जाता है।।७७-८०।।

कोटिहोमे चाष्टहस्तं कुण्डं वामे विधीयते ।
एककुण्डविधाने तु चतुरस्रं विधीयते ॥८१॥

वाममार्ग में एक करोड़ हवन के लिये आठ हाथ का कुण्ड बनता है। एक कुण्ड के विधान में कुण्ड चतुष्कोण होता है।।८१।।

ब्राह्मणानां विशेषेण स्तम्भने चापि पूर्वगम् ।
नवकुण्डविधाने तु वह्निभागे भगाकृति ॥८२॥
भोगार्थं चापि पुत्रार्थं वामिनां चतुरस्रवत् ।
अर्धचन्द्रनिभं याम्ये वैश्यानां सर्वकर्मणि ॥८३॥

ब्राह्मणों के लिये एवं विशेषकर स्तम्भन कार्य के लिये कुण्ड चतुष्कोण ही बनता

है। नवकुण्डीय विधान में जो कुण्ड अग्निकोण में बनता है, वह योनि के आकार का होता है। भोग और पुत्र-प्राप्ति के लिये वाममार्ग में चतुष्कोण कुण्ड बनता है। वैश्यों के लिये मण्डप की दक्षिण दिशा में सभी कार्यों के लिये अर्द्धचन्द्र की आकृति के समान कुण्ड बनाया जाता है।।८२-८३।।

अन्येषां मारणे प्रोक्तं चतुष्कुण्डेष्वपीष्यते।
त्रिकोणकुण्डं नैर्ऋत्ये रिपुघातकरं स्मृतम् ॥८४॥
विद्वेषकारकं चैतच्छूद्राणाञ्च विशिष्यते।

अन्य कर्मों में मारण कर्म के लिये चतुष्कोण कुण्ड होता है, नैर्ऋत्य कोण में निर्मित त्रिकोण कुण्ड शत्रुघातक होता है; साथ ही यह विद्वेषकारक भी होता है। शूद्रों के लिये विशेषत: इसी प्रकार का कुण्ड बनाया जाता है।।८४।।

वृत्तं मुख्यं क्षत्रियाणां सर्वेषां शाक्तकर्मणि ॥८५॥
पश्चिमायां तु तत्कार्यं बौद्धादीनां च सिद्धिदम्।
षट्कोणमुच्चाय्यति तच्छेदेषु च विशिष्यते ॥८६॥

सभी शाक्त कर्मों में क्षत्रियों के लिये वृत्तकुण्ड मुख्य माना गया है। बौद्धों का सभी कार्यों में पश्चिम में बनाया गया वृत्तकुण्ड सिद्धि प्रदान करने वाला होता है अशुद्धों के सभी कार्य षट्कोण कुण्ड से होते हैं।।८५-८६।।

वायव्यां कारयेत्तच्च सङ्कराणां विशिष्यते।
उदीच्यां पौष्टिके कुण्डं वृत्तिदं तुष्टिदं तथा ॥८७॥
सर्वप्रयोगेष्वनया परप्रीतिकरं स्मृतम्।
अष्टकोणं मुक्तिकरमैशान्यां तद्विधीयते ॥८८॥
कारागृहात्तथा रोगाच्चिन्तादेर्मोक्षमाप्नुयात्।
अष्टकुण्डीविधाने तु क्रमोऽयं नवकुण्डके ॥८९॥

संकर वर्णों के लिये सभी कार्यों में जो कुण्ड बनता है, वह वायव्य कोण में बनता है। उत्तर में निर्मित कुण्ड पुष्टिप्रदायक होता है। वृत्त कुण्ड तुष्टिप्रद होता है। इसके द्वारा दूसरों की प्रीति के लिये समस्त प्रयोग किये जाते हैं। ईशान कोण का निर्मित अष्टकोण कुण्ड मोक्षप्रद होता है। इससे कारागृह से मुक्ति, रोग-निवारण तथा चिन्ता आदि से मुक्ति होती है। यही अष्टकुण्डी विधि है।।८७-८९।।

नवमं चतुरस्रं स्यात्पूर्वेशानदिगन्तरे।
विधाने पञ्चकुण्डीनामीशाने पञ्चमं भवेत् ॥९०॥

नवकुण्डी विधान में ईशान कोण और पूर्व दिशा के मध्य में चतुष्कोण कुण्ड

बनता है। पञ्चकुण्डी विधान में ईशान में चतुष्कोण कुण्ड बनता है।।९०।।

समकुण्डविधाने तु न खातो वैदिके बहिः।
अन्यदेकं पञ्चकोणमभिचारविनाशनम् ॥९१॥

तथान्यत्सप्तकोणञ्च कुण्डं भूतनिकर्त्तनम्।

समकुण्ड विधान में वैदिक विधि में बाहर खात नहीं होता, दूसरे विधान में एक ही पञ्चकोण कुण्ड अभिचार का विनाशक होता है। दूसरे मत से सप्तकोण कुण्ड से भूत-पिशाचों का विनाश होता है।।९१।।

चतुष्कोणकुण्डविधानम्

अथादौ चतुरस्रस्य कुण्डस्य विधिरुच्यते ॥९२॥
नाभियोनिसमायुक्तं श्रेष्ठं कुण्डं त्रिमेखलम्।
द्विमेखलं तु शूद्राणां सङ्करणां कुमेखलम् ॥९३॥



चतुष्कोण कुण्ड—अब सबसे पहले चतुष्कोण कुण्ड बनाने की विधि का वर्णन किया जाता है। नाभि, योनि और तीन मेखलाओं से युक्त चतुष्कोण कुण्ड श्रेष्ठ होता है। शूद्रों के लिये दो मेखला कम कुण्ड और वर्णसंकरों के लिये मेखलाविहीन कुण्ड बनाया जाता है।।९२-९३।।

यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदेव हि।
यावत्कुण्डमिहेष्टं स्यात्तावद्दिक्साधने कृते ॥९४॥

कुण्ड का जितना विस्तार हो, उतना ही गड्ढा खोदना चाहिये। जिस कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई एक हाथ हो, उसकी गहराई भी एक हाथ ही होगी। यही नियम सभी मान के कुण्डों में लागू होता है। दिक्साधन करने के बाद ही जैसा कुण्ड बनाना हो, वैसा बनाया जाता है।।९४।।

चतुरस्रं समं कुर्यात्समकर्णञ्च शिल्पवित्।
एकहस्तस्य यत्कर्णो भुजा तस्य करद्वयी ॥९५।
द्विहस्तस्य तु कर्णस्य त्रिहस्ता भुजसम्मितिः।
चतुर्हस्तादिकेऽप्येवं कुण्डः सर्वत्र भूसमः ॥९६॥

शिल्पज्ञ को चतुष्कोण कुण्ड के दोनों कर्ण बराबर रखने चाहिये। जिस कुण्ड के कर्ण की लम्बाई एक हाथ होती है, उसकी भुजायें दो हाथ की होती हैं। जिस कुण्ड का कर्ण दो हाथ का होता है, उसकी भुजा तीन हाथ की होती है। चार हाथ के कर्ण वाले कुण्ड की भुजायें सम होती हैं।।९५-९६।।

जिनभागसमास्तस्य बहिः कार्यास्तु मेखलाः ।
द्वादशाङ्गुलविस्तारा चोत्सेधा चतुरङ्गुला ॥९७॥
तदूर्ध्वमपरादीर्घाष्टाङ्गुलाष्टाङ्गुलोच्चका ।
चतुर्भिरङ्गुलैर्दीर्घा तावदुच्चा तदर्धतः ॥९८॥

जैसा कुण्ड हो, वैसी ही उसकी मेखला बनती है। पहली मेखला की चौड़ाई बारह अंगुल और ऊँचाई चार अंगुल होती है। पहली मेखला के ऊपर जो दूसरी मेखला बनती है, उसकी चौड़ाई आठ अंगुल और ऊँचाई भी आठ अंगुल ही होती है। उसके ऊपर जो तीसरी मेखला बनती है, उसकी चौड़ाई चार अंगुल और ऊँचाई दो अंगुल होती है।।९७-९८।।

दैर्घ्यात्सूर्याङ्गुला योनिरूर्ध्वांशोना विस्तरेण तु ।
एकाङ्गुलोच्छ्रिता सा तु प्रविष्टाभ्यन्तरे यथा ॥९९॥
कुम्भद्वयसमायुक्ता चाश्वत्थदलवन्मता ।
अङ्गुष्ठमेखलायुक्ता मध्ये बाह्ये धृतिः क्षमा ॥१००॥
योन्यास्तु पश्चिमे भागे मेखलात्रितयाद्बहिः ।

बारह अंगुल लम्बी-चौड़ी योनि बनती है। योनियों की ऊँचाई एक अंगुल होती है। यह कुण्ड में प्रविष्ट के सदृश बनाई जाती है। योनि का आकार पीपल के पत्ते के समान होता है या दो जुड़े घड़े के समान होता है। अंगूठे के बराबर मेखला होती है एवं इसके बीच में और बाहर धृति एवं क्षमा होती है। कुण्ड के पश्चिम भाग में तीनों मेखलाओं के बाहर योनि बनती है।।९९-१००।।

चतुरस्रं भवेत्पीठं कुण्डमष्टांशविस्तृतम् ॥१०१॥
तावद्दीर्घं तथोच्चं च नालं तन्मध्यतो भवेत् ।
योनिमध्ये तु तद्वृत्तं कुण्डषष्ठांशमानतः ॥१०२॥
प्रागग्नियाम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखी ।
शेषा पूर्वमुखा योनिः कुण्डयोनिञ्च वर्जयेत् ॥१०३॥

पीठ कुण्ड का अष्टमांश विस्तृत एवं चौकोर होता है। उतनी ही लम्बाई और ऊँचाई की नाल उसके मध्य में होती है। योनि के मध्य में कुण्ड का षष्ठांश वृत्त बनता है। पूरब, अग्निकोण और दक्षिण वाले कुण्डों की योनि का मुख उत्तर तरफ होता है। शेष कुण्डों में योनि पूर्वमुख होती है।।१०१-१०३।।

कुण्डमध्यस्थकेन्द्रात्तु कुर्यात्कर्कटकेन तु ।
प्रसारितेन व्यासार्कभागतुल्येन तत्परम् ॥१०४॥

षष्ठांशेन तु वृत्तं स्यात्पूर्ववृत्तं तु कर्णिका।
कर्णिकाग्रे बाह्यवृत्ताभ्यन्तरेऽष्टदलानि तु ॥१०५॥
एवं षडङ्गुलोच्चा स्यान्नाभिर्वेदास्रमीरितम्।

कुण्ड के मध्य के केन्द्र से कर्कट के द्वारा कुण्ड के बारहवें अंश के बराबर व्यास पर एक वृत्त बनावे। इस वृत्त के बाहर षष्ठांश दूरी पर दूसरा वृत्त बनावे। पहला वृत्त कर्णिका होता है। कर्णिका और बाहरी वृत्त के मध्य में आठ दल बनावे। इस प्रकार छः अंगुल ऊँची चौकोर नाभि बनती है।।१०४-१०५।।

इष्टस्य चतुरस्रस्य जिनांशो भाग उच्यते ॥१०६॥
सपादैः पञ्चभिर्भागैर्मध्यसूत्रं विवर्धयेत्।
प्राच्यामथ प्रकुर्याच्च चतुर्धा चतुरस्रकम् ॥१०७॥
मध्यतो भ्रामयेत्कर्कटकं पश्चिमसंस्थयोः।
अर्धचापाकृतिं रुद्रबहिर्दिक्षु तदग्रतः।
वह्न्यन्तं पातयेत्सूत्रं द्वयोरपि तदा भवेत् ॥१०८॥

चौकोर कुण्ड में जिनांश भाग कहा जाता है। इसके लिये मध्य सूत्र को सवा पाँच भाग पूरब में बढ़ावे और चार चतुर्भुज बनावे। पश्चिम् भाग में कर्कट घुमाकर अर्द्धचन्द्र बनावे। अर्द्ध चापाकृति रुद्रकुण्ड के बाहर उसके आगे बनावे। ईशान कोण से अग्निकोण तक सूत्रपात करने से से दो हो जाते हैं।।१०६-१०८।।

अश्वत्थपत्रसङ्काशं योनिकुण्डमुदङ्मुखे।
प्राग्मानाश्चात्र बोद्धव्या योनिरूपाः सुमेखलाः।
चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं दशधा विभजेद्बुधः ॥१०९॥
एकमेकं त्यजेदंशमथ ऊर्ध्वं च तन्त्रवित्।
ज्यासूत्रं पातयेदग्रे तन्मानाद् भ्रामयेत्ततः।
अर्धचन्द्रनिभं कुण्डं रमणीयमिदं भवेत् ॥११०॥

पीपल के पत्ते के समान योनिकुण्ड उत्तरमुखी बनावे। पूर्ववर्णित मान के अनुसार मेखला और योनि बनावे। इस क्षेत्र को चौकोर बनाकर दश भाग में बाँटे। सूत्रपात में निपुण कर्ता ऊपर-नीचे एक-एक अंश का त्याग करे। आगे त्रिज्या सूत्रमान के अनुसार गिरावे और घुमावे। इससे अर्द्धचन्द्र के समान सुन्दर कुण्ड हो जाता है।।१०९-११०।।

अत्र तद्याम्यपृष्ठं स्यादेवं तन्मारणाय वै।
सौम्यपृष्ठं ततोऽन्यत्र योनिः पश्चिमदिङ्मता ॥१११॥

दक्षिण पीठ में यह कुण्ड मारण कर्म में बनता है, कुछ इस कुण्ड को उत्तर तरफ बनाते हैं और कुछ पश्चिम भाग में।।१११।।

अग्रं प्राक् त्रिभुजं कार्यं लम्बास्तुल्यास्त्रयोऽपि च।
सान्तरं सर्वतन्त्रेषु प्रोक्तमत्र निरन्तरम् ॥११२॥

सबसे पहले पूरब में त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिये, जिसके तीनों भुजाओं की लम्बाई बराबर होनी चाहिसे। कतिपय भिन्नताओं के साथ सभी तन्त्रों में यह विवेचित किया गया है, जिसे यहाँ बताया जा रहा है।।११२।।

एकहस्ते तु हस्ताद्या भुजाऽभूद् द्वादशोच्चया।
द्विहस्तादौ त्रयः पञ्च त्रिहस्ते ह्यर्कभूमयः ॥११३॥
चतुर्हस्ते त्रयं चन्द्रः पञ्चहस्ते त्रिगोचराः।
षड्हस्ते त्र्यब्दरामाश्च नगे त्रिकृतिसागराः ॥११४॥
अष्टहस्ते कृतागक्ष्मादैवीविश्वामयाग्नयः।
वेदाग्निधृतियुग्मानि दशहस्तभुजा स्मृता ॥११५॥

एक हाथ के कुण्ड का मान चौबीस अंगुल होता है। दो हाथ के कुण्ड का मान चौंतीस अंगुल होता है। तीन हाथ के कुण्ड का मान इकतालीस अंगुल होता है। चार हाथ के कुण्ड का मान अड़तालीस अंगुल होता है। पाँच हाथ के कुण्ड का मान तिरेपन अंगुल होता है। छः हाथ के कुण्ड का मान अट्ठावन अंगुल होता है। सात हाथ के कुण्ड का मान तिरेसठ अंगुल होता है। आठ हाथ के कुण्ड का मान छियासठ अंगुल होता है। नव एवं दश हाथ के कुण्ड का मान पचहत्तर अंगुल होता है।।११३-११५।।

वृत्तकुण्डनिर्माणम्

व्यासार्धं चतुरस्रस्य स्वस्याष्टादशभागयुक्।
तावत्कर्कटकाद् वृत्तं वृत्तकुण्डमिहोच्यते ॥११६॥
रचयेच्चतुरस्रस्य व्यासार्धं नृपभागयुक्।
तावत्कर्कटकेनापि कुर्याद् वृत्तं मनोहरम् ॥११७॥

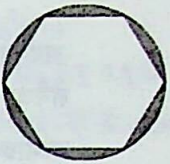


वृत्तकुण्ड—चतुरस्र के वृत्तकुण्ड व्यास के अर्द्ध भाग में और अट्ठारह भाग जोड़कर जो मान प्राप्त होगा उतना ही लम्बा कर्कट लेकर वृत्त बनावे। इस प्रकार वृत्त कुण्ड बनता है। चतुरस्र कुण्ड के व्यासार्द्ध में सोलह भाग जोड़कर एक कर्कट बनावें। इस कर्कट से भी वृत्तकुण्ड बनता है।।११६-११७।।

षडस्रकुण्डनिर्माणम्

तेन कर्कटमानेन चिह्नषट्कञ्च पूर्ववत्।
कृत्वा तत्त्रिभुजां दत्त्वा कुण्डमेवं षडस्रवत् ॥११८॥

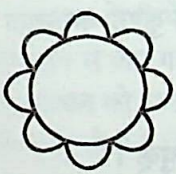
षडस्र कुण्ड—उपर्युक्त वृत्त की परिधि में उक्त कर्कटमान से छः चिह्न लगावे। उसमें चाप देने से षडस्र कुण्ड बन जाता है।।११८।।



अष्टदलकुण्डनिर्माणम्

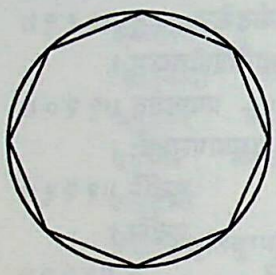
इष्टस्य चतुरस्रस्य चतुर्विंशांशकल्पना।
कृत्वा तन्मध्यतः सूर्यभागं कर्कटकेन तु ॥११९॥
वृत्तं कुर्यात्पुनः सूर्य्यतिथिभागैर्द्वितीयकम्।
दिग्विदिगन्तराले च सूत्राण्यष्टौ प्रपातयेत् ॥१२०॥
ततोऽन्तर्वृत्तरेखाया ईशसूत्राग्रसूत्रतः।
रेखां नयेद्बाह्यवृत्तपूर्वसूत्रस्य मूर्द्धनि ॥१२१॥
ततो दक्षिणरेखायामन्तर्वृत्तस्य मूर्द्धनि।
तमानयेद्बलं तस्मादेवमष्टदलानि तु ॥१२२॥
अंशव्यासार्धकेनापि यद् वृत्तं सा तु कर्णिका।
ततः षडङ्गव्यासार्धवृत्तं तत्केशराणि च ॥१२३॥
व्यासषष्ठांशमानोच्चा कर्णिका केशराणि च।
गुरूक्तयुक्त्या निखनेद्यथा पद्माकृतिर्भवेत् ॥१२४॥
पद्माकृतिम्प्रकुर्वीत कण्ठं मेखलया सह।
कार्यं तथा वालुकाभिश्चतुरस्रसमं यथा ॥१२५॥

अष्टदल कुण्ड—चौबीस अंगुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र के मध्य में प्रकाल द्वारा तीन अंगुल का वृत्त बनावे। इसके बाद पुनः उसी पर छः अंगुल का वृत्त बनावे; फिर उसी पर तीसरा बारह अंगुल का, चौथा चौदह अंगुल का एवं पाँचवा साढ़े चौदह अंगुल का वृत्त बनावे। इसके बाद दो वृत्त को छोड़कर पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा में एक चिह्न दे। फिर नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान और अग्निकोण में एक-एक चिह्न लगावे। इस प्रकार आठ चिन्ह लगाने के बाद उन दिशाओं-विदिशाओं के मध्य में फिर एक-एक चिह्न लगावे। इस प्रकार बराबर-बराबर दूरी पर सोलह चिह्न होंगे। सोलह चिह्न हो जाने पर उत्तर दिशा के एक चिह्न को छोड़ते हुआ पद्माकार रेखा देने में पद्मकुण्ड का निर्माण हो जाता है। कुल आठ रेखाओं के योग से यह कुण्ड बनता है। इस पद्माकृति में गुरु के द्वारा निर्देशित युक्ति से कुण्ड का खनन करे। इसमें कण्ठ, मेखला भी पद्माकृति ही बनती है। पद्म की आकृति चतुरस्र के समान बालू पर बनाई जाती है।।११९-१२५।।



अष्टास्रकुण्डनिर्माणम्

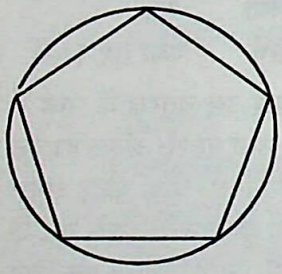
अथेष्टचतुरस्रस्य व्यासः स द्वादशांशयुक् ।
तेनैव भ्रामयेद् वृत्तं चिह्नान्यत्र दिगष्टके ॥१२६॥
क्रमान्न्यसेत्तदुपरि भुजां दद्यात्समामिति ।
अष्टास्रं जायते कुण्डं तद्वत्कण्ठश्च मेखलाः ॥१२७॥



अष्टास्र कुण्ड—इष्ट चतुरस्र के व्यासार्द्ध के मान का कर्कट बनाकर उससे एक वृत्त बनावे। उस वृत्त में बराबर दूरी पर आठ चिह्न लगावे। दो-दो चिह्नों को सीधी रेखाओं से मिलाकर चाप बनावे। इस प्रकार अष्टास्र कुण्ड बन जाता है। इसमें कुण्ड और मेखलाओं का निर्माण भी अष्टकोणीय ही होता है।।१२६-१२७।।

पञ्चास्रकुण्डनिर्माणम्

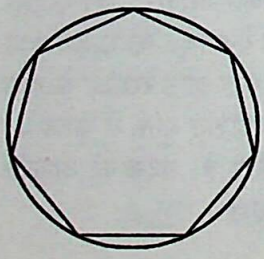
इष्टस्य चतुरस्रस्य व्यासार्धं स्वनगांशयुक् ।
तद्व्यासार्धेन वृत्तं स्यात्तत्र चिह्नानि पञ्च तु ॥१२८॥
समभागेन देयानि तेषु सूत्राणि दापयेत् ।
ज्यारूपाणि धनुर्लोपात्कुण्डं पञ्चास्रकं भवेत् ॥१२९॥



पञ्चास्र कुण्ड—इष्ट चतुस्र के व्यास के अर्द्धभाग में सात अंश जोड़कर कर्कट बनावे। उस कर्कट से वृत्त खींचे। वृत्त की परिधि में बराबर दूरी पर पाँच चिह्न लगावे। चिह्नों को रेखाओं से मिलाये। ज्या रूप धनुष को मिटा देने पर पञ्चास्र कुण्ड बन जाता है।।१२८-१२९।।

सप्तास्रकुण्डनिर्माणम्

इष्टस्य चतुरस्रस्य व्यासार्धः पञ्चमांशयुक् ।
भ्रामयेत्तत्र वृत्तं तु सप्तधा सकलं तु तत् ॥१३०॥



सप्तास्र कुण्ड—इष्ट चतुरस्र के व्यासार्द्ध में पाँच अंश जोड़कर कर्कट बनावे। उससे वृत्त बनावे। वृत्त परिधि को सात बराबर भागों में बाँटे। सात चिह्न दे। सातों चिह्नों को रेखाओं से मिला दे। तदनन्तर ज्यारूप चाप को मिटा देने से सप्तास्र कुण्ड बन जाता है।।१३०।।

ख्यातान्यन्यानि कुण्डानि तान्त्रिकस्मार्तकर्मणि ।
अनाभिकानि कुण्डानि वियोनीति श्रुतीरितम् ॥१३१॥

तान्त्रिक और स्मार्त कर्मों में अन्यान्य कुण्ड भी प्रसिद्ध हैं। उन कुण्डों में नाभि और योनि नहीं बनती, ऐसा श्रुतियें का वचन है।।१३१।।

आचर्य्य कुण्डं नवमं चतुरस्रन्तु वैदिकम् ।
अष्टाशक्तौ तु चत्वारि दिक्षु कुण्डानि तान्त्रिके ॥१३२॥
तदशक्तावेकमेव चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ।
शक्त्या उपासने वामपथ्यकं योनिकुण्डकम् ॥१३३॥

नवाँ आचार्य कुण्ड चतुरस्र होता है। यह वैदिक विधि में होता है। तान्त्रिक कर्म में यदि आठ कुण्ड बनाने का सामर्थ्य न हो, तब चारो दिशाओं में चार कुण्ड ही बनाना चाहिये। यदि चार कुण्ड बनाने में भी अशक्त हों तब एक ही चतुरस्र कुण्ड बनाना चाहिये। वाममार्गी शक्ति-उपासना में योनिकुण्ड बनता है।।१३२-१३३।।

अनेकदोषदं कुण्डं मानं हि चाधिकं यदि ।
तस्मात्सम्यक्परीक्ष्येदं कर्त्तव्यं शुभमिच्छता ॥१३४॥

कुण्डों के लिये निर्दिष्ट मान से अधिक मान वाले कुण्ड अनेक दोष उत्पन्न करने वाले होते हैं। इसलिये कल्याण की कामना रखने वाले को सम्यक् रूप से परीक्षण करने के बाद ही कुण्ड का निर्माण करना चाहिये।।१३४।।

खाताधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः ।
वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं छिन्नमेखले ॥१३५॥

कुण्ड के लिये निर्दिष्ट गहराई से अधिक गहराई होने पर यजमान रोगी होता है एवं मान से कम गहराई होने पर उसके गायों और धन का नाश होता है। टेढ़े कुण्ड से यजमान को सन्ताप प्राप्त होता है एवं कुण्ड की मेखला के छिन्न होने पर यजमान की मृत्यु होती है।।१३५।।

मेखलारहिते शोकोऽथाधिके वित्तसंक्षयः ।
भार्याविनाशकं कुण्डं प्रोक्तं योन्या विना कृतम् ॥१३६॥

मेखलारहित कुण्ड से यजमान को शोक होता है। अधिक मेखला होने से उसके धन का नाश होता है एवं योनि से रहित कुण्ड यजमान की पत्नी का विनाश करने वाला होता है।।१३६।।

अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत्कण्ठवर्जितम् ।
शृङ्गाररहितं यच्च कुण्डं जर्जरमेखलम् ॥१३७॥

यजमानविनाशाय प्रोद्घातः स्फुटिते भवेत्।
सूत्राधिके सुहृद्द्वेषः सूत्रहीने दरिद्रता ॥१३८॥

कण्ठविहीन कुण्ड से यजमान के सन्तान का विनाश होता है। बिना सजावट के जर्जर मेखला वाला एवं टूटा-फूटा कुण्ड यजमान का विनाश करने वाला होता है। निर्दिष्ट मान से अधिक लम्बा सूत्र सुहृदों से द्वेषकारक होता है एवं सूत्र की लम्बाई कम होने से दरिद्रता होती है।।१३७-१३८।।

अनाले जठरे रोगश्छिद्रे कुण्डे तु वाच्यता।
यथोक्तकुण्डेऽप्युत्पातादेवं जाते फलं त्विदम् ॥१३९॥

विना नाल का कुण्ड यजमान के लिये उदर रोगकारक होता है। कुण्ड में छेद होने से उसकी वाणी में छिद्रता होती है। यथोक्त कुण्ड में भी इस प्रकार के उत्पात होने से इसी प्रकार के फल प्राप्त होते हैं।।१३९।।

षड्गुणाब्धिवह्निनेत्रमिताः स्युः पञ्च मेखलाः।
धर्मभेदे जातिभेदे चाचार्ययजमानयोः ॥१४०॥
षष्ठांशेनाष्टमांशेन मेखलाद्वितयं मतम्।
कौलिके वाममार्गे च बौद्धे जैने च शाबरे ॥१४१॥

पाँच प्रकार की मेखला होती है, जिसका मान क्रमशः ६, ३, ४, ३, २ अंश होता है। आचार्य और यजमान के धर्म और जातिभेद से दो मेखला का कुण्ड होता है। इस मेखला का मान छठा, आठवाँ अंश माना गया है। कौलिक, वाममार्ग, बौद्ध, जैन और शाबर के लिये यह उपयुक्त होता है।।१४०-१४१।।

वास्तुपूजनम्

एवं कृते मण्डपे तु वास्तुपूजां समारभेत्।
नूतने तु गृहे कुर्यादन्यथोपद्रवो महान् ॥१४२॥
स्मार्ती च तान्त्रिकी पूजा द्विविधा सा निगद्यते।

वास्तु-पूजा—मण्डप और कुण्ड-निर्माण के बाद वास्तुपूजन का शुभारम्भ करना चाहिये। नये घर में तो वास्तुपूजा अवश्य करनी चाहिये; अन्यथा महान् उपद्रवों का सामना करना पड़ता है। यह वास्तुपूजा स्मार्ती एवं तान्त्रिकी के भेद से दो प्रकार की होती है।।१४२।।

वास्तुनामा पुरा कश्चिद्बभूव त्वसुरोत्तमः ॥१४३॥
त्रैलोक्यं निर्जितं तेन त्रिपञ्चाशच्च देवताः।
ये रणे सम्मुखे यातास्तेन तेऽतिनिपीडिताः ॥१४४॥

पुनः पुनर्जिता युद्धे स एवासीत्प्रजापतिः ।

पूर्वकाल में 'वास्तु' नाम का कोई श्रेष्ठ असुर हुआ था, जिसने तीनों लोकों के साथ-साथ तिरेपन देवताओं को भी जीत लिया था। उसके साथ युद्ध के लिये जो भी जाता था, उसकी हार हो जाती थी। इस प्रकार उसके साथ युद्ध में बार-बार देवताओं की हार हुई और अन्ततः वही प्रजापति बन गया।।१४३-१४४।।

दिव्यवर्षसहस्रान्ते देवाः शरणमागताः ॥१४५॥
विष्णोर्मम च पार्वत्या दैत्येन्द्रेणापि तच्छ्रुतम् ।
योद्धुकामः सोऽभ्यधावन्नारदेन प्रचोदितः ॥१४६॥
कृतं युद्धं तेन सार्द्धमस्माभिर्वर्षपञ्चकम् ।
ततो दैत्यो मदोत्सिक्तो विष्णुमायाविमोहितः ॥१४७॥
उवाच वचनं तुष्टो ब्रियतां ब्रियतामिति ॥१४८॥

इसी प्रकार एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरान्त देवगणा विष्णु और मेरी शरण में आये। इसे पार्वती के साथ-साथ दैत्यराज वास्तु ने भी जान लिया। नारद के द्वारा प्रेरित होकर वह युद्ध की इच्छा से दौड़ पड़ा और हमलोगों के साथ साढ़े पाँच वर्षों तक युद्ध किया। तब मद से मतवाला वह दैत्य विष्णु की माया से विमोहित होने के कारण खुश होकर बोला—वर माँगो, वर माँगो।।१४५-१४८।।

नेन्द्रेण च कुबेरेण मम तोषकरं कृतम् ।
ससैन्येनापि तद्युद्धं त्वया तु जटिलेन हि ॥१४९॥
कृतं विष्णुसहायेन पार्वत्यर्धाङ्गधारिणा ।
तेनाहं तुष्टिमापन्नस्त्रैलोक्यपरमेश्वरः ॥१५०॥
अदेयं नास्ति मे किञ्चिद्याचयन्तु त्रयोऽपि च ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य शिवयोर्भ्रूप्रचोदितः ॥१५१॥
हरिः प्राह महाधन्यो दैत्येन्द्र त्वं ममोक्तितः ।
सत्यं त्रिवारं कुरुष्व तदा वाच्यो वरो मया ।
शिवेनापि च पार्वत्या देव एवापरो न हि ॥१५२॥

सेनासहित इन्द्र और कुबेर भी युद्ध में मुझे इस प्रकार सन्तुष्ट नहीं कर सके, जैसा कि विष्णु की सहायता से पार्वती को अंग में धारण करने वाले तुम जटाधारी ने किया है। तुमने इस युद्ध से तीनों लोकों के अधिपति मुझे सन्तुष्ट कर दिया है; अतः तुम मुझसे जो माँगोगे, वही दूँगा। मेरे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। उसके ऐसे वचन सुनकर शिव एवं पार्वती द्वारा आँखों के संकेत से प्रेरित श्रीविष्णु ने इस प्रकार कहा—

हे दैत्येन्द्र! तुम महान् हो, तुम धन्य हो। जो मैं माँगूगा, वह तुम दोगे—ऐसा तीन बार कहो, तब मैं, शिव एवं पार्वती तुमसे वर माँगेंगे।।१४९-१५२।।

त्रिरुवाच तथा दैत्यस्तदा विष्णुर्व्यजिज्ञपत्।
यथा ते त्वरितो मृत्युः स उपायः प्रदर्श्यताम्।
विष्णोश्छलमिति ज्ञात्वा दैत्येन्द्रस्तमभाषत ॥१५३॥
अवश्यमेव गन्तव्यं सर्वैः कालमुखे हरे।
तथापि स्वप्रतिज्ञार्थं यो गच्छति स जीवति ॥१५४॥
परं त्वेको न मे वंशो येन मत्सेवनं कृतम्।
तस्य मार्गं दर्शयित्वा देहोऽयं विनिपात्यताम् ॥१५५॥

जब दैत्य ने तीन बार ऐसा कहा कि 'जो माँगोगे दूँगा' तब विष्णु ने कहा कि तुम वह उपाय बताओ, जिससे तुम्हारी मृत्यु शीघ्र हो जाय। तब श्रीविष्णु के छल को जानकर दैत्य ने इस प्रकार कहा—हे हरे! यद्यपि काल के मुख में सबों को अवश्य ही जाना है तथापि जो अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिये जाता है अर्थात् मृत्यु का वरण करता है, वह वास्तव में मरता नहीं; अपितु जीवित ही रहता है। मेरे अतिरिक्त मेरे वंश में दूसरा कोई नहीं है, जो मेरी सेवा कर सके। मेरी सेवा कैसे होगी—इसका उपाय यदि आप बता दें तो मैं अपने इस देह का विनाश का दूँगा।।१५३-१५५।।

काले तस्मिंश्च भो देवा वागुवाचाशरीरिणी।
देत्यन्द्र कुरु मा शोकं भुवो जन्म तवाऽभवत् ॥१५६॥
तत्रैव त्वं लयं याहि त्वत्तो पार्थं वरं शृणु।
ये वर्णाः स्वस्य भोगार्थं करिष्यन्ति नवं गृहम् ॥१५७॥
तत्र त्वदुत्सवमृते नानादुःखैरुपद्रुताः।
कालकर्ण्यादिका दास्यो विनायकमुखाश्च ते ॥१५८॥
सेवकाः पीडयिष्यन्ति चेत्याज्ञा पारमेश्वरी।
इत्याकर्ण्य वचः सोऽपि गर्तं कृत्वा महाबिलम् ॥१५९॥
प्रविवेश ततो देवैर्मृत्पाषाणैः प्रपूरितम्।
तेन ये निर्जिता देवा पुनरुद्गमशङ्कया ॥१६०॥
तस्योर्ध्वन्तु त्रिपञ्चाशन्निवासं चक्रुरुद्यताः।
तस्मादवश्यं ते पूज्या गृहवाससुखेच्छया ॥१६१॥

हे देवताओं! उस समय यह आकाशवाणी हुई कि हे दैत्येन्द्र! तुम शोक मत करो, जिस भूमि पर तुम्हारा जन्म हुआ था, उसी भूमि में तुम समाहित भी होओगे। मैं तुझे वर देता हूँ कि जो वर्ण अपने भोग के लिये गृह-निर्माण करेंगे, वे यदि तुम्हारी

पूजा नहीं करेंगे तो उन्हें नाना भाँति के दु:खों और उपद्रवों का सामना करना पड़ेगा। कालकर्णी, विनायकमुख आदि तुम्हारे सेवक उन्हें नाना प्रकार से पीड़ित करेंगे, इस प्रकार की परमेश्वरी की आज्ञा है। इस आकाशवाणी को सुनकर वह भी भूमि में विशाल गड्ढा बनाकर उसमें प्रविष्ट हो गया। तदनन्तर देवताओं ने उस गड्ढे को मिट्टी और पत्थरों से भर दिया। उसके द्वारा पराजित किये गये तिरेपन देवगण उसके पुन: प्रकट होने की आशंका से उसके ऊपर ही निवास करने लगे। इसलिये गृह-वास में सुख की कामना से उन सबका पूजन अवश्य करना चाहिये।।१५६-१६१।।

वास्तुपूजनक्रमे पूज्याः देवाः

शृण्वन्तु तद्विधिं देवा वामदक्षिणमार्गतः।
पाषाणे प्रतिमायां वा कुर्याद्वास्तोष्पते तथा ॥१६२॥
प्रतिजानीति मन्त्रेण तस्यावाहनपूजनम्।
नाममन्त्रेण चान्येषां पूजां कृत्वा प्रपूरयेत् ॥१६३॥

वास्तु पूजन में पूज्य देव—इस पूजा के अधिदेवताओं का वर्णन दक्षिण और वाममार्ग के अनुसार सुनिये। वास्तु देवता की प्रतिमा पत्थर की बनावे। 'प्रतिजानीति' मन्त्र से वास्तुदेवता का आवाहन-पूजन करे एवं दूसरे देवों का पूजन उनके नाममन्त्र से करके पूजा पूर्ण करे।।१६२-१६३।।

नैर्ऋत्यकोणे गेहस्य चतुरस्राकृतिं शुभाम्।
कृत्वा समतलां भूमिं वितस्त्युच्चां च वेदिकाम् ॥१६४॥
विस्तारायामतो हस्तमात्रां तत्र लिखेद्बुधः।
एकाशीतिपदं चक्रं वैदिक्यस्तत्र देवताः ॥१६५॥

घर के नैर्ऋत्य कोण में समतल भूमि पर एक बीत्ता ऊँची चौकोर वेदी बनावे। उस वेदी का विस्तार एक हाथ होना चाहिये। उस पर इक्यासी कोष्ठों का यन्त्र बनावे। उनमें वैदिक देवताओं की स्थापना करे।।१६४-१६५।।

मध्यकोष्ठेषु नवसु त्वादौ ब्रह्माणमर्चयेत्।
आपवत्सं तदीशाने प्रागर्य्यम्णं त्रिकोष्ठके ॥१६६॥

चक्र के मध्य के नव कोष्ठों में ब्रह्मा की पूजा करे। उसके ईशान कोण में अपांवत्स का और पूरब के तीन कोष्ठों में अर्यमा का पूजन करे।।१६६।।

आग्नेये सवितारं च विवस्वन्तमपां त्रिषु।
इन्द्रं नैर्ऋत्यदिग्भागे मित्रं पश्चिमगं त्रिषु ॥१६७॥

अग्निकोण में सविता का तथा तीन कोष्ठों में विवस्वान् का, नैर्ऋत्य में इन्द्र का तथा पश्चिम के तीन कोष्ठों में मित्र का पूजन करे।।१६७।।

वायव्ये राजयक्ष्माणं सुमेरुं चोत्तरे त्रये।
वेदकोष्ठेषु चैशान्यामीशं कोणाच्च देवतोः ॥१६८॥
शिखी पर्ज्जन्य आपश्च दितिः प्रोक्ताष्टयोर्द्वयोः।
क्रमादेते पञ्च देवा ज्ञातव्याः सव्यमार्गतः ॥१६९॥

वायव्य में राजयक्ष्मा का एवं उत्तर के तीन कोष्ठों में सुमेरु का पूजन करे। ईशान के चार कोष्ठों में शिखी, अग्नि, पर्जन्य, आप, दिति का पूजन करे। इन पाँच देवों का पूजन वामावर्त क्रम से होता है।।१६८-१६९।।

जयन्तेन्द्रौ सूर्यसत्यवृषा आग्नेयकोणके।
अन्तरिक्षं तथा वातः पूषा सावित्र एव च ॥१७०॥
चतुष्क ईशतो देवास्ततो दक्षिणपञ्चके।
युग्मे क्रमाच्च वितथो गृहरक्षयमौ तथा ॥१७१॥

जयन्त, इन्द्र, सत्य, भृश का पूजन आग्नेय कोण में करे। आकाश, वायु, पूषा तथा सविता का पूजन दक्षिण तरफ करे। इसके आगे दो-दो कोष्ठों में वितथ, गृहरक्ष और यम का पूजन करे।।१७०-१७१।।

गन्धर्वा भृङ्गराजश्च नैर्ऋतीस्थं चतुष्कके।
ईशानीतो जयमृगौ पितृदौवारिकौ तथा ॥१७२॥

नैर्ऋत्य के चार कोष्ठों में से दो कोष्ठों में गन्धर्व और भृङ्गराज का पूजन करे। इसके आगे चार कोष्ठों में जय, मृग, पितृ और दौवारिक की पूजा करे।।१७२।।

ततः पश्चाद्द्विके पञ्च सुग्रीवः पुष्पदन्तकः।
वरुणासुरशेषाश्च वायव्ये ईशतस्त्वहिः ॥१७३॥
रुद्रश्च पापयक्षाश्च रोगश्चोत्तरपञ्चसु।
मुख्यो भल्लाटसोमौ च भुजङ्गश्चादितिस्तथा ॥१७४॥
देवा एते पञ्चचत्वारिंशदर्च्याश्च भक्तितः।
अथ तान्त्रिकमार्गे तु चतुष्षष्टिपदे तथा ॥१७५॥

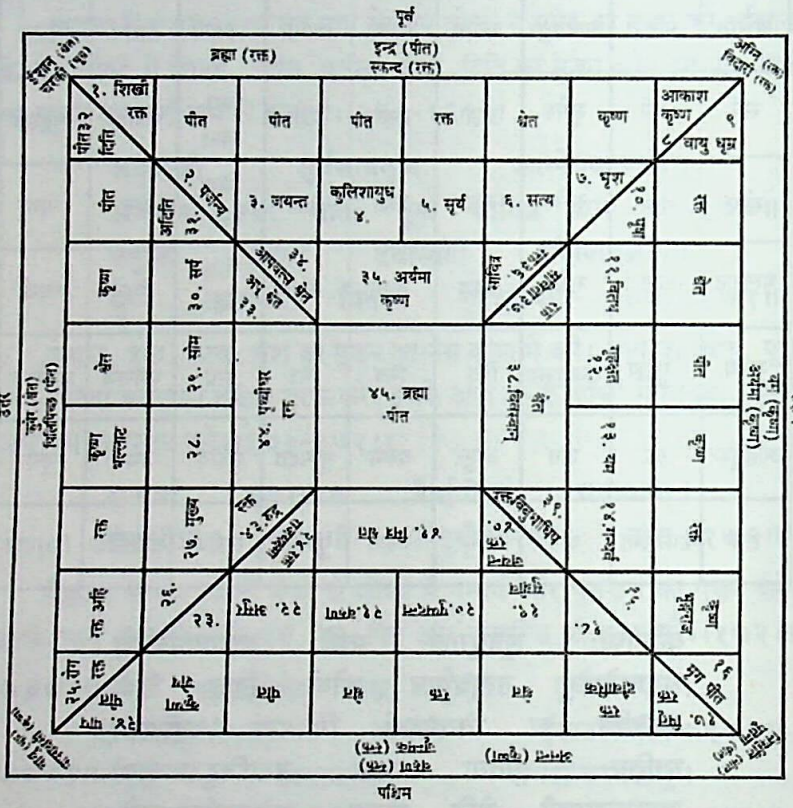
इसके बाद पश्चिम के दो-दो कोष्ठों में सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर और शेष—इन पाँच देवों का पूजन करे। वायव्य में रुद्र, पापयक्ष्मा, रोग, अहिर्बुध्न का पूजन करे। रोग के उत्तर में पाँच कोष्ठों में से दो-दो कोष्ठों में मुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प और अदिति का पूजन करे। इस प्रकार इन ४५ देवों का पूजन भक्तिपूर्वक करना चाहिये। तान्त्रिक मार्ग में ६४ कोष्ठों का वास्तु-पूजन होता है।।१७३-१७४।।

शिखी अग्नि	पर्जन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	आकाश	वायु
दिति	आप	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	सविता	पूषा
अदिति	अदिति	आपवत्स	अर्यमा	अर्यमा	अर्यमा	सविता	वितथ	वितथ
सर्प	सर्प	सुमेरु	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विव-स्वान	गृहरक्ष	गृहरक्ष
सोम	सोम	सुमेरु	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विव-स्वान	यम	यम
भल्लाट	भल्लाट	सुमेरु	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विव स्वान	गंधर्व	गंधर्व
मुख्य	मुख्य	राजयक्ष्मा	मित्र	मित्र	मित्र	इन्द्र	भृंगराज	भृंगराज
अहिर्बुध्न	रुद्र	शेष	असुर	वरुण	पुष्पदंत	सुग्रीव	जयन्त	मृग
रोग	पापयक्ष्मा	शेष	असुर	वरुण	पुष्पदंत	सुग्रीव	दौवारिक	पितृगण

कोणयोः सूत्रयुगलं मध्ये ब्रह्माणमर्चयेत्।
चतुष्कोष्ठेषु तत्पूर्वात्तत्र कोष्ठे द्विके द्विके ॥१७६॥
आर्य्यकं च विवस्वन्तं मित्रमन्यं महीधरम्।
सावित्रः सविता शक्र इन्द्रजिद्रुद्रतज्जयौ ॥१७७॥
आपवत्सुरकौ वेति शैव्याः कोणार्धकोष्ठयोः।
शर्वं गुहं चार्य्यमणं जम्भकं पिलिपिच्छकम् ॥१७८॥
चरकीं च विदारीं च पूतनां पूर्वतो यजेत्।
ईशानश्चाथ पर्जन्यो जयन्तः शक्रभास्करौ ॥१७९॥
सत्यो वृषोऽन्तकश्चैव पूर्वाशाकोष्ठगाः क्रमात्।
अग्निः पूषा च वितथो यमोऽथ गृहरक्षकः ॥१८०॥
गन्धर्वा भृङ्गराजश्च मृगा दक्षिणदिग्गताः।
निर्ऋतिश्चाथ दौवारिकश्च सुग्रीवकस्तथा ॥१८१॥

वरुणः पुष्पदन्तश्च सुरशेषाख्यरोगकाः ।
पश्चादथोत्तरे वायुर्नागमुख्यास्ततः परम् ॥१८२॥
सोमभल्लाटार्गलाख्या अदितिर्दितिरुत्तरे ।

वास्तुमण्डलचक्र



मध्य के चार कोष्ठकों में ब्रह्मा का अर्चन करे। नैर्ऋत्य के चार कोष्ठों के पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दो-दो कोष्ठों में अर्यमा, विवस्वान, मित्र और महीधर का अर्चन करे। सावित्र, सविता, शुक्र, इन्द्र, राजयक्ष्मा और आपवत्स का अर्चन पूर्व कोणार्द्ध कोष्ठों में करे। शर्व, गुह, अर्यम्णन, जम्भक को दूसरे कोणार्द्ध में अर्चन करे। चरकी, विदारी, पूतना और पिलिपिच्छा का अर्चन चक्र के बाहरी चार कोणों ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य में करे। ईशान से प्रारम्भ करके पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य और भृश का अर्चन पूर्व के दो-दो कोष्ठों में करे। अग्नि, पूषा, वितथ, यम, गृहक्षत, गन्धर्व, भृङ्गराज, मृग का दक्षिण के कोणों में अर्चन करे। नैर्ऋत्य से प्रारम्भ

करके दौवारिक, सुग्रीव, वरुण, पुष्पदन्त, शेष, रोग आदि का पूजन पश्चिमी कोष्ठों में करे। पश्चिम से प्रारम्भ करके वायु, नाग, मुख्य, भल्लाट, सोम, अदिति का पूजन उत्तरी कोष्ठों में करे।।१७६-१८२।।

ब्रह्मस्थानं रक्तवर्णं दिशः पीतैर्विदिक्सितैः ॥१८३॥
ततो दिशस्तु हरितैर्विदिशः कृष्णवर्णकैः ।
अरुणः परिधिः कार्यः सुन्दरं मण्डलं भवेत् ॥१८४॥

चक्र के ब्रह्मस्थान में पीला, चारो दिशाओं में लाल एवं कोणों में काला रंग भरे। इसके बाद दिशाओं में हरा एवं विदिशाओं में काला रंग भरे। परिधि को लाल रंग से बनावे। इस प्रकार सुन्दर मण्डल तैयार हो जाता है।।१८३-१८४।।

व्रीहिमुद्गयवैः क्षौद्रघृतदुग्धप्लुतैः क्रमात् ।
अष्टोत्तरशतं चाष्टोत्तरविंशतिमेव च ॥१८५॥
प्रत्येकं तैर्हुनेद् द्रव्यैरर्च्चयेच्च यथाविधि ।
बलिं च तेषां कुर्वीत पायसैर्व्यञ्जनान्वितैः ॥१८६॥

चावल, मूँग, यव, मधु, घी, दूधमिश्रित सामग्री से क्रमशः सबका हवन १०८ या २८ बार करे। उन द्रव्यों से प्रत्येक का हवन करे और यथाविधि अर्चन करे। तदनन्तर व्यञ्जन से युक्त पायस से सबों को बलि प्रदान करे।।१८५-१८६।।

एवं सिंहगते भानौ पूर्णायां प्रतिवत्सरम् ।
स्वगेहे वास्तुपूजां च मण्डपेषु समाचरेत् ।
नाकालमरणं व्याधिर्भूतप्रेतादिभीर्न च ॥१८७॥

इस प्रकार सूर्य के सिंहस्थ होने पर या पूर्णिमा में प्रत्येक वर्ष अपने घर में या मण्डप में पूजन करने से उस घर में अकाल मरण, व्याधि, भूत-प्रेत आदि का आवेश नहीं होता है।।१८७।।

न सर्पपीडा नान्योऽन्यकलहाद्यशुभानि च ।
पुत्रपौत्रधनारोग्यपशुदासीसमृद्धिभाक् ।
अरोगी विजयी ख्यातश्चिरं जीवति तद्गृहे ॥१८८॥

जिस घर में प्रतिवर्ष इस प्रकार की वास्तु-पूजा होती है, उस घर में सर्पपीड़ा के साथ-साथ अन्य अशुभ कलह आदि भी नहीं होते। उस घर का स्वामी पुत्र, पौत्र, धन, आरोग्य, पशु, दासी, समृद्धि से युक्त होकर अरोगी, विजयी, विख्यात एवं चिरञ्जीवी होता है।।१८८।।

राजवेश्मसु सर्वत्र तथा च महिषीगृहे ।

सचिवामात्यसेनानीभवनेषु पुरे तथा।
विदध्यात् प्रतिवर्षं तु प्रोक्तसिद्ध्यै सुदेशिकः ॥१८९॥

राजमहल, रानी का महल, सचिव-अमात्य-सेनापति के भवन या नगर में प्रतिवर्ष यह पूजा करवाने से ऊपर वर्णित फलों की प्राप्ति होती है।।१८९।।

न चेदुक्तान्यथारूपं फलैः क्लेशश्च सम्भवेत्।
भैरवक्षेत्रपालानां योगिनीनां विशेषतः ॥१९०॥
वामाचारैर्बलिः कार्यो महिषैर्वापि कुक्कुटैः।
आराधितास्तु वामेन जायन्तेऽतिबुभुक्षिताः ॥१९१॥

उपर्युक्त विधि के अतिरिक्त अन्य विधि से पूजन करने पर क्लेशरूप फल प्राप्त होता है। विशेषतः भैरव, क्षेत्रपाल और योगिनियों को वामाचार से महिष या मुर्गा की बलि देनी चाहिये; क्योंकि वाम मार्ग से आराधना करने पर वे भूख से अत्यधिक व्याकुल हो जाते हैं।।१९०-१९१।।

देवता बलिमिच्छन्ति तद्धीनं घ्नन्ति साधकम्।
मद्यमांसप्रमत्तास्ते प्राक्तनेन प्रचोदिताः ॥१९२॥

देवताओं को बलि पाने की इच्छा होती है। नहीं मिलने पर वे साधक को क्लेश देने लगते हैं। मद्य-मांस से प्रमत्त होकर जो साधक वैसा नहीं करते, उनको वाममार्ग से सिद्धि नहीं मिलती।।१९२।।

कदाचिच्छुभमिच्छन्ति तस्मात्सद्धिर्न वामतः।
क्रियतेऽभ्यर्चनं तासां प्रातस्तु निकटे यतः ॥१९३॥
शुभं भवति वा नो वा यथा शास्त्रे तथा जने।
यावन्न मद्यमांसाशी जनस्तावदलोलुपः।
भुङ्क्ते तस्मिंस्तन्मनाः स्यात्क्व जपः क्व च देवताः ॥१९४॥

वामाचार से शुभ की कामना जो करते हैं, उन्हें शुभ कामनाओं की प्राप्ति नहीं होती। जहाँ वामाचारी अर्चन होता है उसके निकट जो होते हैं उन्हें शुभ की प्राप्ति हो सकती है या नहीं भी हो सकती है। शुभ और अशुभ फल की प्राप्ति जैसा शास्त्र होता है, जैसे लोग होते हैं—उन्हीं पर निर्भर करती है। जब तक साधक जन और लोग मद्यमाँस लोलुप होते हैं और खा-पीकर उसी प्रकार के मनवाले होते हैं तब तक क्या जप हो सकता है और देवता कौन होता है?।।१९३-१९४।।

मद्यमांसादिकत्यागात्तस्य वातिनिषेवणात्।
दृश्यते तुल्यरूपो यः स सिद्धोऽन्यस्तु पातकी ॥१९५॥

मद्य-मांस का त्याग या उसके अत्यधिक सेवन—दोनों ही स्थितियों में जो एक समान रहता है, वही सिद्ध होता है; उससे अन्य पातकी होते हैं।।१९५।।

एवं परीक्ष्य कर्तव्या सिद्धानामपि सङ्गतिः।
अत्र किं बहुनोक्तेन सर्वनाशस्तु वामतः ॥१९६॥
इति सञ्चिन्त्य भो देवाः स्वधर्मः श्रेयसे भवेत्।

इस प्रकार परीक्षा करके ही सिद्धों की संगति करनी चाहिये। यहाँ पर और क्या कहा जाय, वाममार्ग से सर्वनाश हो जाता है। हे देवताओं! इस प्रकार चिन्तन करने पर ज्ञात होता है कि अपने ही धर्म से श्रेय की प्राप्ति होती है।।१९६।।

वास्तुशान्तिं विधायैवं सदसज्ज्ञानहेतवे ॥१९७॥
सप्तभिर्नवभिर्वापि दिनैर्दीक्षादिनात् पुरा।
बीजारोपणकर्मेदं कर्तव्यं सर्वकामदम् ॥१९८॥

बीजारोपण—इस प्रकार वास्तुशान्ति करके सत्-असत् के ज्ञान के लिये दीक्षा के लिये निश्चित किये गये दिन से सात अथवा नव दिन पूर्व समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाले बीजारोपण कर्म को करना चाहिये।।१९७-१९८।।

मण्डपोत्तरदिग्भागे सुसंवृत्तान्तरे परे।
भवने मण्डपं कुर्याद्दक्षः प्राग्वरुणायनम् ॥१९९॥
याम्योदीच्यायतं वामदीक्षायां सम्प्रशस्यते।
गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ दक्षेऽथ वामके ॥२००॥
सतैलतण्डुलेनैव सतैलविजयाद्रवैः।
तत्र रेखाः पञ्चकरा दीर्घाः कार्याश्च पञ्च च ॥२०१॥
वितस्त्यन्तरिता रुद्ररेखाः कार्यास्तथायताः।
चत्वारिंशत्कोष्ठकाः स्युः चतुर्विंशतिकोष्ठकैः ॥२०२॥
वाय्वङ्गैस्तत्र वीथी स्यात् पूरयेद्रक्तचूर्णकैः।
पश्चात्कोष्ठचतुष्कं यद् ब्रह्मस्थानं तदीरितम् ॥२०३॥
आग्नेयकोष्ठमारभ्य ईशानान्तं प्रपूरयेत्।
पीतै रक्तैश्च कृष्णैश्च रजोभिः सृष्टिमार्गतः ॥२०४॥
कोष्ठद्वयं ततो वीथी रक्तेनैव प्रपूरयेत्।

वैदिक मार्ग में मण्डप के उत्तर तरफ पूरब से पश्चिम लम्बा और वाम मार्ग में दक्षिण से उत्तर लम्बा एक दूसरा मण्डप बनावे। दक्षिण मार्ग में मण्डप की भूमि को गोबर से लीपे। वाम मार्ग में भूमि का लेपन तेल और चावल चूर्ण से या तेल और

भाँग से करे। भूमि पर मण्डप की लम्बाई के अनुसार एक-एक बीत्ता की दूरी पर दश बीत्ता लम्बी पाँच रेखा खींचे; फिर एक-एक बीत्ता की दूरी पर खड़ी ग्यारह रेखा खींचे। इससे एक-एक बीत्ता के चालीस वर्गकोष्ठ बनेंगे। उन चालीस कोष्ठों को एक-एक कोष्ठ पंक्ति की वीथि बना कर लाल चूर्ण से भर दे। वायव्य तरफ से प्रारम्भ करने पर पहले सोलह कोष्ठों में चार कोष्ठ बीच में छोड़कर बारह कोष्ठों में, दूसरे बारह कोष्ठों में से चार कोष्ठ बीच में छोड़कर आठ कोष्ठों में और तीसरे बारह कोष्ठों में से चार कोष्ठ बीच में छोड़कर चारो तरफ आठ कोष्ठों में लाल चावल का चूर्ण भर दे। पहले श्रेष्ठचतुष्टय को ब्रह्मस्थान कहा जाता है। इसमें अग्निकोण से प्रारम्भ करके ईशानकोण तक के चार कोष्ठों में से सृष्टिमार्ग से पहले में पीला, दूसरे में लाल, तीसरे में काला और चौथे में श्वेत रंग का चूर्ण भर दे।तदनन्तर वीथी के दो कोष्ठों को लाल चूर्ण से भर दे।।१९९-२०४।।

विष्णुस्थानं तदग्रे तु ज्ञेयं कोष्ठचतुष्टयम् ॥२०५॥
प्राग्वद्रजोभिरापूर्य तदग्रेऽपि च वीथिकाः ।

इसके आगे का कोष्ठचतुष्टय विष्णुस्थान कहा जाता है। पूर्ववत् पहले कोष्ठ-चतुष्टय के समान इसमें चावल का चूर्ण भर दे। इस प्रकार करने पर कोष्ठ का आकार निम्न प्रकार का दृगोचर होता है—

४	५	६	७	१	२	३	१	२	३
३	श्वेत	पीत	८	श्वेत	पीत	४	श्वेत	पीत	४
२	कृष्ण	रक्त	९	कृष्ण	रक्त	५	कृष्ण	रक्त	५
१	१२	११	१०	८	७	६	८	७	६
	ब्रह्म स्थान			विष्णु स्थान			शिव स्थान		

कार्या डमरुकाकाराश्चतस्रो विष्णुदेवताः ॥२०६॥
दूर्वाम्रपल्लवाश्वत्थदलोपेताश्च वेष्टिताः ।
सूत्रेण विष्णुस्थानस्य चतुष्कोष्ठे निवेशयेत् ॥२०७॥

लकड़ी का बारह अंगुल चौड़ा डमरू के आकार का चार पात्र विष्णुस्थान के लिये बनवावे। उन पात्रों में दूब, आम का पल्लव और पीपल के पत्ते डालकर उसके गले में धागा लपेट दे। विष्णुस्थान के चार कोष्ठों में से एक-एक कोष्ठ में एक-एक पात्र स्थापित करे।।२०६-२०७।।

वैरिञ्च्यः पञ्च मुख्यास्ताः काष्ठजाः षोडशाङ्गुलैः ।
आयामोच्छ्रायदीर्घाख्यैर्युक्ताः पश्चान्निवेशयेत् ॥२०८॥
ब्रह्मस्थाने पल्लवादिसूत्रैः प्राग्वच्च योजिताः ।

ब्रह्मा के लिये सोलह अंगुल ऊँचा और उतना ही चौड़ा लकड़ी का चार पात्र बनवावे। सभी पात्र पाँच-मुखी होना चाहिये। इन पात्रों में भी दूब, आम एवं पीपल का पल्लव डालकर धागा लपेट कर उन्हें चार कोष्ठों में स्थापित करे।।२०८।।

शैवाः शरावाश्चत्वारो भान्वङ्गुलसमुच्छ्रयाः ॥२०९॥
प्रक्षाल्य सूत्रैः संवेष्ट्य प्राग्वदग्न्यादिषु न्यसेत् ।
शालिपुञ्जेषु गन्धादिदर्भकूर्चायनेषु च ॥२१०॥

शिवस्थान के लिये बारह अंगुल ऊँचा, चौड़ा चार प्याला लकड़ी का बनवावे। उन्हें धोकर पूर्ववत् अग्निकोण से प्रारम्भ करके ईशान तक के कोष्ठों में स्थापित करे। धागा से उन्हें वेष्टित करे। उन पात्रों को धान, गन्ध, कुशगुच्छ आदि से पूरित करे।।२०९-२१०।।

पूरयेत्तानि पात्राणि वालुकामृत्करीषकैः ।
शङ्खस्वनेन नादैश्च पञ्चभिर्ब्राह्मणाशिषा ॥२११॥

उन बारहों पात्रों को बालू, मिट्टी और सूखे गोबर का चूर्ण मिलाकर भर दे। भरते समय पाँच ब्राह्मण शङ्खनाद करते हुये यजमान को आशीर्वाद देते रहें।।२११।।

ततः स्वर्णादिके पात्रे दश बीजानि वापयेत् ।
वंबीजं प्रजपेन्मन्त्री दुग्धेन क्षालयेत्पुनः ॥२१२॥

इसके बाद सोना आदि के पात्रों में दस प्रकार के अन्न का बीज लेकर वपन कार्य प्रारम्भ करे। बीजों को वं बीज का जप करते हुए दूध से धोवे।।२१२।।

तानि प्रियङ्गुश्यामाकतिलसर्षपशालयः ।
मुद्गाढक्यस्तु निष्पावा खल्वा माषाः प्रकीर्तिताः ॥२१३॥

उन दश प्रकार के बीजों में प्रियंगु, सावाँ, तिल, सरसों, धान, मूँग, आढ़की, कुल्थी, कंगु और उड़द आते हैं।।२१३।।

ब्रह्मपात्रे तु विकिरेत्प्रथमं वैष्णवे ततः ।
ततः शैवे पञ्चवाद्यब्रह्मघोषपुरस्सरम् ॥२१४॥
हरिद्राद्यैश्च संसिच्य वस्त्रैराच्छादयेत्ततः ।
सन्ध्ययोरुभयोश्चैव रात्रौ चापि बलिं हरेत् ॥२१५॥

तदनन्तर पाँच ब्राह्मणों के शङ्खनादपूर्वक पहले ब्रह्मा के पात्रों में, तब विष्णु के पात्रों में, तब शिव के पात्रों में बीजों का वपन करे। तदनन्तर हल्दी में रंगे वस्त्रों से उन पात्रों को ढँक दे। इसके पश्चात् दोनों सन्ध्याओं में एवं रात्रि में बलि प्रदान करे।

गुरूपदिष्टमार्गेण सम्यक्पात्रत्रयाग्रतः ।
नवाहं तु बलिं दद्यात्तत्तदुद्दिश्य दैवतम् ॥२१६॥
शाल्योदनं तिला लाजाः सक्तवः प्रथमे दिने ।
हरिद्राचूर्णसंयुक्तो भूतेभ्योऽयं बलिर्मतः ॥२१७॥
एवं द्वितीयदिवसे पितृभ्यस्तिलमण्डलैः ।
तृतीये सक्तवो लाजा यक्षेभ्यो दधिसंयुताः ॥२१८॥
नागेभ्यः सक्तवस्तुर्ये नारिकेलजलप्लुताः ।
दद्यात्पद्माक्षतबलिं पञ्चमे ब्रह्मणे मुदा ॥२१९॥
षष्ठे शिवाय चापूपयुक्तं भक्तं प्रशस्यते ।
तत्रौदनं सप्तमेऽह्नि विष्णवे विनिवेदयेत् ॥२२०॥
ब्रह्मस्थाने तु वेतालो मेषस्तस्य बलिः सुराः ।
विष्णुस्थाने भैरवी स्यादजस्तस्या बलिर्मतः ॥२२१॥
भैरवस्तु शिवस्थाने महिषं बलिमिच्छति ।
गौडी माध्वी च पैष्टी च सुरास्तत्र क्रमान्मताः ॥२२२॥
मत्स्यमांसं मद्ययुक्तं भूतेभ्यो बलिरिष्यते ।
पितृभ्यः शशमांसं च यक्षेभ्यः कुक्कुटं मधु ॥२२३॥
भेकोन्दुरबलिर्नागान् वाममार्गबलिस्त्वयम् ।

गुरु के उपदेशानुसार तीनों देवताओं के पात्रों के आगे उन देवों के उद्देश्य से नव दिनों तक बलि प्रदान करे। पहले दिन देवों को भात, तिल, लावा और सत्तू की देवों को तथा भूतों को हल्दी-चूर्ण मिलाकर बलि प्रदान करे। दूसरे दिन तिलमण्डल की बलि पितरों को प्रदान करे। तीसरे दिन सत्तू, लावा में दही मिलाकर यक्षों को बलि प्रदान करे। चौथे दिन नारियल के पानी में सत्तू मिलाकर नागों को बलि समर्पित करे। पाँचवें दिन कमल और अक्षत की बलि ब्रह्मा को समर्पित करे। छठे दिन पूआ पर भात रखकर शिव को बलि प्रदान करे एवं सातवें दिन विष्णु को भात की बलि समर्पित करे। ब्रह्मा के स्थान में वेताल को भेड़ एवं सुरा की बलि प्रदान करे। विष्णु के स्थान में भैरवी को बकरे की बलि समर्पित करे। शिवस्थान में भैरवों को महिष की बलि प्रदान करे। ब्रह्मस्थान में गौड़ी, विष्णुस्थान में माध्वी एवं शिवस्थान में पैष्टी सुरा अर्पित करनी चाहिये। मत्स्य-मांस-मद्य की बलि भूतों को देनी चाहिये। पितरों

को खरगोश के मांस की, यक्षों को मुर्गे के मांस एवं मधु की, नागों को मेढ़क की बलि वाममार्ग में दी जाती है।।२१६-२२३।।

एवं गतेषु नवसु दिनेषु च विलोकयेत्॥२२४॥
सम्यक्तस्योद्गमो जातः किं नष्टं मध्यमं च किम्।
सम्यगभ्युद्गमे सिद्धिः कुण्ठिते विघ्नमाप्नुयात्॥२२५॥
कीटभुक्तेनास्य फलं स्फुटिते सर्वनाशनम्।

इस प्रकार नव दिन बीतने पर अवलोकन करे कि बोये गये बीजों में से किसका अंकुरण सम्यक् रूप से हुआ, किनका अंकुरण मध्यम हुआ और कौन बीज नष्ट हो गये। सम्यक् अंकुरण से सिद्धि प्राप्त होती है एवं कुण्ठित अंकुरण से विघ्न उपस्थित होता है। बीजों को यदि कीड़े खा जायँ या बीज अंकुरित ही नहीं हों तब विनाश की सम्भावना होती है।।२२४-२२५।।

सिद्धिः प्रियङ्गुभिर्ज्ञेया श्यामाकैः स्त्रीसुखं भवेत्॥२२६॥
तिलैः पूज्यजनोल्लासः सर्षपैर्नाभिचारके।
शालिभिः सर्वसम्मानो मुद्गैर्देवकृपा भवेत्॥२२७॥
चतुष्पादास्तथाढक्यां निष्पावैः क्षेत्रमन्दिरे।
खल्वैः सत्कर्मसिद्धिः स्यान्माषैः शान्ती रणे भवेत्॥२२८॥
सर्वैः समुद्गतैर्वामे सिद्धिः पातस्ततोऽन्यथा।

प्रियंगु आदि के अंकुरित होने से सिद्धि मिलती है एवं सॉवाँ अङ्कुरण से स्त्री-सुख प्राप्त होता है। तिल के अंकुरित होने पर पूज्य जनों में उल्लास होता है एवं सरसों के अंकुरण से अभिचार का निराकरण होता है। धान के अंकुरण से सभी प्रकार के सम्मान मिलते हैं एवं मूँग के अंकुरित होने पर देव-कृपा होती है। आढ़की के अंकुरण से चौपायों की प्राप्ति होती है तथा कुल्थी के अंकुरण से क्षेत्रमन्दिर बनता है। कंगु के अंकुरण से सत्कर्म की सिद्धि होती है एवं उड़द के अंकुरण से युद्ध में शान्ति होती है। सभी के अंकुरित होने से वाममार्ग में सिद्धि प्राप्त होती है; अन्यथा सिद्धि का पात अर्थात् विनाश होता है।।२२६-२२८।।

दीक्षायां मासविचारः

चैत्राद्दीक्षाफलं दुःखं प्रतिष्ठारत्नसिद्धये॥२२९॥
हीनता मरणं बन्धुनाशो दुःखं ततः क्रमात्।
आनन्दो वृद्धिदुःखेऽथाक्षेपा निन्दा इति क्रमात्॥२३०॥
दारिद्र्यं सर्वज्ञानं च शुभोत्कृष्टत्वसौख्यता।
ज्ञानं मेधाविनाशश्च स्वर्णाप्तिर्ज्ञानवर्द्धनम्॥२३१॥

समृद्धिसिद्धिः श्रेष्ठत्वं मलमासक्षयं त्यजेत्।

दीक्षा में माह-विचार—

मास	दीक्षाफल
चैत्र	दुःख
वैशाख	प्रतिष्ठा, रत्न-प्राप्ति
ज्येष्ठ	हीनता, मरण
आषाढ़	बन्धुनाश, दुःख
श्रावन	आनन्दवृद्धि
भाद्रपद	दुःख, आक्षेप
आश्विन	दारिद्र्य
कार्तिक	सर्वज्ञान, शुभ उत्कृष्ट सौख्य
अगहन	ज्ञान
पौष	मेधा-विनाश
माघ	स्वर्णसिद्धि, ज्ञानवर्द्धन
फाल्गुन	समृद्धि, सिद्धि, श्रेष्ठता

मलमास और क्षयमास में दीक्षा वर्जित है।।२२९-२३१।।

दीक्षायां नक्षत्रविचारः

मनस्तापः श्रियः सौख्यं सौख्यं मन्त्रस्य सिद्धयः ॥२३२॥
क्षुद्रदैवतसंसिद्धिः शीघ्रं सिद्धिः शुभा मतिः।
देवमैत्री सर्वहानिः कलहश्च महाभयम् ॥२३३॥
सम्पद्रोगो जपात्सिद्धिः सन्तापस्ताप ईशिता।
सर्वसिद्धिः फलं भानां क्रमाद्दक्षेऽथ वामके ॥२३४॥

दीक्षा में नक्षत्र-विचार—दक्षिण अथवा वाममार्ग में नक्षत्रानुसार दीक्षा के फल इस प्रकार कहे गये हैं—

नक्षत्र का नाम	दीक्षाफल
अश्विनी	मनस्ताप
भरणी	लक्ष्मीप्राप्ति
कृत्तिका	सौख्य
रोहिणी	सौख्य
मृगशिर	मन्त्रसिद्धि

आर्द्रा	क्षुद्र देवसिद्धि
पुनर्वसु	तत्काल सिद्धि
पुष्य	कल्याणकारक बुद्धि
आश्लेषा	देवमैत्री
मघा	सर्वहानि
पूर्वाफाल्गुनी	कलह
उत्तरफाल्गुनी	महाभय
हस्त	सम्पत्ति-प्राप्ति
चित्रा	रोग
स्वाती	जप से सिद्धि
विशाखा	सन्ताप
अनुराधा	ताप
ज्येष्ठा	ईशित्व-प्राप्ति
मूल	पूर्णसिद्धि

विशेष—प्रकृत ग्रन्थ में उपर्युक्त उन्नीस नक्षत्रों के ही फल बताये गये हैं; अतः शेष आठ नक्षत्रों का फल पाठकों की सुविधा के लिये शैवागम के अनुसार यहाँ दिया जा रहा है, जो इस प्रकार है—

पूर्वाषाढ़ा	कीर्ति
उत्तराषाढ़	कीर्ति
श्रवण	दुःख
धनिष्ठा	दारिद्र्य
शतभिषा	ज्ञान
पूर्वभाद्रपद	सुख
उत्तरभाद्रपद	सुख
रेवती	कीर्ति-लाभ

दीक्षायां तिथिफलम्

तिथेः फलं बुद्धिनाशः क्रमाज्ज्ञेयाः सुसिद्धयः।
अगौरीमान्त्रिका भ्रष्टा विगणेशाश्च दुःखिताः॥२३५॥
सिद्ध्यन्ति मन्त्राः सर्वेऽपि न सिद्ध्यन्ति कदाचन।
समृद्धिर्दुःखसिद्धिश्च मूर्खता गुरुनाशनम्॥२३६॥

जडताऽरिष्टनाशश्च सर्वं पूर्णं भवेत्फलम्।
शुक्ला श्रेष्ठा नैव कृष्णा शुभ्रा शुभ्रतरा हरेः ॥२३७॥
सिद्धिः स्यात्सर्वमन्त्राणां प्रोक्तं चैव महाभयम्।
सिद्धिर्धातुर्विशेषेण पुत्रहानिः पितॄनृते ॥२३८॥

दीक्षा में तिथियों के फल—विभिन्न तिथियों को प्राप्त की जाने वाली दीक्षा का फल इस प्रकार कहा गया है—

तिथि-नाम	दीक्षा-फल
प्रतिपदा	बुद्धिनाश
द्वितीया	सुसिद्धि
तृतीया	मात्र गौरीमन्त्र की सिद्धि
चतुर्थी	मात्र गणेशमन्त्र-सिद्धि
पञ्चमी	सर्वमन्त्र-सिद्धि
षष्ठी	कोई मन्त्र सिद्ध नहीं होता
सप्तमी	समृद्धि
अष्टमी	दुःख
नवमी	सिद्धि
दशमी	मूर्खता
एकादशी	गुरु की मृत्यु
द्वादशी	जड़ता
त्रयोदशी	अरिष्टनाश
चतुर्दशी	तिर्यक् योनि की प्राप्ति
पूर्णिमा	सभी फलों की प्राप्ति

शुक्ल पक्ष की तिथियाँ श्रेष्ठ होती हैं, कृष्ण पक्ष की नहीं। हरि के मन्त्रों के लिये शुक्लपक्ष की तिथि अत्यन्त शुभ मानी जाती है। कृष्ण पक्ष में सिद्ध मन्त्र महाभयप्रद होते हैं। विशेष रूप से इसमें ब्रह्मा के मन्त्र सिद्ध होते हैं और पितरों को छोड़कर पुत्रों का मरण होता है।।२३५-२३८।।

दीक्षायां वारफलम्

क्रमाद्वारफलं बुद्धिर्जडता मरणं तथा।
नियोगहीनता पुत्रा धनाप्तिर्मृत्युरीरिता ॥२३९॥

दीक्षा में वारफल—विभिन्न वारों में प्राप्त की जाने वाली दीक्षा का फल इस प्रकार कहा गया है—

वार	फल मेरुतन्त्रानुसार	फल वैशम्पायन संहितानुसार
रविवार	बुद्धि	धन लाभ
सोमवार	जड़ता	शान्ति
मंगलवार	मरण	मरण
बुधवार	नियोग हीनता	सौन्दर्य-लाभ
गुरुवार	अपुत्रता	ज्ञानलाभ
शुक्रवार	धनप्राप्ति	सौभाग्य-लाभ
शनिवार	मृत्यु	यश की हानि।

दीक्षायां योगफलम्

विष्कुम्भादिकयोगानां नामतुल्यं फलं भवेत्।
आनन्दादिकयोगानां सर्वत्राविकलं फलम्॥२४०॥

दीक्षा में योग के फल—विष्कुम्भादि २७ योगों का फल उनके नाम के अनुसार होता है। आनन्दादिक यागों में सर्वत्र पूर्ण फल प्राप्त नहीं होता; किन्तु रत्नावली के अनुसार १ प्रीति, २ आयुष्मान्, ३ शोभन, ४ धृति, ५ वृद्धि, ६ ध्रुव, ७ सुकर्ण, ८ साध्य, ९ शुक्र, १० हर्षण, ११ वरीयान्, १२ शिव, १३ ब्रह्म, १४ सिद्ध, १५ सौभाग्य, १६ इन्द्र—ये १६ योग दीक्षा के लिये प्रशस्त कहे गये हैं।।२४०।।

दीक्षायां करणफलम्

विष्टिं विहाय करणे चरेत्सिद्धिर्द्रुतं भवेत्।
सर्वसिद्धिर्विष्टिपुच्छे स्थिरे तु स्थिरता भवेत्॥२४१॥

दीक्षा में करण के फल—विष्टि करण के अतिरिक्त अन्य १४ करणों में दीक्षा लेने से शीघ्र सिद्धि मिलती है; किन्तु विष्टि का पुच्छ भाग स्थिर होता है। इसमें दीक्षा से स्थिरता प्राप्त होती है। इनमें भी वव, कौलव, तैतिल और वणिज करण दूसरे मत से श्रेष्ठ माने जाते हैं।।२४१।।

दीक्षायां लग्नफलम्

अथ लग्नफलं देवा धनं धान्यं समृद्धयः।
राज्यं वा देवतासिद्धिर्हानिर्मेधाविनाशनम्॥२४२॥
रत्नादिलक्ष्मीलाभश्च धनं धान्यं च सिद्धयः।
पूर्णसिद्धिः प्रतापश्च हानिर्विज्ञाननाशनम्॥२४३॥
पूर्वप्राप्तिर्मन्त्रसिद्धिः पशवो विपुलं धनम्।
सदा दुःखं तथा हानिर्वामिनां मिथुनं शुभम्॥२४४॥

दीक्षा में लग्न के फल—विभिन्न लग्नों में दी जाने वाली दीक्षा का फल इस प्रकार कहा गया है—

लग्न का नाम	दीक्षा फल
मेष	धन-धान्य-समृद्धि, राज्य, देवता-सिद्धि।
वृष	हानि।
मिथुन	मेधा-विनाश।
कर्क	मन्त्र-सिद्धि।
सिंह	मेधा-विनाश।
कन्या	रत्नलक्ष्मी-लाभ।
तुला	सर्वसिद्धि।
वृश्चिक	पूर्णसिद्धि, धन-धान्य, रत्न-लाभ।
धनु	विज्ञान-नाश।
मकर	पूर्वप्राप्त मन्त्र-सिद्धि।
कुम्भ	पशु, विपुल धन-प्राप्ति।
मीन	सदैव दुःख, हानि।

वाममार्गियों के लिये मिथुन लग्न शुभ होता है।।२४२-२४४।।

वामिनां यवनानां च विरुद्धं बहुधा शुभम्।
त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः ॥२४५॥
रन्ध्रे मृत्युप्रदाः सर्वे व्यये खेटे रिपौ च रुक्।
मन्त्रश्चन्द्रबले ग्राह्योऽन्यथा स्यादघसम्भवः ॥२४६॥

वाममार्गियों और यवनों के लिये वैदिकों के विरोधी बहुत शुभ होते हैं। तीसरे और छठे भाव के पाप ग्रह शुभ होते हैं। केन्द्र त्रिकोण और अष्टम भाव के पापग्रह मृत्युकारक होते हैं। छठे और बारहवें भाव में सभी पापग्रह रोगकारक होते हैं। बलवान चन्द्र में मन्त्र ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा पाप होता है।।२४५-२४६।।

ताराबलानुरूपेण देवतायाः कृपा भवेत्।
धर्मदो राज्यदः सिद्धिप्रदो मध्योऽस्ति नाशकृत् ॥२४७॥

ताराबल के अनुसार ही देवताओं की कृपा प्राप्त होती है। तारा बलवान हों तो वे धर्मप्रद, राज्यप्रद एवं सिद्धिप्रद होते हैं। कम ताराबल में दीक्षा से विनाश होता है।

प्रातःसङ्गवमध्याह्नापराह्णं सायमेव च।
चन्द्रग्रहे तु दारिद्र्यं सौरे सर्वसमृद्धयः ॥२४८॥

प्रातः तीन मुहूर्त तक, मध्याह्न, अपराह्न एवं सन्ध्या में ही दीक्षा ग्रहण करना चाहिये। चन्द्र-ग्रहण के समय दीक्षा ग्रहण करने से दरिद्रता होती है एवं सूर्यग्रहण में दीक्षा लेने से सभी समृद्धियाँ मिलती हैं।।२४८।।

गुरावशुभदृष्टे च सिद्धक्षेत्रे सुशोभने।
आगच्छति गुरुर्दैवाद्यदा दीक्षा तदा भवेत्।
दीक्षादिनात्पूर्वदिने प्रातःकृत्यं निवर्त्य च ॥२४९॥
समलंकृत्य देहं स्वं स्वगृहे पूजनं चरेत्।
गणेशस्य विधानेन पुण्याहं वाचयेत्ततः ॥२५०॥
नान्दीमुखाँस्तर्पयित्वा पञ्चवाद्यपुरःसरम्।
यथोक्तकृतसम्भारो गच्छेद् गुरुगृहं प्रति।
आचार्य्यऋत्विग्वरणसम्भारो दशधा मतः ॥२५१॥

गुरु की अशुभ दृष्टि होने पर भी सुन्दर सिद्धिक्षेत्र में भाग्यवशात् गुरु यदि आ जाय तो दीक्षा ग्रह्य की जा सकती है। दीक्षा-दिवस के एक दिन पहले प्रातःकृत्य का सम्पादन करके अलंकृत होकर विघ्नहर्त्ता गणेश की विधिवत् पूजा करके पुण्याह-वाचन करे। तदनन्तर नान्दीमुख श्राद्ध करके तर्पण करने के उपरान्त पाँच वाद्यों को बजाते हुये यथोक्त सामग्रियों के साथ गुरुगृह की ओर प्रस्थान करे। ब्राह्मण आचार्य के वरण की सामग्री दश प्रकार की कही गई है।।२४९-२५१।।

श्रीपर्णीवृक्षपीठानि हस्तमानानि मानतः।
अष्टाङ्गुलसमुच्छ्रायसहितानि समानि च ॥२५२॥
सप्तविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रे ग्रन्थिभूषिताः।
विष्टराः सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥२५३॥

श्रीपर्णी वृक्ष की लकड़ी का एक हाथ लम्बा-चौड़ा एवं आठ अंगुल ऊँचा समतल पीढ़ा बनवाकर उसके अग्रभाग को सत्ताईस कुशों के ग्रन्थि की माला से भूषित करे। इसी प्रकार का आसन समस्त यज्ञों के लिये कहा गया है।।२५२-२५३।।

सुखोष्णोदकसम्भूताः पाद्यार्थे ताम्रगण्डकाः।
शङ्खा अर्घ्यप्रदानाय गन्धपुष्पजलान्विताः।
सुताम्रस्य कमण्डल्व आचामोदकपूरिताः ॥२५४॥

पाद्य के लिये ताँबे के पात्र में गुनगुना जल रखे। अर्घ्य प्रदान के लिये शङ्ख में गन्ध, जल और फूल रखे। ताँम्बे के सुन्दर कमण्डलु को आचमन के लिये जल से पूरित करे।।२५४।।

ते द्विधा मधुपर्कार्थं कांस्या दध्यादिपूरिताः।
महदर्घ्याणि वस्त्राणि मुद्रिकाद्यं सुभूषणम्।
मधूकपत्रच्छत्राणि सोष्णीषाणि समाचरेत् ॥२५५॥

दो बार मधुपर्क के लिये काँसे के बर्तन को दही आदि से पूर्ण करे। बहुमूल्य वस्त्र, अँगूठी आदि आभूषण एवं पगड़ी के साथ-साथ महुऐ के पत्तों का छत्र बनावे।।२५५।।

पादुकाश्चाहरेत्तत्र वर्म्माभरणभूषिताः।
कृत्वैतत्फलमाप्नोति महायज्ञार्हणोपमम् ॥२५६॥

कवचरूपी आभरण से भूषित पादुका रखे। ऐसा करने से महायज्ञ के फलों के समान फल की प्राप्ति होती है।।२५६।।

अन्येभ्यो मधुपर्केण विप्रेभ्यः पूजनं स्मृतम्।
भक्त्या तद्द्विगुणं दद्यादाचार्य्याय सुभक्तिमान् ॥२५७॥

अन्य उपस्थित विप्रों की पूजा भी मधुपर्क से करे। भक्तिमान साधक को विप्रों से दुगुनी दक्षिणा आचार्य को देनी चाहिये।।२५७।।

अन्यैर्द्विजैः समं यत्र देशिकस्य प्रपूजनम्।
तस्मिन् यज्ञफलं स्वल्पमनावृष्टौ यथा क्षितेः ॥२५८॥

जहाँ पर अन्य ब्राह्मणों के समान ही आचार्य की भी पूजा की जाती है, उस यज्ञ का फल उसी प्रकार कम मिलता है, जैसे कि अनावृष्टि होने पर वर्षा का जल पृथ्वी को कम प्राप्त होता है।।२५८।।

एवं गुरुगृहं गत्वा प्रणम्य गुरुपादुके।
दत्त्वा वरणसामग्रीं सङ्कल्प्य वृणुयाद्गुरुम् ॥२५९॥
उच्चार्यमुक्तमन्त्रस्य ग्रहणाय द्विजोत्तम।
गुरुत्वेनेति सम्भाष्य त्वामहं च ततो वृणे ॥२६०॥
इत्युक्त्वा वृणुयाच्छिष्यो वृतोऽस्मीति ततो गुरुः।
यथोचितं गुरो कर्म कुरुष्वेति वदेच्छिशुः ॥२६१॥

इस प्रकार गुरुगृह जाकर गुरुपादुका को प्रणाम करके गुरु को वरण-सामग्री समर्पित कर सङ्कल्प करके गुरु का वरण करना चाहिये। उस समय शिष्य इन वाक्यों का उच्चारण करे—'हे द्विजोत्तम! अमुकमन्त्रस्य ग्रहणाय गुरुत्वेन त्वामहं वृणे' अर्थात् इस मन्त्र को ग्रहण करने के लिये गुरु के रूप में मैं आपका वरण करता हूँ। शिष्य द्वारा इस प्रकार वरण किये जाने पर गुरु कहे—'वृतोऽस्मि'। साथ ही शिष्य को यथोचित कर्म करने का आदेश दे।।२५९-२६१।।

करवाणीति चाचार्यो गुरोरेवाज्ञया ततः ।
ब्राह्मणान् वृणुयादष्टौ वेदवेदाङ्गपारगान् ॥२६२॥
तद्देवतोपासकांश्च ऋत्विक्त्वेनाथवा यदा ।
चत्वारि कुण्डानि तदा चत्वार ऋत्विजो मताः ॥२६३॥

तब गुरु के आदेशानुसार आचार्य शिष्य से कर्म करवावें। आचार्य शिष्य से आठ ब्राह्मणों का वरण करवावें। वरण होने वाले ब्राह्मणों को वेद और वेदाङ्ग के ज्ञान में पारङ्गत होना चाहिये। दीक्षा में जिस देवता का मन्त्र दिया जाना है, उसी का उपासक ऋत्विकों को होना चाहिये। अथवा यदि चार कुण्ड बनाये गये हों तो चार ऋत्विजों का ही वरण करना चाहिये।।२६२-२६३।।

ततः शिष्येण सहितो यायाद्यागगृहं गुरुः ।
उपविश्य च तद्द्वारे परीक्षामारभेत्ततः ॥२६४॥
शिष्याय मूलसञ्जप्तं प्रदद्याद्दन्तधावनम् ।
दन्तान्विशोध्य पुरतः स्थण्डिले हस्तमात्रके ॥२६५॥
चतस्रोऽभ्यानयेत्तत्तु परीक्षेत ततो गुरुः ।
तदग्रं यद्दिशासंस्थं तत्रेदं पूर्वतः फलम् ॥२६६॥
भूतिर्हृदयसन्तापो बन्धुनाशस्तथा मतिः ।
शोकश्च व्यग्रता सौख्यं ज्ञानलाभः क्रमात्फलम् ॥२६७॥

इसके बाद गुरु शिष्य के साथ यागमण्डप के द्वार पर आवे और उसकी परीक्षा लेना प्रारम्भ करे। शिष्य को देय मन्त्र का जप करके शिष्य को दतुवन दे। शिष्य द्वारा दाँतों को शोधन के बाद एक हाथ के स्थण्डिल के आगे शिष्य को ले आवे। वहाँ पर जिस दिशा की ओर मुख करके शिष्य को बैठाया जाता है, उसका फल इस प्रकार प्राप्त होता है—

दिशा	फल	दिशा	फल
पूरब	भूति की प्राप्ति	पश्चिम	शोक
अग्निकोण	हृदय में सन्ताप	वायव्य	व्यग्रता
दक्षिण	बन्धुनाश	उत्तर	सौख्य
नैर्ऋत्य	बुद्धिलाभ	ईशान	ज्ञान-लाभ

अमङ्गलस्थानयानप्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
अष्टाधिकं सहस्रं वा शतं विंशतिरेव वा ॥२६८॥
अस्त्रसम्पुटितेनैषां नाम्ना स्वाहान्वितेन च ।
दोषाञ्जहि जहीत्येवं पदं चैव नमोऽन्तकम् ॥२६९॥

अमंगल स्थान में दीक्षा देने के समय प्रायश्चित्त करना चाहिये। गोशाला, गुरुगृह, देव-मन्दिर, कानन, पुण्य क्षेत्र, उद्यान, नदीतट, आमला और बेलवृक्ष के निकट, पर्वतशिखर, गह्वर और गङ्गातीर में दी गई दीक्षा कोटिगुना फल देती है। गया, भास्कर क्षेत्र, कोणार्क, विरजा तीर्थ, चन्द्रशेखर पर्वत, चटगाँव, मातङ्ग देश, कामरूप दीक्षा के लिये निषिद्ध स्थान माने गये हैं। निषिद्ध स्थानों में दीक्षा के समय स्थान के नाम के पहले 'फट्', तब नाम, तब 'स्वाहा' दोषान् जहि-जहि नमः फट्' अर्थात् 'फट् गयां स्वाहा दोषान् जहि-जहि नमः फट्' मन्त्र का एक हजार आठ या एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस बार जप करना चाहिये।।२६८-२६९।।

केवलाज्येन जुहुयाद् दुःस्वप्ने चैवमेव हि।
दन्तकाष्ठं पुनर्देयं पुनर्दुष्टं च चेत्फलम्॥२७०॥
तृतीयमपि दुष्टं चेन्न ग्राह्या सा तु देवता।
वाममार्गे सकृदपि गुरुं शिष्यो विनाशयेत्॥२७१॥

रात में शिष्य को यदि दुःस्वप्न दिखाई दे तो केवल गाय के घी से हवन करवावे। फिर दतुवन से दाँत साफ करवावे। यदि दूसरे दिन भी अमंगल स्वप्न दिखाई दे तो दूसरे दिन भी दाँत साफ करवावे। यदि तीसरे दिन भी दुःस्वप्न दिखाई दे तो वह देवमन्त्र ग्राह्य नहीं होता। वाममार्ग में तो एक बार में ही शिष्य गुरु का विनाश कर देता है।।२७०-२७१।।

स्वप्नपरीक्षाविधिः

ततः स्वप्नपरीक्षां च कुर्यात्तद्विधिरुच्यते।
वैदिकानां दक्षिणानां वैष्णवानां च वामिनाम्॥२७२॥
यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवमावृत्य मन्त्रान्प्रयतस्त्रिदेवान्।
हविष्यभुग्दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत यथोपदेशम्॥२७३॥
भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन।
इष्टानिष्टे समाचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य यत्फलम्॥२७४॥

तदनन्तर वैदिकों, दक्षिणमार्गियों, वैष्णवों और वाममार्गियों के लिये की जाने वाली स्वप्न-परीक्षा की विधि कहता हूँ। त्रिदेवों में संयत चित्त होकर 'यज्जाग्रतो दूरमुदैति' ऋचा का जप करके हविष्य-भोजन करने के उपरान्त दाहिने करवट लेटकर शयन करके उपदिष्ट विधि से स्वप्न की परीक्षा करनी चाहिये। सोने के समय इस मन्त्र से भगवान् शिव की प्रार्थना करनी चाहिये—

भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन।
इष्टानिष्टे समाचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य यत्फलम्।।

अर्थात् हे भगवन्! देवदेवेश! त्रिशूलधारिन्! नन्दी पर सवार! आप शयन-काल में देखे गये स्वप्न के इष्ट-अनिष्ट का सम्यक् रूप से विवेचन करें।२७२-२७४।।

एवं सुप्ते कुशाकीर्णे चैकभुग्यतमानसः।
निशान्ते पश्यति स्वप्नं शुभं वा यदि वाशुभम् ॥२७५॥

इस प्रकार से एक बार भोजन करके संयत चित्त होकर कुशा की चटाई पर शयन करने से रात्रि के अन्तिम प्रहर में वह शुभ या अशुभ स्वप्न देखता है।।२७५।।

ॐ हृत्सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
विश्वेशविश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥२७६॥
स्वप्नमानय मन्त्रोऽयमुपवासी जितेन्द्रियः।
दर्भशय्यागतो रात्रौ स्वयं पश्येद्यथा तथा ॥२७७॥

उपवास व्रत का आरण कर जितेन्द्रिय रहते हुये रात्रि में कुश की शय्या पर शयन करने के समय निम्न मन्त्र से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

ॐ नमः सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
विश्वेश विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः स्वप्नमानय।।

इस प्रकार स्वप्न के लिये निवेदन करने से साधक रात्रि में जैसा भी स्वप्न देखता है, वह उसी प्रकार फलीभूत होता है।।२७६-२७७।।

भुक्त्वा शयीत शयने सुशुद्धे वसुधातले।
अर्धरात्रे समुत्थाय पादशौचं विधाय च ॥२७८॥
आचम्य देवं सम्पूज्य तं संस्मृत्य स्वपञ्चके।
शिवदैवतयोरैक्यं भावयेत्तु जपेदिदम् ॥२७९॥
नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने।
वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥२८०॥
स्वप्ने कथय मे नित्यं सर्वकार्यमशेषतः।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥२८१॥

रात में भोजन करके शुद्ध भूमि पर शयन करे। आधी रात में उठकर हाथ-पाँव धोकर आचमन करके देव-पूजन करे और अपने मस्तक में उनका स्मरण करे। शिव और देवता में ऐक्य भावना करते हुये निम्न मन्त्र जप करे—

नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिंगलाय महात्मने।
वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः।।
स्वप्ने कथय मे नित्यं सर्वकार्यमशेषतः।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर।।

अर्थात् हे स्वप्नाधिपति! आप अजन्मा, तीन नयनों वाले, पिंगल वर्ण, महात्मा, वामदेव एवं विश्वरूप हैं; आपको प्रणाम है। आप नित्य स्वप्न में सभी करणीय कार्यों का निर्देश दें। आपकी कृपा से मेरा कार्य सिद्ध हो।।२७८-२८१।।

दीक्षितो दीक्षितानां च यथास्वप्ने प्रजायते।
शृण्वन्तु देवा भोः सर्वे सावधानास्तु तद्विधिम्॥२८२॥

दीक्षार्थी और दीक्षितों के स्वप्न—दीक्षार्थी और दीक्षितों को जिस प्रकार के स्वप्न आते हैं, हे देवताओं! आप सावधानी-पूर्वक उन्हें सुनिये।।२८२।।

पार्थिवेश्वरपूजान्ते रविवर्णं जपेन्मनुम्।
जुहुयात्तद्दशांशेन बिल्वपत्रैर्घृतप्लुतैः॥२८३॥
तर्पणं मार्जनं कृत्वा कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
सिद्धस्तस्य भवेन्मन्त्रः स्वप्ने वक्ति हृदि स्थितम्॥२८४॥
तारो हलिद्वयं शूलपाणये द्विठ ईरितः।
स्वप्नमानय मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षर ईरितः॥२८५॥

शिष्य पार्थिवेश्वर पूजन के बाद बारह अक्षरों के मन्त्र का जप करे। जप के बाद जप का दशांश हवन घी से प्लुत बेलपत्रों से करे। हवन का दशांश तर्पण और तर्पण का दशांश मार्जन एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मण-भोजन करावे। ऐसा करने से उसका मन्त्र सिद्ध हो जाता है और वह मन्त्र उसके हृदय में स्थित होकर उसके स्वप्न में शुभ-अशुभ का कथन करता है। उस मन्त्र में 'ॐ' तब 'हलि हलि' तब 'शूलपाणये' तब 'ठः ठः'—ये बारह अक्षर होते हैं। स्वप्न में शुभाशुभ का वृत्तान्त बतलाने वाले इस द्वादशक्षर मन्त्र का स्वरूप है—ॐ हलि हलि शूलपाणये ठः ठः।।२८३-२८५।।

स्वप्ने तु प्रथमे यामे वत्सरे तत्फलं भवेत्।
षड्भिर्मासैर्द्वियामे तु त्रिभिर्मासैस्त्रियामके॥२८६॥
चतुर्थे मासमात्रेण प्रातःकाले तु सत्वरम्।
स्वप्ने निद्रा फलघ्नी स्यात्स्वप्नो वाच्यो न चान्यथा॥२८७॥

रात्रि के प्रथम प्रहर में जो स्वप्न आता है, उसका फल एक वर्ष में मिलता है। दूसरे प्रहर में जो स्वप्न आता है, उसका फल छः महीने में प्राप्त होता है। तीसरे प्रहर का स्वप्न तीन माह में फलप्रद होता है और चौथे प्रहर का स्वप्न एक माह में फलदायक होता है। प्रातःकाल का स्वप्नफल शीघ्र प्राप्त होता है। स्वप्न के बाद सोने से स्वप्नफल नहीं मिलता। स्वप्न को किसी दूसरे से नहीं कहना चाहिये। बुरे स्वप्नों को दूसरे से कहना चाहिये।।२८६-२८७।।

चिन्ता हृद्या तदीयं यत्तत्फलं नैव विद्यते।
वाताधिक्याद् भवेत्स्वप्नः सहसोड्डानपूर्वकः ॥२८८॥
पित्तात्तेजोऽग्निपीतादि रक्तं क्रोधादिकं तथा।
श्लेष्मणः श्वेतशीतादि शयनाद्यं बलासनम् ॥२८९॥

हृदय में चिन्ता होने पर जो स्वप्न होते हैं, उनका कोई फल नहीं होता। वाताधिक्य के कारण जो स्वप्न दिखाई देता है, उसमें मनुष्य स्वप्न के साथ-साथ अपने को भी अचानक आकाश में उड़ता देखता है। शयन के पूर्व पित्त की अधिकता होने पर पीले रंग की, क्रोध की अधिकता होने पर लाल रंग की और कफ की अधिकता होने पर श्वेत रंग की रोशनी दिखायी पड़ती है। सोने के समय लगने वाला ठण्ढ भी स्वप्न को प्रभावित करता है।।२८८-२८९।।

वातैः प्रातस्त्वङ्गमर्दः पित्तैर्दाहस्तु नेत्रयोः।
कफात्प्रवेपते नित्यं हृद् द्वे द्वन्द्वे त्रयं त्रिषु ॥२९०॥

वात की प्रबलता होने पर प्रातःकाल उठने पर अंगों में दर्द होता है, पित्त की प्रबलता होने पर आँखों में जलन होती है एवं कफ प्रकृति वाले मनुष्यों के हृदय में बराबर द्वन्द्व बना रहता है। इस प्रकार तीनों में तीन प्रकार के द्वन्द्व रहते हैं।।२९०।।

सिद्धं वा स्वगुरुं देवं प्रसन्नां च कुमारिकाम्।
गङ्गां भागीरथीं भानुं लिङ्गिनं लिङ्गमैश्वरम् ॥२९१॥
बालं छत्रं रथं दीपं प्रासादं कमलं नदीम्।
कुञ्जरं वृषभं माल्यं समुद्रं फलितद्रुमम् ॥२९२॥
पर्वतं प्रज्वलद्वह्निमाममांसं सुरासवम्।
ग्रहान् भानि विधुं सूर्यं रत्नान्याभरणानि च ॥२९३॥
सिंहासनं विमानं च ध्वजं वाद्याभिषेचनम्।
श्वेतचन्दनवस्त्राणि शालयः कुङ्कुमं मधु ॥२९४॥
राजा सिद्धार्थकं नार्यो नवभाण्डं च पायसम्।
अश्वं फलानि सिद्धान्नं दधि बालं विलासिनम् ॥२९५॥
दुग्धं वाद्यानि चाषं च मयूरं नकुलं मृगम्।
बद्धभेकपरं पुष्पं सद्वाक्यं चक्षुरञ्जनम् ॥२९६॥
पूर्णकुम्भं दर्पणं च मीनं मद्यं च भोजनम्।
शवं रोदनहीनं च पुण्ड्राणि च पताकिका ॥२९७॥
भारद्वाजनृपाणां च वेदशब्दं च गायनम्।
कशां माङ्गल्यगीतानि चाङ्कुशं युद्धदं प्रियम् ॥२९८॥

स्वप्ने दृष्ट्वा तु चैनानि साधकः सिद्धिमाप्नुयात्।
व्याध्याद्यार्त्ते नास्ति दुःखं सामान्यः सुखमाप्नुयात्॥२९९॥

शयन की अवस्था में यदि साधक इस प्रकार के स्वप्न देखता है तब उसे सिद्धि प्राप्त होती है—१. सिद्ध, २. स्वगुरु, ३. देवता, ४. प्रसन्न बालिका, ५. गंगा, ६. भागीरथी, ७. सूर्य, ८. शिवलिङ्ग, ९. लिङ्गेश्वर, १०. बालक, ११. छाता, १२. रथ, १३. दीपक, १४. महल, १५. कमल, १६. नदी, १७. हाथी, १८. साँड़, १९. माला, २०. समुद्र, २१. फलयुक्त वृक्ष, २२. पर्वत, २३. प्रज्वलित अग्नि, २४. आममांस अर्थात् कच्चा मांस, २५. सुरा, २६. आसव, २७. ग्रह, २८. नक्षत्र, २९. चन्द्र, ३०. सूर्य, ३१. रत्न, ३२. आभूषण, ३३. सिंहासन, ३४. विमान, ३५. झण्डा, ३६. बाजा के साथ अभिषेक, ३७. श्वेत चन्दन, ३८. वस्त्र, ३९. धान्य, ४०. कुमकुम, ४१. मधु, ४२. राजा, ४३. सरसों, ४४. नारी, ४५. नया वर्त्तन, ४६. खीर, ४७. घोड़ा, ४८. फल, ४९. पकवान, ५१. दही, ५२. विलासी बालक, ५३. दूध, ५४. विविध प्रकार के वाद्य, ५५. नीलकण्ठ, ५६. मोर, ५७. नेवला, ५८. हरिण, ५९. बद्ध मेढ़क, ६०. फूल, ६१. सद्वाक्यों का श्रवण, ६२. आँखों के अंजन, ६३. जल से भरा घड़ा, ६४. दर्पण, ६५. मत्स्य, ६६. मद्य, ६७. भोजन, ६८. रोदन से रहित शव, ६९. लाल ईख, ७०. पताका, ७१. चातक, ७२. नृपवृन्द, ७३. वेदशब्दों का श्रवण, ७४. गायन, ७५. रस्सी, ७६. माङ्गलिक गीत, ७७. युद्धप्रदायक अंकुश एवं ७८. प्रिय व्यक्ति। स्वप्न में उपर्युक्त सबों को देखने से साधक को सिद्धि प्राप्त होती है। स्वप्न में व्याधि से पीड़ित होने पर कोई कष्ट नहीं होता; अपितु सामान्य सुख की प्राप्ति होती है।।२९१-२९९।।

कायकर्मणि शुभस्वप्नाः

यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति।
कामयन्तीं नदीं सिन्धुं द्विजं श्वेताम्बरं तथा॥३००॥
भास्करोदयनं चैव ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः।
हर्म्यप्रासादनागाश्ववृषशैलाग्निरोहणम् ॥३०१॥
भोजनं दधिभक्तस्य पक्वमांसस्य भक्षणम्।
कृमिविष्ठानुलेपश्च रुधिरेणाभिषेचनम्॥३०२॥
ताम्बूलभक्षणं मद्यपानं दध्यभिवन्दनम्।
प्रचन्द्रकिरणं स्वप्ने कार्यसिद्धेः सुलक्षणम्॥३०३॥

काम्य कर्मों में शुभ स्वप्न—काम्य कर्मों के प्रारम्भ में जो साधक इस प्रकार के स्वप्न देखते हैं, उन्हें काम्य कर्मों में सिद्धि प्राप्त होती है—कामातुर स्त्री, नदी,

सागर, द्विज, श्वेत वस्त्र, सूर्योदय, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, गृह-महल-हाथी-घोड़ा-साँड़-पर्वत-अग्नि पर चढ़ना, दधि-भात का भोजन, पके मांस को खाना, कृमि एवं विष्ठा का शरीर में लेप, रुधिर से अभिषेक, पान खाना, मद्यपान करना, दधि से अभिवन्दन एवं पूर्ण चन्द्र की किरणें। उपर्युक्त से सम्बद्ध स्वप्न कार्यसिद्धि-हेतु शुभ लक्षणयुक्त माने जाते हैं।।३००-३०३।।

कृष्णाम्बरधरा नारी कृष्णगन्धानुलेपना।
उपगूहति यं स्वप्ने सा रात्रिस्तस्य पश्चिमा ॥३०४॥

काले वस्त्र को धारण की हुई, काले गन्ध के अनुलेपन से युक्त तथा बालों में वेणी बनाती हुई स्त्री यदि स्वप्न में दिखाई देती है तो वह रात्रि देखने वाले के लिये उसके जीवन की अन्तिम रात्रि होती है।।३०४।।

एवन्तु रक्तया व्याधिः शोकोऽरुणसमानया।
नीलया कलहो हत्या पीतया करदो भवेत् ॥३०५॥

इसी प्रकार रक्त गन्ध के अनुलेपन से युक्त, बालों में वेणी बनाती हुई वस्त्र धारण करने वाली स्त्री के दिखाई देने पर द्रष्टा को व्याधि होती है; अरुण वस्त्रधारिणी के दर्शन से शोक होता है; नीले वस्त्र से युक्त नारी को देखने से कलह एवं हत्या तथा पीत वस्त्रयुक्त को देखने से कर प्रदान करना पड़ता है।।३०५।।

श्वेताम्बरधरा नारी श्वेतमाल्यानुलेपना।
उपगूहति यं स्वप्ने तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥३०६॥

यदि साधक को स्वप्न में श्वेत वस्त्र एवं श्वेत मालाधारिणी तथा श्वेत अनुलेपयुक्त नारी अपनी वेणी बनाती हुई दिखाई दे तो उसे सभी ओर से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।।३०६।।

अशने शयने पाने शरीरे वाहने गृहे।
ज्वलमाने विबुध्येत तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥३०७॥

भोजन, शयन, पान, शरीर, वाहन एवं गृह को जलता हुआ देखने पर साधक को सर्वतोमुखी सम्पदा की प्राप्ति होती है।।३०७।।

सितोरगस्य दंशश्चेज्जायते दक्षिणे करे।
दशाहात्स भवेद्भोगी रोगी रोगाद्विमुच्यते ॥३०८॥

स्वप्न में यदि साधक के दाहिने हाथ में उजला साँप काटे तो दश दिनों में वह साधक सभी भोगों को प्राप्त करता है एवं रोगी नीरोग हो जाता है।।३०८।।

निगडैर्बहुपाशैश्च बध्यते वा युतो भवेत्।
प्रतिष्ठा वर्धते तस्य दुग्धपानधनात्ययः ॥३०९॥

साधक यदि स्वप्न में अपने को सीकड़ और रस्सी से बँधा हुआ देखे तो उसकी प्रतिष्ठा में बढ़ती है; साथ ही उसके द्वारा दुग्धपान करने पर उसके धन-धान्य की हानि होती है।।३०९।।

सुरां रक्तं पिबन् विद्यां लभेद्विप्रो धनं परम्।
दधि दृष्टे भवेत्प्रीतिर्गोधूमैश्च धनागमः ॥३१०॥

साधक विप्र यदि स्वप्न में अपने को सुरापान अथवा रुधिरपान करते हुए देखे तो उसे विद्या की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार दधि देखने पर प्रीति होती है एवं गेहूँ देखने पर धन का आगम होता है।।३१०।।

सिद्ध्या विद्यागमं विद्याल्लाभः सिद्धार्थकैस्तथा।
दधिलाभो ददेदर्थान् घृतलाभाद् ध्रुवञ्जयः ॥३११॥

स्वप्न में सिद्धि अर्थात् किसी कार्य की निष्पन्नत देखने पर विद्या का आगम होता है; सरसों देखने पर लाभ होता है; दधि प्राप्त होने पर धन की प्राप्ति होती है एवं घी की प्राप्ति होने पर निश्चय ही विजय की प्राप्ति होती है।।३११।।

घृताशनाद्धनक्लेशो जयस्तु दधिभक्षणात्।
लिङ्गानामर्चनं दृष्ट्वा व्यवहारोऽत्र जायते ॥३१२॥

स्वप्न में घी खाने से धन से कष्ट होता है, दही खाने से विजय होती है एवं लिङ्गार्चन देखने से व्यवहार की प्राप्ति होती है।।३१२।।

यस्तु मध्ये तडागादेर्भुञ्जीत घृतपायसम्।
निष्कम्पे पुष्करे पत्रे तं विद्यात्पृथिवीपतिम् ॥३१३॥

जो निस्तरंग शान्त तालाब के मध्य में कमल के पत्ते पर घी एवं पायस (खीर) का भक्षण करता है, वह पृथिवी का स्वामी अर्थात् राजा होता है।।३१३।।

देवता लिङ्गिनो गावः पितरो ब्राह्मणो नृपः।
यद्वदन्ति नरं स्वप्ने तत्तथैव भविष्यति ॥३१४॥

स्वप्न में व्यक्ति से देवता, ब्रह्मचारी, गाय, पितर, ब्राह्मण और राजा जो कहते हैं, वह उसी प्रकार होता है।।३१४।।

अत्रैः संवेष्टयेद्यस्तु ग्रामं वा नगरं तथा।
ग्रामे मण्डलराज्यं स्यान्नगरे पार्थिवो भवेत् ॥३१५॥

जिस साधक को स्वप्न में अन्न से घिरा हुआ ग्राम दिखाई देता है, वह मण्डल का अधिपति होता है एवं जिस साधक को अन्न से घिरा नगर दिखाई देता है, वह राजा होता है।।३१५।।

चन्द्रतारार्कग्रहणं परिमार्गणमेव च।
भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणां वा वधक्रिया ॥३१६॥
जयो विवादे द्यूते च शत्रूणाञ्च तथा जयः।
वडवामहिषीसिंहीगोहस्तिन्यादिदोहनम् ॥३१७॥
प्रसादो गुरुविप्रेषु देवसिद्धादिकाच्छुभम्।
स्नानं राज्याभिषेकश्च स्वशिरश्छेदनं मृतिः ॥३१८॥
तीर्थोदकानान्तरणं तथा विषमलङ्घनम्।
गोहस्तिवडवासूतिर्वह्निलाभस्तथैव च।
परस्त्र्यालिङ्गनं तस्या लाभो रोदनमेव च ॥३१९॥
विष्ठालेपः कुन्दजातीबकुलानाञ्च दर्शनम्।
रणद्यूतविमर्देषु जयो निगडबन्धनम् ॥३२०॥
पशुमर्त्यमृगाणाञ्च लब्धिरध्यासनन्तथा।
शिखिलाभः श्वेतवस्त्रं पुष्पचन्दनधारणम् ॥३२१॥
मणितारसुवर्णादिपात्रे भोजनकन्तथा।
पश्येत्तदा साधकस्य ज्ञेया सिद्धिरितस्ततः ॥३२२॥
कार्यार्त्तानां कार्यसिद्धिरितरेषां धनागमः।

चन्द्र, तारा, सूर्यग्रहण एवं इन सभी का भ्रमण; धरती पर जलप्लावन; शत्रु का परास्त होना या उसका वध होना; विवाद एवं जुआ में जीत; शत्रुओं पर विजय; घोड़ी, भैंस, सिंहनी, गाय, हस्तिनी आदि का दुग्ध-दोहन; गुरुओं एवं विप्रों की प्रसन्नता; देवता, सिद्ध आदि का शुभ दर्शन; स्नान, राज्याभिषेक, अपने शिर का उच्छेद, अपनी मृत्यु, तीर्थोदक को तैर कर पार करना, विषम लंघन, गाय, हथिनी, घोड़ी का प्रसव, अग्नि की प्राप्ति, परस्त्री का आलिंगन, उससे मैथुन, उसका रुदन; विष्ठा का लेप, कुन्द-बकुल एवं वेला के फूलों का दर्शन; युद्ध, जुआ एवं मल्लयुद्ध में जय, सीकड़ में बँधना, पशु, मनुष्य एवं मृग की प्राप्ति तथा उन पर सवार होना, मयूर की प्राप्ति, श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्प एवं श्वेत चन्दन को धारण करना; मणि, चाँदी, सोना के पात्रों में भोजन—इनके स्वप्न में देखने के साधक को सिद्धि की प्राप्ति होती है; इन स्वप्नों को देखने से कार्य से पीड़ित लोगों को कार्यसिद्धि तथा सामान्य लोगों को धन की प्राप्ति होती है।।३१६-३२२।।

अशुभस्वप्नाः

वन्ध्याचर्मतुषाग्न्यादिलवणाङ्गारमिन्धनम् ॥३२३॥
विट्क्लीबोन्मत्ततैलादिजटिलादिवसौषधम् ।
रोगी नृणान्तु संन्यासी नग्नस्त्यक्तः क्षुधातुरः ॥३२४॥
विमुक्तकेशः पतितोभ्यङ्गासृक्शरविक्षतः ।
मार्जारयुद्धं कार्पासो गर्भिणी च रजस्वला ॥३२५॥
गुडस्तक्रञ्च काषायी पङ्क एरण्डका गृहे ।
वज्रादिकस्य स्खलनं सुरा पशुमलन्तथा ।
अन्धः कुब्जो दुर्वचनो बधिरः खञ्जकुब्जकौ ॥३२६॥
वमनं च घटो रिक्तो रजको मलिनाम्बरः ।
एतैर्दृष्टैर्न कार्यं स्याद्रोगी मृत्युमवाप्नुयात् ॥३२७॥

अशुभ-स्वप्न—निम्नलिखित स्वप्न-दर्शन अशुभ होते हैं—वन्ध्या स्त्री, चमड़ी, भूसी की अग्नि, नमक, अंगार, इन्धन, विट्, क्लीव, उन्मत्त, तेल, जटाधारी, वसा, औषधि, रोगी मनुष्य, संन्यासी, नंगा, त्यक्त मनुष्य, भूखा, खुले केश वाला, पतित, अभ्यङ्ग, रुधिरधार, शर से घायल, विड़ालों की लड़ाई, कपास, गर्भवती स्त्री, रजस्वला स्त्री, गुड़, मट्ठा, गेरुआ वस्त्रधारी, कीचड़, घर में एरण्ड का वृक्ष, वज्रपात, शराब, पशुओं का मल, अन्धा, कुबड़ा, दुर्वचन बोलने वाला, बहरा, लंगड़ा, वमन, खाली घड़ा, धोबी, मैले-कुचैले कपड़ों वाला मनुष्य आदि को देखने पर कार्यार्थी को कार्य की सिद्धि नहीं होती एवं रोगी व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है।।३२३-३२७।।

अशोकं करवीरञ्च पलाशञ्चापि पुष्पितम् ।
स्वप्नेऽपि सलिलन्दृष्ट्वा नरः शोकमवाप्नुयात् ॥३२८॥

पुष्पित अशोक, कनैल, पलाश और जल को स्वप्न में देखने पर मनुष्य शोक को प्राप्त करता है।।३२८।।

रूपान्तरे प्रवेशश्च दक्षिणाशागतिस्तथा ।
पङ्के निमज्जनं स्नानं पुत्रभार्याविनाशनम् ॥३२९॥

दूसरे रूप में प्रवेश, दक्षिण दिशा की यात्रा, कीचड़ में गिरना एवं स्नान के स्वप्न पुत्र और पत्नी के विनाश को सूचित करने वाले होते हैं।।३२९।।

गोहस्तिद्विजविप्रादौ दृष्टे कृष्णे च शोभनम् ।
रक्तगन्धाम्बरः स्रग्वी कृष्णो वा दक्षिणामुखः ॥३३०॥
खरोष्ट्रमहिषारूढस्त्रिमासं न स जीवति ।
स्वप्ने वापि मठे गेहे द्वारं यस्य पिधीयते ॥३३१॥

न चोत्तिष्ठति यत्तस्य मासान्तं किल जीवितम्।
वांतिमूत्रपुरीषञ्च सन्तानजननं च्युतिः।
शुक्रस्य यस्य च स्वप्ने तस्यायुर्दशमासकम् ॥३३२॥

कृष्ण वर्ण के सुन्दर गाय, हाथी, द्विज, विप्र के दिखाई देने पर; लाल चन्दन और वस्त्र माला धारण किये हुये दक्षिण दिशा की ओर मुख करके अपने को गदहे, ऊँट और भैंसे पर सवार देखे तो वह तीन माह भी जीवित नहीं रहता। अथवा जिसके स्वप्न में मठ और घर का द्वार बन्द दिखायी पड़े अथवा जिससे उठा न जा सके, वह एक माह तक ही जीवित रहता है। सपने में जो वमन करे, मल-मूत्र का त्याग करे, सन्तान उत्पन्न हो एवं शुक्र का क्षय हो, उसकी आयु मात्र दश मास ही शेष रहती है।।३३०-३३२।।

बाध्यते विकृतैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः।
पाषाणैस्ताड्यते वापि तस्य मृत्युर्न संशयः ॥३३३॥

स्वप्न में जिसे कुरूप, काला पुरुष आयुध लेकर बाधा उत्पन्न करे और पत्थर से मारे, उसकी मृत्यु होने में कोई शंका नहीं रहती।।३३३।।

महिषोष्ट्रखरारूढस्तैलाभ्यक्तश्च मुण्डितः।
दक्षिणाशाम्प्रस्थितो यस्तस्य मृत्युर्न संशयः ॥३३४॥

जो व्यक्ति अपने को शरीर में तेल लगा हुआ, मुण्डित शिर वाला होकर भैंसा, ऊँट अथवा गदहे पर सवार हो दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करता हुआ स्वप्न में देखे, उसकी मृत्यु के बारे कोई सन्देह नहीं रहता।।३३४।।

पश्येत्प्रासादपतनं ग्रहस्य शशिसूर्ययोः।
पर्वतानाञ्च वृक्षाणामधिकाराच्च्युतिर्भवेत् ॥३३५॥

जो सपने में कोठे से गिरे; ग्रह, चन्द्र, सूर्य का पतन देखे; पर्वत और वृक्षों को गिरते देखे, वह अपने अधिकार से पतित होता है।।३३५।।

हानिश्चैव स्वगात्राणां व्याधितोऽभिभवस्तथा।
गृहसम्मार्ज्जनं लेपो गोमयेन मृदापि वा ॥३३६॥
तीर्त्वा नदीं समायातस्तीरेऽन्यद्वसनन्धृतम्।
रोगी रोगाद्विमुच्येत हानिः स्वस्थस्य जायते ॥३३७॥

जो अपने अंगों का क्षय एवं व्याधि से पीड़ित देखे, घर को साफ कर गोबर या मिट्टी से लेपन करे, नदी में तैरते हुये पार कर तट पर आकर दूसरे वस्त्र को धारण करे, वह यदि रोगी हो तो रोग से मुक्त होता है एवं स्वस्थ हो तो उसका स्वास्थ्य क्षीण होता है।।३३६-३३७।।

पुन्नामानो मृगगणाः पोतकी सूकरी तथा।
पिङ्गला छुच्छुका पल्ली वामाङ्गे कोकिलाः शिवाः ॥३३८॥
स्त्रीनामानो मृगगणाः श्रीकण्ठो वानरो रुरुः।
छिकरः प्रियको भासो दक्षे काकर्क्षकुक्कुराः ॥३३९॥
दृष्टाश्चेद्रोगिणो रोगनाशः साधकसिद्धये।
स्वस्थस्य धनलाभादि बहुव्यापारशोभनम् ॥३४०॥

जो अपने बाँयें नर मृगों का झुण्ड, मादा कबूतर, सूकरी, वेश्या, छुछुन्दरी, छिपकली, कोकिला, सियारिन तथा दाँयें हरिणियों का झुण्ड, नीलकण्ठ, वानर, रुरु मृग, छिकर, प्रियक, भास, कौवा, ऋछ एवं कुत्ता को देखता है तो वह यदि रोगी हो तो नीरोग होता है, साधक हो तो सिद्धि प्राप्त करता है, स्वस्थ हो तो धन-लाभ करते हुये विस्तृत व्यापार वाला होता है।।३३८-३४०।।

त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा हविष्याशी पुरोहितः।
सक्षीराणां घृताक्तानां समिधां चांशतो हुनेत् ॥३४१॥
पालाशानान्तु गायत्र्या शूद्रः स्नात्वा हविष्यभुक्।
दीपन्दद्याद्विप्रगेहे विष्णोर्गेहे शिवालये ॥३४२॥
एवन्दृष्ट्वा शुभं स्वप्नं गृह्णीयान्मनुमन्यथा।
गृहीते हानिरेव स्याच्चान्यदेवं विचिन्तयेत् ॥३४३॥

तीन रात्रि उपवास करने के उपरान्त हविष्य का भोजन करके पुरोहित को घी में डूबोये पलाश आदि दुग्धवृक्ष की समिधा से गायत्री मन्त्र से सौ आहुति देनी चाहिये। शूद्र को स्नान के बाद हविष्यान्न भोजन कर ब्राह्मण के घर में, विष्णु के मन्दिर में अथवा शिवालय में दीपदान करना चाहिये। तदनन्तर शुभ स्वप्न देखने पर ही मन्त्र ग्रहण करना चाहिये; अन्यथा मन्त्र ग्रहण करने से हानि होती है। अथवा दूसरे प्रकार से मन्त्र-ग्रहण का विचार करना चाहिये।।३४१-३४३।।

एवं विचार्य सततं गुरुपूजां समारभेत्।
विधायाचमनन्तत्र सामान्यार्घ्यं विधाय च ॥३४४॥
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य द्वारपूजां समाचरेत्।
ततश्च देशिको विघ्नान्दिव्यानास्फोटनेन च ॥३४५॥
अन्तरिक्षगतानन्तर्मन्त्रैरुत्सारयेत् क्रमात्।
पार्थिवान्पार्ष्णिघातैश्च त्रिभिरुत्सारयेत्ततः ॥३४६॥
अङ्गं सङ्कोच्य किञ्चित्तु शाखां वामगतां स्पृशेत्।
उत्सारयेत विघ्नानां ददन्मार्गं तु दक्षिणे ॥३४७॥

पादेन दक्षिणेनाथ प्रविशेद्यागमण्डपम् ।
वाममार्गेऽथवा शाक्ते वामपादपुरःसरम् ॥३४८॥

इस प्रकार विचार करके निरन्तर गुरुपूजन करता रहे। आचमन और अर्घ्य का विधान करके अर्घ्योदक से प्रोक्षण करके द्वारपूजा करे। तब देशिक दिव्य दृष्टि से देखकर चुटकी बजावे। इसके बाद गुरु 'अन्तरिक्षगतानन्त' मन्त्र से भूमि पर तीन बार एँड़ी से आघात करके विघ्नों का उत्सारण करे। अङ्गों को थोड़ा सिकोड़कर द्वार के वाम शाखा को स्पर्श करे एवं दक्षिण मार्ग में विघ्नों का उत्सारण करे। दक्षिण मार्गी यागमण्डप में पहले दाँयाँ पाँव आगे करके प्रवेश करे एवं वाममार्गी या शाक्त पहले बाँयाँ पाँव यागमण्डप में रखकर प्रवेश करे।।३४४-३४८।।

ब्रह्माणं वास्त्वधीशञ्च नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत् ।
अर्घ्याम्बुना च गव्येन यागस्थाने सुसेचयेत् ॥३४९॥
वीक्षणाद्यैस्ततः शुद्धिं चतुर्धा वा समाचरेत् ।
संवीक्ष्य मूलमनुना त्वस्त्रेण प्रोक्षयेत्ततः ॥३५०॥
कुर्यात्ताडनमस्त्रेण कवचेनावसेचयेत् ।
श्रीखण्डागुरुमन्त्रैश्च धूपितेऽस्त्रेण सप्तधा ॥३५१॥
जयाचन्दनसिद्धार्थदूर्वाभस्माक्षतान् कुशान् ।
सलाजान्विकिरेन्मन्त्री प्रत्यूहघ्नान्हि मण्डपे ॥३५२॥

ब्रह्मा एवं वास्तु देवता का पूजन नैर्ऋत्य दिशा में करे। अर्घ्य जल से और गोवर से यागस्थान को सिञ्चित करे। वीक्षण आदि करने के उपरान्त चार प्रकार की शुद्धि करे। मूल मन्त्र से वीक्षण करके अस्त्रमन्त्र 'फट्' से प्रोक्षण करे। अस्त्र मन्त्र से ताड़न करे। कवच से अवसेचन करे। मन्त्र बोलकर श्रीखण्ड और अगर से सात वार धूप प्रदान करे। जया, चन्दन, सरसों, दूब, भस्म, अक्षत, कुश और लावा मिलाकर विघ्नों को हटाने के लिये मंण्डप में बिखेरे।।३४९-३५२।।

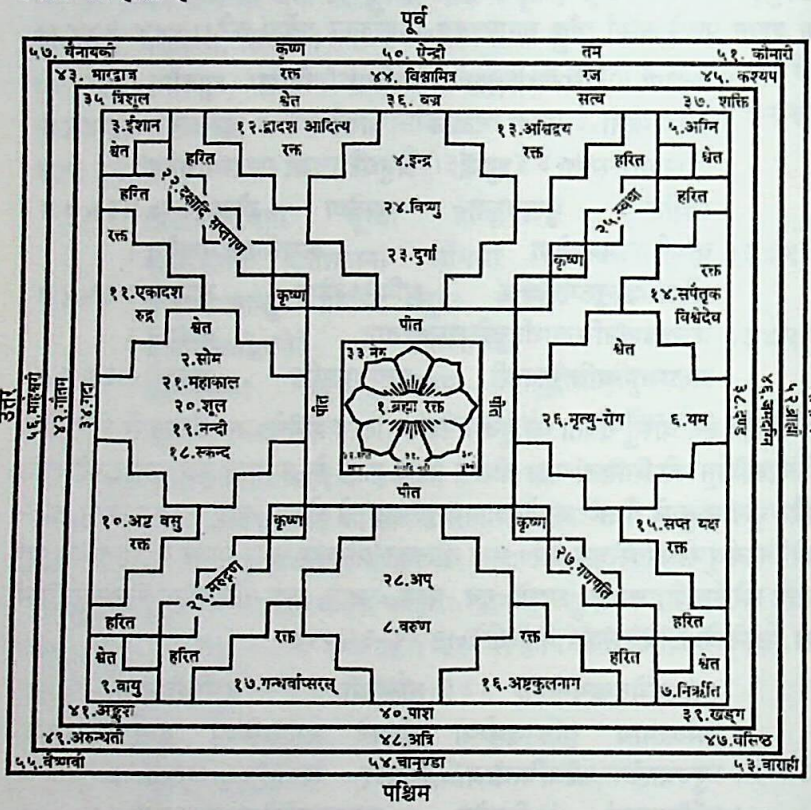
मार्ज्जयेदस्त्रमन्त्रेण तान्मन्त्री दर्भमुष्टिना ।
आसनाय तु वर्धन्या ईशाने स्थापयेच्च तान् ॥३५३॥
पुण्याहं वाचयित्वाथ विप्रान् सन्तोष्य यत्नतः ।
वेदिकायां लिखेत् पश्चात्सर्वतोभद्रमण्डलम् ॥३५४॥

एक मुट्ठी कुश लेकर मण्डप का मार्जन अस्त्रमन्त्र से करे। वर्धनी अर्थात् झाड़ू से साफ करके आसन के लिये कुशों को ईशान कोण में स्थापित करे। पुण्याहवाचन कराकर यत्नपूर्वक विप्रों को सन्तुष्ट करे। इसके बाद वेदी पर सर्वतोभद्रमण्डल का अंकन करे।।३५३-३५४।।

सर्वतोभद्रचक्रविधिः

शृणु तस्य विधिं श्रौते स्मार्ते यद्भद्रमिष्यते।
धृतिवर्गसमाः कार्याः कोष्ठकाश्चतुरस्रकाः ॥३५५॥

सर्वतोभद्र मण्डल-निर्माण विधि—अब श्रौत और स्मार्त कर्मों में उपयोगी सर्वतोभद्र की विधि का वर्णन सुनो। १८ बराबर वर्गों से एक बड़ा वर्ग बनावे। इसका अर्थ हुआ कि बाँयें से दाँयें १९ रेखा और ऊपर से नीचे १९ रेखा बराबर दूरी पर खींचने से १८×१८=३२४ वर्ग एक बड़े वर्ग में बन जाते हैं। यह सर्वतोभद्र निम्न प्रकार का होता है—



खण्डेन्दुस्त्रिपदैः कोणे श्वेतवर्णेन पूरयेत्।
कोणस्थैः पञ्चभिः कोष्ठैः शृङ्खला कृष्णवर्णिका ॥३५६॥
शृङ्खलोभयतो नीला वल्ली शङ्करकोष्ठका।
शृङ्खलोभयतो भद्रमरुणं नवभिः पदैः ॥३५७॥

वापी जिनपदा श्वेता पीतान्तःपरिधिर्भवेत् ।
मध्ये षोडशपद्मं तु रुचिरं वेष्टयेद्बहिः ॥३५८॥
श्वेतारुणासितैरेवं सर्वतोभद्रमण्डलम् ।

मण्डल के चारो कोणों के तीन-तीन वर्गों को चन्द्रखण्ड के समान श्वेत वर्ण के चूर्ण से पूर्ण करे। कोण से कोण तक के पाँच-पाँच कोष्ठों को शृंखलाकार में काले रंग के चूर्ण से पूर्ण करे। शृङ्खलाओं के दोनों ओर शंकर कोष्ठों को वल्ली के समान नीले चूर्ण से भरे। भद्र में शृङ्खला के दोनों तरफ नव-नव कोष्ठों को लाल रंग से भरे। वापी के आकार के तेईस पदों को श्वेत चूर्ण से पूर्ण करे। अन्तःपरिधि को पीले चूर्ण से भरे। मध्य के सोलह कोष्ठों को बाहर से सुन्दर रूप में वेष्टित करे। इस प्रकार श्वेत, रक्त और कृष्ण वर्ण का सर्वतोभद्र मण्डल निष्पन्न होता है।।३५६-३५८।।

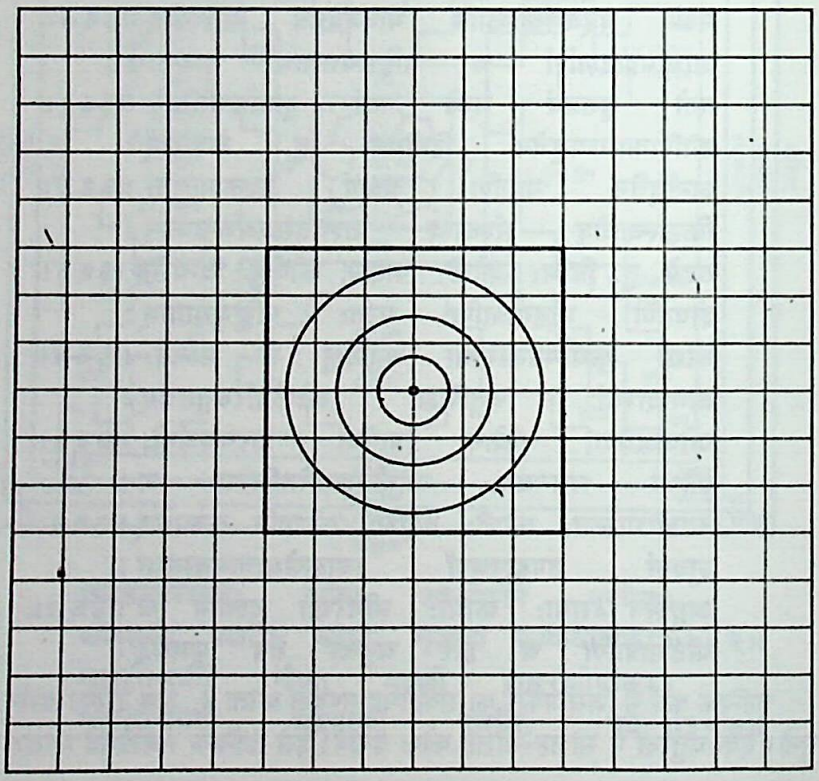
तान्त्रिकसर्वतोभद्रमण्डलविधिः

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि कुर्यात्तान्त्रिककर्मणि ॥३५९॥
नृपवर्गसमाः कार्याः कोष्ठकाश्चतुरस्रकाः ।
मध्ये षड्वर्गकोष्ठानि मार्ज्जयेत्तत्र संलिखेत् ॥३६०॥
आयामद्वादशांशं च बहिस्त्यक्त्वाथ मध्यतः ।
ततो वृत्तत्रयं मध्ये समं कुर्याद्यथाविधि ॥३६१॥
कार्णिकामध्यवृत्तेन द्वितीयेन तु केशरान् ।
अन्तवृत्तेन पत्राणि पत्राग्रं त्यक्तभागतः ॥३६२॥
किञ्जल्काग्रेषु संस्थाप्य पार्श्वतस्त्वर्धचन्द्रकान् ।
तदग्रे तु त्रिभिः कोष्ठैः पादान् कोणेषु विन्यसेत् ।३६३॥
शेषाणि पीतगात्राणि परतः पङ्क्तियुग्मकम् ।
वीथीं कुर्यान्मार्जयित्वा चतुर्दिक्षु च मध्यतः ॥३६४॥
क्रमादाभ्यां चतुर्भिश्च कोष्ठैर्द्वारचतुष्टयम् ।
कोष्ठत्रयेण चैकेन प्रत्येकं द्वारपार्श्वयोः ॥३६५॥
शोभा भवन्त्वतः कोष्ठैरेकतस्त्रिभिरेव च ।
उपशोभास्ततः कोष्ठैः षड्भिः कोशानि कल्पयेत् ॥३६६॥
शुक्लं तण्डुलचूर्णं स्यादुत्सेधायामतस्तथा ।
अङ्गुलेन समाः कार्याः सीमरेखा दलानि च ॥३६७॥
पीठगात्राणि च द्वारे चतुष्कं तेन पूजयेत् ।

तान्त्रिक कर्म में जिस प्रकार का सर्वतोभद्र मण्डल बनता है, अब उसका वर्णन सुनो। एक चतुरस्र में सोलह-सोलह कोष्ठ बनावे। इसे तान्त्रिक सर्वतोभद्र मण्डल

कहते हैं। बाँयें से दाँयें सोलह और ऊपर से नीचे सोलह रेखाओं को समानान्तर खींचने से १६×१६=२५६ कोष्ठों का यह मण्डल बनता है। बीच के ३६ कोष्ठों को मिटाकर निम्न प्रकार की आकृति बनावे। इस वर्ग का बारहवाँ अंश बाहर छोड़कर मध्य में बराबर-बराबर दूरी पर यथाविधि तीन वृत्त बनाये। कर्णिका मध्यवृत्त से होगी। दूसरे वृत्त से केशर बनेंगे। अन्त वृत्त से पत्र बनेंगे। पत्राग्रों के आगे कुछ भाग छोड़कर कमल के आगे पार्श्वों में अर्द्धचन्द्र बनावे। उसके आगे के तीन कोष्ठों में पादों का विन्यास करे। आगे की तीनों पंक्तियों को पीले रंग से भरे। चारों दिशाओं में मार्जन करके मध्य में वीथी बनाये। चारो दिशाओं में चार-चार कोष्ठों से चार द्वार बनाये। तीन कोष्ठों से या एक कोष्ठ से भी द्वार बनते हैं। एक या तीन कोष्ठ से बने द्वार अधिक सुन्दर लगते हैं। छः कोष्ठों में कोशों की कल्पना करे। श्वेत चावल चूर्ण से एक अंगुल ऊँचाई में सीमारेखा, कोष्ठों और दलों से पूर्ण करे। विप्रों के द्वारा ऐसे पीठगात्र और द्वारचतुष्क पूज्य होते हैं। चक्र का स्वरूप इस प्रकार का बनेगा—

तान्त्रिक सर्वतोभद्र मण्डल



अविप्रैः पूरणीयानि रक्तेनैव दलान्यपि ॥३६८॥
कुसुम्भचूर्णमारक्तं पूरणीयास्तु तेन तु।
द्वारशोभाः पीतपादाः सर्ववर्णैर्विनिश्चयात् ॥३६९॥
पीतं हरिद्राचूर्णं स्यात्पीठगर्भे च कर्णिका।
उपशोभाश्च विप्रेण पीतगर्भाश्च कृष्णतः ॥३७०॥
बिल्वपत्रस्य चूर्णोत्थो हरितस्तेन पूरयेत्।
पत्रमूलफलाकारा मण्डिता हृदयङ्गमाः ॥३७१॥
वीथी चतुष्कमध्ये तु कल्पवल्लीः प्रपूरयेत्।
सन्धींश्च कल्पवल्लीश्च पीतरक्तेन केशरान् ॥३७२॥
नानावर्णरजोभिस्तान् पूरयेत्कुशलो गुरुः।
कृष्णवर्णेन कोणानि बही रेखात्रयं ततः ॥३७३॥
शुक्लारुणाख्यकृष्णैस्तु रजोभिर्भूषयेत् क्रमात्।
सर्वतन्त्रेष्विदं प्रोक्तं सर्वतोभद्रमण्डलम् ॥३७४॥

ब्राह्मणेतर वर्णों के साधकों के लिये लाल कुसुम्भ चूर्ण से कोष्ठों को पूरित करना चाहिये। सभी वर्णों के लिये द्वारशोभा पीले रंग से करनी चाहिये। पीले हल्दी चूर्ण से पीठ, गर्भ और कर्णिका को पूरित करना चाहिये। विप्रों के लिये उपशोभा काले रंग से करनी चाहिये। हरे बेलपत्र चूर्ण से पत्र मूल फलाकार हृदयग्राही बनाना चाहिये। चार वीथियों के मध्य में कल्पवल्ली बनानी चाहिये। कल्पवल्ली की सन्धियाँ पीले रंग से और केशर लाल रंग से बनाना चाहिये। कुशल गुरु को नाना वर्ण के चूर्ण से कोष्ठों को पूरित करना चाहिये। कोणों को और तीनों बाहरी रेखाओं को काले वर्ण से पूरित करना चाहिये। श्वेत, लाल और काले चूर्ण से क्रमशः सर्वतोभद्र मण्डल को पूरित करना चाहिये। सर्वतोभद्रमण्डल बनाने की यही विधि समस्त तन्त्रों द्वारा अनुमित है।।३६८-३७४।।

देवयोनीनां कृते सर्वतोभद्रमण्डलविधिः

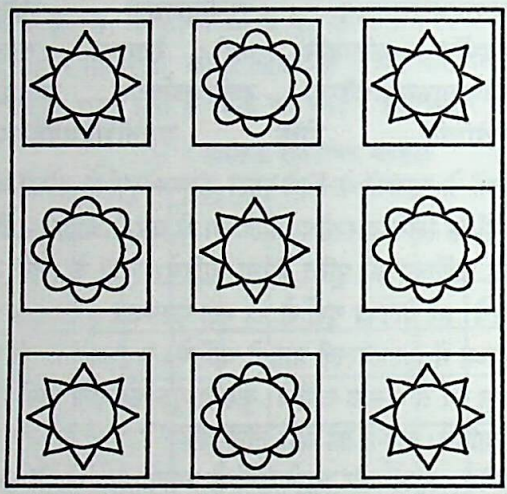
वक्ष्येऽथ देवयोनीनां सर्वतोभद्रमण्डलम्।
मार्गेऽथ दक्षिणे तत्र कोष्ठका रविवर्गकाः ॥३७५॥
प्राग्वदेव तु तन्मध्ये पद्मं षड्भिः पदैः शुभम्।
एकपंक्त्या भवेत्पीठं द्वारशोभास्तु पूर्ववत् ॥३७६॥
षड्भिः कोष्ठैस्तु कोशानि रञ्जितव्यं च पूर्ववत्।
पीठपादाः परिधयः पद्माद्यं पूर्ववन्मतम् ॥३७७॥

देवयोनियों का सर्वतोभद्र मण्डल—अब देवयोनियों के लिये विहित

सर्वतोभद्र मण्डल का वर्णन किया जाता है। इसमें दक्षिणमार्गियों के सदृश वर्ग वाले मण्डल का निर्माण करना चाहिये; अत: ३२४ कोष्ठों का मण्डल बनेगा। पूर्ववत् उस मण्डल के मध्य में ३६ कोष्ठों के मार्जन के बाद कमल बनाये। एक पंक्ति को पीठ बनाये और पूर्ववत् द्वारशोभा करे। छ: कोष्ठों वाले कोशों का रंजन पूर्ववत् करे। पीठ, पाद, परिधि, कमल आदि को पूर्ववत् रंजित करे।।३७५-३७७।।

वाममार्गे मण्डलं स्यात्कोष्ठैरष्टकवर्गकैः ।
चतुर्भिः पङ्कजं मध्ये तद्बाह्ये वीथिका तु वा ॥३७८॥

वाममार्गी मण्डल—वाममार्ग में आठ वर्गों के चतुरस्र में मण्डल बनता है। यह मण्डल ६४ कोष्ठों का होता है, जिसका स्वरूप इस प्रकार का होता है—



इस मण्डल के बीच वाले चार कोष्ठों में कमल एवं उसके बाहर वीथिका बनानी चाहिये।।३७८।।

कल्पवल्ली समायुक्ता तत्पद्मं सर्वदैव हि ।
दिक्चतुष्के तु पद्मानि चतुर्भिः कोष्ठकैश्चरेत् ॥३७९॥
विदिशासु चतुर्भिः स्युश्चतुष्का वेदसङ्ख्यकाः ।
चतुष्कपद्मवीथीनां मध्ये स्वस्तिकसन्निभम् ॥३८०॥

यह कमल सर्वदा कल्पवल्ली से युक्त होना चाहिये। चारो दिशाओं में चार-चार कोष्ठों में कमल बनाना चाहिये; साथ ही चारो विदिशाओं में भी चार-चार कोष्ठों में कमल का निर्माण करना चाहिये। इस पद्मचतुष्क की वीथियों में मध्य भाग स्वस्तिक के समान होता है।।३७९-३८०।।

जायते तच्चतुष्कोष्ठैर्विदिशासु चतुर्ष्वपि ।
रजोभिः शुक्लहारिद्ररक्तनीलैः प्रपूरयेत् ॥३८१॥

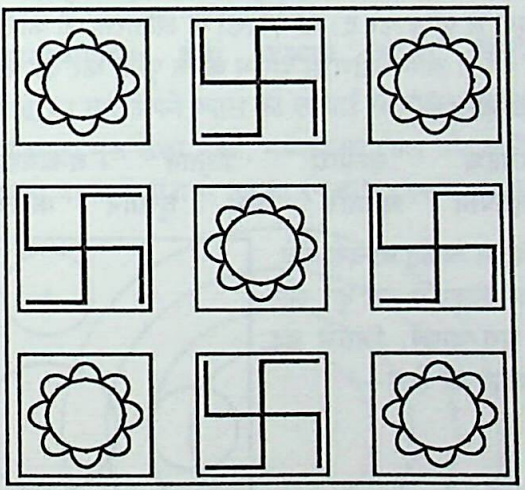
इस प्रकार इसके दिशा-विदिशा के चारो कोष्ठा स्वस्तिकाकार बन जाते हैं। इन्हें श्वेत, पीला, लाल और नीले रंग के चूर्ण से पूरित करना चाहिये।।३८१।।

स्वस्तिकानीशतश्चान्यत् पूर्ववत् परिकीर्तितम् ।
उदितं मण्डलं ह्येतन्नवनागं सुशोभनम् ॥३८२॥

पूर्ववर्णित मण्डल के चौसठ कोष्ठों से नव नागमण्डल बनते हैं, जो अन्य प्रकार के होते हैं और अतिशय सुन्दर लगते हैं।।३८२।।

एतदेवोक्तमार्गेण मध्यद्वारं विदिक्त्यजम् ।
एककोष्ठचतुष्काद्यं पञ्चपद्मं प्रवक्ष्यते ॥३८३॥
पद्मं प्राग्वा कृतं द्वारं स्वस्तिवच्च चतुष्ककाः ।
वर्णैः पूर्य्या वीथिका तु पीठे तु सुरयोनिषु ॥३८४॥

इस प्रकार के वर्णित मार्ग से एक-एक कोष्ठचतुष्टय मध्य तथा विदिशाओं में छोड़कर उनमें पाँच कमल बनाना चाहिये। चारो दिशाओं में एक-एक कोष्ठचतुष्टय से स्वस्तिकाकार द्वार बनाना चाहिये। वीथिओं और पीठ को रंगों से पूरित करना चाहिये। सुरयोनि का यह मण्डल निम्न प्रकार का होता है—

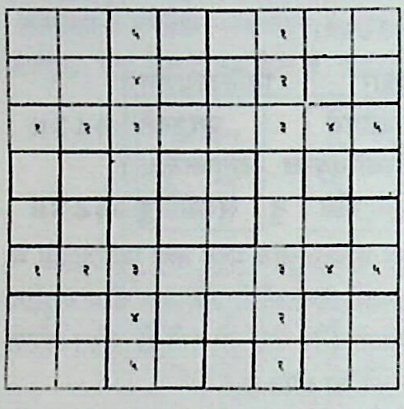


वारुणमण्डलकथनम्

अथ मन्त्रप्रतिष्ठार्थं वक्ष्ये वारुणमण्डलम् ।
चतुरस्रं चतुष्षष्टिकोष्ठकं यो निवेशयेत् ॥३८५॥

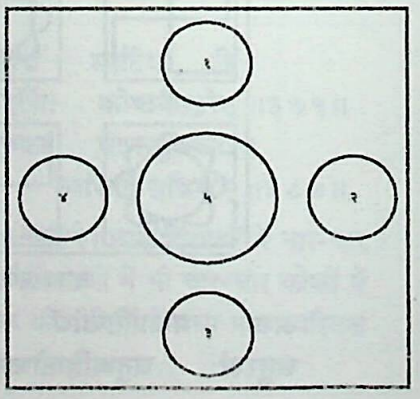
अन्त्यजान्तिमयातासु दिक्षु कोष्ठानि मार्ज्जयेत्।
मध्यस्थचतुरस्राणि द्वास्स्थाख्यानि तु पूर्वतः ॥३८६॥
पीतैः श्यामैश्च तान् हरिद्रजोभिः परिपूरयेत्।
कोणकोष्ठं विहायैकं पञ्च ते पादसञ्ज्ञिताः ॥३८७॥
पीता स्यात्पाण्डुरा रक्ता पीतैः कृष्णैश्च पूरयेत्।
आग्नेयीतः कोणकोष्ठान्यारक्तहरितासितैः ॥३८८॥

मन्त्रप्रतिष्ठा-हेतु वारुण मण्डल—अब मन्त्र-प्रतिष्ठा हेतु वारुण मण्डल का वर्णन करता हूँ। इसके लिये सर्वप्रथम चौंसठ कोष्ठों वाला एक चतुरस्र बनाये। उसके चारो कोनो के चार कोष्ठों को मिटा दे। मध्य के चार कोष्ठ और द्वार पूर्ववत् रहेंगे। मध्य के चार कोष्ठों को पीत, श्याम एवं हल्दीचूर्ण से पूरित करे। कोणकोष्ठों को मिटाने के बाद चारो कोणों पर जो पाँच-पाँच कोष्ठ बचते हैं, उन्हें पाद कहते हैं। उन पाँच-पाँच कोष्ठों को पीला, पाण्डुर, लाल, पीला और काले रंग के चूर्ण से पूरित कर दे। कोणकोष्ठों के अतिरिक्त जो कोष्ठ हैं, उन्हें लाल, हरे और काले रंग से अग्नि-कोण से प्रारम्भ करके पूरित कर दें। यह वारुण मण्डल निम्न प्रकार का होता है—



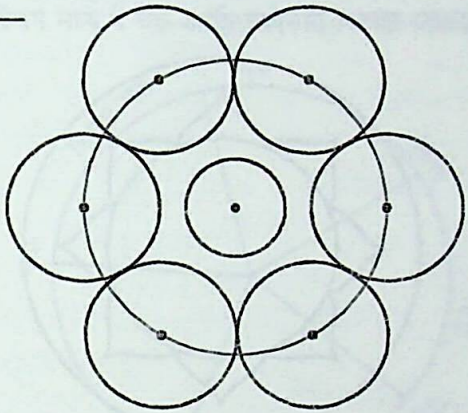
पूरयेदथ तस्यार्धं वितानं बन्धयेद्यथा।
श्वेतवर्णेन चत्वारि मध्ये वृत्तानि कारयेत् ॥३८९॥

उस पर वितान अर्थात् चान्दनी बाँधे, इसके लिये चारो दिशा में चार वृत्त और मध्य में एक वृत्त बनावे, जिससे यह चन्दोवा इस प्रकार का होगा—



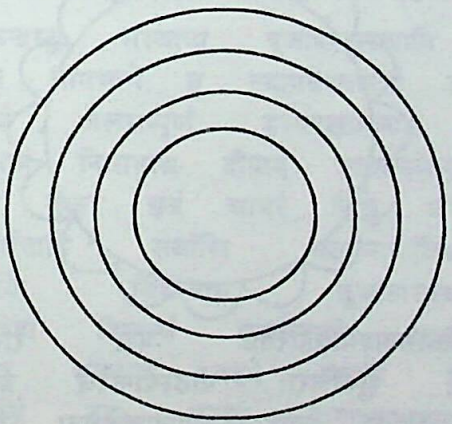
षड्वह्नीशादिव्यासार्धवृत्तमाद्यन्तु पीठतः ।
तत्पीतं कर्णिकाकारं सितरेखावृतं ततः ॥३९०॥

सर्वप्रथम क्रमांक १ के वृत्त की परिधि में छः वृत्त बनाया जाता है, जो अग्निकोण से प्रारम्भ होते हैं। उनके बीच में वृत्त बनाया जाता है, जो कर्णिका (पद्मबीज कोश) होता है। वृत्त की परिधि श्वेत होती है एवं मध्य पीत वर्ण का होता है। इसका स्वरूप निम्नवत् होता है—



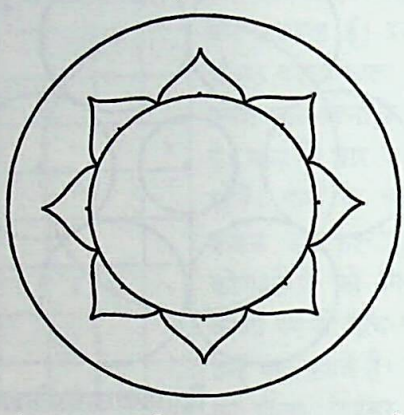
द्वितीयं द्विगुणव्यासरूपकेशरसंयुतम् ।
पीतरक्तश्वेतवर्णमूलमध्याग्रकेसरम् ॥३९१॥
द्विसप्तत्यंशिकां श्वेतां तस्याग्रे कुरुते सिताम् ।

दूसरे क्रमाङ्क का वृत्त अपने व्यास की लम्बाई से दुगनी लम्बाई के तीन केसरों से युक्त होगा। जिसका मूल केसर पीला, मध्य केसर लाल और अन्तिम केसर उजला होगा। उसके आगे बहत्तरवें अंश से उजला रंग होगा। इसका स्वरूप इस प्रकार का होगा—



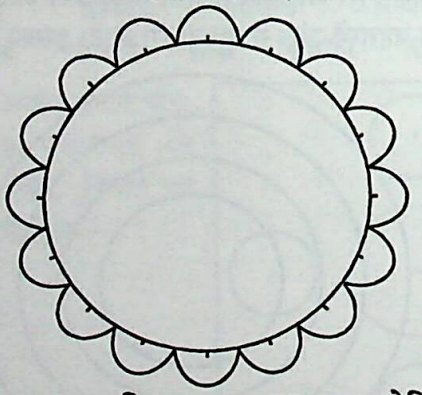
तृतीयं तु तृतीयांशतुल्यव्यासं च वर्त्तुलम् ॥३९२॥
श्वेतमष्टदलं तत्र रक्ताग्रं तद्दलैस्तले ।
श्वेतं बहिः कृष्णवर्णं प्राग्वद्रेखां सितां कुरु ॥३९३॥

तीसरे क्रमाङ्क के वृत्त में उसके व्यास के तीसरे अंश के बराबर के आठ दल बनेंगे। दलों के अग्रभाग लाल होंगे एवं पूर्वभाग श्वेत होंगे। उसके बाहर काले रंग का वृत्त होगा। इसका स्वरूप निम्नवत् होगा—



तद्बहिर्वृत्तसंलग्नान् षोडशास्त्रान् प्रकल्पयेत् ।
श्यामपीतारुणश्वेतैस्तदन्तस्तूपबाह्यतः ॥३९४॥

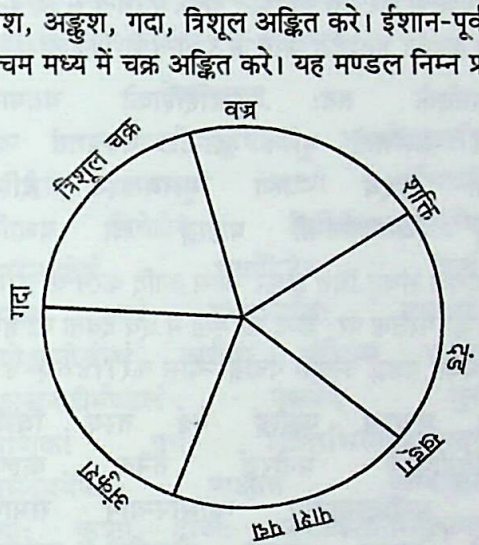
क्रमाङ्क ४ के वृत्त में बाहर सोलह दल बनेंगे। इसे षोड़शास्त्र कहते हैं। इसके दलों को काला, पीला लाल और उजला होना चाहिये। इसका स्वरूप निम्नवत् होता है—



सितपीतारुणश्यामहरिताः पञ्च रेखिकाः ।
कार्याः सुरुचिराः पीठस्यान्तरेवं प्रपूरयेत् ।
वज्रं शक्तिं दण्डखड्गपाशाङ्कुशगदा लिखेत् ॥३९५॥

पूर्वतस्तु तथैशान्यां शूलं चक्राम्बुजान्वितम्।

पाँचवें मध्य वृत्त को पाँच बराबर रेखाओं से विभाजित करे। रेखाओं का रंग उजला, पीला, लाल, काला और हरा होगा। उन पाँच भागों को उजला, पीला, लाल, काला और हरे चूर्ण से पूरित कर दे। दशो दिशाओं में पूर्व से ईशान तक वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अङ्कुश, गदा, त्रिशूल अङ्कित करे। ईशान-पूर्व के मध्य में शूल और नैर्ऋत्य-पश्चिम मध्य में चक्र अङ्कित करे। यह मण्डल निम्न प्रकार का होगा—



वेदिकायामासनन्तु प्राङ्मुखं संविशेदथ।
बद्धपद्मासनो मौनी ऋजुकायो जितेन्द्रियः ॥३९६॥

इसके बाद वेदी के सम्मुख पूरब तरफ मुख करके आसन पर बद्ध पद्मासन पर मौन धारण कर, जितेन्द्रिय होकर, शरीर को सीधा करके बैठे।।३९६।।

देशिकेन्द्रस्तु संस्थाप्य पूजोपस्करणानि तु।
दक्षिणे वामभागे तु स्थापयेत्कलशं शुभम् ॥३९७॥
सुगन्धिं जलसम्पूर्णं हस्तप्रक्षालनाय च।
पश्चात्पात्रं निधायाथ दीपान् प्रज्वालयेच्छुभान् ॥३९८॥
व्यजनं मुकुरं छत्रं चामरं दिक्षु मन्त्रवित्।
संस्कुर्यात्तानि सर्वाणि वक्ष्यमाणविधानतः ॥३९९॥
करशुद्धिं विधायाथ ब्रूयात्तारत्रयन्तथा।
शरमन्त्रेण दिग्बन्धं कुर्यान्मन्त्री समाहितः ॥४००॥
महतस्तु समुत्पन्नं वक्ष्ये यत्तर्हि सर्वतः।
भूतशुद्धिं ततः कृत्वा प्राणस्थापनमाचरेत् ॥४०१॥

पूजन—देशिकश्रेष्ठ अपने दक्षिण भाग में पूजा के उपकरणों को रखकर वाम भाग में कलश की स्थापना करे। हाथ धोने के लिये सुगन्धित जल रखकर पात्रों की स्थापना करके शुभ दीपक प्रज्वलित करे। व्यजन, दर्पण, छत्र, चामर को दिशाओं में रखकर वक्ष्यमाण विधान से सबों का संस्कार मन्त्रों से करे। करशुद्धि करके तीन बार 'ॐ' का उच्चारण करे एवं सावधान होकर शरमन्त्र से दिग्बन्धन करे। सबों को महत्तत्व से उत्पन्न कहकर भूतशुद्धि करने के उपरान्त प्राणप्रतिष्ठा करे।।३९७-४०१।।

न्यासादिकं ततः कुर्याद्देशिको यतमानसः ।
ऋषिं न्यसेत्ततो मूर्ध्नि च्छन्दो वक्त्रगतं न्यसेत् ॥४०२॥
देवतां हृदये न्यस्य मूलमन्त्रस्य देशिकः ।
षडङ्गं विन्यसेन्मन्त्री पञ्चाङ्गं वा यथाविधि ॥४०३॥

तदनन्तर साधक संयत चित्त होकर न्यास आदि करने के क्रम में पहले ऋष्यादि न्यास करे। ऋषि का मस्तक पर, छन्द का मुख में एवं देवता का हृदय में न्यास करके मूल मन्त्र से विधिवत् षडङ्ग अथवा पंचाङ्ग न्यास करे।।४०२-४०३।।

यस्य मन्त्रस्य पञ्चाङ्गं नेत्रं तस्य विधीयते ।
अङ्गैर्विहीनस्य मनोरङ्गं तेनैव कल्पयेत् ॥४०४॥
ततो मन्त्रोक्तमार्गेण न्यासानन्यान् समाचरेत् ।
शरीरे स्वस्य मन्त्रज्ञो योगपीठं प्रकल्पयेत् ॥४०५॥

जिस मन्त्र से पंचाङ्ग न्यास करे, उसी मन्त्र से नेत्रन्यास भी करे। अंगविहीन मन्त्र के अंगों की कल्पना एसी मन्त्र के द्वारा करे। तदनन्तर मन्त्रोक्त मार्ग से अन्यान्य न्यासों को भी सम्पन्न करके अपने शरीर में योगपीठ की कल्पना करे।।४०४-४०५।।

देहात्मके ततः पीठे ध्यायेन्मन्त्रस्य देवताम् ।
दर्शयित्वा ततो मुद्राः स्थापयेदर्घ्यमुत्तमम् ॥४०६॥
जलप्रपूरितां दक्षे प्रोक्षणीं स्थापयेत्ततः ।
तत्राल्पमल्पं शङ्खाम्बु तत्तद्देवरतो न्यसेत् ॥४०७॥
पाद्यमाचमनीयञ्च मधुपर्कञ्च मन्त्रवित् ।
ततो मूलाम्बुना मन्त्री प्रोक्षण्यद्भिः समाहितः ॥४०८॥
स्वात्मानं मण्डलञ्चान्यत्पूजोपकरणादिकम् ।
प्रोक्षयेद् गन्धपुष्पाद्यैर्देशे स्वे देशिकोत्तमः ॥४०९॥
योगपीठं समभ्यर्च्य न्यासमार्गेण मन्त्रवित् ।
पीठान्तञ्च ततस्तत्र पूजयेदिष्टदेवताम् ॥४१०॥

तदनन्तर देहात्मक पीठ में मन्त्र के देवता का ध्यान करे। तब मुद्रा दिखाकर अर्घ्य की स्थापना करे। अपने दक्षिण भाग में प्रोक्षणीपात्र को जल से पूर्ण करके रखे। उसमें से थोड़ा जल लेकर शंख में रखे और उसमें देवता का न्यास करे। तब मन्त्रवित् पाद्य, आचमनीय एवं मधुपर्क रखकर मूल मन्त्र से सबका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् देशिक अपना, मण्डल का तथा पूजा के अन्य उपकरण आदि का अपने देश में प्राप्त गन्ध-पुष्पादि से प्रोक्षण करे। तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक न्यासमार्ग से योगपीठ का अर्चन करके उस पीठ पर इष्टदेवता का पूजन करे।।४०६-४१०।।

देवतापूजनम्

देवतात्मा ततः पञ्च कुर्याच्च सुमनोऽञ्जलीन्।
शीर्षे हृदि तथाधारे चरणे सर्वगात्रके ॥४११॥
पूजयेच्च निवेद्येन विहितैश्चन्दनादिभिः।
सर्वोपचारैस्तञ्चेष्टं गुर्वादिष्टेन वर्त्मना ।४१२॥
समापयेदिदं सर्वं प्रोक्षण्यद्भिः समाचरेत्।
पानीयम्प्रोक्षणीसंस्थं त्यक्त्वा संसिच्य पूर्ववत् ॥४१३॥
उपचारैश्चन्दनाद्यैर्मण्डलं पूजयेद् गुरुः।
पूरयेत्कर्णिकां पूर्वं शालिभिस्तण्डुलैस्ततः ॥४१४॥
दर्भान्यसेदुपर्येषां साक्षात्तं पूर्वकन्ततः।
छिन्नमूलाः कुशा दीर्घाः सप्तविंशतिसङ्ख्यकाः ॥४१५॥
ब्रह्मग्रन्थियुतास्त्वग्रदेशे कूर्च इहोच्यते।
यजेदाधारशक्त्यादिपीठमन्त्रावसानकम् ॥४१६॥
स्वर्णादिरचितं तत्र कलशं छिद्रवर्जितम्।
त्रिगुणात्मकसूत्रेण वेष्टितं सर्वतो बहिः ॥४१७॥
चन्दनागुरुकर्पूरैर्मध्ये सम्यक् प्रपूरितम्।
ध्रुवं जपं विना चात्र स्थापयेद्देशिकोत्तमः ॥४१८॥
नवरत्नानि निक्षिप्य कुम्भे कूर्चमथोपरि।
दूर्वाचन्दनसंयुक्तं विन्यसेद्दक्षिणान्वितम् ॥४१९॥
पुष्पं नीलञ्च वैडूर्यं विद्रुमं मौक्तिकन्तथा।
मूलमन्त्रञ्जपन्नन्ते चिन्तयन्नैक्यमात्मनः ॥४२०॥

तदनन्तर देवता के शिर पर, हृदय पर, आधार पर, चरण पर और सर्वाङ्ग में एक-एक करके पाँच पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। विहित चन्दनादि निवेदित करके समस्त उपचारों द्वारा गुरु-उपदिष्ट मार्ग से इष्ट का पूजन करे। पूजन समाप्त करके सबों का

प्रोक्षण करे। प्रोक्षणी के जल और पानीय जल को छोड़कर पूर्ववत् सेचन करे। चन्दन आदि उपचारों से गुरुमण्डल का पूजन करे। पहले मण्डल की कर्णिका को धान एवं चावल से पूरित करे। पीठ के चारो ओर पूर्व से प्रारम्भ करके कुशों से परिस्तरण करें। तब जड़हीन २७ कुशों को लेकर अग्रभाग को ब्रह्मग्रन्थि से युक्त करके कूर्च बनावे। तब मन्त्रों से पीठ पर आधारशक्ति का अर्चन करे। स्वर्णादि से निर्मित छिद्ररहित कलश को धागे से तीन बार लपेट कर बाहर से वेष्टित करे। कलश के अन्दर चन्दन, अगर, कपूर डाले एवं बिना जप के उस कलश को स्थिर करे। कलश में नवरत्न डाले, उसके ऊपर कूर्च रखे एवं दूब तथा चन्दन के साथ दक्षिणा द्रव्य रखे। पुखराज, नीलम, वैडूर्य, मूँगा, मोती कलश में डाले। तदनन्तर मूल मन्त्र का जप करते हुये देवता और अपने को अभिन्न होने की भावना करे।।४११-४२०।।

घटस्य पीठाभेदं च चिन्तयेत्साधकोत्तमः।
पञ्चाशदोषधीक्वाथैः पूरयेत्तदनन्तरम् ॥४२१॥
एकेन सहितास्ताश्च वर्णौषध्यश्च ता इमाः।

तदनन्तर श्रेष्ठ साधक कलश और पीठ में अभेद मानकर घट को पचास औषध-क्वाथों से पूर्ण करे। इक्यावन वर्णौषधियाँ इस प्रकार होती हैं।।४२१।।

वर्णौषधयः

चन्दनञ्चापि रक्ताख्यं चन्दनञ्चागुरुस्तथा ॥४२२॥
कर्पूरोशीरकुष्ठानि बालकञ्चापि केशरम्।
कङ्कोलकं जातिफलं जटामांसी मुरा तथा ॥४२३॥
ग्रन्थिकं रोचना जातिपत्रं पिप्पलबिल्वकौ।
पृष्ठिपर्णी चित्रकञ्च मुद्गपर्णी कुशाः पुनः ॥४२४॥
कट्फलं चापि गुञ्जा स्यादुदुम्बरककाश्मरी।
पद्मकोषा शङ्खपुष्पी मयूरस्य शिखा तथा ॥४२५॥
प्लक्षोऽग्निमन्थश्च तथा शालपर्णी कुशाः पुनः।
पाषाणभेदकः कृष्णा शशिपुष्पी च रोहिणी ॥४२६॥
स्योना च्छिन्नरुहा चैव पाटली मुखकर्णिका।
तुलसी शिखरी इन्द्रवल्ली भृङ्गीमिरानृपाः ॥४२७॥
ततो राजितपातालमूली चापि कृताञ्जलिः।
दूर्वा श्रीदेवकन्याख्याभागथो भद्रमुस्तकम् ॥४२८॥
लवङ्गसहिताश्चैताः पञ्चाशत्सङ्ख्यका इति।

वर्णौषधि—अ–रक्त चन्दन, आ–चन्दन, इ–अगुरु, ई–कपूर, उ–खश, ऊ–

कूठ, ऋ–बाला, ॠ–केशर, ऌ–कंकोल, ॡ–जायफल, ए–जटामांसी, ऐ–मुरा, ओ–ग्रन्थिक, औ–गोरोचन, अं–जातिपत्र, अः–पीपल, क–बेल, ख–पृष्ठिपर्णी, ग–चित्रक, घ–मुद्गपर्णी, ङ–कुश, च–कट्फल, छ–गुञ्जा, ज–गूलर, झ–काश्मरी, ञ–पद्मकोश, ट–शंखपुष्पी, ठ–मोरपंख, ड–पाकड़, ढ–अग्निमन्थ, ण–शालपर्णी, त–कुश, थ–पाषाणभेद, द–कृष्णा, ध–शशिपुष्पी, न–रोहिणी, प–स्योनाक, फ–छिन्नरुहा, ब–पाटली, भ–मुखकर्णिका, म–तुलसी, य–शिखरी, र–इन्द्रवल्ली, ल–भृङ्गी, व–मिरा नृपा, श–राजि, ष–पातालमूली, स–हाथाजोड़ी, ह–दूर्वा, क्ष–भद्रमुस्तक त्र–लवङ्ग।।४२२-४२८।।

दुग्धवृक्षत्वचां क्वाथैर्ब्रह्मभूरुत्त्वगुद्भवैः ।।४२९।।
गन्धपङ्कप्रसूनादिवासितैर्वा शुभैर्जलैः ।
क्वाथादितोयैरापूर्य शङ्खं तस्मिन् विलोडयेत् ।।४३०।।

वट, पीपल आदि दुग्ध वृक्षों की छाल के क्वाथ, ब्रह्मभूरु के त्वक् से बने क्वाथ या चन्दनादि गन्ध लेप या सुगन्धित पुष्पों से वासित गुलाबजल आदि क्वाथादि जल से शङ्ख को पूर्ण करके कलश जल में मिलावे।।४२९-४३०।।

गन्धाष्टकम्

गन्धाष्टकं तस्य तस्य देवस्याथ प्रकीर्तितम् ।
चन्दनागुरुकर्पूररोचनाकुङ्कुमं मदः ।।४३१।।
रक्तचन्दनजं वारि गाणपत्यमुदाहृतम् ।
ह्रीबेरञ्चन्दनङ्कुष्ठमगुरुः कुङ्कुमं मुरा ।
सिह्लकञ्च जटामांसी वैष्णवं तदुदीरितम् ।।४३२।।
चन्दनागुरुकर्पूरचौरकुङ्कुमरोचनाः ।
जटामांसी कपियुता शाक्तं गन्धाष्टकं विदुः ।।४३३।।
जलकाश्मीरकुष्ठैश्च रक्तचन्दनचन्दनैः ।
तगरागुरुकर्पूरैः शाम्भवं चाष्टगन्धकम् ।।४३४।।
जलकाश्मीरकुष्ठैस्तु रक्तचन्दनचन्दनैः ।
तगरागुरुकर्पूरैः सौरं गन्धाष्टकं विदुः ।।४३५।।
गोरोचना च कांस्यञ्च कर्पूरागुरुकुङ्कुमैः ।
चन्दनेन मदाभ्याञ्च वारिदेन च पत्रजम् ।।४३६।।

तत्तद् देवताओं का गन्धाष्टक इस प्रकार बताया गया है—

गणेश का गन्धाष्टक—चन्दन, अगुरु, कपूर, गोरोचन, कुमकुम, कस्तूरी, रक्तचन्दन एवं रक्तचन्दन-मिश्रित जल—ये गणेश के अष्टगन्ध होते हैं।

विष्णु का अष्टगन्ध—ह्रीवेर, चन्दन, कूट, अगुरु, कुमकुम, मुरा, सिह्लक, जटामांसी—ये विष्णु के अष्टगन्ध कहे गये हैं।

शक्ति के गन्धाष्टक—चन्दन, अगुरु, कपूर, हल्दी, कुमकुम, गोरोचन, जटामांसी एवं शिलाजीत—ये शक्ति के अष्टगन्ध होते हैं।

शिव के अष्टगन्ध—केशर, कूठ, रक्त चन्दन, श्वेत चन्दन, अगर, तगर, कपूर एवं जल—ये शैव अष्टगन्ध हैं।

सूर्य के अष्टगन्ध—जल, केशर, कूठ, रक्त चन्दन, श्वेत चन्दन, तगर, अगर और कपूर को सौर अष्टगन्ध कहा जाता है।

देशिक के अष्टगन्ध—गोरोचन, कांस्य, कपूर, अगर, कुमकुम, चन्दन, कस्तूरी, कमल६यह देशिक का अष्टगन्ध होता है।।४३१-४३६।।

गन्धाष्टकस्य संयोगात्सामर्थ्यद्देशिकस्य च।
सशक्तिकञ्जलं कुम्भे भवेदेवं विदुर्बुधाः ॥४३७॥

विद्वानों का मत है कि गन्धाष्टक के संयोग तथा पूजक के सामर्थ्य से कलश का वह जल शक्ति-सम्पन्न हो जाता है।।४३७।।

आदौ कृशानुसम्बन्धिकला दश समर्चयेत्।
धूम्रार्चिरुष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहे उभे ॥४३८॥

वह्निकला—पूजोपयोगी जल को पहले अग्निकला से अभिमन्त्रित करना चाहिये। अग्नि की दश कलाओं के नाम धूम्रार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवाहिनी और कव्यवाहिनी हैं। अभिमन्त्रण की विधि यह है कि जलपात्र को हाथ से स्पर्श किये हुए इस प्रकार बोलना चाहिये—१. यं धूम्रार्चिषे नमः, २. रं ऊष्मायै नमः, ३. लं ज्वलिन्यै नमः, ४. वं ज्वालिन्यै नमः, ५. शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, ६. षं सुश्रियै नमः, ७. सं सुरूपायै नमः, ८. हं कपिलायै नमः, ९. लं हव्यवाहिन्यै नमः, १०. क्षं कव्यवाहिन्यै नमः।।४३८।।

कलाद्वादशकं सौरं पूजयेत्तदनन्तरम्।
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ॥४३९॥
सुषुम्णा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा।

सूर्यकला—१२ सूर्यकलाओं से अभिमन्त्रण इस प्रकार से होता है—१. कं भं तपिन्यै नमः, २. लं बं तापिन्यै नमः, ३. गं फं धूम्रायै नमः, ४. घं पं मरीच्यै नमः,

५. ङं नं ज्वालिन्यै नमः, ६. चं धं रुच्यै नमः, ७. लं दं सुषुम्नायै नमः, ८. जं थं भोगदायै नमः, ९. झं तं विश्वायै नमः, १०. ञं णं बोधिन्यै नमः, ११. टं ढं धारिण्यै नमः, १२. ढं डं क्षमायै नमः।।४३९।।

कलाषोडशकञ्चान्द्रं यजेत्पश्चाद् गुरूत्तमः ।।४४०।।
अमृता मानदा पुष्टा पुष्टिस्तुष्टी रतिर्धृतिः ।
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा ।।४४१।।
पूर्णा पूर्णामृता कान्तिर्दीपिनाश्वरजाः कलाः ।
वेदादिभेदे सञ्जाताः कलाः पञ्चाशबिन्दुयुक् ।।४४२।।

चन्द्रकला—सोलह चन्द्रकलाओं से जल का अभिमन्त्रण इस प्रकार से किया जाता है—१. अं अमृतायै नमः, २. आं मानदायै नमः, ३. इं पूषायै नमः, ४. ईं तुष्ट्यै नमः, ५. उं पुष्ट्यै नमः, ६. ऊं रत्यै नमः, ७. ऋं धृत्यै नमः, ८. ॠं शशिन्यै नमः, ९. लृं चन्द्रिकायै नमः, १०. ॡं कान्त्यै नमः, ११. एं ज्योत्स्नायै नमः, १२. ऐं श्रियै नमः, १३. ओं प्रीत्यै नमः, १४. औं अङ्गदायै नमः, १५. अं पूर्णायै नमः, १६. अः पूर्णामृतायै नमः। इस प्रकार वेदादि भेद से विन्दुयुक्त पचास वर्णों से पचास कलायें होती हैं।।४४०-४४२।।

सन्निधाप्य प्रतिष्ठाप्याभ्यर्चयेत्क्रमशस्तु ताः ।
निवृत्तिः प्रतिष्ठा विद्या शान्तिर्ऋद्धिश्च दीपिका ।।४४३।।
रोचिका मोचिका पारा सूक्ष्मासूक्ष्मामृता तथा ।
ज्ञानामृताप्यायनी च व्यापिनी व्योमरूपिका ।।४४४।।

सदाशिव कला—सदाशिव कलाओं का क्रमशः इन मन्त्रों से प्रतिष्ठा करके अर्चन करना चाहिये—१. अं निवृत्त्यै नमः, २. आं प्रतिष्ठायै नमः, ३. इं विद्यायै नमः, ४. ईं शान्त्यै नमः, ५. उं ऋद्ध्यै नमः, ६. ऊं दीपिकायै नमः, ७. ऋं रेचिकायै नमः, ८. ॠं मोचिकायै नमः, ९. लृं पारायै नमः, १०. ॡं सूक्ष्मायै नमः, ११. एं सूक्ष्मामृतायै नमः, १२. ऐं ज्ञानायै नमः, १३. ओं अमृतायै नमः, १४. औं आप्यायन्यै नमः, १५. अं व्यापिन्यै नमः, १६. अः व्योमरूपिकायै नमः। इनकी पूजा निम्न श्लोक से करनी चाहिये—

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु मे।।४४३-४४४।।

अनन्ता सृष्टिर्ऋद्धिश्च स्मृतिर्मेधा च कान्तिका ।
लक्ष्मीर्द्युतिः स्थिराच्छित्तिः सिद्धिर्जरा च पालिनी ।।४४५।।

क्षान्तीश्वर्य्यौ रतिः कामा वरदाह्लादिनी तथा।
दीर्घा तीक्ष्णा च रौद्री च भया निद्रा च तन्द्रिका ॥४४६॥
क्षुत्क्रोधिनी क्रियोत्कारी मृत्युः पीता सितारुणा।
असिता च तथानन्ता मध्ये मध्ये प्रपूजयेत् ॥४४७॥
हंसः शुचिषदित्यादि प्रतद्विष्णुस्तवेति च।
त्र्यम्बकं चैव गायत्रीं विष्णोर्योनिं तथैव च ॥४४८॥

ब्रह्मकला—१. कं सृष्ट्यै नमः, २. खं ऋद्ध्यै नमः, ३. गं स्मृत्यै नमः, ४. घं मेधायै नमः, ५. ङ कान्त्यै नमः, ६. चं लक्ष्म्यै नमः, ७. छं द्युत्यै नमः, ८. जं स्थिरायै नमः, ९. झं स्थित्यै नमः, १०. ञं सिद्ध्यै नमः। ब्रह्मकला का पूजन निम्न मन्त्र से करना चाहिये—

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्ष सद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृद्वरसदृतसद्व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा ऋतं बृहत् नमः।।

विष्णुकला—१. टं जरायै नमः, २. ठं पालिन्यै नमः, ३. डं क्षान्त्यै नमः, ४. ढं ईश्वर्यै नमः, ५. णं रत्यै नमः, ६. तं कामिकायै नमः, ७. थं वरदायै नमः, ८. दं ह्लादिन्यै नमः, ९. धं प्रीत्यै नमः, १०. नं दीर्घायै नमः। विष्णुकला का पूजन निम्न मन्त्र से करना चाहिये—

प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्याय मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठा।
ऊरूषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा नमः।।

रुद्रकला—१. पं तीक्ष्णायै नमः, २. कं रौद्र्यै नमः, ३. बं भयायै नमः, ४. भं निद्रायै नमः, ५. मं तन्द्रायै नमः, ६. यं क्षुधायै नमः, ७. रं क्रोधिन्यै नमः, ८. लं क्रियायै नमः, ९. वं उद्गार्यै नमः, १०. शं मृत्यवे नमः। रुद्रकला का पूजन निम्न मन्त्र से करना चाहिये—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् नमः।।

ईश्वरकला—१. षं पीतायै नमः, २. सं श्वेतायै नमः, ३. हं अरुणायै नमः, ४. क्षं असितायै नमः। ईश्वर कला का पूजन निम्न मन्त्र से करना चाहिये—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाँसः समिन्धते विष्णोर्यत्परमं पदं नमः।।

तारस्य पञ्चभेदोत्थ कलानां पूजने सुधीः।
कलादशकमावाह्य सृष्ट्याद्यं सन्निधाप्य च ॥४४९॥

हंसः शुचिषदित्यादि ऋचं सञ्जप्य पूजयेत्।
प्राणसंस्थापनं कृत्वा कलानां पूजयेच्च ताः ॥४५०॥
एवं जराद्यास्तीक्ष्णाद्याः पीताद्याश्च विधानवित्।
निवृत्त्याद्याश्चापि यजेदुक्तयुक्त्या विचक्षणः ॥४५१॥
अकारोकारकौ प्रोक्तौ मकारो बिन्दुनादकौ।
शक्तिः शान्तिस्त्विमे सप्त ध्रुवं भेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥४५२॥
अन्तिमौ द्वाविमौ भेदौ पृथगेव समीरितौ।

ॐ कला—तार = ॐ की कलाओं के पाँचों विभेदों का पूजन करना चाहिये; जैसे—१. ॐ नमः, २. ह्रीं नमः, ३. श्रीं नमः, ४. ऐं नमः, ५. क्लीं नमः। सृष्ट्यादि दश ब्रह्मकला का आवाहन सन्निधापन करके 'हंसः शुचिषद्' इत्यादिं ऋचाओं का जप करके प्राणप्रतिष्ठा करते हुये उनका पूजन करना चाहिये। इसी प्रकार जरादि १० विष्णु कलाओं, तीक्ष्णादि १० रुद्र कलाओं, पीतादि ४ ईश्वर कलाओं एवं निवृत्त्यादि १० सदाशिव कलाओं का भी उक्त विधि से यजन करना चाहिये। ॐकार के सात भेद बतलाये गये हैं, जो इस प्रकार हैं—अ, उ, म, नाद, बिन्दु, शक्ति एवं शान्ति। इनमें अन्तिम दो भेद—शक्ति एवं शान्ति का पृथक् विवेचन किया गया है।।४४९-४५२।।

अथ त्वश्वत्थपनसचूतानां पल्लवान्दृढम् ॥४५३॥
बन्धयेदिन्द्रवारुण्या लतयास्ये घटस्य च।
कल्पवृक्षधिया तं च भावयेत्कलशोपरि ॥४५४॥
पात्रं तण्डुलसम्पूर्णं नारिकेलफलान्वितम्।
कल्पवृक्षफलं ह्येतत्स्थापयेदनया धिया ॥४५५॥
पट्टवस्त्रयुगेनाथ वेष्टयेत्कलशं ततः।
एतत्प्रधानकुम्भस्य स्थापनं परिकीर्त्तितम् ॥४५६॥

कलश-स्थापन—अब कलश-स्थापन को कहा जा रहा है। पीपल और आम के पल्लवों को इन्द्रवारुणी लता से दृढ़तापूर्वक बाँध कर कलश पर रखे और भावना करे कि यह कल्पवृक्ष के समान है। पल्लवों पर चावल से पूर्ण एक कटोरा रखे और उस पर एक नारियल रखे; साथ ही यह भावना करे कि यह कल्पवृक्ष का फल है। कलश को दो कपड़ों से वेष्टित करे। यह प्रधान कलश का स्थापन कहा गया है।

अथ पूर्वादिकाष्ठासु तोरणानां समीपतः।
यथेच्छया मण्डलानि कुर्यादष्टदलानि च ॥४५७॥
तदूर्ध्वं शालिपुञ्जं तु प्रतिद्वारं समाचरेत्।
तदूर्ध्वं पूर्णकलशं तत्र चैतान् प्रपूजयेत् ॥४५८॥

प्राग्बुधं च वरां दक्षे पश्चाद्वाक्पतिमुत्तरे ।
विघ्नेशमथ चाग्नेय्यां दिक्षु कुम्भाँस्तु विन्यसेत् ॥४५९॥
अमृतं दुर्जयं सिद्धार्थकं मङ्गलमर्चयेत् ।
पुना रुद्रादिकाष्ठासु क्रमादुद्रादिकान् यजेत् ॥४६०॥
लोकपालान् मण्डलेषु कुम्भोपरि तथैव च ।
ऐरावतं पुण्डरीकं वामनं कुमुदाञ्जनौ ॥४६१॥
पुष्पदन्तं सार्वभौमं सुप्रतीकं तदग्रतः ।
ततो गुरुः स्ववेद्यां तु गत्वा स्वस्यासने विशेत् ॥४६२॥

पूर्वादि चारो दिशाओं में काठों से निर्मित तोरणों के समीप इच्छानुसार अष्टदल कमल बनावे। अष्टदल कमलों पर चावल की ढेरी रखे। उसके ऊपर जलपूर्ण कलश खे। सबका पूजन करे। पूरब में बुध का, दक्षिण में वरा का, पश्चिम में वाक्पति का र उत्तर में गणेश का पूजन करे। अग्न्यादि चारो कोणों में कलश-स्थापन करे। न कोण में अमृत का, नैर्ऋत्य में दुर्जय का, वायव्य में सिद्धार्थक का और ईशान मंगल का अर्चन करे। फिर रुद्रादि कोष्ठों में क्रमशः रुद्रादिकों का पूजन करे। कलश के ऊपर मण्डल में लोकपालों का पूजन करे। लोकपालों के आगे क्रमशः ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदन्त, सार्वभौम, सुप्रतीक का पूजन करे। तब गुरु अपनी वेदी के समीप जाकर आसन पर बैठे।।४५७-४६२।।

सञ्चिन्त्य मूलमन्त्रेण मूर्तिं तस्मिन् गुरूत्तमः ।
तस्यां मूर्त्तौ समावाह्य पूजयेदिष्टदेवताम् ॥४६३॥
स्मृत्वा मूलमनुं मन्त्री मातृकासु यथा ततः ।
निर्गमय्य च चैतन्यं नासिकाग्रविनिर्गतम् ॥४६४॥
अञ्जलौ मातृकापद्मं महापुष्पान्विते गुरुः ।
मस्तकान्तं समुत्थाप्य तस्यामावाहयेत्ततः ॥४६५॥
संस्थापनं सन्निधानं सन्निरोधं ततश्चरेत् ।
सम्मुखीकरणं चापि शकलीकरणं ततः ॥४६६॥
ततोऽवगुण्ठनं कार्यममृतीकरणं ततः ।
परमीकरणं कुर्यात्क्रमशस्तस्य मुद्रिकाः ॥४६७॥
विदध्याच्च क्रमात्तत्तदुपचारान् प्रकल्पयेत् ।
आसनादिप्रसूनान्तानुपचारान् प्रकल्प्य च ॥४६८॥

वेदी के समीप पूजन—श्रेष्ठ गुरु मूल मन्त्र से देवता की मूर्ति की कल्पना करके उसका आवाहन करके पूजन करे। मूल मन्त्र का स्मरण करके मातृकाओं का

यथावत् चिन्तन करके चैतन्य रूप में नासिकाग्र के आगे विनिर्गत होकर स्थित देखे। उन मातृकाओं को अंजली में मातृका पद्म में स्थित करे, पुष्पादि समर्पित करे। तब उन्हें अपने मस्तक पर उठाकर ले जाय और वहीं पर उनका आवाहन करे। वहीं पर मातृकाओं का स्थापन, सन्निधान, सन्निरोध, सम्मुखीकरण, शकलीकरण, अवगुण्ठन, अमृतीकरण, परमीकरण करते हेये तत्तत् मुद्राओं को प्रदर्शित करे। इसके बाद आसन से लेकर पुष्प तक के उपचारों की कल्पना करके उन्हें समर्पित करे।।४६३-४६८।।

ततो मन्त्रविधानेषु प्रोक्ताङ्गावरणान्यपि।
सर्वान्ते लोकपालानां तदस्त्राणां च पूजनम् ।।४६९।।

तब मन्त्र-विधान के अनुसार अङ्ग और आवरण पूजन करे और सबके अन्त में लोकपालों और उनके अस्त्रों की पूजा करे।।४६९।।

विधाय पूजामेवं हि धूपदीपनिवेद्यकैः।
कृते निवेद्ये च ततो मण्डलं परितः क्रमात् ।।४७०।।
प्रवालाङ्कुरपत्राणि स्थापनीयानि मन्त्रिणा।
वेदिकाया दक्षभागे कृत्वा स्थण्डिलमुत्तमम् ।।४७१।।
संस्थाप्य वह्निं संस्कृत्य वैश्वदेवं समारभेत्।
यथाविधि ततस्तत्र गन्धाद्यैर्देवतां यजेत् ।।४७२।।
तत्र प्रणवपूर्वाभिर्हुत्वा व्याहृतिभिः क्रमात्।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण पायसेन घृतेन च ।।४७३।।
पञ्चविंशतिभिः पश्चाद्धुत्वा व्याहृतिभिः क्रमात्।
सम्पूज्य तां चन्दनाद्यैः पीठमूर्त्तौ निधापयेत् ।।४७४।।
अग्निं विसृज्य इष्टेन पायसेन बलिं हरेत्।
पार्षदेभ्यश्चन्दनादिपुष्पाक्षतसमन्वितम् ।।४७५।।
तत उत्थाप्य नैवेद्यं तत्स्थलं शोधयेत्सुधीः।
पुनर्यजेच्चोपचारैः पञ्चभिर्दर्शयेत्ततः ।।४७६।।
दर्पणं व्यजनं छत्रं चामरं मुखवासकम्।
सहस्रं च जपेन्मन्त्री मूलमन्त्रं समाहितः ।।४७७।।
देवतायै निवेद्याथ तं जपं सम्पदे ततः।

इस प्रकार के पूजन के बाद सबों का पूजन धूप, दीप, नैवेद्य से करे। तब मण्डल के आगे क्रमशः प्रवालांकुर पत्र की स्थापना करे। वेदी के दक्षिण भाग में एक उत्तम स्थण्डिल बनाये। एसमें अग्नि की स्थापना करके उसका संस्कार करने के बाद वैश्वदेव प्रारम्भ करे। तब गन्धादि से देवता का विधिवत् पूजन करे। तदनन्तर प्रणव

लगाकर व्याहृतियों से हवन करे। इसके बाद मूल मन्त्र से खीर और घी से २५ आहुतियाँ प्रदान करे। इसके बाद व्याहृतियों से हवन करे। चन्दनादि से पूजन करके मूर्ति की स्थापना पीठ पर करे। तब अग्नि का इष्ट रूप में विसर्जन करके पार्षदों को खीर, चन्दन, पुष्प, अक्षतसहित बलि प्रदान करे। तदनन्तर उठकर वहाँ से नैवेद्य को उठाकर उस स्थल का शोधन करे। इसके बाद पञ्चोपचार या दशोपचार से पूजन करे। तत्पश्चात् दर्पण, व्यजन, छत्र, चामर, मुखशुद्धि आदि अर्पित करने के पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक मूल मन्त्र का एक हजार जप करने के बाद उस जप को देवता को समर्पित करे। ऐसा करने से सम्पदा की प्राप्ति होती है।।४७०-४७७।।

ईशानदिशि यः पूर्वं स्थापितो विकिरोऽत्र च ।।४७८।।
सुवर्णवस्त्रसंयुक्तं करकञ्जलपूरितम् ।
न्यसेदत्र यजेदस्त्रदेवतां घोररूपिणीम् ।।४७९।।
पश्चिमाद्यन्ततः खेटधारिणीं सिंहसंस्थिताम् ।
तिष्ठन् सम्पूज्य च ततो गृहीत्वा तं प्रदक्षिणम् ।।४८०।।
एतदन्ते तु रक्षेति लोकेशानि त्वितीरयेत् ।
तारमुक्तेनोदकेन देवतान्तारयेत्ततः ।।४८१।।
स्वस्थाने स्थापयेत्तत्तु फण्मन्त्रेण ततोऽर्चयेत् ।
उपविश्य तु भूयस्तं गन्धाद्यैर्देशिकोत्तमः ।।४८२।।

इसके पश्चात् पूर्व में ईशान दिशा में जिसका स्थापन किया गया था, उसका पूजन करे। सोना और वस्त्र के साथ करक जल हाथ में लेकर यहाँ घोररूपिणी अस्त्रदेवता का न्यास करे और यजन करे। तदनन्तर पश्चिम में स्थित सिंहवाहिनी खेटधारिणी का पूजन करके उन्हें लेकर प्रदक्षिणा करे। इसके बाद 'लोकेशानि! रक्ष रक्ष' कहे। तदनन्तर ॐ का उच्चारण करते हुये देवता का जल से तर्पण करे। इसके बाद उन्हें अपने स्थान में स्थापित करके बैठकर 'फट्' मन्त्र के द्वारा गन्धादि से उनकी अर्चना करे।।४७८-४८२।।

ततो वह्निं सुसंस्कृत्य चरुङ्गोपयसोऽर्पयेत् ।
देवतेष्टादिजे पात्रे क्षालिते च शराणुना ।।४८३।।
मूलाणुनाभिमन्त्र्याथ तण्डुलाञ्छालिसम्भवान् ।
तिथिप्रसूतिमानेन शराणून् प्रपचेत्क्षिपेत् ।।४८४।।
प्रक्षालितेन पात्रेण यावद्वक्त्रं पिधाय च ।
हुम्मन्त्रेण ततो मूलमन्त्रेण देशिकोत्तमः ।।४८५।।
पचेद् गुरुः प्राङ्मुखस्तु सिद्धं तमभिघारयेत् ।
मूलेन स्रुवसंस्थेन घृतेनाथावतारयेत् ।।४८६।।

हुम्मन्त्रेणाऽऽज्यसञ्जप्ते कुशास्तीर्णे विभेद्य तम्।
त्रिधा त्वेकं देवतायै परं वह्नौ निवेदयेत् ॥४८७॥
शिष्टं शिष्येण सहितो गुरुर्भुञ्जीत मन्त्रवित्।
प्रादेशमात्रं ह्रज्जप्तं यथोक्तं दन्तधावनम् ॥४८८॥
शिष्याय दद्यात्स रदान्विशोध्य क्षालितं त्यजेत् ॥४८९॥
आचान्तमन्त्रञ्च यथाविधि तं शिखायां
बद्ध्वा स्वकीयशिखया प्रविधाय मन्त्री।
वेद्यां शयीत कुशसंस्तरणे रजन्यां
शिष्येण सार्द्धममुना गदितोऽधिवासः ॥४९०॥

इसके बाद सुसंस्कृत अग्नि में गोदुग्ध के साथ चरु समर्पित करे। देवता के लिये प्रक्षालित पात्र में शालि चावल के चूर्ण को शरमन्त्र से अभिमन्त्रित करे। इस चावलचूर्ण का मान पन्द्रह मुट्ठी होता है। स्वच्छ पात्र में इसे लबालब भरे। पहले हुं मन्त्र से फिर मूल मन्त्र में गुरु पूर्वाभिमुख होकर इसे सिद्ध होने तक आग पर रखे रहे। स्रुव में घी लेकर मूल मन्त्र से इसे आग पर से उतारे। तत्पश्चात् 'हुं फट्' मन्त्र बोलकर उस पायस का तीन भाग करे। उसमें से एक भाग देवता को समर्पित करे एवं एक भाग अग्नि को निवेदित करे तथा शेष एक भाग का मन्त्रोच्चारण-सहित गुरु और शिष्य दोनों भक्षण करें। फिर एक बित्ता का दतुवन लेकर शिष्य को दे। शिष्य उससे दाँतों को साफ करने के उपरान्त उसे धोकर फेंक दे। आचमन कराकर शिष्य से शिखाबन्धन कराये और अपनी शिखा का भी बन्धन करे। तदनन्तर रात्रि में उसी वेदी पर कुश की चटाई पर शिष्य के साथ गुरु भी शयन करे। इसे ही शिष्य का अधिवास कहा जाता है।।४८३-४९०।।

समुत्थायोषसि पुनः स्नानसन्ध्यादिकं चरेत्।
गुरुः शिष्य ऋत्विजश्च गच्छेद्यज्ञगृहं प्रति ॥४९१॥
सर्वे ते स्वस्वकुण्डेषु जुहुयुः सघृतैस्तिलैः।
पुनः साध्येन मनुना ह्यष्टोत्तरसहस्रकम् ॥४९२॥
द्रव्यैर्विधानप्रोक्तैर्वा हुनेदष्टाधिकं शतम्।
शिष्यं स्नातं पञ्चगव्यं पाययेन्मन्त्रवित्तमः ॥४९३॥

हवन—पुनः उषःकाल में उठकर स्नानादि करके सन्ध्यावन्दन करने के पश्चात् गुरु, शिष्य एवं ब्राह्मणगण यागमण्डप की ओर जायँ। वे सभी ऋत्विज अपने-अपने कुण्डों के पास बैठकर साध्य मन्त्र के से घी और तिल द्वारा एक हजार आठ हवन करें। अथवा प्रोक्त द्रव्य से विधिपूर्वक १०८ आहुति प्रदान करें। तदनन्तर मन्त्रज्ञानी शिष्य को पञ्चगव्य से स्नान कराकर पञ्चगव्य का पान करावें।।४९१-४९३।।

कुण्डस्याभ्याशमानीय दिव्यदृष्ट्या विलोकयेत्।
हृत्पुण्डरीकचैतन्यं शिष्यस्यात्मनि योजयेत् ॥४९४॥
आचार्यस्त्वध्वनां षट्कं तत्र संशोधयेत् क्रमात्।
ताः कलास्तत्त्वभुवनार्णपदा मन्त्रपूर्विकाः ॥४९५॥

तत्पश्चात् गुरु शिष्य के साथ कुण्ड के निकट जाकर उसके चारो ओर दिव्य दृष्टि से अवलोकन करे और अपने हृदयकमल में शिष्य की चैतन्य आत्मा को लाकर उसके षडध्वों का शोधन करे। तदनन्तर मन्त्रपूर्वक कलाध्वों, तत्त्वाध्वों, भुवनाध्वों और वर्णाध्वों का भी शोधन करे।।४९४-४९५।।

शिष्यस्य पादयोश्चिन्त्या गुरुणा च कला इमाः।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैव च ॥४९६॥
शान्त्यतीतेति पञ्चाथ शोधनक्रम उच्यते।
कूर्चेन च गुरुः शिष्यं स्पृशन्कुण्डे स्वके हुनेत् ॥४९७॥
तिलैर्घृताक्तैस्तारोऽस्य त्वमुकाध्वानमन्त्र च।
शोधयामि द्विठान्तेन मन्त्रेणाष्टाहुतीर्हुनेत् ॥४९८॥
तत्त्वाध्वनि विलीनं तु कलाध्वानं विचिन्तयेत्।
ततो लिङ्गप्रदेशेऽस्य तत्त्वाध्वानं विचिन्तयेत् ॥४९९॥

तदनन्तर गुरु शिष्य के पैरों में पाँच कलाओं—निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति एवं शान्त्यतीता का चिन्तन करके इस प्रकार शोधन करे। कुशा से शिष्य का स्पर्श करते हुये गुरु अपने कुण्ड में घृताक्त तिल से आठ आहुति 'ॐ अमुकस्य अमुकाध्वानमन्त्र शोधयामि ठः ठः' मन्त्र से प्रदान करे। तत्त्वाध्वा को कलाध्वा में विलीन होने का चिन्तन करे, तत्पश्चात् लिङ्गप्रदेश में तत्त्वाध्वा का चिन्तन करे।।४९६-४९९।।

गाणेशानि च शैवानि तत्रैतानि रसाग्नयः।
तद्यथा शिवशक्ती च सदाशिवमहेश्वरौ ॥५००॥
विद्येति पञ्चशुद्धानि शुद्धाशुद्धानि सप्त च।
मायाविद्या कला रागः कालो नियतिरेव च ॥५०१॥
पुरुषश्चाथ शुद्धानि प्रकृतिर्बुद्ध्यहंकृती।
मनश्चेन्द्रियदशकं तन्मात्रा भूतपञ्चकम् ॥५०२॥

गाणपत्यों और शैवों के लिये यही षडध्व कहा गया है। क्योंकि शिव, शक्ति, सदाशिव, महेश्वर एवं विद्या—ये पाँच शुद्ध तत्त्व होते हैं। शुद्धाशुद्ध तत्त्व सात होते हैं—माया, अविद्या, कला, राग, काल, नियति एवं पुरुष। पुरुषों के शुद्ध तत्त्व

चौबीस होते हैं—प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा एवं पाँच महाभूत।।५००-५०२।।

अथ वैष्णवतत्त्वानि द्वाविंशत्प्रमितानि तु।
जीवः प्राणो मनोबुद्धिस्तन्मात्रा भूतपञ्चकम्।।५०३।।
दशेन्द्रियाणि हृत्पद्मं सूर्यसोमाग्नयस्तथा।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः।।५०४।।

वैष्णवों के तत्त्व २२ बाईस होते हैं—जीव, प्राण, मन, बुद्धि, पाँच तन्मात्रा, पाँच भूत, दश इन्द्रियाँ (?) हृदयकमल में सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरूद्ध।।५०३-५०४।।

सौराणि भूततन्मात्रा मनोज्ञानेन्द्रियाणि च।
प्रकृतिर्बुद्धिरिति च चतुर्विंशतिसम्मिताः।।५०५।।
दशैव शक्तितत्त्वानि आत्मा विद्या शिवा इति।
शिवा विद्या तथात्मेति चात्मा विद्या शिवा पुनः।।५०६।।
सर्वतत्त्वं चेति पुनः प्राग्वद्देहेन होमयेत्।

सौरों के लिये २४ तत्त्वों में पञ्च महाभूत, पाँच तन्मात्रा, मन, ज्ञानेन्द्रियाँ, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार और कर्मेन्द्रियाँ आती हैं। शक्ति तत्त्व दश ही होते हैं। जैसे—आत्मा, विद्या, शिवा, शिवा, विद्या, आत्मा, आत्मा, विद्या, शिवा। इन सभी तत्त्वों का पूर्ववत् अपने शरीर में हवन करना चाहिये।।५०५-५०६।।

तत्त्वाध्वानं विलीनं तु चिन्तयेद् भुवनाध्वनि।।५०७।।
शिष्यस्य नाभौ चिन्त्यानि भुवनानि चतुर्दश।
तानि क्रमेण पातालरसातलमहातलम्।।५०८।।
तलातलञ्च सुतलं वितलं चातलञ्च भूः।
भुवस्तु स्वर्महश्चापि जनस्तप इति क्रमात्।
सत्यञ्च भुवनाख्यानि होमव्यूहस्तु पूर्ववत्।।५०९।।

तदनन्तर तत्त्वाध्वों के भुवनाध्वा में विलीन होने का चिन्तन करना चाहिये। शिष्य की नाभि में चौदहों भुवनों का चिन्तन करे। वे क्रमशः इस प्रकार हैं—पाताल, रसातल, महातल, तलातल, सुतल, वितल, अतल, भूः, भूवः, स्वः, महः, जन, तप एवं सत्य। इन भुवनाध्वों का हवन भी पूर्ववत् करे।।५०७-५०९।।

विलीनं भुवनाध्वानं वर्णाध्वनि विचिन्तयेत्।
अकारादिक्षकारान्तान् वर्णान् सञ्चिन्तयेद्बुदि।।५१०।।

वर्णाध्वानं विलीनन्तु पदाध्वनि विचिन्तयेत्।
होमौघः प्राग्वदेवात्र ललाटे चिन्तयेत्ततः ॥५११॥
पदाध्वानं मूलमन्त्रपदवर्णस्वरूपतः।
यदाध्वात्रोहहोमादि प्राग्वदेव समाचरेत् ॥५१२॥
मन्त्राध्वनि विलीनन्तु पदाध्वानं विचिन्तयेत्।
सम्पूर्णमन्त्रो मन्त्राध्वा चिन्तयेच्छिष्यमूर्द्धनि ॥५१३॥
होमोहः प्राग्वदेवात्र विलीनोऽयं परे शिवे।
ब्रह्मरन्ध्रे स्थितन् ध्यायेदेतत् स्यादध्वशोधनम् ॥५१४॥

तदनन्तर भुवनाध्वा के वर्णाध्वा में विलीन होने का चिन्तन करे और अपने हृदय में 'अ' से 'क्ष' तक के ५० वर्णों का चिन्तन करे। तत्पश्चात् वर्णाध्वा के पदाध्वा में विलीन होने का चिन्तन करे और पूर्ववत् इनका हवन अपने ललाट में करे। इसके पश्चात् पदाध्वों के मूल मन्त्र अध्व में परिवर्तित होने का चिन्तन करे और इस अध्व का हवन भी पूर्ववत् करे। तदनन्तर ऐसा समझे कि मन्त्राध्व पदाध्व में विलीन हो गये। इसके बाद सम्पूर्ण मन्त्र और मन्त्राध्वों का चिन्तन शिष्य की मूर्द्धा में करे। पूर्ववत् इनका भी हवन करे और समझे कि ये सभी परशिव में विलीन हो गये। तब ब्रह्मरन्ध्र में स्थित होकर ऐसा चिन्तन करे कि सभी अध्वों का शोधन हो गया।।५१०-५१४।।

सृजेत् सृष्ट्या विलीनांस्ताञ्छिवात्तस्माद् गुरूत्तमः।
देशिकेन्द्रश्च तं शिष्यं दृष्ट्वा दृष्ट्या च दिव्यया ॥५१५॥
तच्चैतन्यं स्थितं स्वस्मिंस्तस्मिंस्तच्चैव योजयेत्।
हुनेन्महाव्याहृतिभिस्ततो देशिकसत्तमः ॥५१६॥
अङ्गप्रवृत्त्या वृत्तीनां हुनेद्धूयो घृतेन वै।
ब्रह्मार्पणाख्यमन्त्रेण सर्वकर्मच्छिदे सुधीः ॥५१७॥

तब श्रेष्ठ गुरु सृष्टिक्रम से सबों को शिवा में विलीन होने की भावना करते हुये उस देशिकश्रेष्ठ शिष्य को दिव्य दृष्टि से देखे। तब स्वयं चैतन्य में स्थित होकर शिष्य के चैतन्य में अपने चैतन्य को योजित कर दे। तब देशिक महाव्याहृतियों से हवन करे। अङ्गप्रवृत्ति से वृत्तियों को घी मानकर उनसे हवन करे। ब्रह्मार्पण मन्त्र से सभी कर्म का समापन करे। महा व्याहृति होम और ब्रह्मार्पणाहुति निम्न प्रकार के होते हैं—

भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा। भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा। स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा। इतः पूर्व प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यत्कृतं यदुक्तं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा।।५१५-५१७।।

जुहुयादाहुतीरष्टौ केवलाज्येन मन्त्रवित् ।
हुत्वा पूर्णाहुतिं मन्त्री स्तुत्वा मूलाणुना ततः ॥५१८॥
अग्निं सम्प्रार्थ्याग्निसाङ्गमन्त्रेणैकाहुतिं हुनेत् ।
सर्पिषा स्रुवमापूर्य पुष्पञ्चोपर्यधोमुखम् ।
स्रुवोपरि स्रुवं दत्त्वा पुष्पं तत्र प्रपातयेत् ॥५१९॥
सव्योत्तरकराभ्यां च सम्पुटाभ्याञ्च शङ्खवत् ।
होमन्तु मांसमाषाभ्यां तीर्थाह्वाभ्यां च पूर्णताम् ॥५२०॥
कुर्यात्स्वाहान्तमूलेन फलान्येन तु वैदिकः ।
दक्षपादं पुरस्कृत्य दक्षः पूर्णाहुतिञ्चरेत् ॥५२१॥
शक्तिहोमे वाममार्गी वामपादञ्च सर्वतः ।

इसके बाद केवल गोघृत से आठ आहुति प्रदान करने के पश्चात् पूर्णाहुति देकर मन्त्रज्ञ मूल मन्त्र से स्तुति करके अग्नि की विधिवत् प्रार्थना करके साङ्ग मन्त्र से एक आहुति से हवन करे। स्रुव में गोघृत भरकर उसके ऊपर अधोमुख फूल रखकर स्रुव पर स्रुव रखकर उस अग्नि में फूल को तप्त करे। वाम-दक्षिण हाथों को शङ्खवत सम्पुटित करके वाममार्गी मांस, उड़द और मद्य से पूर्णाहुति करे। वैदिक को स्वाहान्त मूल मन्त्र से फल द्वारा पूर्णाहुति प्रदान करनी चाहिये एवं दाँयाँ पाँव आगे बढ़ाकर दक्षिणमार्गी को पूर्णाहुति देनी चाहिये। शक्तिहोम में वाममार्गी अपने वाम पाद को आगे रखता है।।५१८-५२१।।

पुनः सम्पूज्य गन्धाद्यैर्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥५२२॥
कुण्डादुद्वास्य चाचार्यो देवतां कलशे न्यसेत् ।
साङ्गां सावरणां तत्र पूजयेच्च यथाविधि ॥५२३॥

पुनः चारो ओर गन्ध आदि से मूल मन्त्र द्वारा पूजन करके मन्त्रज्ञ आचार्य कुण्ड का उद्वास करके देवता को कलश में न्यस्त करे एवं वहीं पर अंग तथा आवरण-सहित देवता की यथाविधि पूजा करे।।५२२-५२३।।

सप्त व्याहृत्यग्निजिह्वाङ्गमूर्तीनामथैक्यकम् ।
दुग्धेन परिषिच्याग्निं प्रार्थयीत ततो गुरुः ॥५२४॥
भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकामप्रदायक ।
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम् ॥५२५॥
इति मन्त्रेण सम्प्रार्थ्य चाग्निमुद्वासयेदपि ।
ततो ब्रह्माणमुद्वास्य ब्राह्मणाय प्रपादयेत् ॥५२६॥

द्वात्रिंशत्पलमात्रेण निर्मितं ताम्रपात्रकम्।
तण्डुलैस्तत्समापूर्य सहिरण्यं सदक्षिणम् ॥५२७॥
दद्याद्विप्राय तत्तुष्ट्यै पूर्णपात्रमितीरितम्।

तदनन्तर सात व्याहृतियाँ, अग्निजिह्वा एवं अंगमूर्तियों के ऐक्य की भावना करने के पश्चात् अग्नि का दूध से परिसिञ्चन करके गुरु इस मन्त्र से प्रार्थना करे—

भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकामप्रदायक।
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्।।

अर्थात् हे अग्निदेव! आप समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले महाशक्ति-स्वरूप हैं। अन्य कर्म प्राप्त होने पर भी आप आदर-सहित मेरा सान्निध्य ग्रहण करें।

इस मन्त्र से प्रार्थना करने के पश्चात् अग्नि को भी उद्वासित करने के अनन्तर ब्रह्मा का भी उद्वासन करके उसे ब्राह्मण को समर्पित कर दे। साथ ही ब्राह्मण की सन्तुष्टि के लिये ३२ पल (लगभग ढाई सेर) ताम्बे से निर्मित पूर्णपात्र को चावल से भरकर उस पर सोना रखकर दक्षिणा-सहित ब्राह्मण को प्रदान करे।।५२४-५२७।।

ततः परिस्तरानग्नौ परिधीन्निक्षिपेन्न तु ॥५२८॥
नित्ये नैमित्तिके तांस्तु क्षिपेद्देशिकसत्तमः।
वस्त्रेण नेत्रमन्त्रेण शिष्यनेत्रं निबध्यते ॥५२९॥
कुण्डाद्धस्तं समाधाय नयेन्मण्डलसन्निधौ।
सुमनोभिः प्रपूर्यास्य ह्यञ्जलीन् क्षेपयेद्धरे ॥५३०॥
मूलमन्त्रोच्चारपूर्वं देवताप्रीतये गुरुः।
नेत्रबन्धमपास्योपवेशयेत् कुशसंस्तरे ॥५३१॥
ततश्च पाठयेच्छिष्यं मन्त्रमेनं गुरूत्तमः।
गुरुभक्तियुतो ब्रूयाच्छिष्यः श्लोकञ्च तत्र वै ॥५३२॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५३३॥
अन्ते पूजाविधानेन स हरेज्जनयेच्च तम्।
शिष्यो हृत्तस्य मन्त्रस्य न्यासान्देहे परिन्यसेत् ॥५३४॥
पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य कलशे स्वेष्टदेवताम्।
तन्त्रोक्तवर्त्मना तत्र सकलाकृतिमाचरेत् ॥५३५॥

तदनन्तर केवल परिस्तरण का अग्नि में निक्षेप करे, परिधि का निक्षेप न करे। नित्य और नैमित्तिक कर्मों में भी देशिकश्रेष्ठ परिस्तरण का निक्षेप करे। इसके बाद वस्त्र से नेत्रमन्त्र के द्वारा शिष्य की आँखों पर पट्टी बाँधकर गुरु शिष्य का हाथ पकड़कर

मण्डल के निकट ले आये। मूल मन्त्र का उच्चारण करके देवता की प्रीति के लिये अञ्जलि भर फूल लेकर गुरु पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। तत्पश्चात् शिष्य की आँखों से पट्टी हटाकर उसे कुश की चटाई पर बिठाकर गुरु शिष्य से निम्नांकित श्लोकमन्त्र का पाठ करावे और गुरुभक्ति से युक्त शिष्य भी गुरुप्रदत्त श्लोकमन्त्र का उच्चारण करे—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

अर्थात् अज्ञानरूपी गहन अन्धकार से अन्धे की आँखों को ज्ञानरूप अञ्जन-शलाका द्वारा खोलने वाले गुरु को नमस्कार है। अन्त में पूजाविधान से गुरु उस शिष्य के पापों का हरण करे और नया जन्म प्रदान करे। तत्पश्चात् शिष्य उससे मन्त्र ग्रहण कर उसका न्यास अपने शरीर में करे। तदनन्तर गुरु को अपने इष्टदेवता का कलश में पाँच उपचारों से पूजन करने के उपरान्त तन्त्रोक्त मार्ग से समस्त कर्मों का सम्पादन करना चाहिये।।५२८-५३५।।

अथोपवेशयेच्छिष्यं भूषितं मण्डलान्तरे।
कुम्भास्यस्थसुरद्रुंश्च मूर्द्धन्यस्य शिशोर्गुरुः ॥५३६॥
अथ पञ्चनिनादैश्च विप्राशीर्वचनैः सह।
सुस्थितं नियतात्मानं सिञ्चेत् कलशपुष्पकैः ॥५३७॥
येन प्रकारेण सुरा योजिताश्च सुधामयैः।
तोयैरक्षरसंयुक्तैर्घटैस्तेनैव वर्त्मना ॥५३८॥

इसके बाद गुरु शिष्य को भूषित मण्डल के भीतर बिठाकर कलश के मुख पर अवस्थित कल्पवृक्ष को शिष्य के मस्तक पर रखे। तदनन्तर शङ्खध्वनि एवं ब्राह्मणों के आशीर्वाद से सावधान स्वयं को जिस प्रकार जल को देवताओं ने अमृतमय बनाया था, उसी रीति से अक्षरों से संयुक्त घट के जल से कलशपुष्पों से सिञ्चित करे।

अथ शिष्यञ्चाभिषिञ्चेदाशु तं सम्पदाप्तये।
गृहीत्वाभ्यर्चितं पूर्वं करकं मन्त्ररूपिणम् ॥५३९॥
तत्तोयैरभिषिञ्चेत्तं सुशिष्यं देशिकोत्तमः।
जलेन शिष्टेन शिशुं गुरुराचामयेत्ततः ॥५४०॥

तदनन्तर शीघ्र सम्पत्ति-प्राप्ति के लिये पहले से अभ्यर्चित मन्त्ररूपी करक को हाथ में लेकर उसके उसके जल से गुरु सुशिष्य का अभिषेक करने के बाद करक में बचे शेष जल से गुरु शिष्य को आचमन कराये।।५३९-५४०।।

तद्देवतास्वरूपञ्च विदध्यात्सकलीकृतम्।
वाससी विमले रम्ये परिधायाज्ञया गुरोः ॥५४१॥

आचम्य निकटे तस्या गच्छेत्सम्यङ्मनुं ततः।
दक्षकर्णे वदेद्विद्वान् विप्रस्योङ्कारपूर्वकम् ॥५४२॥

तदनन्तर गुरु शिष्य का देवस्वरूप में सकलीकरण करे। इसके बाद गुरु की आज्ञा प्राप्त कर शिष्य निर्मल मनोहर वस्त्र धारण कर आचमन करके संयत मन से गुरु के निकट जाय। तब विद्वान् आचार्य ब्राह्मण शिष्य के दाहिने कान में ॐकारपूर्वक मन्त्र का उच्चारण करे बोले।।५४१-५४२।।

अन्येषान्तु वददेवमेव मन्त्रं विचक्षणः।
स्वयं ज्योतिर्मयीं विद्याङ्गच्छन्तीं भावयेद् गुरुः ॥५४३॥
आगताम्भावयेच्छिष्यो देवोऽस्मीति विशेषतः।
अष्टोत्तरशतं शिष्यः प्रजपेद् गुरुणोदितम् ॥५४४॥
अष्टाविंशतिवारं वा चाष्टकृत्वोऽथ वा जपेत्।
गुरुदेवात्ममन्त्राणामैक्यं शिष्यो विभावयेत् ॥५४५॥
प्रणामं गुरवे कुर्यात्साधको भक्तिमान् मुहुः।
साष्टाङ्गश्चाथ पञ्चाङ्गः पूजाकर्मसु सम्मतः ॥५४६॥

दूसरे वर्ण वालों को ॐ का उच्चारण किये विना ही आचार्य मन्त्र प्रदान करे। गुरु भावना करे कि ज्योतिर्मयी विद्या अङ्गों के सहित शिष्य में प्रवेश कर रही है एवं शिष्य भावना करे कि देवता का प्रवेश उसमें हो रहा है और मैं देवस्वरूप हो गया हूँ। तदनन्तर शिष्य गुरुप्रदत्त मन्त्र का एक सौ आठ बार, अट्ठाईस बार अथवा आठ बार जप करे एवं गुरु के साथ-साथ मन्त्र, देवता और स्वयं में ऐक्य की भावना करे। तब साधक पूजाकर्म में जैसा विहित हो तदनुसार अष्टाङ्ग अथवा पञ्चाङ्ग प्रणाम बार-बार भक्तिसहित गुरु को निवेदित करे।।५४३-५४६।।

हस्ताभ्याञ्चैव जानुभ्यां प्रणामो वक्षसा तथा।
मूर्ध्ना दृष्ट्या तथा चैव चित्तेनाष्टाङ्ग ईरितः ॥५४७॥
हस्तजानुशिरोवाक्यदृष्ट्यः पञ्चाङ्ग ईरितः।

दोनों हाथ, दोनों जानु, वक्ष, मस्तक, दृष्टि एवं चित्त के संयोग से किया गया प्रणाम अष्टाङ्ग प्रणाम कहलाता है तथा हाथ, जानु, शिर, वाणी एवं दृष्टि के संयोग से किया जाने वाला प्रणाम पञ्चाङ्ग प्रणाम कहलाता है।।५४७।।

आचार्याज्ञां सदा कुर्यात्तत्तः शिष्यो विचार्य च ॥५४८॥
अलङ्काराँश्च वासांसि दद्यादृत्विग्भ्य आदरात्।
ईश्वरार्पणबुद्ध्या च द्विजाशीर्भिश्च नन्दितः ॥५४९॥

प्रदद्याद् गुरवे शिष्यः स्वधनार्धं तदर्धकम्।
दशांशं वा प्रदद्याच्च वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥५५०॥
गोभूहिरण्यविपिनगृहक्षेत्रादिकं पुनः।
अक्लेशादन्नवस्त्रादि दद्याद्वित्तानुसारतः ॥५५१॥

प्रकारान्तरमालम्ब्य गुरुं यत्नेन तोषयेत्।
तदधीनमना नित्यं तच्चिन्तनपरायणः॥५५२॥
तत्पादाब्जरजोभूषो भवेत्साधकसत्तमः।

शिष्य को गुरु की आज्ञा का सदैव पालन करना चाहिये। तदनन्तर विचार कर ऋत्विजों को आदरपूर्वक आभूषण और वस्त्र ईश्वरार्पण बुद्धि से प्रदान करे एवं ऋत्विग्गण भी प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद प्रदान करें। शिष्य वित्तशाठ्य न करते हुये अपने धन का आधा, एक चौथाई अथवा दशांश गुरु को प्रदान करने के बाद अपने सामर्थ्य के अनुरूप प्रसन्नतापूर्वक गाय, भूमि, सोना, बगीचा, घर, अन्न, वस्त्र आदि प्रदान करे; साथ ही अन्य उपायों द्वारा भी यत्नपूर्वक गुरु को सन्तुष्ट करे। अपने को बराबर उसके अधीन समझे तथा उनके ही चिन्तन में रत रहे। श्रेष्ठ साधक के लिये गुरु के पाँवों की धूलि आभूषणस्वरूप होती है।।५४८-५५२।।

ततो नानाविधैर्भक्ष्यैर्लेह्यैश्चोष्यैस्तथापरैः ॥५५३॥
ब्राह्मणान् भोजयेत् सम्यक् प्रदद्याद्भूरिदक्षिणाम्।

इसके बाद विविध प्रकार के भक्ष्य, लेह्य, चोष्य आदि से ब्राह्मणों को सम्यक् रूप से भोजन कराये एवं भोजन के बाद प्रचुर दक्षिणा प्रदान करे।।५५३।।

एवं क्रियामयी दीक्षा सम्पद्दात्री निरूपिता ॥५५४॥
राज्ञां धनाढ्यवैश्यानां विप्राणां व्यवसायिनाम्।
अयं दीक्षाक्रमः प्रोक्तो भोगयुक् सिद्धिमिच्छताम् ॥५५५॥

इस प्रकार राजाओं, धनाढ्यों, वैश्यों, ब्राह्मणों एवं व्यवसायियों के लिये सम्पत्ति-प्रदायक क्रियावती दीक्षा का निरूपण किया गया। यह दीक्षाक्रम सिद्धि एवं भोग प्रदान करने वाला कहा गया है।।५५४-५५५।।

वर्णमयी दीक्षा

अथ वर्णमयीं दीक्षां शृण्वनुज्ञानदायिनीम्।
यत्प्रकृत्यात्मतत्त्वज्ञ वर्णानां समुदीरितम् ॥५५६॥
तादृक्तत्त्वं शरीरेऽस्य प्रोक्तमेवास्ति देशिकैः।
ततस्तनौ शिशोर्न्यस्येदर्णान् देशिकसत्तमः ॥५५७॥

संहरेद्वैपरीत्येन वर्णान् स्वस्थानसंस्थितान्।
देशिकेन्द्रः स्वसामर्थ्याद्दापयेद्देवतात्मताम् ॥५५८॥
देवतात्मा भवेच्छिष्यस्तदा संलीनतत्त्वतः।

वर्णमयी दीक्षा—अब अनुज्ञानदायिनी वर्णमयी दीक्षा का वर्णन सुनो, जिसे वर्णों की प्रकृति एवं आत्मतत्त्व कहा गया है। शरीर के उन तत्त्वों का वर्णन किया जा चुका है। देशिकश्रेष्ठ उन तत्त्ववर्णों का न्यास शिष्य के शरीर में करे। विपरीत वर्णों को शरीरस्थ स्थानों से देशिक अपने सामर्थ्य से हटाकर देवता से तादात्म्य स्थापित करे। इस प्रकार तत्त्वों के लीन होने से शिष्य देवतात्मा हो जाता है।।५५६-५५८।।

कलावती दीक्षा

अथ वक्ष्ये कलादीक्षामणिमाद्यष्टसिद्धिदाम् ॥५५९॥
वेदे पञ्चकला दीक्षा दक्षेष्टत्रिकला मता।
कुपञ्चाशत्कला वामे सिद्धमन्त्रगुरोस्तु सा ॥५६०॥
ग्राह्या द्रुतं सिद्धिकर्त्री विपरीता विपर्यया।
कला निवृत्तिप्रमुखा भूतानां पञ्च चेरिताः ॥५६१॥
शिष्यकाये भूतमये वेधयेत्ताः क्रमात् सुधीः।
पादादिजानुपर्यन्तं निवृत्तिः संस्थिता कला ॥५६२॥
जान्वोः सकाशादानाभि प्रतिष्ठाख्या कला स्मृता।
नाभितः कण्ठपर्यन्तं विद्याख्या संस्थिता कला ॥५६३॥
कण्ठतो ह्याललाटन्तु शान्त्याख्या संस्थिता कला।
भालाच्छिरोऽवधि प्रोक्ता शान्त्यतीता कला तथा ॥५६४॥
संहृतिक्रमतो विद्वान् वेधयेत् स्थानतोऽन्यतः।
स्थाने स्वीयाज्ञया चैव दीक्षा पञ्चकला स्मृता ॥५६५॥

कलावती दीक्षा—अब अणिमादि अष्ट सिद्धियों को देने वाली कलावती दीक्षा का वर्णन किया जाता है। वैदिकों की यह दीक्षा पञ्चकलात्मिका होती है। दक्षिणमार्गियों के लिये त्रिकलात्मिका दीक्षा श्रेष्ठ होती है। वाममार्गियों की दीक्षा पचास कलात्मिका होती है। यह दीक्षा सिद्धमन्त्र गुरु के समान होती है। शीघ्र सिद्धिप्रद दीक्षा ग्राह्य है; इसके विपरीत होने से विपर्यय होता है। निवृत्ति आदि कलायें होती हैं एवं भूत पाँच होते हैं। शिष्य के शरीर में गुरु को भूतमय क्रम से उनका वेध करना चाहिये। पाँव से घुटनों तक निवृत्ति कला स्थित रहती है। घुटनों से नाभि तक प्रतिष्ठा कला का स्थान होता है। नाभि से कंठ तक विद्या नामक कला का अधिष्ठान है। कण्ठ से ललाट तक शान्ता नामक कला स्थित रहती है एवं ललाट से शिखा

तक शान्त्यतीता कला का स्थान माना जाता है। विद्वान् देशिक को संहार क्रम से एक के बाद दूसरी कलाओं का वेधन करना चाहिये। अपने स्थान आज्ञाचक्र में पञ्चकला दीक्षा दी जाती है ।।५५९-५६५।।

अष्टत्रिंशत्कला दीक्षा

अष्टत्रिंशत्कला दीक्षा युक्तिं शृण्वन्तु देवताः ।
क्रमेण कादिका वर्णा यत्र द्वादश संस्थिताः ॥५६६॥
विलोमा भादिका यत्र तत्र स्थानद्वये कलाः ।
भावनीयास्तु सूर्यस्य षोडशाशु विधोस्तथा ॥५६७॥
यकारादिस्थले वह्नेर्भावनीयाः कला दश।
ततो वर्णकलानान्तु वर्णस्थानाच्च संहृतिः ॥५६८॥
पुनश्च जनयेच्छिष्यः कलादीक्षाविधिस्त्वयम् ।
कौलिके वाममार्गे चावेददीक्षा फलप्रदा ॥५६९॥
अन्यास्ता दक्षिणे मार्गेऽन्यथा तु पतितो भवेत् ।

अड़तीस कलात्मक दीक्षा—हे देवताओं! अब ३८ कलाओं वाली दीक्षा की युक्ति सुनिये। क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ=१२ कला, भ ब फ प न ध द थ त ण ढ ड=१२ कला, कादि भादि के मिलन स्थान में दो कला, य र ल व श ष स ह ळ क्ष=१० कला; इस प्रकार कुल मिलाकर ३८ कला। इनमें १२ कला सूर्य की, सोलह कला चन्द्र की और १० कला अग्नि को समझनी चाहिये। तब वर्णकलाओं में वर्णस्थानों का विलय कर दे। फिर कलादीक्षा की विधि से शिष्य में इनका जनन करे। कौलिकों और वाममार्गियों को यह दीक्षा फलप्रद होती है। इन दोनों के अतिरिक्त तथा दक्षिणमार्गी भी इस दीक्षा से पतित होता है।।।५६६-५६९।।

ज्ञानवती दीक्षा

दीक्षां वेदमयीं वक्ष्ये यां लब्ध्वा सुखदाञ्जनः ॥५७०॥
तत्काल एव संसारे जीवन्मुक्तोऽभिजायते ।
मूलाधारे तु शिष्यस्य ध्यायेत्कञ्जं चतुर्दलम् ॥५७१॥
तस्य मध्ये त्रिकोणन्तु तन्मध्ये चापि कुण्डलीम् ।
त्रिरावर्णमयीं देवीं विद्युत्पुञ्जस्वरूपिणीम् ॥५७२॥
महादेवमयीं साक्षाज्ज्ञानमात्रेण रूपिणीम् ।
अणोरणीयसीं देवीं चक्रषट्कप्रभेदिनीम् ॥५७३॥
सुषुम्णावर्त्मना दिव्यां यान्तीं शिवगृहम्प्रति ।
सान्तवादिदलस्थार्णान् पद्मस्थाने समाहरेत् ॥५७४॥

षड्दले कमले तन्तु लान्तबाद्यर्णयुग्दले।
स्वाधिष्ठाने गुरुः सम्यग्योजयित्वा तु वेधयेत् ॥५७५॥
तदर्णानानयेद्विन्दौ बिन्दुं तन्नाभिपङ्कजे।
फान्तडाद्यर्णसंयुक्ते दिग्दले वेधयेत्स्वयम् ॥५७६॥
वर्णांस्तान् योजयेद्रुद्रे रुद्रं तं हृत्सरोरुहे।
ठान्तकाद्यर्णपत्राब्जे वेधयेदीश्वरे स्वयम् ॥५७७॥
वर्णांस्तानाहरेत्तस्मिन् कण्ठपद्मे च तं तथा।
कलादलमये पद्मे स्वरान् संयोज्य यत्नतः ॥५७८॥
सदाशिवेऽथ संयोज्य तं तु भ्रूमध्यपद्मके।
द्विदले लक्षसंयुक्ते वेधयित्वा तु देशिकः ॥५७९॥
शक्त्या सहैवमात्मानं नयेत् परशिवावधि।
देशिकाज्ञावशः शिष्यो दग्धाज्ञानस्तदा क्षितौ ॥५८०॥
यतेदवाप्तविज्ञानः सर्वज्ञो जायते ततः।
सदाशिवः स्वयम्भूयात् सत्यमेव न संशयः ॥५८१॥

ज्ञानवती दीक्षा—अब वैदिक दीक्षा का वर्णन किया जाता है, संसार में जिसे साधक सुखद अञ्जन के सदृश प्राप्त करके तत्काल ही जीवनमुक्त हो जाता है। शिष्य के मूलाधार में चतुर्दल पद्म का ध्यान करे। उसके मध्य में एक त्रिकोण है। त्रिकोण के मध्य में कुण्डलिनी है। वह त्रिवर्णमयी देवी विद्युत्पुञ्ज-स्वरूपिणी है। वह महादेव-मयी साक्षात् ज्ञानस्वरूपा है। वह ऐश्वर्यशालिनी, षट् चक्रों का भेदन करने वाली वह देवी सुषुम्णा मार्ग से शिव गृह सहस्रार में जाती है। मूलाधार चक्र के चार दलों में स ष श व अक्षर विद्यमान हैं। इसके ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र में छः वर्ण—ल र य म भ ब का योजन करके गुरु उसका भेदन करे। उन वर्णों को विन्दुयुक्त करके नाभिचक्र मणिपूर में ले आवे। इसके दस दलों में फ प न ध द थ त ण ढ ड हैं। उनका भेदन गुरु स्वयं करे। उसके ऊपर द्वादश कमल दल है, जिसके बारह दलों में ठ ट ञ झ ज छ च ङ घ ग ख क वर्णों का योजन करे। इसे हृदय कमल या अनाहत या रुद्र कहते हैं। इसका भेदन ईश्वर में स्वयं करे। इसके ऊपर वहाँ के वर्णों का विलोप करके कण्ठ चक्र में कुण्डलिनी को ले आये। इस सोलह दल के कमल में १६ स्वरों अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः का योजन करे। सदाशिव के माध्यम से इसका योजन भ्रूमध्यस्थ आज्ञाचक्र में करे। इसके दो दलों में ह क्ष का भेदन देशिक शक्ति के द्वारा करे। शक्ति के साथ आत्मा को मिलाकर परशिव से सहस्रार में ले आये। तदनन्तर देशिक की आज्ञा के अनुसार शिष्य का अज्ञान भस्मीभूत हो जाता है, जिसके फलस्वरूप साधक पृथ्वी पर विज्ञानवान एवं सर्वज्ञ हो

जाता है। साधक स्वयं सदाशिव हो जाता है। यह सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं है।।५७०-५८१।।

इयं ज्ञानप्रदा प्रोक्ता दीक्षा वेदात्मिका शिवा।
गुरुः स्वयं गुरुं ध्यायेत् स्वहस्ते शिवरूपिणम्।।५८२।।
मूलविद्यां षडङ्गं च मातृकादिमनुं जपेत्।
शिष्यस्य मस्तके दत्त्वा कृपया दक्षिणं करम्।।५८३।।
पश्चादुपदिशेत् प्रोक्ता स्पर्शदीक्षातिसिद्धिदा।
सदाशिवे तु चिद्रूपे गुरुश्चित्तं निधापयेत्।।५८४।।
मन्त्रान् समस्तांस्तज्जातान् स्वयं ध्यायेत्तदात्मकः।
जातो गुरोस्तु कृपया केवलोऽहं सदाशिवः।।५८५।।

इस ज्ञानमयी दीक्षा को वेदात्मिका दीक्षा भी कहते हैं। गुरु स्वयं अपने गुरु का ध्यान करके शिवस्वरूप होकर षडङ्ग मूल विद्या और मातृकादि मन्त्रों का जप करके शिष्य के मस्तक पर अपना दाहिना हाथ रखे। इसके बाद शिष्य को मन्त्र का उपदेश दे। इसे अति सिद्धिप्रद स्पर्शदीक्षा कहते हैं। चित्तरूपी सदाशिव में गुरु अपने चित्त को निधापित करे। इससे सभी मन्त्र स्वयं प्रकट हो जाते हैं। मन्त्रों के साथ तादात्म्य स्थापित करे। गुरु की कृपा से शिष्य में सदाशिव भाव उदित होता है और वह समझने लगता है कि 'केवलोऽहं सदाशिवः' अर्थात् मैं केवल सदाशिव हूँ, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ।।५८२-५८५।।

वाग्दीक्षा शाम्भवी दीक्षा वा

इति ध्यायन्नुपदिशेद्वाग्दीक्षा त्वियमीरिता।
निमील्य नयने ध्यात्वा परमात्मनि देवताम्।।५८६।।
तद्दर्शनानन्दपूर्णनेत्राभ्यां दर्शयेद् गुरुः।
शिष्यं प्रसन्नचित्तः सन् पश्चादुपदिशेदिति।।५८७।।
मन्त्रसिद्धस्य सिद्ध्यै स्यादृग्दीक्षेयं फलप्रदा।
गुरोरालोकमात्रेण भाषणात् स्पर्शनादपि।।५८८।।
सद्यः सञ्जायते ज्ञानं सा दीक्षा शाम्भवी स्मृता।
भुक्तिमुक्तिप्रसिद्ध्यर्थं परीक्ष्य विधिवद् गुरुः।।५८९।।
पश्चादुपदिशेन्मन्त्रमन्यथा निष्फलो भवेत्।
अन्यायेन च यो दद्याद् गृह्णात्यन्यायतश्च यः।।५९०।।
ददतो गृह्णतो वापि कुलशापो भविष्यति।
गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम्।।५९१।।

उपदेशं ददद् गृह्णन् प्राप्नुयातां पिशाचताम्।
अशास्त्रीयोपदेशन्तु यो गृह्णाति ददाति यः ॥५९२॥
भुञ्जाते तावुभौ घोरान्नरकानेकविंशतिम्।
असंस्कृत्योपदेशं तु यः करोति विमूढधीः ॥५९३॥
विनश्यन्ति च तन्मन्त्राः सैकते शालिबीजवत्।
अनर्हे मन्त्रविज्ञानं न तिष्ठति कदाचन ॥५९४॥
तस्मात् परीक्ष्य कर्त्तव्यं चान्यथा निष्फलं भवेत्।
सच्छिष्यायातिभक्ताय विज्ञानमुपदिश्यते ॥५९५॥
तत्प्राप्नोति ब्रवीमि त्वाङ्क्षीरान्ते यथा घृतम्।
धनेच्छाभयलोभाद्यैरयोग्यं यदि दीक्षयेत् ॥५९६॥
देवताशापमाप्नोति कृतञ्च विकृतं भवेत्।
एवं दत्त्वा गुरुर्दीक्षां कुर्यात् पूर्णाभिषेचनम् ॥५९७॥
विनयेनाभिषेकेण साधकः पूर्णबोधताम्।
आचार्यत्वं च नाप्नोति सद्गतिञ्च समीहिताम् ॥५९८॥
तस्माद् गुरुः प्रियं शिष्यं बोधयित्वाभिषेचयेत्।

वाग्दीक्षा या शाम्भवी दीक्षा—ध्यान करके जो उपदेश दिया जाता है, उसे वाग्दीक्षा कहते हैं। गुरु आँखों को बन्द करके परमात्मा देवता का ध्यान करें। परमात्मा के दर्शन से गुरु के नेत्र आनन्दपूर्ण दीखने लगते हैं। तब प्रसन्न चित्त होकर वह शिष्य को उपदेश दे। मन्त्रसिद्ध से प्राप्त यह दृग्दीक्षा सिद्धिरूप फल को देने वाली होती है। गुरु के अवलोकनमात्र से, भाषण और स्पर्श से भी शिष्य को तुरन्त ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। इस दीक्षा को शाम्भवी दीक्षा भी कहते हैं। भुक्ति-मुक्तिप्रद यह दीक्षा गुरु द्वारा शिष्य की विधिवत् परीक्षा करने के बाद ही देनी चाहिये। बिना परीक्षा के यदि गुरु शिष्य को यह दीक्षा देता है तो वह दीक्षा निष्फल होती है। अन्यायपूर्वक इस दीक्षा को यदि कोई देता है और अन्यायपूर्वक ही इसे यदि कोई ग्रहण करता है तब दीक्षा देने वाले तथा लेने वाले दोनों को कुलशाप लगता है। गुरु-शिष्य दोनों यदि मोहवश परस्पर एक-दूसरे का परीक्षण किये विना ही उपदेश देते और ग्रहण करते हैं तो उपदेश देने वाले और लेने वाले दोनों को पिशाच योनि प्राप्त होती है। अशास्त्रीय विधि से जो दीक्षा लेता है और जो देता है, वे दोनों ही घोर नरक में अनेक वर्षों तक दुःख उठाते हैं। विना संस्कार के जो मूर्ख उपदेश देता है, उसके मन्त्र बालू में धान के बीज के समान नष्ट हो जाते हैं। मन्त्र-विज्ञान की अर्हता उसे कभी प्राप्त नहीं होती। इसलिये परीक्षा अवश्य करनी चाहिये। विना परीक्षा के दीक्षा निष्फल होती हैं। अच्छा शिष्य यदि भक्त हो तभी उसे विज्ञान का उपदेश देना चाहिये और उस शिष्य को ग्रहण करते

समय यह कहना चाहिये कि आपकी यह दीक्षा दूध के बाद घी के समान है। धन की इच्छा से, भयवश, लोभ इत्यादि से यदि यह दीक्षा दी जाती है, तब उसे देवता का शाप मिलता है और किया हुआ बेकार हो जाता है। इस प्रकार दीक्षा देकर गुरु शिष्य का पूर्ण अभिषेक करे। विना इस प्रकार के अभिषेक के साधक को पूर्णबोध, आचार्यत्व एवं सद्गति प्राप्त नहीं होती; अतः गुरु द्वारा शिष्य को बोधित करने के उपरान्त उसका अभिषेक करना चाहिये।।५८६-५९८।।

पूर्णाभिषेकविधिः

विरच्य विपुलांश्चक्रान् मण्डपेऽतिमनोहरे ।।५९९।।
क्षारतोयभृतं कुम्भं स्थापयेच्चक्रमध्यतः ।
अन्येषु कलशांस्तत्र वस्त्रहेमसमन्वितान् ।।६००।।
दलेषु विविधाः स्थाप्यास्तत्र वै चेष्टदेवताम् ।
अभ्यर्च्य मध्ये चान्तेषु साङ्गावरणदेवताः ।।६०१।।
स्पृशंश्च मध्ये कलशमाचार्यः प्रपठेदिति ।
साङ्गांश्च चतुरो वेदांस्ततस्तेन जलेन तु ।।६०२।।
अभिषिञ्चेद्गुरुः शिष्यमिति पूर्णाभिषेचनम् ।
देवेभ्यः सर्वतन्त्राणि तन्त्रेभ्यो मुनयस्तथा ।।६०३।।
यतो जातास्ततः शिष्यः सर्वतन्त्रैकभाजनम् ।
भवेदाचार्यनामा च कुर्यान्नामान्तरं गुरुः ।।६०४।।

पूर्णाभिषेक विधि—अति मनोहर मण्डप में वृहत् चक्रों को बनाकर उनके मध्य खारे पानी से भरा एक घड़ा स्थापित करे। चक्र के अन्य दलों पर सोना और वस्त्र से समन्वित विविध इष्टदेवताओं के लिये घट-स्थापन करे। मध्य के घट के सहित अन्य घटों में देवता का साङ्ग आवरण देवता के सहित अर्चन करे। मध्य कलश का स्पर्श करके आचार्य इस प्रकार बोले—अङ्गों के सहित चारो वेद इसमें प्रतिष्ठित हों। तदनन्तर उस जल से गुरु शिष्य का अभिषेक करे। इसे पूर्णाभिषेक कहते हैं। क्योंकि देवताओं से समस्त तन्त्र एवं तन्त्रों से मुनि हुये हैं, अतः शिष्य भी सभी तन्त्रों का ज्ञाता होकर आचार्यत्व को प्राप्त होता है। इसलिये गुरु को शिष्य का दूसरा नामकरण करना चाहिये।।५९९-६०४।।

एतादृशस्य यो दीक्षां गृह्णीयात्स तु सिद्धिभाक् ।
सर्वमन्त्रप्रधानेषु समर्थः स तु जायते ।।६०५।।
सर्वे देवा वशास्तस्य वेदे पन्थास्तु सात्त्विकः ।
एष एव विधिस्तस्य मार्गः स्याद्दक्षिणाभिधः ।।६०६।।

इस प्रकार की दीक्षा को जो ग्रहण करता है, वही सिद्धियों का पात्र होता है एवं वह सभी प्रधान मन्त्रों में समर्थ हो जाता है। सभी देवता ऐसे साधक के वश में हो जाते हैं, वहे वेद के सात्विक पथ का अनुगामी होता है। यही दक्षिण मार्ग की विधि कही गई है।।६०५-६०६।।

विशेषस्तत्र तोयानि तीर्थानामाहरेत्सुधीः ।
गङ्गाया यमुनायाश्च सरस्वत्या महोदधेः ॥६०७॥
सिन्धुगोदावरीरेवाकावेरीभ्यः पृथूदकात् ।
महेन्द्रजायाः सरयूचर्म्मण्वत्योश्च पुष्करात् ॥६०८॥
महानद्या वेदिकायाः क्षिप्रावेत्रवतीजलम् ।
कुरुक्षेत्रस्य गण्डक्याः पूर्णाया मानसस्य च ॥६०९॥
घटे दत्त्वा जपेन्मन्त्रान्नानातन्त्रगतानपि ।
अभिषिक्तस्तु तैस्तोयैः सिद्धो वै मानवोऽत्र तु ॥६१०॥

अभिषेक के लिये विशेषतः तीर्थों के जल को लाना चाहिये। गंगा, यमुना, सरस्वती, महासागर, सिन्धु, गोदावरी, रेवा, कावेरी, पृथूदक, महेन्द्रजाया, सरयू, चर्मण्वती, पुष्कर, महानदी, वेदिका, शिप्रा, वेत्रवती, कुरुक्षेत्र, गण्डकी, पूर्णा, मान-सरोवर के जल को कलश में मिलाकर मन्त्रों का जप करना चाहिये; साथ ही अन्य तन्त्रगत मन्त्रों का भी जप करना चाहिये। इस प्रकार के तीर्थजलों से अभिषिक्त मनुष्य इस संसार में सिद्ध हो जाता है।।६०७-६१०।।

प्रयोगार्थं तथान्यस्य दानार्थमथ वामके ।
मध्ये तीर्थघटं स्थाप्य शेषास्तोयघटा मताः ॥६११॥
ये ये आवाहिता देवा गुरुणा तु शुभे घटे ।
ते ते कुर्वन्तु सान्निध्यं मन्त्ररूपाश्च तन्मुखे ॥६१२॥
स्वयं सिद्धो हि कस्मैचिन्मूर्द्धानं नैव नामयेत् ।
यदर्थं नामितो मूर्द्धा तस्य मृत्युर्न संशयः ॥६१३॥

वाममार्ग में प्रयोग और दान के लिये दूसरा विधान होता है। इसके लिये मध्य में तीर्थघट की स्थापना करे और शेष कलशों को सामान्य जल से भरे। गुरु के द्वारा शुभ कलशों में जिन-जिन देवताओं का आवाहन होता है, वे-वे देवता उस घट के मुख पर मन्त्ररूप में विराजमान होते हैं। जो स्वयं सिद्ध है, उसे अपने से किसी श्रेष्ठ का नमन नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से उसकी मृत्यु हो जाती है।

वाममार्गे गुरुर्यस्य चेदृक्सिद्धो भवेद्यदा ।
शिष्यश्च निरहङ्कारः सदा दैवततत्परः ॥६१४॥

देवतार्थं यस्य नात्र त्रयाभोगे मनो न च।
स एव सिद्धो वामे स्यादन्यो निरयभाजनम् ॥६१५॥
दरिद्रो दुःखितो मूर्ख इहलोके परत्र च।
क्रियादीक्षाविधिं कुर्याद्यथाशक्त्या गुरूक्तितः ॥६१६॥
एतत्तत्त्वं समाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥६१७॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
दीक्षाप्रकाशस्तृतीयः॥३॥

वाममार्ग में जिसका गुरु इस प्रकार का सिद्ध होता है और शिष्य अभिमानरहित होकर सदैव देवता में तत्पर रहता है, जहाँ देवता के लिये भोगत्रय नहीं होते, जिसका मन भी देवता में नहीं लगता, वही सिद्ध होता है। इससे अन्य नरकगामी होते हैं। वह इस लोक और परलोक में भी दरिद्र, दुःखी एवं मूर्ख होता है। इसलिये गुरु के कथनानुसार यथाशक्ति क्रियादीक्षा की विधि को करना चाहिये। इस प्रकार इस दीक्षातत्त्व का वर्णन किया गया, अब अन्य क्या सुनने की इच्छा है?॥६१४-६१७॥

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत
'दीक्षा' नामक तृतीय प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ

अथ चतुर्थः प्रकाशः

(होमविधिप्रकाशः)

संज्ञया प्रार्थिता देवी मुनिभिः श्रोतुकामिभिः ।
तदिष्टसिद्धये तत्र देवं सैवं व्यजिज्ञपत् ॥१॥

सुनने की कामना वाले मुनियों के इष्ट की सिद्धि के लिये संज्ञा द्वारा प्रार्थित देवी ने देव के समक्ष इस प्रकार कहा।।१।।

देव्युवाच

श्रौतस्मार्तरता एते पृच्छन्ति मुनयः शिव ।
एतेषां संशयं छिन्धि त्वदृतेऽन्यः पुमान्न हि ॥२॥

देवी ने कहा—हे शिवजी! श्रौत एवं स्मार्त कर्मों में संलग्न ये मुनिगण कुछ पूछना चाहते हैं। आप इनकी शंकाओं को दूर करें; क्योंकि आपके अतिरिक्त कोई दूसरा पुरुष ऐसा नहीं है, जो ऐसा कर सके।।२।।

ईश्वर उवाच

पृच्छन्तु ऋषयस्तावद्देवा अपि मनोगतम् ।
यावत्कालः समायाति जलन्धरवधस्य तु ॥३॥

श्रीशिवजी ने कहा—जबतक जलन्धर के वध का समय नहीं आता तबतक ऋषिगण के साथ-साथ देवगण भी अपने मनोगत विषयों के बारे में पूछें।।३।।

मुनय ऊचुः

अग्निः क्व क्व च देवाश्च हूयन्तेऽग्नौ सुराः कथम् ।
तत्प्राप्नुवन्ति तद्भेदा भिन्नाः कस्माद्वदस्व नः ॥४॥

मुनियों ने कहा—अग्नि कहाँ है और देवता कहाँ हैं? अग्नि में देवता लोग हवन क्यों करते हैं? उस हूत पदार्थ को वे कैसे प्राप्त करते हैं? वे कैसे भिन्न-भिन्न हैं और किससे भिप्र हैं? यह सब हमलोगों से कहें।।४।।

ईश्वर उवाच

न स्वर्गे न च तीर्थेषु नौषधीषु न भेषु च ।
ऋषयो देवताः सन्ति मन्त्रा एव तु देवताः ॥५॥

साधकानां फलं दातुं तत्तद्रूपं धृतं सुरैः।
मुख्यं स्वरूपं तेषां तु मन्त्रा एव न चेतरत् ॥६॥

श्रीशिव जी ने कहा—वह देवता न स्वर्ग में, न तीर्थ में, न औषधियों में और न ही नक्षत्रों में रहता है। हे ऋषियों! मन्त्र ही देवता हैं। मन्त्रों में ही देवता रहते हैं। साधकों को फल प्रदान करने के लिये मन्त्रों ने ही अलग-अलग देवताओं का रूप धारण किया है; उनका मुख्य स्वरूप तो मन्त्र ही है, मन्त्र के अतिरिक्त कोई अन्य उनका स्वरूप नहीं है।।५-६।।

मन्त्राणां सात्त्विकादिभेदत्रैविध्यम्

संस्कृताः सात्त्विका मन्त्राः परत्रेह च शर्म्मदाः।
जन्मान्तरे भवेयुश्च बीजरूपा न संशयः ॥७॥
तत्रापि वैदिका मन्त्राः सुवर्णाः परिकीर्तिताः।
न दुर्गतिमवाप्नोति तेषां संसेवनान्नरः ॥८॥
द्विजत्वं प्राप्य ये लोके सेवन्ते तान्त्रिकान् मनून्।
त्यक्त्वा सुवर्णं दुर्बुद्ध्या ग्राम्यवत्तारचारिणः ॥९॥

मन्त्रों के सात्विक आदि तीन भेद—संस्कृत सात्विक मन्त्र ही इस लोक और परलोक में कल्याणदायक होते हैं। जन्मान्तर में वे ही बीजरूप होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। उनमें भी वैदिक मन्त्रों को श्रेष्ठ माना जाता है; क्योंकि उनकी आराधना करने से मनुष्य दुर्गति को नहीं प्राप्त करता। द्विजत्व को प्राप्त करके इस लोक में जो तान्त्रिक मन्त्रों की उपासना करते हैं, वे सुवर्ण दुर्बुद्धि के कारण ग्रामीणों के समान सुवर्ण का त्याग चान्दी को धारण करने वाले होते हैं।।७-९।।

तारूपास्तारकत्वान्मनवस्तान्त्रिका अपि।
फलप्रदा इहामुत्र न सद्बीजा भवान्तरे ॥१०॥

तारकत्व शक्ति से समन्वित होने के कारण तान्त्रिक मन्त्र भी तारकरूप होते हैं, वे इस लोक में तो फलप्रद होते हैं, लेकिन जन्मान्तर में अच्छे बीज नहीं होते।।१०।।

किञ्चिद्राजससत्त्वा ये यातनान्ते पुनस्तु ते।
भवन्ति फलदा यद्वद्वटोदुम्बरपिप्पलाः ॥११॥

कुछ राजसिक और सात्विक मन्त्र बहुत कष्टों के बाद वैसे ही फलप्रद होते हैं जैसे वट, गूलर और पीपल के फल होते है।।११।।

तामसाः प्राकृता मन्त्रा इह लोके महाफलाः।
न परत्र यथा द्राक्षाखर्ज्जूरपनसादयः ॥१२॥

तामसिक और प्राकृतिक मन्त्र इस लोक में महान् फलप्रद होते हैं; किन्तु परलोक में वैसे ही फलप्रद नहीं होते, जैसे दाख, खजूर, कटहल आदि के फल।।१२।।

तन्मन्त्रैर्यद्धुतं वह्नौ कीदृग्दहति पावकः।
ग्रहश्चिनोति तच्छ्रेयो यथा नाड्योऽन्नजं रसम् ॥१३॥

इन मन्त्रों से अग्नि में जो हवन होता है, उसे पावक किस प्रकार भस्म कर सकता है? ग्रह उसके श्रेय का उसी प्रकार चयन कर लेते हैं, जैसे अन्न के रस को नाड़ियाँ ग्रहण कर लेती हैं।।१३।।

निर्दोषा तु यदा नाडी वहेदन्नरसं लघु।
देवयोग्यो ग्रहस्तद्वच्छ्रेयः संवहते सुरः ॥१४॥

जिस प्रकार निर्दोष नाड़ियाँ बहुत आसानी से अन्नों के रस का वहन करती हैं, उसी प्रकार देवयोग्य ग्रह देवताओं के कल्याण को हस्तगत कर लेते हैं।।१४।।

सूर्यभात्रिषु भेष्वर्कनाड्यां श्रेयोऽभिवर्द्धते।
पोषयेद्दैविकान् मन्त्रानितरान् हन्ति वामवत् ॥१५॥

सूर्यनक्षत्र से तीन नक्षत्रों में सूर्यनाडी में श्रेय की अभिवृद्धि होती है। वैदिक मन्त्र साधक का पोषण करते हैं एवं अन्य मन्त्र वामवत् हनन करते हैं।।१५।।

ततस्त्रिभेषु सौरस्य नाडी बुद्धिविलासकृत्।
तस्मात्त्रिषु सितस्यापि वामानामपि पुष्टिदा ॥१६॥

इड़ा चन्द्रनाड़ी, पिङ्गला सूर्यनाड़ी और सुषुम्ना अग्नि नाड़ी है। इन तीनों में से सूर्य नाड़ी पिङ्गला में श्वासप्रवाह जब होता है, उस समय मन्त्र जप करने से बुद्धि विलास बढ़ता है। वाम नाड़ी इड़ा अर्थात् चन्द्रनाड़ी में जप करने से पुष्टि की प्राप्ति होती है।।१६।।

ततस्त्रिभेषु सौरस्य कुर्यान्मन्त्रे तु संशयम्।
चन्द्रस्य सर्वमन्त्राणां पुष्टिकृच्च ततस्त्रिषु ॥१७॥

इन तीनों नाड़ियों में से सूर्य नाड़ी में जप करने से सिद्धि में संशय रहता है। चन्द्रनाड़ी में जप से सभी मन्त्रों की पुष्टि होती है।।१७।।

ततस्त्रिष्वारनाडी स्यात्फलानान्तु विनाशकृत्।
तस्मात्त्रिषु गुरोर्नाडी सत्वरं मन्त्रसिद्धिदा ॥१८॥

उसी प्रकार दिन के अनुसार नाड़ियों का भी फल होता है। तीन आर नाड़ियाँ फलप्रद न होकर विनाशप्रद होती हैं। उन तीनों में गुरु की नाड़ी शीघ्र मन्त्रसिद्धि प्रदान करने वाली होती है।।१८।।

राहुनाडी त्रिषु ततो न सत्यैह्यकरे नरे।
त्रिष्वतः केतुनाडी तु सद्भूते मन्त्रदेवकृत् ॥१९॥

उन तीनों में से राहु नाड़ी मनुष्यों के लिये हितकारिणी नहीं होती, केतु नाड़ी से मन्त्र देवता सद्भूत होते हैं।।१९।।

तिथिवासरसंयोगे गुणशेषे हुताशनः।
कौ स्वर्गे कुतले तन्त्रे प्रत्यक्षाग्निस्वरूपकम् ॥२०॥

तिथि-वासर संयोग से भी अग्नि के गुणों पर प्रभाव पड़ता है। हवन के समय अग्निवास पर विचार करना आवश्यक होता है। अग्नि का वास स्वर्ग में है या पाताल में या पृथ्वी पर है—यह देखना आवश्यक होता है।।२०।।

मारयेत्साधकं स्वर्गे हरते भूतले धनम्।
प्रत्यक्षाग्निः फलं धत्ते भूमौ वै विश्वरूपकः ॥२१॥
वह्नेस्तु स्थापनं कुर्याद्वैदिकः कल्पमार्गतः।

स्वर्ग में अग्निवास साधक को मृत्यु देने वाला होता है। भूतल में अग्नि का निवास धन का नाश करता है। पृथ्वी पर अग्निवास विश्वरूप होता है और प्रत्यक्ष फलप्रद होता है; अतः वैदिक को अपने कल्पमार्ग के अनुसार अग्नि की स्थापना करनी चाहिये।।२१।।

तन्त्रमार्गानुसारेणाष्टादशकुण्डसंस्काराः

तान्त्रिकः कुण्डसंस्कारानष्टादश समाचरेत् ॥२२॥
मूलमन्त्रेण सम्पश्येत्प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः।
कुशैः सन्ताडयेत् कुण्डमस्त्रमन्त्रं पठंस्त्रिधा ॥२३॥
ततः कवचमन्त्रेण कुण्डस्याभ्युक्षणं मतम्।
अस्त्रमन्त्रेण खननं कुण्डस्याङ्गुलमात्रतः ॥२४॥
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तां मृदमस्त्रेण चोद्धरेत्।
पुनः शुद्धमृदा तं च पूरयेद्धृदयाणुना ॥२५॥

तान्त्रिक मार्ग से १८ कुण्डसंस्कार—तान्त्रिकों को कुण्ड के अट्ठारह संस्कार करना चाहिये। कुण्ड का अवलोकन मूल मन्त्र से करे। अस्त्र मन्त्र फट् से कुण्ड का प्रोक्षण करे। तीन बार फट् बोलकर कुश से कुण्ड का ताड़न करे। कवच मन्त्र से कुण्ड का अभ्युक्षण करे। अस्त्र मन्त्र से कुण्ड का खनन अंगुलमात्र करे। उस मिट्टी को अंगूठे और अनामिक के योग से ग्रहण करके बाहर निकाले। फिर उस गड्ढे को शुद्ध मिट्टी के चूर्ण से भर दे।।२२-२५।।

समीकुर्यात्ततोऽस्त्रेण सेचयेत्कवचेन तु ।
काष्ठादिना कुट्टयेत्तन्मन्त्रेण स्यात्तथा दृढम् ॥२६॥
कुशैः सम्मार्ज्जयेत्कुण्डं ततस्तु कवचाणुना ।
विलेपनं गोमयाद्भिः कवचेनैव कारयेत् ॥२७॥
कवचे नाग्निसूर्येन्दुकलाः कुण्डे विचिन्तयेत् ।
त्रिसूत्रीकृतसूत्रेण वेष्टयेत् प्रतिमेखलम् ॥२८॥

अस्त्रमन्त्र से उसे समतल करे। कवच मन्त्र से सिञ्चन करे। तदनन्तर मन्त्रों का उच्चारण करते हुये लकड़ी से कूटकर उसे दृढ़ करे। कवचमन्त्र से कुशों से कुण्ड का सम्मार्जन करे। कवचमन्त्र से गोबर एवं जल से एसका लेपन करे। कवच मन्त्र से कुण्ड में सूर्य, चन्द्र, अग्निकलाओं का चिन्तन करे। कुण्ड की प्रत्येक मेखला में तीन सूत्र लपेटे।।२६-२८।।

त्रिवारं वर्म्ममन्त्रेण कुण्डपूजां समाचरेत् ।
तारश्चामुककुण्डाय आसनाय नमस्त्विति ॥२९॥
एषोऽर्घ्य इत्याद्यूहैश्च सकलं पूजनं चरेत् ।
नाभेश्च मेखलानां च कुर्यादेवं प्रपूजनम् ॥३०॥

तीन बार कवचमन्त्र के पाठ से कुण्ड का पूजन करे। इसके बाद 'ॐ अमुक-कुण्डाय आसनाय नमः' मन्त्र से आसन प्रदान करे। इसी प्रकार अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पानीय, आचमनीय, करोद्वर्तन आदि प्रदान करे। कुण्ड की नाभि और मेखला में इष्टदेवता का पूजन करे।।२९-३०।।

सञ्चिन्तयेत्ततोऽस्त्रेण तत्कुण्डं वज्रवद् दृढम् ।
वह्नेर्ज्वालानिरासाय हृन्मन्त्रेण कुशैस्ततः ॥३१॥
कुण्डस्य तु चतुर्दिक्षु कुर्यान्मार्गचतुष्टयम् ।
अच्छिन्नाग्रैः कुशैरस्त्रमन्त्रितैः कुण्डभित्तिषु ॥३२॥
भूतप्रेतादिदृष्टीनामस्त्रादीनां समाचरेत् ।
उच्चानन इमे प्रोक्ताः संस्कारा धृतिसम्मिताः ॥३३॥

तदनन्तर अस्त्रमन्त्र से भावना करे कि यह कुण्ड वज्र के समान मजबूत हो गया है। अग्नि की ज्वाला के निरास के लिये हृन्मन्त्र के द्वारा कुशों से कुण्ड के चारो दिशाओं में चार मार्ग बनावे। कुण्ड की चारो दिशाओं की भीत्ति में अछिन्न कुशाग्र से अस्त्र-मन्त्र के द्वारा चार रेखा खींचे। भूत-प्रेतादि की दृष्टियों को अस्त्र-मन्त्र को जोर से बोलकर समाप्त करे। यह सब धृति संस्कार कहा जाता है।।३१-३३।।

भवेदनेन विधिना कुण्डस्याप्यक्षपाटनम् ।
वामहोमे तु संस्कारा आद्याश्चत्वार एव हि ॥३४॥

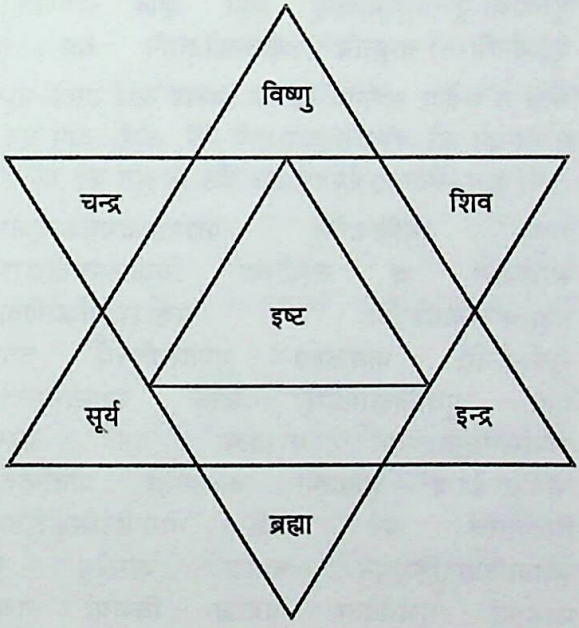
इस विधि से कुण्ड का अक्षपाटन संस्कार होता है। वाममार्गी हवन में कुण्ड के प्रारम्भिक चार संस्कार ही होते हैं।।३४।।

त्र्यस्त्रात्र्यस्त्रा भवेद्रेखा प्रागुदक् च हृदाणुना।
स्मृताश्च प्राङ्मुखाग्राणां देवा विष्ण्वीशवासवाः ॥३५॥

कुण्ड में बालू बिछाकर उस पर तीन रेखा पूर्वाग्र और तीन उत्तराग्र खींचे। पूर्वाग्रमुखी रेखाओं के आगे विष्णु, शिव और इन्द्र की पूजा करे।।३५।।

उदङ्मुखाग्ररेखाणां ब्रह्मसूर्येन्दवः क्रमात्।
विलिखेद्दर्भकाण्डेन वाममार्गेऽस्त्रमन्त्रतः ॥३६॥
त्रिकोणे परिषट्कोणं त्रिकोणद्वितयस्य तु।
विष्ण्वीशवासवादीनां षण्णां तत्र तु पूजनम् ॥३७॥
वाममार्गे त्विष्टदेव्यास्त्रिकोणे पूजनं भवेत्।

उत्तरमुखी रेखाओं के आगे क्रमशः ब्रह्मा, सूर्य और चन्द्र का पूजन करे। वाममार्ग में कुश से अस्त्रमन्त्र के द्वारा दो त्रिकोणों से षट्कोण और षट्कोण के मध्य में त्रिकोण बनावे। षट्कोण के छः कोणों में विष्णु, शिव, इन्द्र, ब्रह्मा, सूर्य एवं चन्द्र का और मध्य में इष्टदेवता का पूजन करे। वाममार्ग में त्रिकोण में इष्टदेवी का पूजन होता है। षट्कोण में तत्तत् देवताओं के पूजन का स्थान इस प्रकार है—



सम्प्रोक्ष्य प्रणवेनाथ योगपीठं समर्चयेत् ॥३८॥
तद्विधिं सम्प्रवक्ष्यामि मण्डलं चिन्तयेत्तले ।
कालाग्निरुद्रं तस्योर्ध्वं शक्तियुक्तं विचिन्तयेत् ॥३९॥

तदनन्तर प्रणव से योगपीठ का प्रोक्षण करके पूजन करे। योगपीठ-पूजन की विधि इस प्रकार है। तल पर एक मण्डल की कल्पना करे। उसके ऊपर कालाग्नि रुद्र को अपनी शक्ति के साथ आसीन देखे।।३८-३९।।

तदूर्ध्वं चिन्तयेत् कूर्मं तस्य पृष्ठे वसुन्धराम् ।
श्वेतद्वीपं तत्र चिन्त्यं सुधासिन्धुसुवेष्टितम् ॥४०॥
मन्दारान् पारिजातांश्च सन्तानान् हरिचन्दनान् ।
कल्पवृक्षांश्च तत्रैव चिन्तयेत् पूजयेदपि ॥४१॥

उसके ऊपर कच्छप का चिन्तन करे। कच्छप के पीठ पर पृथ्वी का चिन्तन करे। पृथ्वी पर श्वेत द्वीप का चिन्तन करे। वहाँ अमृतसागर के बीच में एक ऐसे स्थान का चिन्तन करे, जो अनेकों मन्दार, पारिजात, सन्तान, हरिचन्दन, कल्पवृक्ष आदि से युक्त है। उसका पूजन करे।।४०-४१।।

एतादृशगृहे चिन्त्यं रम्यं मणिमयं गृहम् ।
स्वर्णपीठन्तु तन्मध्ये तस्य पादान् विचिन्तयेत् ॥४२॥
पुरुषार्थांस्तु धर्मादीन् धर्मो ज्ञानं विरागता ।
ऐश्वर्यमपि चाङ्गानि पीठस्योक्तानि तत्र तु ॥४३॥

इसके बीच में मनोहर मणिमय गृह का चिन्तन करे। उसके मध्य में एक ऐसे स्वर्णपीठ का चिन्तन करे, जिसके चार पाये धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप चार पुरुषार्थ हैं। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य उक्त पीठ के अंग कहे गये हैं।।४२-४३।।

मध्ये विचिन्तयेत् पद्ममानन्दमयकन्दकम् ।
संविन्नालं च तस्योक्ता विकारमयकेसराः ॥४४॥
प्रकृत्यात्मकपत्राणि पञ्चाशद्वर्णकर्णिका ।
सूर्यस्येन्दोः पावकस्य मण्डलत्रितयं ततः ॥४५॥
ततः पूर्वादिकाष्ठासु सत्त्वं रजस्तमस्ततः ।
अन्तरात्मयुतश्चात्मा परमात्मा ततः परम् ॥४६॥
मायातत्त्वेऽथ ज्ञानात्मा कलातत्त्वे प्रतिष्ठितः ।
विद्यातत्त्वं परं तत्त्वं योगपीठमितीरितम् ॥४७॥
स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन तत्पद्म केसरेषु तु ।
मध्यान्तं पूजयेदेता जयाञ्च विजयां तथा ॥४८॥

अजिताख्यां चापराञ्च जितां नित्यां विलासिनीम्।
दोग्ध्रीमघोराञ्च तथा मङ्गलामथ तत्र तु ॥४९॥

पीठ के मध्य में एक ऐसा कमल है, जिसका कन्द आनन्दमय है। संवित नाल है एवं उसके केसर विकार हैं। उस कमल में पचास दल हैं, जो प्रकृत्यात्मक पचास वर्णों से युक्त हैं। उसमें सूर्य, चन्द्र और अग्नि के तीन मण्डल हैं। उस कमल के पचास दलों में पूर्व से प्रारम्भ करके आठ-आठ दलों में—सत्व, रज, तम, अन्तरात्मायुत आत्मा, परमात्मा, माया, ज्ञानात्मा, कला—ये आठ तत्त्व प्रतिष्ठित हैं। विद्या तत्त्व, परम तत्त्व से युक्त यह योगपीठ है। आठ दलों में सत्व, रज तम आदि का पूजन होता है। शेष दो दलों में विद्या तत्त्व और परम तत्त्व का पूजन होता है। उस पद्म के केसर में अपने सामने से प्रारम्भ करके दक्षिणावर्त क्रम से जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री एवं अघोरा का तथा मध्य में मङ्गला का पूजन किया जाता है।।४४-४९।।

ह्रींसर्वशक्तिकमलासनाय नम उच्यते।
दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं कुण्डे पूजयेद्भुवनेश्वरीम् ॥५०॥
आवाहनादिपरमीकरणान्तञ्च पूजयेत्।
कामोन्मत्तां शिवां तत्र देवीमृतुमतीं तथा ॥५१॥
गाणेशशैवशाक्तेषु ध्यायेत्सम्पूजयेदिति।
वैष्णवे च तथा सौरे लक्ष्मीमृतुमतीं स्मरेत्।५२॥
नारायणस्य संयोगाज्जातमग्निं विचिन्तयेत्।
आरण्यं विप्रगेहाद्वा दद्यादग्निं कुमारिका ॥५३॥

'ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' कह कर कुण्डमध्य में पुष्पाञ्जलि देकर भुवनेश्वरी का पूजन करे। आवाहन से लेकर परमीकरण तक पूजन करे। गाणपत्य लोग उन्मत्ता, शैव लोग शिवा, शाक्त लोग देवी का पूजन ऋतुमती रूप में करें। वैष्णव तथा सौर लोग लक्ष्मी का पूजन ऋतुमती रूप में करें। नारायण का लक्ष्मी से संयोग होने पर अग्नि की उत्पत्ति का चिन्तन करे। जंगल से अथवा विप्रगृह से अग्नि लाकर कुमारी कन्या प्रदान करे।।५०-५३।।

अग्निस्थापनविधिः

सुवासिनी वामहस्तात् कृतशौचा समाहरेत्।
पात्रान्तरे चापिहिते ताम्रपात्रादिके शुभे ॥५४॥
अग्निप्रणयनं कुर्याच्छरावेणाथ नूतने।
दद्यादस्त्रेण पात्रेऽग्निं कवचेन विधाय च ॥५५॥

जीर्णे शरावे कापाले भिन्नपात्रे तथोल्मुके।
नाग्निप्रणयनं कुर्याद्व्याधिहानिभयावहम् ॥५६॥

अग्नि-स्थापन विधि—स्नानादि से शुद्ध सुवासिनी ताँबे के पात्र में उस अग्नि को कुमारी से लेकर कुण्ड के पास लावे अथवा नये मिट्टी के प्याले में अग्नि को लावे। कुमारी से अग्नि अस्त्रमन्त्र से ग्रहण करे एवं पात्र में उसे कवचमन्त्र से रखे। जीर्ण प्याले, कपाल, खण्डित पात्र में या लुकवारी के रूप में अग्नि को नहीं लाना चाहिये। ऐसा करने से भयावह व्याधि एवं हानि होती है।।५४-५६।।

क्रव्यादांशञ्च नैर्ऋत्ये त्यजेदस्त्रेण वह्नितः।
देवांशं मूलमन्त्रेण स्थापयेदग्रतः सुधीः ॥५७॥
पश्चात्तमग्निं संस्कारैः संस्कुर्याद्वीक्षणादिभिः।
प्रदीपकलिकाकारं तेज आवाहयेत्ततः ॥५८॥
ऐक्यं चाथ स्वेष्टदेववह्निभ्यां पार्थिवस्य च।
स्मृत्वाग्निबीजन्तेनाथ चैतन्यं योजयेत्ततः ॥५९॥
ओङ्कारेणाभिमन्त्र्याथ धेनुमुद्रामृतीकृतम्।
संरक्ष्य च शरेणाथ कवचेनावगुण्ठयेत् ॥६०॥

अग्नि में से क्रव्याद अंश कर निकाल नैर्ऋत्य दिशा में फेंक दे। शेष देवांश को अपने आगे मूल मन्त्र से स्थापित करे। इसके बाद उस अग्नि को वीक्षणादि संस्कार से संस्कृत करे। तदनन्तर प्रदीपकलिकाकार तेज का उस अग्नि में आवाहन करे। अपने इष्टदेवता और अग्नि में ऐक्य स्थापित करे। अग्निबीज का स्मरण करके उसमें चैतन्य का योजन करे। ॐकार से उसे अभिमन्त्रित करे एवं धेनुमुद्रा से उसका अमृतीकरण करे। अस्त्रमन्त्र से संरक्षण करे एवं कवचमन्त्र से अवगुण्ठन करे।।५७-६०।।

ततः सम्पूज्य कुण्डस्य भ्रामयेत्त्रिः प्रदक्षिणम्।
प्रणवेन ततः स्वस्य सम्मुखं स्वीयकुण्डले ॥६१॥
देव्या योनौ तत्र जानन् स्पृष्टभूमिश्च देशिकः।
शिवबीजमिति ज्ञात्वा निक्षिपेदाशुशुक्षणिम् ॥६२॥
देवदेव्योराचमनं मैथुनान्ते धिया चरेत्।
चित्पिङ्गल हनहन पचपच दहदह ॥६३॥
सर्वं ज्ञापय स्वाहेति तारादिर्जिनवर्णकः।
अमुं मनुं प्रभाष्यैव कृशानुं ज्वालयेत्ततः ॥६४॥

तदनन्तर अग्नि का पूजन करके पात्र के सहित अग्नि को प्रदक्षिण क्रम से तीन बार चारों तरफ परिक्रमा करावे। तब प्रणव से अपने सामने अपने कुण्ड की योनि को

देवी-योनि मानकर देशिक घुटने के बल बैठकर अग्नि को शिववीर्य समझकर कुण्ड में स्थापित करे। तब देव और देवी को मैथुनान्त आचमन करावे। 'ॐ चित्पिङ्गल हन हन पच पच दह दह सर्वं ज्ञापय स्वाहा' इस चौबीस वर्ण वाले मन्त्र का उच्चारण करते हुये अग्नि को प्रज्वलित करे।।६१-६४।।

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम् ।।६५।।
अनेन ज्वलितं मन्त्रेणोपतिष्ठेद्धुताशनम्।
मुखेनैव धमेदग्निं मुखादेष व्यजायत ।।६६।।
कुशैः पलाशादिपर्णैर्नापवित्रेण केनचित्।
ततः सुविन्यसेज्जिह्वा देहे मन्त्रैर्विभावसोः ।।६७।।

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुतासनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्।।

इस मन्त्र से ज्वलित अग्नि को कुण्ड में स्थापित करे। कुश अथवा पलाश आदि के पत्ते द्वारा मुख से ही अग्नि को फूंके एवं मुख से ही हवा देनी चाहिये; किसी अपवित्र वस्तु से ऐसा नहीं करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि के शरीर में जिह्वाओं का मन्त्र से विन्यास करे।।६५-६७।।

भाललिङ्गोरुमूर्द्धास्यनासानेत्रेषु च क्रमात्।
सर्वाङ्गेषु च जिह्वास्ता वक्ष्यन्ते त्रिविधात्मिकाः ।।६८।।
हिरण्या कनका रक्ता कृष्णा चैव तु सुप्रभा।
बहुरूपा चातिरक्ता जिह्वाः सप्तेति सात्त्विकाः ।।६९।।
अनलादिसबिन्दुन्तयादिसान्ताक्षरान्विताः ।
मन्त्री प्रविन्यसेद्भूयो वह्नेरङ्गानि वै क्रमात् ।।७०।।

ललाट, लिङ्ग, ऊरू, मूर्द्धा, नासा, नेत्र में क्रमशः सभी अङ्गों में स्थित उसकी जीभ तीन प्रकार की होती है। अग्नि की हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा, अतिरक्ता—ये सात जिह्वायें सात्त्विक होती हैं। अग्नि के सात बीजाक्षर 'यं रं लं वं शं षं सं' को उनके सात अङ्गों में क्रमशः विन्यस्त करे।।६८-७०।।

सहस्रार्च्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठपुरुषस्तथा।
धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इतीरिताः ।।७१।।

सहस्रार्चि, स्वस्तिपूर्ण, उत्तिष्ठपुरुष, धूमव्यापी, सप्तजिह्व एवं धनुर्धर—ये अग्नियाँ कही गई हैं।।७१।।

न्यसेत्प्रदक्षिणे देहे वह्निमूर्त्यष्टकं क्रमात्।
मूर्द्धास्यपार्श्वकट्यंघ्रिकटिपार्श्वांसकेषु च ॥७२॥
प्रणवादिनमोऽन्तास्तु अग्नयेपदपूर्वकाः।
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहस्तृतीयकः ॥७३॥
अश्वोदरजवैश्वानराख्यकौमारतेजसः।
विश्वमुखो देवमुखो मूर्त्तयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥७४॥

अष्टमूर्ति न्यास—अग्नि की आठ मूर्तियों का प्रदक्षिण क्रम से शरीर में इस प्रकार न्यास करे—'ॐ अग्नये जातवेदसे नमः' मन्त्र से मूर्द्धा में, 'ॐ अग्नये सप्त-जिह्वाय नमः' मन्त्र से पार्श्वों में, 'ॐ अग्नये हव्यवाहाय नमः' मन्त्र से कटि में, 'ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः' मन्त्र से पाद में, 'ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः' मन्त्र से कटि के दक्ष पार्श्व में, 'ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः' मन्त्र से कटि के वाम पार्श्व में, 'ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः' मन्त्र से पार्श्व में एवं 'ॐ अं अग्नये देवमुखाय नमः' मन्त्र से कन्धों में। यही अग्नि की आठ मूर्त्तियाँ कही गई हैं।।७२-७४।।

प्रदक्षिणक्रमेणैव सञ्चिन्त्य च ततो जलैः।
मेखलोपरिसंशुद्धैः पुनर्दर्भचतुष्टयैः ॥७५॥
प्रागग्रैरुदगग्रैश्च हित्वा पूर्वाः परिस्तरेत्।
एकमेखलके कुण्डे मेखलाधः परिस्तरेत् ॥७६॥
द्विमेखले द्वितीयायां मध्यमायां त्रिमेखले।
स्थण्डिले सिकतानां तु बाह्यभूमौ परिस्तरेत् ॥७७॥

तब मेखला के ऊपरी भागों को जल से शुद्ध करे। इसके बाद चार कुशों को लेकर पूर्वमुख और उत्तरमुख करके उस पर कुशों को रख दे। एक मेखला वाले कुण्ड में मेखला के नीचे परिस्तरण करे। दो मेखला वाले कुण्ड में दूसरी मेखला में और तीन मेखला वाले कुण्ड में मध्यमेखला में परिस्तरण करे। बालू से बने स्थण्डिल में स्थण्डिल के बगल में भूतल पर परिस्तरण करे।।७५-७७।।

आत्ममेखलयोर्मध्ये परिधिस्थापनस्य च।
रन्ध्रं कुर्यात्तथा विद्वान् मध्यमामेखलोपरि ॥७८॥
पलाशकाश्मरीबिल्वविकङ्कतसमुद्भवान्।
एकवृक्षोद्भवानार्द्रान् परिधीन् बाहुमात्रकान् ॥७९॥
प्राणानायम्य विधिवत् परिस्तार्य कुशान्तरैः।
स्वगृह्योक्तविधानेन वायुदेशाच्च पूर्वतः ॥८०॥

अपने और मेखला के मध्य में परिधि-स्थापना के लिये छेद करे। मध्य मेखला

के ऊपर पलाश, काश्मरी, वेल, विङ्कत में से किसी एक वृक्ष की एक हाथ लम्बी हरी गीली टहनी लेकर प्राणायामपूर्वक कुशाओं के बीच में स्थापित करे। यह अपने गृह्योक्त विधान से वायव्य कोण से प्रारम्भ करके करे।।७८-८०।।

स्रुक्स्रुवौ च प्रणीता च प्रोक्षणीपात्रयुग्मकम्।
आज्यस्थालीञ्च परिधींस्तथैव कुशमुष्टयः ॥८१॥
अधोमुखानि पात्राणि होमद्रव्यं बलिं तथा।
गन्धपुष्पाक्षतादीनि सर्वाण्यासादयेत्ततः ॥८२॥
तान्यभ्युक्ष्य पवित्रेण चासनानि विधाय च।
प्रोक्षणीपात्रयुगलं परिपूर्य्य शुभाम्बुना ॥८३॥
दत्त्वा तत्र पवित्रांश्च परिपूर्य्य निधापयेत्।
दिश्युत्तरस्यां तत्पात्रं प्रणीतेत्युच्यते बुधैः ॥८४॥

यागसामग्रियों में स्रुक्, स्रुवा, प्रणीता, दो प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, परिधि, कुशमुष्टि, अधोमुख पात्र, होम द्रव्य, बलि, गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि रखे। सभी सामग्रियों का कुश से अभ्युक्षण करे। कुशासन पर बैठे। शुद्ध जल से दोनों प्रोक्षणी पात्रों को पूर्ण करे। उनमें पवित्री डाले। उन्हें उत्तर दिशा में स्थापित करे। इस पात्र को प्रणीता पात्र कहते हैं।।८१-८४।।

ततः किञ्चित्प्रणीताम्बु प्रोक्षण्याधाय तज्जलैः।
यज्ञसाधनसम्भारान् प्रोक्षयेन्मूलमन्त्रतः ॥८५॥
वृणुयाद् ब्राह्मणं शाक्तं देवतामन्त्रदीक्षितम्।
कुण्डस्य दक्षिणे भागे वेशयेत्तं कुशासने ॥८६॥
अमुकामुकगोत्रोऽहममुकामुकगोत्रिणम् ।
दीक्षाङ्गभूतहोमेऽस्मिन् ब्राह्मणं त्वां वृणे त्विति ॥८७॥
वस्त्रालङ्कारादिकेन वृत्वा तं परिपूजयेत्।
कुर्यात्कुशबटुं चापि लभ्यते ब्राह्मणो न चेत् ॥८८॥

तदनन्तर प्रणीता से प्रोक्षणी में जल लेकर यज्ञसम्भारों का मूल मन्त्र से प्रोक्षण करे। शाक्त देवता के मन्त्र से दीक्षित ब्राह्मणों का वरण करके उन्हें कुण्ड के दक्षिण भाग में कुशासन पर बैठाये।

'मैं अमुक गोत्र का हूँ एवं अमुक गोत्र वाले आपका मैं दीक्षाङ्गभूत हवन के लिये ब्राह्मणरूप में वरण करता हूँ' यह कहते हुये वस्त्र, अलंकार आदि के द्वारा उनका वरण करके पूजन करे। वरण-हेतु यदि ब्राह्मण उपलब्ध न हों तो कुश का बटुक बनाये।।८५-८८।।

कुण्डमध्येऽष्टदलपूजापीठम्

कुण्डमध्ये तु षट्कोणे वर्णितं स्वर्णकर्णिकम्।
नानाकेशरसंयुक्तं चतुर्द्वारसमावृतम् ॥८९॥
चिन्तयेदष्टदलकं चतुरस्रतयावृतम्।
पूजापीठन्तु तद्वह्नेस्तत्र मण्डलकादिना ॥९०॥
ज्ञानात्मानं योगपीठं सम्पूज्याष्टदलेषु च।
प्रादक्षिण्येन मध्यान्तं पीतां श्वेतां तथारुणाम् ॥९१॥
कृष्णां धूम्रां च तीव्रां च पूजयेद्विस्फुलिङ्गिनीम्।
रुचिरां ज्वालिनीञ्चेति सर्वपीठं प्रपूजयेत् ॥९२॥
सर्वशक्तिकमलासनाय हृदद्वादशाक्षरः।
समस्तपीठपूजायां वह्निमन्त्र उदाहृतः ॥९३॥

कुण्ड के मध्य में अष्टदल पूजापीठ—कुण्ड के मध्य में षट्कोण बनाये, उसके मध्य में सोने के रंग की कर्णिका बनाये। उसके बाहर अष्टदल कमल बनाये। उसके बाहर चार द्वारों से युक्त चतुरस्र बनाये। यह अग्नि पूजा का पीठ होता है। उसके मण्डलों के आठ दलों में योगपीठ के ज्ञानादि का पूजन करके उसके मध्य विन्दु से प्रारम्भ करके छः कोणों में प्रदक्षिणक्रम से पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, विस्फुलिङ्गिनी, रुचिरा एवं ज्वालिनी का पूजन करे। सर्वपीठ का पूजन 'सर्वशक्ति-कमलासनाय नमः' इस द्वादशाक्षर वह्निमन्त्र से करे।।८९-९३।।

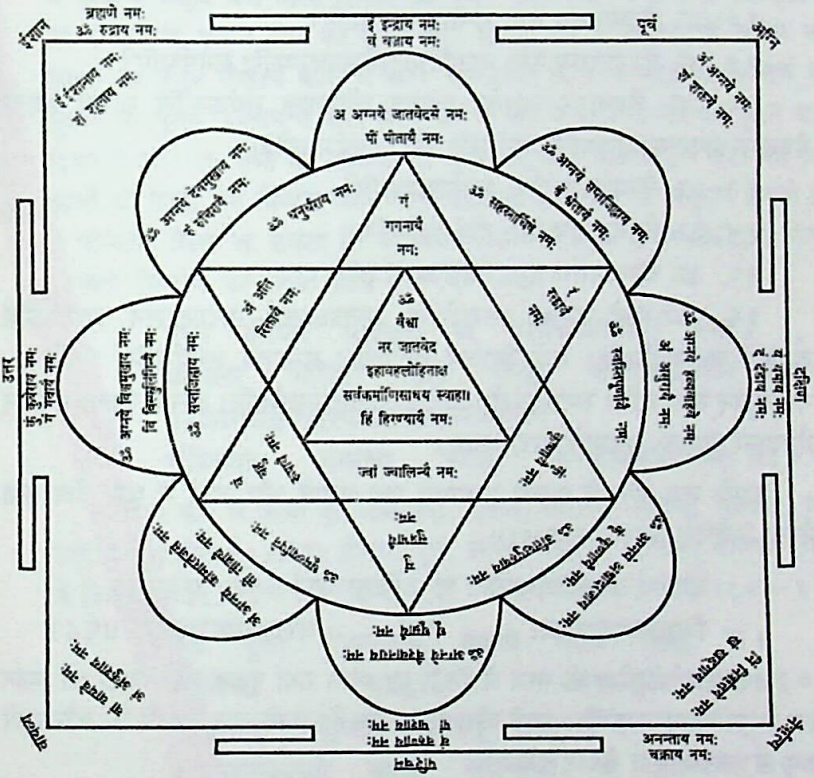
ततो हुताशनं ध्यायेद्वरस्वस्तिकशक्तितः।
अभयेन च संयुक्तैर्भुजैः सम्यग्विराजितम् ॥९४॥
सिन्दूरवर्णं पद्मस्थं स्वर्णालङ्कारभूषितम्।
त्रिनेत्रञ्च जटामौलिं पीतवस्त्रारुणस्रजम् ॥९५॥

तदनन्तर अग्नि का ध्यान करे। उनके चार हाथों में वरमुद्रा, स्वस्तिक, शक्ति और अभय मुद्रा है। सम्यक् रूप से आसन पर वे विराजमान हैं। सिन्दूर के समान उनका वर्ण है। पद्मासन पर बैठे हैं। सोने के अलंकार से सुशोभित है। उनके तीन नेत्र हैं। जटायें मौलिबद्ध हैं। उनके वस्त्र पीले हैं एवं माला लाल रंग की है।।९४-९५।।

ध्यात्वैवं मनुनानेन पूजयेदुपचारकैः।
वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष ॥९६॥
सर्वकर्माणि साधय स्वाहान्तः प्रणवादितः।
सप्तविंशत्यक्षरोऽयं मन्त्रः स्याद्वह्निपूजने ॥९७॥

इस प्रकार ध्यान करके उपचारों से पूजन करे। सत्ताईस अक्षरों का अग्नि का पूजन

मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा'। पूजन के पहले न्यास अपेक्षित होता है। अतः न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ सहस्रार्चिषे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः–अंगूठा में स्पर्श, ॐ स्वस्तिपूर्णाय तर्जनीभ्यां नमः–तर्जनी में स्पर्श, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय मध्यमाभ्यां नमः–मध्यमा में स्पर्श, ॐ धूमव्यापिने अनामिकाभ्यां नमः–अनामिका में स्पर्श, ॐ सप्तजिह्वाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः–कनिष्ठा में स्पर्श, ॐ धनुर्धराय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः–करतल-करपृष्ठ में स्पर्श।



अङ्गन्यास इस प्रकार होता है—ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम्, ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट्। ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा से बिन्दु में पूजन करे।

१. ॐ वैश्वानरं ध्यायामि, आवाहयामि।

२. ॐ वैश्वानराय नमः आसनं समर्पयामि।

३. ॐ वैश्वानराय नमः पाद्यं समर्पयामि।

४. ॐ वैश्वानराय नमः अर्घ्यं समर्पयामि।

५. ॐ वैश्वानराय नमः आचमनीयं समर्पयामि।

६. ॐ वैश्वानराय नमः स्नानं समर्पयामि।

७. ॐ वैश्वानराय नमः वस्त्रालङ्कारान् समर्पयामि।

८. ॐ वैश्वानराय नमः वस्त्रोपवस्त्रं समर्पयामि।

९. ॐ वैश्वानराय नमः यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

१०. ॐ वैश्वानराय नमः गन्धान् समर्पयामि।

११. ॐ वैश्वानराय नमः नानाविधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि।

१२. ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा वैश्वानरश्रीपादुकां पूजयामि, तर्पयामि नमः। (तर्पण करे)।

१३. ॐ वैश्वानराय नमः धूपमाघ्रापयामि।

१४. ॐ वैश्वानराय नमः दीपं दर्शयामि।

१५. ॐ वैश्वानराय नमः नैवेद्यं समर्पयामि।

१६. मध्ये मध्ये पानीयं, उत्तरापोषणं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं ताम्बूलं च समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि। मन्त्रपुष्पं समर्पयामि। प्रदक्षिणा-नमस्कारान् समर्पयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान् वैश्वानर सुप्रीतः सुप्रसन्नो वरदो भवतु।

इसके बाद यन्त्र में सबको गन्धाक्षत पुष्प चढ़ावें और अन्त में धूप, दीप तथा नैवेद्य निवेदित करे।।९६-९७।।

ततः षट्कोणमध्ये च जिह्वाध्यानं च पूजनम्।
जिह्वाज्वालारुचः सर्वा वराभयकरास्तथा ॥९८॥

तदनन्तर षटकोण के मध्य में जिह्वा का ध्यान तथा पूजन करे। जिह्वा का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—सभी जीभ ज्वालारूप हैं। उनके एक हाथ में वर और दूसरे हाथ में अभय मुद्रा है।।९८।।

ऐश्यां हिरण्या स्वर्णाभा शान्तिपौष्टिककर्मणि।
वैडूर्यवर्णा कनका प्राच्यां स्तम्भनकार्यवृत् ॥९९॥
विद्वेषे तरुणादित्यनिभा रक्ताग्निकोणके।
कृष्णाञ्जनचयप्रख्या नैर्ऋत्यां मारणक्षमा ॥१००॥
सुप्रभा पद्मरागाभा वारुण्यां धनदायिका।
अतिरक्ता जयाभासा वश्ये वायुदिशङ्गता ॥१०१॥

बहुरूपा तु षट्कोणमध्ये षड्वर्णसंयुता।
अनेककार्यसंसिद्धिर्नाशकर्त्री च सा मता ॥१०२॥
यथा कार्यं तथा जिह्वा दृश्यते चेत्स्वदिग्गता।
ज्वालारूपा तथा सिद्धिर्विपरीते विपर्ययः ॥१०३॥

शान्ति एवं पौष्टिक कर्म में ईशान कोण में हिरण्य का स्वर्ण आभा वाली जिह्वा का पूजन करे एवं ॐ हिरण्यायै नमः से गन्ध-अक्षत-पुष्प समर्पण करे। स्तम्भन कार्य में पूरब में वैडूर्य वर्ण वाली कनका का पूजन करे। विद्वेषण कर्म में अग्निकोण में तरुण सूर्य के समान रक्ता का पूजन करे। मारण कर्म में काजल के समान काली कृष्णा का पूजन नैर्ऋत्य कोण में करे। धन-प्राप्ति के लिये पुखराज के वर्ण वाली सुप्रभा का पूजन पश्चिम में करे। वश्य कर्म में जयाभासा अतिरक्ता का पूजन वायव्य दिशा में करे। छः वर्णों की बहुरूपा का पूजन षट्कोण के मध्य में करे। यह अनेक कार्यों की सिद्धि एवं विनाश करने वाली कही गई है। कार्यों के अनुसार इनकी दिशा में परिवर्तन किया जा सकता है। ज्वालारूप अग्नि में हवन करना सिद्धिप्रद होता है; अन्यथा विपरीत फल प्राप्त होता है।।९९-१०३।।

प्रभा दीप्तिः प्रकाशा च मरीचिस्तापिनी तथा।
कराला लेलिहा चेति जिह्वा वैष्णवकर्मणि ॥१०४॥
ईशप्राग्वह्निनैर्ऋत्यपश्चाद्वायव्यमध्यतः ।
संस्थिताः सकला जिह्वा वरदाभयसत्कराः ॥१०५॥

वैष्णव कर्म में जीभों का नाम प्रभा, दीप्ति, प्रकाशा, मरीचि, तापिनी, कराला एवं लेलिहा होता है। क्रमशः ईशान, पूर्व, अग्नि, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य एवं मध्य में स्थित ये सभी जिह्वायें अपने हाथों में वर एवं अभयधारिणी होती हैं।।१०४-१०५।।

एवं पूजां विधायाशु देवाग्रे चापि दिक्षु च।
पूजयेच्च षडङ्गानि पत्रेष्वावृत्तिदेवताः ॥१०६॥
इन्द्रादीन् सायुधान् पश्चात् सम्पूर्णाग्निं पुनर्यजेत्।
ततश्चाधोमुखौ कृत्वा स्रुक्स्रुवौ च प्रतापयेत् ॥१०७॥

इस प्रकार से देवता के आगे और दिशाओं में जिह्वाओं के पूजन के बाद षडङ्गों का पूजन करना चाहिये। तब पत्रों में आवरण पूजन करना चाहिये। इसके बाद इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद पूर्णाग्नि का पूजन करना चाहिये। इसकें बाद स्रुक् और स्रुवा को अधोमुख करके अग्नि में तपाना चाहिये। षडङ्ग-पूजन इस प्रकार होता है—

अग्निकोण से प्रारम्भ करके कोणों के मध्य में निम्न प्रकार से यन्त्राङ्कित रूप में

षडङ्ग पूजन करते हुये गन्ध-अक्षत-पुष्प चढ़ाना चाहिये—

ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः हृदयं पूजयामि। ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा शिरः पूजयामि। ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट् शिखां पूजयामि। ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम् कवचं पूजयामि। ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रं पूजयामि। ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट् अस्त्रं पूजयामि।

इसके बाद आवरण पूजन करना चाहिये। आठ दलों में प्रथम आवरण पूजन हेतु इस मन्त्र से अनुज्ञा प्राप्त करे—

ॐ संविन्मयपरो देवः परामृतरसप्रियः।
अनुज्ञां वैश्वानरं देहि परिवारार्चनाय ते।।

तदनन्तर पुष्पाञ्जलि प्रदान करने के पश्चात् अष्टदल कमल के पूर्व दल से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रम से आठों दलों में—ॐ अग्नये जातवेदसे नमः जातवेदःपादुकां पूजयामि। ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः सप्तजिह्वापादुकां पूजयामि। ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः हव्यवाहनपादुकां पूजयामि। ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः अश्वोदरपादुकां पूजयामि। ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः वैश्वानरपादुकां पूजयामि। ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः कौमारतेजःपादुकां पूजयामि। ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः विश्वमुखपादुकां पूजयामि। ॐ अग्नये देवमुखाय नमः देवमुखपादुकां पूजयामि। तदनन्तर 'एते देवाः सर्वोपचारैः पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः' कहकर तर्पण करके पुष्पाञ्जलि प्रदान करते हुये निम्न मन्त्र से प्रणाम काना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं में देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

तदनन्तर वैश्वानर के हाथ में जल प्रदान करते हुये से पूजा का समर्पण करे एवं 'प्रथमावरणदेवतासहितवैश्वानराय नमः' कहकर प्रणाम करे।

द्वितीय आवरण के पूजन में कमल के आठों दलों में शक्तियों का पूजन पूर्वादि क्रम से इन मन्त्रों से करे—पीं पीतायै नमः पीतापादुकां पूजयामि। श्वें श्वेतायै नमः श्वेतापादुकां पूजयामि। अं अरुणायै नमः अरुणापादुकां पूजयामि। कृं कृष्णायै नमः कृष्णापादुकां पूजयामि। धूं धूमायै नमः धूमापादुकां पूजयामि। तीं तीव्रायै नमः तीव्रापादुकां पूजयामि। विं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः विस्फुलिङ्गिनीपादुकां पूजयामि। रुं रुचिरायै नमः रुचिरापादुकां पूजयामि। तदनन्तर 'एताः देव्यः सर्वोपचारैः पूजिताः सन्तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः' कहकर तर्पण करके पुष्पाञ्जलि प्रदान कर प्रणाम करे एवं

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

कहकर अपने दोनों हाथों में जल लेकर देव के दाँये हाथ में पूजन को समर्पित करते हुये 'द्वितीयावरणदेवतासहिताय वैश्वानराय नमः' कहकर प्रणाम निवेदन करे।

तृतीय आवरण-पूजन के क्रम में भूपुर की दशों दिशाओं में—इं इन्द्राय नमः इन्द्रपादुकां पूजयामि। अं अग्नये नमः अग्निपादुकां पूजयामि। यं यमाय नमः यमपादुकां पूजयामि। निं निर्ऋतये नमः निर्ऋतिपादुकां पूजयामि। वं वरुणाय नमः वरुणपादुकां पूजयामि। वां वायवे नमः वायुपादुकां पूजयामि। कुं कुबेराय नमः कुबेरपादुकां पूजयामि। ईं ईशानाय नमः ईशानपादुकां पूजयामि। वं ब्रह्मणे नमः ब्रह्मपादुकां पूजयामि। अं अनन्ताय नमः अनन्तपादुकां पूजयामि। तदनन्तर 'सवें देवाः पूजिताः तर्पिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः' कहकर तर्पण करके पुष्पाञ्जलि निवेदित कर प्रणाम करे एवं निम्न मन्त्र बोलते हुये पूजा समर्पण करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

अन्त में 'तृतीयावरणदेवतासहिताय वैश्वानराय नमः' से प्रणाम करे।

चतुर्थ आवरण में भूपुर में पूर्व से दशों दिशाओं में इन मन्त्रों से पूजन करे—वं वज्राय नमः वज्रपादुकां पूजयामि। शं शक्तये नमः शक्तिपादुकां पूजयामि। दं दण्डाय नमः दण्डपादुकां पूजयामि। खं खड्गाय नमः खड्गपादुकां पूजयामि। पां पाशाय नमः पाशपादुकां पूजयामि। अं अङ्कुशाय नमः अङ्कुशपादुकां पूजयामि। गं गदाय नमः गदापादुकां पूजयामि। शूं शूलाय नमः शूलपादुकां पूजयामि। पं पद्माय नमः पद्मपादुकां पूजयामि। चं चक्राय नमः चक्रपादुकां पूजयामि। इसके बाद '....पूजिताः तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर तर्पण कर पुष्पाञ्जलि निवेदित कर प्रणाम करे एवं निम्न मन्त्र बोलते हुये पूजा का समर्पण करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम्।

अन्त में 'चतुर्थावरणदेवतासहिताय वैश्वानराय नमः' कहकर प्रणाम करे और धूप-दीप-नैवेद्यादि समर्पित करे।।१०६-१०७।।

कुशाग्रैस्तु तयोरग्रं मध्यं मध्यैश्च मार्ज्जयेत्।
मूले मूलैस्त्रिधा चैव मार्ज्जयित्वा प्रतापयेत्।।१०८।।

आगे की कुशाओं से स्रुक्-स्रुवा के ग्र भाग का एवं मध्यभाग की कुशाओं से मध्य भाग का मार्जन करे। इसके बाद स्रुक् और स्रुवा का मूल मन्त्र से तीन बार मार्जन करके उन्हें तप्त करे।।१०८।।

धृत्वा तौ वामहस्तेन प्रोक्षयेत् प्रोक्षणीजलैः।
दक्षिणेन कराग्रेण पुनः सन्तापयेच्च तौ ॥१०९॥

उन्हें बाँये हाथ में लेकर प्रोक्षणीजल से उनका प्रोक्षण करे और फिर दाँये हाथ में लेकर उन्हें तपावे।।१०९।।

कुशान् क्षिप्त्वा ततो वह्नौ स्वदक्षे तु कुशास्तरे।
संस्थाप्य स्रुक्स्रुवौ पश्चाद्धृतसंस्कारमाचरेत् ॥११०॥

कुशों को अग्नि में फेंक दे। अपने दाहिने कुशा के आसन पर स्रुक् और स्रुवा को स्थापित करे। इसके बाद घी का संस्कार करे।।११०।।

समादाय घृतस्थालीं मन्त्रेण सेचयेत्ततः।
घृतं तत्र समापूर्य्य वीक्षणादिसुसंस्कृतम् ॥१११॥

घृतपात्र को लेकर मन्त्र से उसपर जल का छींटा दे। तब उस पात्र में घी भरकर वीक्षण आदि से उसे संस्कृत करे।।१११।।

वायव्ये बाह्यतोऽङ्गारान् कृत्वा तेषु हृदा न्यसेत्।
तापनं तु समुद्दिष्टं कुशद्वयमतः क्षिपेत् ॥११२॥
अभिद्योतनमेतत् स्यादुद्योतनमथोच्यते।
कुशं प्रज्वलितं चोह्य दर्शयेत्तं हृदा क्षिपेत् ॥११३॥

कुण्ड के वायव्य कोण से अङ्गार लेकर घी में डालने पर उस घी का तापन होता है। उसमें दो कुश डाले। इसे अभिद्योतन कहते हैं। अब उद्योतन कहा जा रहा है। कुश को प्रज्वलित करके उसे दिखाकर अग्नि में निक्षिप्त कर दे।।११२-११३।।

वह्नावुद्वास्य च घृतमङ्गाराग्निषु निक्षिपेत्।
अपसंस्पृश्य मन्त्रज्ञः कुर्यादुत्प्लवनं ततः ॥११४॥

अग्नि का उद्वासन करके घी को अंगाररूप अग्नि में छोड़ दे। तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक उत्प्लवन करे।।११४।।

अस्त्रमन्त्रं जपेन्मन्त्री कुशौ प्रादेशमात्रकौ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च गृहीत्वा घृतमुत्प्लवेत् ॥११५॥
ततो दृढं कुशाभ्यान्तु स्वाभिमुख्येन सम्प्लवेत्।
घृतं तत्स्यात्सम्प्लवनं षट् संस्कारा इतीरिताः ॥११६॥

एक बित्ता के कुश को अनामिका और अङ्गुष्ठ से ग्रहण करके अस्त्रमन्त्र का जप करते हुये घी को चलावे। इसके बाद दृढ़ कुशों से घी को अपनी ओर चलावे, इसके बाद घी-पात्र को हिलाकर संप्लवन करे। यही घी के छः संस्कार कहे गये हैं।।११५-११६।।

उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषीभवम्।
अधमं छागलीजातं निषिद्धं त्वेडकादिजम् ॥११७॥
क्रीतं यदापणे चाज्यं स्वादु चेद्गव्यवच्च तत्।
कुशद्वयं घृते न्यस्य ततः प्रादेशसम्मितम् ॥११८॥
ग्रन्थिं कृत्वा कुशाग्रौ द्वौ शुक्लकृष्णौ विचिन्तयेत्।
पक्षौ वाम इडां दक्षे पिङ्गलां मध्यतस्ततः ॥११९॥
सुषुम्णां संस्मरेन्मन्त्री ततो होमं समाचरेत्।

गाय का घी उत्तम, भैंस का घी मध्यम एवं बकरी का घी अधम होता है। भेंड आदि का घी पूजन कर्म में निषिद्ध कहा गया है। बाजार से खरीदा गया घी यदि स्वादिष्ट हो तो उसे गाय के घी के समान ही जानना चाहिये।

इसके बाद प्रादेशमात्र लम्बा दो कुश उसमें डाल दे। एक कुश के अग्र भाग में दो गाँठ लगावे। एक को कृष्ण पक्ष और दूसरे को शुक्ल पक्ष समझे। एक गाँठ को इड़ा और दूसरे गाँठ को पिंगला तथा उनके मध्य को सुषुम्णा मानकर मन्त्रज्ञ हवन का कार्य करे।।११७-११९।।

तान्त्रिकहोमविचारः

दक्षभागात् स्रुवेणाज्यं प्रगृह्णीयाद् हृदाणुना ॥१२०॥
दक्षे नेत्रे हुताशस्याग्नये स्वाहेति होमयेत्।
गृहीत्वाज्यं वामभागात्तद्वद्वामेऽग्निलोचने ॥१२१॥
हुनेत्सोमाय स्वाहेति त्यागः सर्वत्रतो मम।
हृन्मन्त्रेण गृहीत्वाज्यं मध्यतो मध्यलोचने ॥१२२॥
हुनेत्तस्याग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति च तृतीयिकाम्।
दक्षभागात् पुनस्त्वाज्यं हृन्मन्त्रेण समाहरेत् ॥१२३॥
अग्निवक्त्रेऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति होमयेत्।
सताराभिर्व्याहृतिभिराज्येन जुहुयात् पुनः ॥१२४॥

तान्त्रिक हवन—प्रज्ज्वलित अग्नि के दक्ष नेत्र में स्वाहा मन्त्र से हवन करे। इसमें घृत पात्र के दाहिने भाग से घी ग्रहण करे। तब घी पात्र के बाँये भाग से घी लेकर अग्नि के वाम नेत्र में हवन करे। तब घी पात्र के मध्य से घी लेकर अग्नि के मध्य नेत्र में 'ॐ सोमाय स्वाहा इदं न मम' कहकर हवन करे। 'ॐ अग्निसोमाभ्यां स्वाहा इदं न मम' कहकर तृतीय नेत्र में आहुति प्रदान करे। तब पात्र के दाहिने भाग से फिर घी लेकर 'अग्निवक्त्रे अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' मन्त्र से हवन करे। तदनन्तर 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा' मन्त्रों से हवने करे।।१२०-१२४।।

जुहुयादग्निमन्त्रेण त्रिवारं देशिकोत्तमः ।
गर्भाधानादिकां वह्नेः समुद्वाहावसानिकाः ॥१२५॥
शुभे कर्मणि कर्त्तव्या आज्याहुत्यष्टकैः प्रियाः ।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य कर्मनाम समुच्चरेत् ॥१२६॥
सम्पादयामि स्वाहेति सर्वकर्मस्वयं विधिः ।

तब 'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इस अग्नि मन्त्र से तीन आहुति प्रदान करे। तदनन्तर अग्नि का गर्भाधान आदि संस्कार करे। इसमें गर्भाधान से लेकर विवाह तक के संस्कार किये जाते हैं। शुभ कर्म में आठ आहुतियाँ घी से प्रदान करनी चाहिये। सभी कर्मों में पहले ॐ, तब कर्म, तब सम्पादयामि, तब स्वाहा लगाकर आहुति प्रदान करनी चाहिये।।१२५-१२६।।

गर्भाधा पुंसवनं सीमन्तं जातकर्म च ॥१२७॥
निष्कासनञ्च कथितं प्राशनञ्च तथा बुधैः ।
चौलोपनयनं वह्नेर्महानामव्रतं तथा ॥१२८॥
महाव्रतञ्चोपनिषद् व्रतं गोदानमेव च ।
समावर्त्तसमुद्वाहौ शाक्ते वाग्भवपूर्वकाः ॥१२९॥

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, निष्कासन, प्राशन, चौल, उपनयन, महानामव्रत, महाव्रत, उपनिषद् व्रत, गोदान, समावर्त्तन एवं समुद्वाह—ये अग्नि के संस्कार होते है। प्रत्येक संस्कारों में में घी से हवन किया जाता है। शाक्त हवन में ॐ के स्थान पर 'ऐं' लगाया जाता है।।१२७-१२९।।

ततश्च वह्नेः पितरौ देवदेव्यादिकौ तथा ।
पूजयित्वा विसृज्याथ मूलाग्रेषु घृतप्लुताः ॥१३०॥
समिधोऽग्नौ क्षिपेत्पञ्च वह्नावथ च पूर्ववत् ।
सबीजस्वस्वनाम्ना वै चैकैकामाहुतिं हुनेत् ॥१३१॥

इसके बाद अग्नि के माता-पिता, देव-देवी आदि का पूजन करने के पश्चात् विसर्जन करके पीपल, आक, पलाश, खैर, अपामार्ग, गूलर, दूब की समिधा को घी से तर करके अग्निजिह्वाओं का इस प्रकार हवन करे—

ॐ स्रूं हिरण्यायै अग्निजिह्वाय स्वाहा—पीपल से।
ॐ ष्रूं गगनायै अग्निजिह्वाय स्वाहा—आक से।
ॐ श्रूं रक्तायै अग्निजिह्वाय स्वाहा—पलाश से।
ॐ व्रयु कृष्णायै अग्निजिह्वाय स्वाहा—खैर से।
ॐ ल्युं सुप्रभायै अग्निजिह्वाय स्वाहा—चिड़चिड़ा से।

ॐ र्युं बहुरूपायै अग्निजिह्वाय स्वाहा—गूलर से।
ॐ य्युं अतिरिक्तायै अग्निजिह्वाय स्वाहा—दूब से।

केवल घी से सात आहुति इस प्रकार प्रदान करे—
ॐ अमृतायै नमः स्वाहा इदं न मम।
ॐ पितृभ्यो नमः स्वाहा इदं न मम।
ॐ गन्धर्वेभ्यो नमः स्वाहा इदं न मम।
ॐ यक्षेभ्यो नमः स्वाहा इदं न मम।
ॐ नागेभ्यो नमः स्वाहा इदं न मम।
ॐ पिशाचेभ्यो नमः स्वाहा इदं न मम।
ॐ राक्षसेभ्यो नमः स्वाहा इदं न मम।।१३०-१३१।।

ततश्चाङ्गानि जुहुयाद् वह्नेर्मूर्त्यष्टकं तथा ॥१३२॥
इन्द्रादिलोकपालाँश्च आयुधानि ततः परम्।
पूर्वोक्तेनाग्निमन्त्रेण वौषडन्तेन वै ततः ॥१३३॥

हवन सामग्री से छः बार इन मन्त्रों से हवन करे—
ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः स्वाहा।
ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे नमः स्वाहा।
ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट् स्वाहा।
ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम् स्वाहा।
ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा।
ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट् स्वाहा।

हवन सामग्री से आठ बार इन मन्त्रों से हवन करे—
ॐ अग्नये जातवेदसे नमः स्वाहा।
ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः स्वाहा।
ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः स्वाहा।
ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः स्वाहा।
ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः स्वाहा।
ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः स्वाहा।
ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः स्वाहा।
ॐ अग्नये देवमुखाय नमः स्वाहा।

घृताहुति दश बार इन मन्त्रों से प्रदान करे—
ॐ लं इन्द्राय सुराधिपतये वज्रहस्ताय नमः स्वाहा।
ॐ रं वह्नये तेजोधिपतये शक्तिहस्ताय नमः स्वाहा।

ॐ मं यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय नमः स्वाहा।
ॐ क्षं निर्ऋतये रक्षोधिपतये खड्गहस्ताय नमः स्वाहा।
ॐ वं वरुणाय जलाधिपतये पाशहस्ताय नमः स्वाहा।
ॐ यं वायवे प्राणाधिपतये ध्वजहस्ताय नमः स्वाहा।
ॐ सों सोमाय क्षेत्राधिपतये गदाहस्ताय नमः स्वाहा।
ॐ हं ईशानाय विद्याधिपतये त्रिशूलहस्ताय नमः स्वाहा।
ॐ आं ब्रह्मणे त्रैलोक्याधिपतये पद्महस्ताय नमः स्वाहा।
ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये चक्रहस्ताय नमः स्वाहा।

साकल्याहुति चार बार 'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' मन्त्र से प्रदान करे।।१३२-१३३।।

तारादैर्दशभिर्भेदैः पूर्वपूर्वसमन्वितैः।
मनुना गाणपत्येन हुनेत्पूर्वं दशाहुतीः ॥१३४॥
जुहुयाच्च चतुर्वारं समस्तेनैव तेन तु।

ॐ स्वाहा, ॐ श्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा, ॐ श्री ह्रीं क्लीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ॐ श्री ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा—गणपति के इन दस मन्त्रों से घी से आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' इस सम्पूर्ण गणेश मन्त्र से चार बार आहुति प्रदान करनी चाहिये।।१३४।।

सम्पूज्य देवतापीठं वह्नौ सम्यक् ततो गुरुः ॥१३५॥
अग्निरूपधरां तत्र पूजयेदिष्टदेवताम्।
आज्येन चाग्निमनुना पञ्चविंशतिसङ्ख्यकम् ॥१३६॥
हुनेन्मन्त्री चाग्निमुखे वक्त्रैकीकरणं त्विदम्।
आत्माग्निदेवतानां च चिन्तयन्नैक्यमात्मवित् ॥१३७॥
एकादशाथ मूलेन हुनेदाज्येन चाहुतीः।
नाडीसन्धानमेतद्धि प्रोक्तं देशिकसत्तमैः ॥१३८॥

इसके बाद गुरु अग्नि को इष्टदेवतारूप मानकर मानसिक पूजन करे। इसके बाद 'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्व कर्माणि साधय स्वाहा' इस अग्निमन्त्र से पच्चीस आहुति प्रदान करे। इसे ही अग्नि के मुखों का एकीकरण कहा जाता है।

तत्पश्चात् आत्मवित् साधक आत्मा, अग्नि और देवता में ऐक्य का चिन्तन करे। इसके बाद मूल मन्त्र से ग्यारह आहुति प्रदान करे। श्रेष्ठ देशिको द्वारा इसे ही नाड़ी-सन्धान कहा गया है।।१३५-१३८।।

अङ्गप्रभृत्यावृत्तीनामेकैकामाहुतिं हुनेत्।
पूर्वादिदिक्षु सर्वासु कुण्डेषु च यथाविधि ॥१३९॥
गुरुर्वह्निं प्रविहरेत् संस्कृतं तूक्तवर्त्मना।
सर्वर्त्विजश्चन्दनाद्यैः सम्पूज्य प्रोक्तदेवताम् ॥१४०॥
सर्वावरणसंयुक्तां मूलेन जुहुयुस्ततः।
पञ्चविंशतिधा सर्पिः संयुतेन प्रियान्धसा ॥१४१॥

अङ्ग एवं आवरण देवताओं को एक-एक आहुति से समस्त कुण्डों में पूर्वादि दिशाओं में हवन करे। अङ्गदेवता को छः आहुतियाँ इन मन्त्रों से प्रदान करे—ॐ सहस्रार्चिषे स्वाहा, ॐ स्वस्तिपूर्णाय स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय स्वाहा, ॐ धूमव्यापिने स्वाहा, ॐ सप्तजिह्वाय स्वाहा, ॐ धनुर्धराय स्वाहा।

प्रथम आवरण में अग्निदेव के आठ रूपों के लिये आठ आहुति इन मन्त्रों से प्रदान करे—ॐ जातवेदसे स्वाहा, ॐ सप्तजिह्वाय स्वाहा, ॐ हव्यवाहनाय स्वाहा, ॐ अश्वोदरजाय स्वाहा, ॐ वैश्वानराय स्वाहा, ॐ कौमारतेजसे स्वाहा, ॐ विश्वमुखाय स्वाहा, ॐ देवमुखाय स्वाहा।

द्वितीय आवरण में अग्नि की आठ शक्तियों के लिये आठ आहुति इन मन्त्रों से प्रदान करे—पीं पीतायै स्वाहा, श्वें श्वेतायै स्वाहा, अं अरुणायै स्वाहा, कृं कृष्णायै स्वाहा, धूं धूमायै स्वाहा, तीं तीव्रायै स्वाहा, विं विस्फुलिङ्गिन्यै स्वाहा, रुं रुचिरायै स्वाहा।

तृतीय आवरण में दश दिक्पालों को दश आहुति इन मन्त्रों से प्रदान करे—इं इन्द्राय स्वाहा, अं अग्नये स्वाहा, यं यमाय स्वाहा, निं निर्ऋतये स्वाहा, वं वरुणाय स्वाहा, वां वायवे स्वाहा, कुं कुबेराय स्वाहा, ईं ईशानाय स्वाहा, वं ब्रह्मणे स्वाहा, अं अनन्ताय स्वाहा।

चतुर्थ आवरण के दिक्पालों के आयुधों को दश आहुति इन मन्त्रों से प्रदान करनी चाहिये—वं वज्राय स्वाहा, शं शक्तये स्वाहा, दं दण्डाय स्वाहा, खं खड्गाय स्वाहा, पां पाशाय स्वाहा, अं अंकुशाय स्वाहा, गं गदायै स्वाहा, शूं शूलाय स्वाहा, पं पद्माय स्वाहा, चं चक्राय स्वाहा।

तब गुरु पूर्व दिशा के कुण्ड से प्रारम्भ करके सभी कुण्डों में अग्नि लेकर पूर्वोक्त विधि से संस्कार करे। तब सभी ऋत्विज् उसमें इष्टदेवता का पूजन चन्दनादि से करें।

सभी आवरण देवताओं को संयुक्त करके मूल मन्त्र से पच्चीस आहुति गोघृत से प्रदान करे।।१३९-१४१।।

स्रुवेणाज्यं समित्पाण्या स्रुचा शेषं करेण तु।
तत्र दिव्येन होतव्यं तीर्थेणार्षेण वा तथा ॥१४२॥
यो नार्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गाग्नौ चैव मानवः।
मन्दाग्न्यामयसंयुक्तो दरिद्रश्चापि जायते ॥१४३॥

तत्पश्चात् समित्पाणि होकर स्रुवा सें गोघृत एवं दूसरे हाथ में स्रुचा लेकर दिव्य तीर्थ से अथवा ऋचा से हवन करे। जो मनुष्य इस प्रकार प्रज्वलित अग्नि में हवन न करके व्यंगाग्नि में हवन करतर है, वह मन्दाग्नि से पीड़ित एवं दरिद्र होता है।

दद्याद्बलिं गन्धपुष्पधूपपूर्वकमादरात्।
नक्षत्राणां च वाराणां राशीनां च पृथक् पृथक् ॥१४४॥
देवताभ्यः पदं प्रोक्त्वा दिवा नक्तं वदेत्ततः।
वारोभ्यश्चाथ सर्वेभ्यो भूतेभ्यश्च नमो वदेत् ॥१४५॥

आदरपूर्वक गन्ध, पुष्प, धूपसहित बलि प्रदान करे। यह बलि नक्षत्रों को, वारों को और राशियों को पृथक्-पृथक् देना चाहिये। बलि मन्त्र में पहले देवता पद, तब दिवा-नक्तं, तब नमः कहना चाहिये। जैसे—नक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तं नमः, वारदेवताभ्यो दिवानक्तं नमः, सर्वेभ्यो भूतेभ्यो दिवानक्तं नमः इत्यादि।

इत्येष तान्त्रिको होमविधिः प्रोक्तो मया सुराः।
पृच्छन्त्वन्यद् गूढमपि वक्ष्यामि शरणागतान् ॥१४६॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरूतन्त्रे शिवप्रणीते
होमविधिप्रकाशश्चतुर्थः॥४॥

●

हे देवताओं! इस प्रकार तान्त्रिक हवन विधि का वर्णन मेरे द्वारा किया गया। अब अन्य गूढ़ विषयों को जानने की यदि इच्छा हो तो बोलिये। आपलोगों को शरणागत समझकर उनका भी वर्णन मैं करूँगा।।१४६।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत
'होमविधि' नामक चतुर्थ प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ

●

अथ पञ्चमः प्रकाशः

(आह्निकप्रकाशः)

श्रीदेव्युवाच

धनिनां मध्यमानां च दरिद्राणां हासिनाम्।
परदेशस्थितानां च कारागेहादिवासिनाम् ॥१॥
कायादौ व्याहृतानां च युक्तानां सूतकादिभिः।
कार्याङ्गवस्त्वभावे वा वामिकानां कृपानिधे ॥२॥
षडाम्नायरहस्येन कथं नित्याह्निकं भवेत्।
लोकलज्जावतां चापि दिनचर्यां वद प्रभो ॥३॥

श्रीदेवी ने कहा—हे कृपानिधे! धनिकों, मध्यमवर्ग, दरिद्रों, हास-परिहास करने वालों, परदेशियों, कैदियों, अङ्गहीनों, सूतकादि से युक्त, कार्यव्यस्तों एवं वाममार्गियों की छः आम्नायों के अनुसार आह्निक क्रिया किस प्रकार सम्पन्न होती है? साथ ही लोक-लज्जा वालों की दिनचर्या का भी आप वर्णन कीजिये।।१-३।।

ईश्वर उवाच

महाकालेन यत्प्रोक्तं यन्महामायया श्रुतम्।
रहस्यातिरहस्यं यत्सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥४॥

शिवजी ने कहा—महाकाल ने जो कहा है एवं महामाया ने जिसे सुना है, वह अत्यन्त रहस्यपूर्ण है एवं सभी तन्त्रों में गुप्त है।।४।।

आह्निकविचारः

आम्नायानां रहस्यं यदाह्निकं प्रोच्यते मया।
शृण्वन्तु सर्वे भो देवाः साधकानां प्रसिद्धिदम् ॥५॥

हे देवताओं! आम्नायों के रहस्यस्वरूप तथा सभी साधकों के लिये सिद्धिप्रद आह्निक अर्थात् दिनचर्या का मैं वर्णन मैं करता हूँ; आप सब सुनें।।५।।

तत्र नित्यं त्रिधा प्रोक्तं गुणत्रयविभेदतः।
अधिकारिविभेदेन तदपि त्रिविधं भवेत् ॥६॥
शुद्धं मिश्रं च गलितं तत्तथैव फलप्रदम्।
अकृते प्रत्यवायो न गलिते सफलञ्जनैः ॥७॥

आम्नायों के अनुसार नित्य कर्म तीन गुणों के अनुसार तीन प्रकार के होते हैं। अधिकारी-भेद से भी उसके तीन ही भेद होते हैं—शुद्ध, मिश्र और गलित। यह तीन प्रकार की दिनचर्या अपने नाम के अर्थ के अनुसार फलप्रद होती है। इनके नहीं करने पर कोई प्रत्यवाय नहीं होता; साथ ही गलित आचार से मनुष्यों को कोई सफलता भी नहीं मिलती है।।६-७।।

अहङ्कारविहीनं चेन्मानसं ज्ञानपूर्वकम्।
स्वस्थचित्तेन यतिना कृतं तच्छुद्धमिष्यते ॥८॥

संन्यासियों द्वारा स्वस्थ चित्त से अहंकाररहित होकर मानस ज्ञानपूर्वक जो कर्म किया जाता है, वही शुद्ध आचार होता है।।८।।

तादृशं चेद् गृहस्थेन निर्द्रव्येण च वा कृतम्।
रुग्णेन पथिकेनापि कारागृहगतेन वा ॥९॥
भक्तितो वापि तन्मिश्रं बाह्यपूजाधिकारतः।
शीतादिभीत्या वा वित्तसंक्षयादन्यकार्यतः ॥१०॥
स्त्र्यादेर्नियोगाद् गलितं गृहिणो मानसं मतम्।
बाह्यपूजादिकं यच्च एकान्ते नियमेन च ॥११॥
भक्त्या कृतं गृहस्थेन तच्छुद्धं राजसम्मतम्।
पूजार्थं यद्वाचयित्वा श्रद्धाभक्तिं विधाय च ॥१२॥
लोकभीत्या देवभीत्या यत्तदायासमिश्रितम्।
प्रतारणार्थं लोकानां याचितं देवनामतः ॥१३॥
द्रव्यं कृतं तदुद्देशो गलितं तत्तु राजसम्।
वाममार्गं समाश्रित्य कौलं धर्मं विचार्य च ॥१४॥
अन्यधर्मस्य चाद्वेषात्कृतं शुद्धं तु तामसम्।
कृतं यत्कामतः कर्म चैहिकं पारलौकिकम् ॥१५॥
वाममार्गं समाश्रित्य मिश्रितं तत्तु तामसम्।
जिह्वालोभेन यत्पानं भक्षणं कामतो रतम् ॥१६॥
अथवा मारणाद्यर्थं गलितं तत्तु तामसम्।
शुद्धसत्त्वेन मोक्षः स्यात्स्वर्गः स्यान्मिश्रसत्त्वतः ॥१७॥

उसी प्रकार के आचार यदि भक्तिपूर्वक गृहस्थ, दरिद्र, रोगी, पथिक या कैदी करते हैं, तो उसे मिश्र आचार कहा जाता है। बाह्य पूजा का अधिकार होने के कारण, शीत आदि के भय से, धनहीनता के कारण, अन्य कार्य के कारण, स्त्रीनियोग के फलस्वरूप गृहियों द्वारा किया जाने वाला मानसिक आचार गलित कहा जाता है। जो

जो बाह्य पूजा एकान्त में नियमानुसार भक्तिपूर्वक गृहस्थ द्वारा की जाती है, वह शुद्ध राजस आचार कहलाता हैं। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक लोकभय से अथवा देवभय से जो पूजा बोलकर की जाती है, वह आयास-मिश्रित कहलाता है। लोककल्याण-हेतु देवता के नाम पर जो द्रव्य एकत्रित करते हैं, उस आचार को राजस गलित कहा जाता है। वाममार्ग का आश्रयण करके एवं कौल धर्म का विचार करके अन्य धर्म से द्वेषरहित होकर जो आचार किया जाता है, वह शुद्ध तामस आचार कहलाता है। वाममार्ग का आश्रयण करके कामना-सहित जो ऐहिक और पारलौकिक आचार किया जाता है, वह तामस मिश्रित आचार कहलाता है। जिह्वासुख के लिये जो पान अथवा भक्षण किया जाता है अथवा कामना के वशीभूत होकर मैथुन किया जाता है, अथवा जो मारण कर्म किया जाता है, वह तामसिक गलित आचार होता है। सात्त्विक शुद्ध आचार के पालन से मोक्ष की प्राप्ति होती है एवं सात्त्विक मिश्र आचार के पालन से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।।९-१७।।

सिद्धिर्गलितसत्त्वात् स्यादैहिकी च मनुष्यता।
स्वर्गः स्याद्राजसाच्छुद्धात् कामः स्यान्मिश्रराजसात् ॥१८॥
गलिताद्राजसात्तिर्य्यग्योनावपि सुखं भवेत्।
सात्त्विकात्तामसाद्देवयोनित्वं प्राप्नुयान्नरः ॥१९॥
मिश्रतामसतो दुःखी नारकी चान्त्यतामसात्।

गलित सत्त्व आचार से लौकिक सुख एवं मनुष्यत्व की प्राप्ति होती है। शुद्ध राजस आचार से स्वर्ग मिलता है एवं मिश्र राजस आचार से काम की प्राप्ति होती है तथा गलित राजस आचार से तिर्यक् योनि में भी सुख प्राप्त होता है। सात्त्विक तामस आचार से मनुष्य देवयोनि प्राप्त करता है, मिश्र तामस आचार से दुखी होता है एवं गलित तामस आचार से नरक प्राप्त करता है।।१८-१९।।

कर्म पञ्चविधं प्रोक्तं पञ्चधा मुक्तिदायकम् ॥२०॥
प्रसर्पणमुपादानमिज्याध्यायस्तथा द्युतिः।
सम्मार्ज्जनोपलेपादिसंस्कारा देवमन्दिरे ॥२१॥

कर्म पाँच प्रकार के होते हैं और उनसे पाँच प्रकार के मोक्ष मिलते हैं। वे हैं— मंदिर में प्रसर्पण अर्थात् प्रवेश करना, उपादान अर्थात् सामग्री प्रदान करना, इज्याध्याय अर्थात् यज्ञ कराना, दीप जलाना एवं सम्मार्जन-लेपन करना। देवमंदिर के ये पाँच संस्कार होते हैं।।२०-२१।।

भक्तार्ज्जवं सर्पणं स्यादेवमारोग्यकारकम्।
पूजासाधनसामग्र्या मेलनं भक्तसेवनम् ॥२२॥

तत्प्रीतिः स्यादुपादानं देवतारूपदायकम्।
पीठपूर्वाङ्गपूर्वञ्च षोडशाद्युपचारकैः ॥२३॥
मूर्त्तौ यन्त्रेऽथवा पूजा सेज्या स्यादिष्टकारिका।
तच्छास्त्राध्ययनं सम्यक्कृत्वा मन्त्रार्थभाजनम् ॥२४॥
कृत्वा जपन्तु वाध्यायो देवसायुज्यकारकः।
गुरुदेवात्मकालानां सम्यगैक्यविभावनम् ॥२५॥
संयोगो लिङ्गदेहस्य नाशकः कालयागकृत्।

भक्त का देवता के प्रति आर्जव सर्पण अर्थात् उदारतापूर्वक गमन आरोग्यकारक होता है। पूजा की सामग्री द्वारा सेवा से भक्त का देवता से मिलन होता है। देवता से प्रीति करने से भक्त को देवता का रूप प्राप्त होता है। पीठपूर्वक एवं अङ्गपूर्वक सोलह उपचारों से मूर्ति अथवा यन्त्र की पूजारूप इज्या इष्टकारिका होती है। उसके शास्त्र का सम्यक् अध्ययन करने से मन्त्रों के अर्थ का सम्यक् ज्ञान होता है। मन्त्र के जप से देवता का सायुज्य प्राप्त होता है। गुरु, देवता, आत्मा और काल में सम्यक् ऐक्य की भावना करने से लिङ्गशरीर से संयोग होता है, जिससे काल का प्रभाव नहीं पड़ता।।२२-२५।।

निशायां पश्चिमे यामे स्मरेदिष्टां च देवताम् ॥२६॥
उत्थाय दक्षिणाङ्गेन वामपादं न्यसेद्भुवि।
ततो गृहाद्बहिर्गत्वा कृत्वावश्यकमादरात् ॥२७॥
रात्रिवासः परित्यज्य वाससी परिधाय च।
आचम्य शुद्धदेहः स्याद्देवतायोगमन्दिरे ॥२८॥
निर्माल्यमपकृष्याथ दद्यात्पुष्पाञ्जलिन्तथा।
अर्घ्यपात्रे निवेद्याथ दद्याद्वै दन्तधावनम् ॥२९॥
मुखप्रक्षालनं कृत्वा दद्यादाचमनीयकम्।
करस्य प्रोञ्छनायाथ दद्याद्वासोऽमलं शुभम् ॥३०॥

रात्रि के उत्तरार्द्ध में अर्थात् तीसरे, चौथे प्रहर में इष्टदेवता का स्मरण करके दाँयें अङ्ग से उठकर भूमि पर बायाँ पाँव रखते हुये अपने घर से बाहर जाकर आवश्यक कर्म करने के पश्चात् रात्रि में धारण किये गये वस्त्रों का त्याग करके दूसरे स्वच्छ वस्त्र धारण करके आचमन द्वारा अपने शरीर को शुद्ध करके देवता के साक्षात्कार के लिये मन्दिर में जाकर निर्माल्य हटाकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। तदनन्तर अर्घ्यपात्र निवेदित करके दाँत साफ कराकर मुख धुलाकर आचमन प्रदान करे। तत्पश्चात् हाथ पोंछने के लिये सुन्दर निर्मल वस्त्र समर्पित करे।।२६-३०।।

ततस्तु मस्तके चिन्त्यं सहस्रदलपद्मकम्।
कर्पूराभं स्मरेत्तत्र श्रीगुरुं निजरूपिणम् ॥३१॥
सुप्रसन्नं लसद् भूषामण्डितं श्वेतचन्दनम्।
वराभयज्ञानमुद्रापुस्तकैर्व्यावृतैः करैः ॥३२॥
युक्तं श्वेताम्बरं शान्तं श्वेतपुष्पविभूषितम्।
वामाङ्कगतया शक्त्यालिङ्गितं रक्तवर्णया ॥३३॥
रक्तवस्त्राभरणया रक्तचन्दनमालया।
वामलीलाकमलयालिङ्गन्त्या दक्षिणेन च ॥३४॥
ध्यायेदन्तर्मुखं शाक्तं योगिनं शिवरूपिणम्।

तदनन्तर मस्तक पर सहस्रदल कमल का चिन्तन करते हुये वहाँ पर कर्पूर के समान आभा वाले अपने गुरु चिन्तन करे एवं यह भावना करे कि गुरु जी प्रसन्न हैं, वस्त्राभूषण से सुशोभित हैं, श्वेत चन्दन धारण किये हुये हैं, उनके चार हाथों में वर, अभय, ज्ञानमुद्रा और पुस्तक विद्यमान हैं, वस्त्र श्वेत से समन्वित वे शान्त हैं, उजले फूलों से विभूषित हैं, उनके वामाङ्क में शक्ति विराजमान है। उस शक्ति का वर्ण लाल है, उसके वस्त्राभरण भी लाल हैं, वह रक्त चन्दन की माला धारण की हुई है। उसके वाम हाथ में लीलाकमल है एवं दक्षिण हाथ से वह देव को आलिङ्गित की हुई है। इस प्रकार शक्ति से समन्वित शिवस्वरूप योगी का ध्यान करे।।३१-३४।।

तत्पादपद्मयुगलच्युतपीयूषधारया ॥३५॥
अभिषिक्तं स्वस्य देहमेवं शिष्यो विचिन्तयेत्।
अर्च्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैर्बाह्यस्थैर्मानसैस्तु वा ॥३६॥
नामभिस्तस्य विविधैः संसिद्धैर्गुरुकीर्त्तनैः।
प्रणम्येत्थं हृन्मनुना भावयेत्तल्लयं हृदि ॥३७॥

उन गुरु के दोनों चरणकमलों से प्रवहमान अमृत की धारा से शिष्य अपने देह के अभिषिक्त होने की भावना करे। तदनन्तर उनका बाह्यस्थ गन्ध-पुष्प आदि से अथवा मानसिक पूजन करने के पश्चात् गुरु के विविध नामों से कीर्तन करके हृन्मन्त्र से प्रणाम करके अपने हृदय में उनके लीन होने की भावना करे।।३५-३७।।

ततस्तु मूलाधारादि ब्रह्मरन्ध्रान्तमुद्यताम्।
तेजोदण्डं सुषुम्णान्तं सहस्रबिससन्निभम् ॥३८॥
तदात्मकं मूलमन्त्रं ध्यात्वा तत्तेजसावृतम्।
स्वशरीरं विचिन्त्याथ प्राणायामत्रयं चरेत् ॥३९॥
मूलमन्त्रेण मन्त्रस्य ऋष्यादिन्यासमाचरेत्।
अङ्गन्यासं विधायाऽथ हृदि देवं विचिन्तयेत् ॥४०॥

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीशङ्कर त्वच्चरणाज्ञया च।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्त्तयिष्ये ॥४१॥
संसारयात्रामनुवर्त्तमानं त्वदाज्ञया शङ्कर देवदेव।
स्पर्द्धातिरस्कारकलिप्रमादभयानि मां माऽभिभवन्तु नाथ ॥४२॥
इति सम्प्रार्थ्य देवेशमाज्ञामादाय तस्य तु।
प्रार्थयित्वा धरां श्वासयुक्तं पादं निधापयेत् ॥४३॥
समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥४४॥

तदनन्तर मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करने को उद्यत सुषुम्ना में स्थित तेजोदण्डस्वरूप सहस्रदल के समान मूल मन्त्र का ध्यान करते हुये उसके तेज से अपने शरीर को आवृत समझते हुये तीन प्राणायाम करे। तदनन्तर मूल मन्त्र से मन्त्र का ऋष्यादि न्यास करने के पश्चात् अङ्गन्यास करके हृदय में देवता का ध्यान वके इस प्रकार प्रार्थना करे—

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीशंकर त्वच्चरणाज्ञया च।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये।।
संसारयात्रामनुवर्त्तमानं त्वदाज्ञया शंकर देवदेव।
स्पर्द्धातिरस्कारकलिप्रमादभयानि मां माऽभिभवन्तु नाथ।।

अर्थात् हे त्रैलोक्यचैतन्यमय आदिदेव श्रीशंकर! आपके चरणों की आज्ञा से प्रातः उठकर आपकी प्रीति के लिये मैं संसार-यात्रा में प्रवृत्त हो रहा हूँ। हे देवदेव शङ्कर! संसारयात्रा के इस क्रम में स्पर्द्धा, तिरस्कार एवं कलि-जनित प्रमाद आदि भय मुझे अभिभूत न करें।

भगवान् शंकर की इस प्रकार प्रार्थना करके उनकी आज्ञा ग्रहण कर जिस नासाछिद्र से श्वास चलता हो, उसी तरफ के पाँव को पृथ्वी पर रखते हुये निम्न मन्त्र से पृथ्वी की प्रार्थना करे—

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

अर्थात् समुद्ररूप करधनी से समन्वित एवं पर्वतस्वरूप स्तनों वाली हे विष्णुपत्नि! तुम्हें नमस्कार है; मैं आपको पैरों से स्पर्श कर रहा हूँ, इसके लिये आप मुझे क्षमा करें।।३८-४४।।

ततो गृहाद् बहिर्याम्यां नैर्ऋतीं वा दिशं व्रजेत्।
पदे पदे स्मरेदस्त्रं दूरे यायाद् द्विजालयात् ॥४५॥

अतीत्य बाणमात्रन्तु भुवं ग्रामाद्विलोक्य च।
कीटयोषादिरहितं शौचस्थानमिदं पठेत् ॥४६॥
उत्तिष्ठन्त्वृषयो देवा गन्धर्वा यक्षराक्षसाः।
परितस्त्यज्यतां स्थानं विण्मूत्रोत्सर्जनाय मे ॥४७॥
अनेन मनुना लोष्टात्तृणैरुद्वास्य देवताः।
कुर्यान्मलच्युतिं तत्र वाससा कं प्रविश्य च ॥४८॥
तां दिशां च न पश्येत्तु शौचमुद्धृत्य वारिभिः।
एका लिङ्गे गुदे सप्त दश वामकरे तथा ॥४९॥
उभयोः सप्त दातव्यास्तिस्रोऽङ्घ्र्योश्चापि मृत्तिकाः।
मूत्रोत्सर्गे वामहस्ते लिङ्गे पञ्चैव मृत्तिकाः।
तिस्रः करद्वये चैका पादयोरथवा चरेत् ॥५०॥

इसके बाद घर से दक्षिण या नैर्ऋत्य दिशा में जाते हुये रास्ते में पग-पग पर 'फट्' इस अस्त्र-मन्त्र का स्मरण करते हुए द्विज अपने घर से दूर जाये। धनुष से वाण फेंकने पर जितना दूर जाता है, गाँव से बाहर उतनी ही दूरी पर जाकर कीटादि से रहित शौच स्थान को देखकर निम्न मन्त्र का पाठ करे—

उत्तिष्ठन्त्वृषयो देवा गन्धर्वा यक्षराक्षसाः।
परितस्त्यज्यतां स्थानं विण्मूत्रोत्सर्जनाय मे।।

अर्थात् मेरे मल-मूत्र के त्याग के लिये ऋषि, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस सभी इस स्थान को छोड़कर यहाँ से उठकर अन्यत्र चले जायँ।

इस मन्त्र से घास और ढेले से देवताओं का उद्वासन करके वहाँ पर मल-त्याग करने के पश्चात् वस्त्र-सहित जल में प्रविष्ट होकर मलत्याग की दिशा को न देखते हुये जल से शौच को धोकर लिङ्ग में एक बार, गुदा में सात बार, बाँयें हाथ में दश बार, दोनों हाथ में सात बार एवं पैरों में तीन बार मिट्टी लगाये। मूत्रत्याग करने के पश्चात् बाँयें हाथ तथा लिङ्ग में पाँच बार, दोनों हाथों में तीन बार एवं पैरों में एक बार मिट्टी लगानी चाहिये।।४५-५०।।

गन्धलेपक्षयकरं मनोग्लानिहरं परम्।
कुर्याद् द्वादश गण्डूषान् पुरीषोत्सर्जनान्तरे ॥५१॥
प्रक्षाल्याग्रे तु चरणावाचमेत्त्रिस्ततः परम्।
आम्रन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिजम् ॥५२॥
कनीन्यग्रसमस्थूलं प्रमितं द्वादशाङ्गुलैः।
दन्तधावनकाष्ठं तु प्रोक्तं तन्त्रविचक्षणैः ॥५३॥

क्रीमुक्त्वा कामदेवाय सर्वजनप्रियाय च।
नमोऽन्तस्तिथिवर्णोऽयं मन्त्रो दन्तविशोधने ॥५४॥
प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठं च मूर्द्धदेशे पुरस्त्यजेत्।
वक्तुं मूलानुनो नित्यं लक्षयेत्सिद्धिहेतवे ॥५५॥

गन्ध-लेप को विनष्ट करने के लिये एवं मानसिक ग्लानि को दूर करने के लिये मल-त्याग के बाद बारह बार कुल्ला करने के पश्चात् पैरों के अग्रभाग को धोकर तीन बार आचमन करे। इसके बाद आम, वट, खैर, करंज, अर्जुन आदि वृक्ष के कनिष्ठा अङ्गुली के अग्रभाग जितना मोटा बारह अङ्गुल लम्बा दतुवन से दाँतों को साफ करे। इसके लिये पहले दन्त-विशोधन मन्त्र 'क्रीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः' का उच्चारण करे। दाँत साफ करने के बाद दतुवन को धोकर अपने सामने ऊँचे स्थान पर फेंक दे। सिद्धि-प्राप्ति के लिये इस मन्त्र को नित्य कहना चाहिये।।५१-५५।।

स्नानविधिः

अथ पूजाहोमकर्मसिद्धये स्नानमुच्यते।
शङ्कुनास्त्राभिजप्तेन शुचिस्थानात्तु मृत्तिकाम्।
गृहीत्वास्त्रेण संसिच्य यायाज्जलनिकेतनम् ॥५६॥

स्नान-विधि—अब पूजा और होम कर्म की सिद्धि के लिये स्नानविधि कही जा रही है। अस्त्र-मन्त्र 'फट्' का जप करते हुए खन्ती के द्वारा पवित्र स्थान से मिट्टी ग्रहण कर उसे अस्त्र-मन्त्र से भिंगोकर उसे लेकर जलाशय के निकट जाय।।५६।।

तत्रादौ जलकूलं स्यात्क्षालयेदस्त्रवारिणा।
मृष्टं कृत्वा तटं तत्र चैकभागे विचक्षणः ॥५७॥
निधाय गोमयं दर्भांस्तिलाँश्चाप्यभिमन्त्रितान्।
मृत्तिकागोमयाभ्याञ्च कट्यन्तं स्नानमाचरेत् ॥५८॥
बहिरुद्धृत्य तोयेन मलस्नानं ततः परम्।
विधाय वैदिकस्नानं तदङ्गं तर्पणं तथा ॥५९॥

वहाँ पर पहले जल के समीप उस मिट्टी का 'फट्' से प्रक्षालन करे। तट पर मिट्टी को मलकर उसके एक भाग में अभिमन्त्रित गोबर, कुश, तिल और जल डालकर मिलावे। तदनन्तर मिट्टी और गोबर कमर तक लगाकर जलाशय से जल बाहर निकालकर स्नान करे। तदनन्तर मलस्नान करने के पश्चात् वैदिक स्नान करके उसके अंगभूत तर्पण करे।।५७-५९।।

ततस्तान्त्रिकस्नानस्य विधिरस्त्रेण मृत्तिकाम्।
समादायास्त्रमन्त्रेण मन्त्रयित्वा तृणादिकम् ॥६०॥

शिखामन्त्रेणापहृत्य त्रिमूलेनाभिमन्त्रयेत्।
मूर्द्धादिपादपर्यन्तं विलिप्य प्रणमेज्जलम् ॥६१॥
आधाराः सर्वभूतानां विष्णोरतुलतेजसः।
तद्रूपाश्च ततो जातास्ता आपः प्रणमाम्यहम् ॥६२॥

तान्त्रिक स्नान की विधि यह है कि अस्त्रमन्त्र 'फट्' मन्त्र से मिट्टी ग्रहण करे एवं अस्त्रमन्त्र के द्वारा ही तृण आदि को अभिमन्त्रित करके शिखामन्त्र 'वषट्' से उन्हें हटाकर मिट्टी को मूल मन्त्र से तीन बार अभिमन्त्रित करे। उस मिट्टी को सिर से पाँव तक लगाकर जल के निकट आकर निम्न मन्त्र से जल को प्रणाम करे—

आधाराः सर्वभूतानां विष्णोरतुलतेजसः।
तद्रूपाश्च ततो जातास्ता आपः प्रणमाम्यहम्।।

अर्थात् जो सब भूतों का आधार है, जो विष्णु का अतुल तेज है, जो उन्हीं का स्वरूप है, जो उन्हीं से उत्पन्न हुआ है, उस जल को मैं प्रणाम करता हूँ।।६०-६२।।

सम्मुखीकरणीं मुद्रां बद्ध्वा प्राणान्नियम्य च।
निमज्य तूष्णीमुत्थाय नाभिमात्रे जले नरः ॥६३॥
तान्त्रिकस्नानसङ्कल्पं मासोल्लेखादिपूर्वकम्।
कृत्वा यं मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं चरेत् ॥६४॥
विन्यस्य च षडङ्गानि कल्पयेत्तीर्थमग्रतः।
चतुरस्रे हस्तमात्रे तज्जले परिकल्पिते ॥६५॥
ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।
तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर ॥६६॥
इति सूर्यं प्रार्थयित्वा क्रोमित्यङ्कुशमुद्रया।
भित्वार्कमण्डलं तस्मात्तीर्थान्यावाहयेदिह ॥६७॥

तदनन्तर सम्मुखीकरणी मुद्रा बाँधकर प्राण को संयमित करके स्नान करने के पश्चात् नाभि तक जल में मौन खड़े होकर मासादि के उल्लेख-पूर्वक तान्त्रिक स्नान का संकल्प करे। इसके बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करने के बाद षडङ्ग न्यास करके अपने आगे तीर्थ की कल्पना करे। उस जल में एक हाथ के चतुरस्र की कल्पना करके निम्न मन्त्र से भगवान् सूर्य की प्रार्थना करे—

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।
तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर।।

अर्थात् हे देवेश! यह सत्य है कि ब्रह्माण्ड के उदर में अवस्थित समस्त तीर्थ आपकी किरणों से स्पृष्ट हैं; अतः हे दिवाकर! आप मुझे तीर्थ प्रदान करें। इस प्रकार

सूर्य की प्रार्थना करके 'क्रों' उच्चारणपूर्वक अङ्कुश मुद्रा से सूर्य-मण्डल का भेदन करके उसमें से तीर्थों का कल्पित चतुरस्र में आवाहन करे।।६३-६८।।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥६८॥
एवमुक्त्वा तु तीर्थानि तस्मिंस्तोये नियोजयेत्।
मूलमन्त्रेणाथ तीर्थशक्तिं तत्र समाह्वयेत्।
अर्कस्य मण्डलं ध्यात्वा तन्मन्त्रेण च पूजयेत् ॥६९॥
सर्वानन्दमयीमशेषदुरितध्वंसां मृगाङ्कप्रभां
त्र्यक्षामूर्ध्वकरद्वयेन दधतीं पाशं शृणिं वामतः।
अन्तश्चामृतपूर्णहस्तकलशा मुक्ताक्षमालावतीं
गङ्गासिन्धुसरिद्वरादिसहितां श्रीतीर्थशक्तिं भजे ॥७०॥

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु।।

अर्थात् हे गंगे!, यमुने!, गोदावरि!, सरस्वति!, नर्मदे!, सिन्धु!, कावेरि! आप सभी इस चतुरस्र के जल में सम्मिलित हों—ऐसा कहकर उस जल में सभी तीर्थों को नियोजित करे। तदनन्तर मूल मन्त्र से उसमें तीर्थशक्तियों का आवाहन करे एवं सूर्यमण्डल का ध्यान करके उसके मन्त्र से उनका पूजन करे। तीर्थशक्ति का ध्यान इस प्रकार करे—

सर्वानन्दमयीमशेषदुरितध्वंसां मृगाङ्कप्रभां
त्र्यक्षामूर्ध्वकरद्वयेन दधतीं पाशं शृणिं वामतः।
अन्तश्चामृतपूर्णहस्तकलशा मुक्ताक्षमालावतीं
गंगासिन्धुसरिद्वरादिसहितां श्रीतीर्थशक्तिं भजे।।

अर्थात् सर्वानन्दमयी, सभी पापों की विनाशिका, चन्द्रमा के समान प्रभावती, तीन नेत्र वाली, ऊपर उठे हुए दो हाथों में से बाँयें हाथ में अङ्कुश एवं दाँयें हाथ में पाश तथा नीचे के दोनों हाथों में से बाँयें में अमृतपूर्ण कलश एवं दाँयें में अक्षमाला धारण की हुई, गंगा-सिन्धु आदि श्रेष्ठ नदियों के सहित तीर्थशक्ति का मैं ध्यान करता हूँ।।६८-७०।।

अथ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः सर्वानन्दमये पदम्।
तीर्थशक्तिं तथा हिलियुगलं वह्निगेहिनी ॥७१॥
द्वाविंशत्यक्षरः प्रोक्तस्तीर्थशक्तेर्महामनुः।
तज्जलं गाङ्गमन्त्रेण मन्त्रयेदष्टवारकम् ॥७२॥

तारो नमो भगवति ब्रूयादम्ब ततोऽम्बिके।
अम्बालिके महामालिन्येह्येहि भगवत्यथ ॥७३॥
अशेषतीर्थालवाले मायाश्रीबीजमुच्चरेत्।
शिवजटाधिरूढे च गङ्गे गङ्गाम्बिके द्विठः ॥७४॥
गङ्गामन्त्रोऽयमाख्यातस्त्रिपञ्चाशद्भिरक्षरैः ।
भुवनेश्याः समालोड्यामृतीकृत्य सुधाणुना ॥७५॥
कवचेनावगुण्ठ्याथ संरक्ष्यास्त्रेण मन्त्रवित्।
मूलेन देवतां तत्र साङ्गां सावरणान्तथा ॥७६॥
समावाह्य जले ध्यात्वा तत्पादद्वयनिर्गतम्।
ध्यात्वा तीर्थं स्मरेन्मूलमन्त्रं स्नायाज्जले त्रिशः ॥७७॥

तीर्थशक्ति का बाईस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः सर्वानन्दमये तीर्थशक्ते हिलि हिलि स्वाहा। तीर्थशक्ति के जल को गंगामन्त्र के आठ जप से अभिमन्त्रित करना चाहिये। तिरेपन अक्षरों का गंगामन्त्र इस प्रकार है—ॐ नमो भगवति अम्बे अम्बिके अम्बालिके महामालिनि एह्येहि भगवति अशेषतीर्थालवाले ह्रीं श्रीं शिव-जटाधिरूढे गङ्गे गङ्गाम्बिके स्वाहा। तदनन्तर भुवनेशी मन्त्र से उस जल का समालोडन करे एवं 'बं' सुधाबीज से अमृतीकरण करे। कवचमन्त्र से अवगुंठन एवं अस्त्रमन्त्र से संरक्षण करे। अंग एवं आवरण-सहित देवता का मूल मन्त्र से आवाहन करके जल में उनका ध्यान करके उनके दोनों पाँवों से निकलते तीर्थ का स्मरण करते हुये तीन बार मूल मन्त्र का उच्चारण करके उस जल में स्नान करे।।७१-७७।।

हृदि देवं स्मरेत्पश्चात्सञ्चेत्कं कुम्भमुद्रया।
त्रिभिर्लोकैर्मूलमन्त्रैस्तारकं बीजपूर्वकैः ॥७८॥
सिसृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजायते।
मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम् ॥७९॥
अलक्ष्मीर्मलरूपा या सर्वभूतेषु संस्थिता।
क्षालयन्तु निजस्पर्शादापो देव्यः पुनन्तु माम् ॥८०॥
यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु वो नमः ॥८१॥

हृदय में देवता का स्मरण करके कुम्भमुद्रा द्वारा 'ॐ भूर्भुवः स्वः' बोलते हुए अपने मस्तक को जल से सिञ्चित करे। इसके बाद निम्न रूप से प्रार्थना करे—

सिसृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजायते।
मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम्।।

अलक्ष्मीर्मलरूपा या सर्वभूतेषु संस्थिता।
क्षालयन्तु नेत्रस्पर्शादापो देव्यः पुनन्तु माम्।।
यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु वो नमः।।

अर्थात् सारे संसार में सृष्टि की इच्छा से बार-बार शुक्र उत्पन्न होकर सभी माताओं में जाकर सभी भूतों में उत्पन्न होता है। जल देवियाँ मुझे पवित्र करें। अलक्ष्मी मल रूप में सभी भूतों में संस्थित हैं जल देवियाँ अपने नेत्रस्पर्श से सबों को प्रक्षालित करती हैं। वे सब मुझे भी पवित्र बना दें। मेरे केशों में जो दुर्भाग्य है। मेरे भाग्य में जो दुर्भाग्य है, ललाट, कानों और आँखों में जो दुर्भाग्य है, वह इस स्नान जल से विनष्ट हो जाय।।७९-८१।।

नमः स्वाहान्तमूलेन त्रिराचमनमाचरेत्।
त्रिधा देवं च सन्तर्प्य तोयमध्यात्तटं व्रजेत्।।८२।।
धौतवस्त्रयुगं धृत्वा प्रक्षाल्य च करौ तथा।
मृदाद्भिस्तत आचम्य देवस्नानविधिः स्मृतः।।८३।।
मन्त्रस्नानं प्रकर्तव्यं शीतयोर्देशकालयोः।
तोयाभावे गते दुर्गे कायास्वास्थ्ये च वार्द्धके।।८४।।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य प्रोद्धृतेन तु वारिणा।
स्थानं दश दिशः प्राग्वत्संशोध्योपाविशेत्ततः।।८५।।
जलं हस्ततले न्यस्य कुम्भन्यासांस्ततश्चरेत्।
मातृकादींस्तथा मूलमन्त्रन्यासानशेषतः।।८६।।

मूल मन्त्र में नमः एवं स्वाहा लगाकर तीन आचमन करे। तीन बार देवों का तर्पण करे। तब जल से बाहर तट पर आवे। धोती एवं गमछा धारण करके हाथों को मिट्टी एवं जल से स्वच्छ करके आचमन करके देवस्नान विधि का स्मरण करे। देश और काल के अनुसार ठण्डी में मन्त्र-स्नान करना चाहिये। जहाँ जल का अभाव हो, दुर्गम स्थान हो, शरीर अस्वस्थ हो, वृद्धावस्था हो तब लाये गये जल से पाँव धोकर आचमन करने के पश्चात् स्थान और दिशा की शुद्धि करके आसन पर विराजमान होकर हाथ में जल लेकर कुम्भन्यास, मातृकान्यास एवं मन्त्रन्यास करना चाहिये।।८२-८६।।

न्यासान्ते संस्पृशेत्तोयं मन्त्रस्नानमिदं वरम्।
केवलादुदकस्नानात् संस्कारपरिवर्जितात्।।८७।।
सुस्थितं पुण्डरीकाक्षं मन्त्रमूर्तिम्प्रभुं स्मरेत्।
तत्पादोदकजां धारां निपतन्तीं स्वमूर्द्धनि।।८८।।

चिन्तयेत्सूक्ष्मरन्ध्रेण प्रविशन्तीं स्वकान्तनुम्।
तस्मात् संक्षालयेत् सर्वमेतद्देहगतं मलम् ॥८९॥
तत्क्षणाद्विरजा मन्त्री जायते स्फटिकोपमः।
इदं स्नानवरं मन्त्रस्नानादष्टगुणं मतम् ॥९०॥
सदा शुद्धमना यस्तु स शुद्धः सर्वकर्मसु।

न्यास सम्पन्न के बाद जल का स्पर्श करे। यह श्रेष्ठ मन्त्रस्नान होता है। केवल जल-स्नान से संस्कृत होकर बैठकर मन्त्रमूर्ति प्रभु कमलनयन का स्मरण करे। पुण्डरीकाक्ष मन्त्र निम्नलिखित है—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्ष स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

साथ ही ऐसी भावना करे कि उनके पाँवों से जल की धारा निकलकर मेरे मस्तक पर गिरती हुई सूक्ष्म छिद्रों के द्वारा मेरे शरीर में प्रवेश कर रही है और उससे मेरे देह के सभी मल प्रक्षालित हो रहे हैं। इस प्रकार का चिन्तन करने से तत्क्षण ही मलरहित वह मन्त्रज्ञ साधक स्फटिक के समान निर्मल हो जाता है। यह श्रेष्ठ स्नान मन्त्रस्नान से आठ गुना अधिक श्रेष्ठ होता है। जिसका मन सदैव शुद्ध रहता है, वह सभी कर्मों के लिये शुद्ध होता है।।८७-९०।।

अथ मानसिकस्नानं मनसा मूलमन्त्रतः ॥९१॥
प्राणानायम्य कुर्वीत दृष्टतीर्थेषु भावतः।
यद्वा शिवात्मकैर्मन्त्रैः कृत्वा तीर्थं शिवात्मकम् ॥९२॥
मार्जनं संहितामन्त्रैः शिवस्नानमितीरितम्।
स्नानपूर्वाः क्रियाः शुद्धाः सर्वाः सिद्धिं प्रयान्ति च ॥९३॥
तस्मात् स्नानं पुरा कुर्यादिष्वेकं देहशक्तितः।

अब मानसिक स्नान का वर्णन करता हूँ। मन में ही देखे हुए तीर्थों को स्मरण करते हुए मूल मन्त्र के द्वारा प्राणायाम करे। अथवा काशी आदि शिवात्मक तीर्थों का स्मरण करते हुये शिवात्मक मन्त्र के द्वारा प्राणायाम करे एवं संहितामन्त्र से मार्जन करे तो यह शिवस्नान होता है। स्नानपूर्वक की गई शुद्ध क्रियाओं द्वारा सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं; अतः अपने शरीर की शक्ति के अनुसार सर्वप्रथम उपर्युक्त में से कोई एक स्नान करना चाहिये।।९१-९३।।

तिलकधारणम्

ततस्तु तिलकं कुर्याज्जातेर्वा दैवतस्य च ॥९४॥

यद्यच्छुभफलं तीर्थमृद्भिर्वा भक्तिभावतः ।
ब्राह्मणस्योर्ध्वपुण्ड्रं स्यात्क्षत्रियस्य त्रिपुण्ड्रकम् ॥९५॥
अर्धचन्द्रन्तु वैश्यस्य शूद्राणां वर्त्तुलाकृति ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्यात्त्रिपुण्ड्रं चैव भस्मना ॥९६॥
केशरेण च कस्तूर्य्या शेषं शीतं यथारुचि ।

तिलक-धारण—इसके बाद भक्तिभावपूर्वक जाति अथवा देवता के अनुसार तीर्थ की मिट्टी से तिलक धारण करना चाहिये। ब्राह्मण को ऊर्ध्वपुण्ड्राकार एवं क्षत्रिय को त्रिपुण्ड्राकार तिलक लगाना चाहिये। वैश्य को अर्द्ध चन्द्र के समान एवं शूद्र को वर्तुलाकार अर्थात् गोल तिलक लगाना चाहिये। ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक मिट्टी से एवं त्रिपुण्ड्र तिलक भस्म से लगाना चाहिये। शेष अर्द्धचन्द्राकार एवं वर्तुल तिलक केशर-कस्तूरी आदि शीतल पदार्थों से अपनी रुचि के अनुसार लगाना चाहिये।।९४-९६।।

वैष्णवस्योर्ध्वपुण्ड्रं स्यात्त्रिपुण्ड्रं शिवसेवने ॥९७॥
अर्धचन्द्रं गणेशस्य देवीभक्तस्य वर्त्तुलम् ।
नारायणपरो यस्तु चन्द्रं तस्य त्रिशूलकम् ॥९८॥

वैष्णवोपासकों को ऊर्ध्वपुण्ड्र, शिवोपासकों को त्रिपुण्ड्र, गणेशोपासकों को अर्द्धचन्द्राकार एवं देवीभक्तों को वर्तुलाकार अर्थात् गोल तिलक लगाना चाहिये। नारायण के उपासक वैश्य के तिलक का चन्द्र त्रिशूलाकार होता है।।९७-९८।।

भाले विभूतिमान्योऽसौ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।
भूतिदा तु विभूतिः स्याद्विधिना विधृता यदि ॥९९॥
यथाकथञ्चिद्विधृता भस्मसात्कुरुते जनम् ।

ललाट में जो यह ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक विभूति धारण की जाती है, वह विभूति यदि विधिपूर्वक धारण की गई हो तो भूति अर्थात् ऐश्वर्य प्रदान करने वाली होती है। यदि वह जिस-किसी भी प्रकार से धारण की गई हो तो लगाने वाले को भस्मसात् कर देती है।।९९।।

शिवाग्नेर्भस्म सङ्ग्राह्यमग्नीषोमोद्भवन्तु वा ॥१००॥
वैवाह्याग्न्युद्भवं वापि पक्वं शुचि सुगन्धि च ।
कपिलायाः शकृद्वस्त्रगृहीतं गगने पतत् ॥१०१॥
न क्लिन्नं नापि क्वथितं न दुर्गन्धि न वोषितम् ।
उपर्य्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं हृदा ।
पिण्डीकृत्य शिवाग्नौ तु तत्क्षिपेन्मूलमन्त्रतः ॥१०२॥

अपक्वमपि पक्वं च सन्त्यज्य भसितं सितम्।
आदाय वाससाऽऽलोड्य भस्माधारे विनिःक्षिपेत् ॥१०३॥
भस्मसङ्ग्रहणं कुर्यादेवेऽनुद्वासने सति।
उद्वासने कृते यस्माच्चण्डभस्म प्रजायते ॥१०४॥

शिवाग्नि, अग्निषोम अथवा विवाहाग्नि से पक्व, पवित्र एवं सुगन्धित भस्म का संग्रह करना चाहिये। कपिला गाय के गिरते हुये गोबर को; जो कि न गीला हो, न क्वथित हो, न दुर्गन्धयुक्त हो और न ही बासी हो; जमीन पर गिरने से पूर्व आकाश में ही ग्रहण कर उसके ऊपर एवं नीचे के भाग का त्याग कर शेष भाग को नमोमन्त्र से ग्रहण करना चाहिये। फिर उसका पिण्ड बनाकर शिवाग्नि में मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये डाल देना चाहिये। उसमें से अपक्व और पक्व—दोनों को छोड़कर उजले भस्म को लेकर वस्त्र से छानकर पात्र में रख लेना चाहिये। देवता के उद्वासन के पूर्व ही भस्म-संग्रह कर लेना चाहिये; उद्वासन के पश्चात् जो भस्म संग्रह किया जाता है, वह चण्डभस्म हो जाता है।।१००-१०४।।

यद्वा द्विजातिभस्मेत्थं सद्येनानीय गोमयम्।
वामेन पात्रे संयोज्याघोरमन्त्रेण निर्दहेत् ॥१०५॥
पुरुषेण समुद्धृत्य ईशानेन विशोधयेत्।

अथवा यदि द्विजों को भस्म बनाना हो तो 'ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः भवे भवेनातिभवे भवस्य मां भवोद्भवाय नमः' मन्त्र से तत्काल गोबर लाकर 'ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कल-विकरणाय नमः बलविकरणाय नमः बलाय नमः बलप्रथमनाय नमो नमस्सर्व-भूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः' मन्त्र से पात्र में रखकर 'ॐ अघोरेभ्योऽथ घोर-घोरतरेभ्यः सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः' मन्त्र उसका दहन करे। जलने के बाद 'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्' मन्त्र से उसे उठाकर 'ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्। ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्' मन्त्र से शोधन करना चाहिये।।१०५।।

इत्थन्तु संस्कृतं भस्म अग्निरित्यादिमन्त्रतः ॥१०६॥
यातेरुद्रेति यजुषा मन्त्रयेद्रुद्रसञ्ज्ञया।
प्रणवाद्यैश्चतुर्थीहृदन्तैर्नामभिरंशकैः ॥१०७॥
पञ्चवर्णाद्यक्षराद्यैर्मालांशैर्हरहद्युतैः।
त्रिपुण्ड्रधारणं कुर्यान्मूर्ध्नि पञ्चाक्षरेण तु ॥१०८॥

इस भस्म को 'ॐ अग्निरिति भस्म, ॐ जलमिति भस्म, ॐ स्थलमिति भस्म, ॐ वायुरिति भस्म, ॐ व्योमेति भस्म, ॐ सर्वं ह वा इदं भस्म' मन्त्र से संस्कृत करना चाहिये। तत्पश्चात् इस भस्म को 'ॐ या ते रुद्रशिवा तनूरघोरां पाप-काशिनीं। तया नस्तन्वा शन्तमयां गिरिशन्ताभिचाकशीहि' इस यजुर्मन्त्र से रुद्र संज्ञा प्रदान करना चाहिये। फिर 'ॐ भवाय नमः, ॐ शर्वाय नम, ॐ पशुपतये नमः, ॐ उग्राय नमः, ॐ महादेवाय नमः, ॐ भीमाय नमः, ॐ ईशानाय नमः, ॐ नमः शिवाय' इत्यादि मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर पञ्चाक्षर मन्त्र का उच्चारण करते हुये उस भस्म से ललाट में माला के अंश के समान त्रिरेखात्मक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये।।१०६-१०८।।

एभिश्च नामभिर्धार्यं पुनर्भस्म द्विजातिभिः।
ब्रह्मा ललाटे विज्ञेयो हृदये हव्यवाहनः ॥१०९॥
नाभौ स्कन्दो गले पूषा रुद्रा दक्षिणबाहुके।
आदित्यो बाहुमध्ये च शशी च मणिबन्धने ॥११०॥
वामदेवो वामबाहौ बाहुमध्ये प्रभञ्जनः।
मणिबन्धे च वसवः पृष्ठदेशे हरिः स्मृतः ॥१११॥
शम्भुः ककुदि सम्प्रोक्तः परमात्मा शिवः स्मृतः।
कस्तूर्यादिकसंयुक्तं भस्म स्यात्तत्तु धारयेत् ॥११२॥
अद्विजैर्मूलमन्त्रेण शिवपञ्चाक्षरेण वा।
त्रिपुण्ड्रं कारयेद्भाले ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥११३॥
मध्याङ्गुलिभिरादाय तिसृभिर्मूलमन्त्रितम्।
अनामामध्यमाङ्गुष्ठैरथवा स्यात्त्रिपुण्ड्रकम् ॥११४॥

द्विजातियों को ललाट में ब्रह्मा के नाम से, हृदय में हव्यवाहन के नाम से, नाभि में स्कन्द के नाम से, गले में पूषा के नाम से, दक्षिण बाहु में रुद्र के नाम से, दक्षिण बाहु के मध्य में सूर्य के नाम से, दक्षिण मणिबन्ध में चन्द्र के नाम से, वाम बाहु में वामदेव के नाम से, वाम बाहुमध्य में प्रभंजन के नाम से, वाम मणिबन्ध में अष्टवसुओं के नाम से, पीठ में विष्णु के नाम से, कन्धों में शम्भु के नाम से एवं सर्वाङ्ग में परमात्मा शिव के नाम से कस्तूरी आदि से संयुक्त भस्म धारण करना चाहिये।

द्विजों के अतिरिक्त लोगों को मूल मन्त्र अथवा पञ्चाक्षर 'नमः शिवाय' मन्त्र से ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मम त्रिपुण्ड्र ललाट में लगाना चाहिए।

भस्म को मध्य के तीन अङ्गुलियों से ग्रहण कर तीन बार मूल मन्त्रोच्चारण-पूर्वक त्रिपुण्ड्र तिलक लगाना चाहिये अथवा अनामिका-मध्यमा-अंगुष्ठ के योग से लगाना चाहिये।।१०९-११४।।

तान्त्रिकी सन्ध्या

वक्ष्येऽथ तान्त्रिकीं सन्ध्यां मूलेनाचमनत्रयम्।
शिखां बद्ध्वा तु मूलेन प्राणायामत्रयं चरेत्॥११५॥
अङ्गानि विन्यसेद्देहे करन्यासपुरस्सरम्।
अमृतीकृत्य पुरतो जलं वै धेनुमुद्रया।
अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तवारं ततः परम्॥११६॥
अकारादिक्षकारान्तैर्मातृकार्णैः सबिन्दुभिः।
प्रत्यर्णं प्रोक्षयेन्मूर्ध्नि कुशैर्मूलेन च त्रिधा॥११७॥

तान्त्रिकी सन्ध्या—अब तान्त्रिकी सन्ध्या का वर्णन करता हूँ। मूल मन्त्र से तीन आचमन करने के पश्चात् मूल मन्त्र से ही शिखाबन्धन करके मूल मन्त्र से ही तीन प्राणायाम करे। इसके बाद करन्यास और अङ्गन्यास करे। अपने सामने रखे जल का धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके सात बार मूल मन्त्र बोलकर उस जल को अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर उस जल से 'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं'—इन पचास मातृकाओं में से प्रत्येक से तीन बार कुशमूल द्वारा मूर्द्धा का प्रोक्षण करे।।११५-११७।।

देवं ध्यात्वा च मनुना ज्ञानमण्डलसंस्थितम्।
आदाय तोयमामन्त्रैर्बीजैर्भूतात्मकैस्तथा॥११८॥
लं वं रं हं इति च तन्मन्त्रैः सप्तधा जलम्।
मन्त्रयित्वा पुनः सप्तवारं मूलेन मन्त्रयेत्॥११९॥
तज्जलं वामहस्तेन धार्यं तत्प्लुतबिन्दुभिः।
दक्षहस्तेन सम्प्रोक्ष्य कं पठेन्मूलमन्त्रकम्॥१२०॥

तदनन्तर मूल मन्त्र से ज्ञानमण्डल में संस्थित देवता का ध्यान करक जल लेकर भूतात्मक बीजमन्त्रों—लं वं रं हं से सात बार अभिमन्त्रित करने के बाद पुनः मूल मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करके उस जल को बाँयें हाथ में लेकर गिरते हुए जलबिन्दुओं को दाहिने हाथ से पोंछकर मूल मन्त्र-सहित बीजमन्त्र 'कं' का उच्चारण करे।

हस्तव्यत्यासतो वामाचारी सेचनमाचरेत्।
नासामाश्रित्य शिष्टेन तेजोरूपेण तेन तु॥१२१॥
प्रविश्यान्तर्गतो देवो मलं संशोध्य निर्गतः।
दक्षनासापुटेनैतत्स्मृत्वा दक्षिणहस्तकम्॥१२२॥
वामभागे वज्रशिलां ध्यात्वाऽस्त्रेण च तत्क्षिपेत्।
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥१२३॥

गायत्र्या वाथ मूलेन दद्यादर्घ्यत्रयन्ततः ।
रविमण्डलसंस्थाय स्वेष्टदेवाय तर्पयेत् ॥१२४॥
जलेन मूलमन्त्रेण ह्यमुकं तर्पयामि च ।
उक्त्वा त्रिधा तर्पणीयं वामकैः कारणेन तु ॥१२५॥
इष्टदेवस्य गायत्रीमष्टाविंशतिसङ्ख्यकाम् ।
जपेदभावे ब्राह्मीं तु वैदिकं मतमाश्रितः ॥१२६॥

वामाचारी साधक हस्तव्यत्यास अर्थात् दाँयें हाथ में जल लेकर गिरते जलबिन्दुओं को बाँयें हाथ से पोंछते हुये सेंचन करे। शेष जल को वाम नासाछिद्र में लेकर उसे तेजरूप में अन्दर ले जाकर उस देव द्वारा मल का शोधन कराकर दक्षिण नासाछिद्र से बाहर दक्षिण हथेली पर निकाल कर अपने वाम भाग में वज्रशिला की भावना करके उस पर उसे पटक दे। तब हाथ धोकर आचमन करके मन्त्रज्ञ मूल मन्त्र या गायत्री से तीन अर्घ्य प्रदान करे। रविमण्डल में इष्टदेव को स्थापित करके तर्पण करे। दक्षिण मार्ग में मूल मन्त्र के बाद अमुकं तर्पयामि कहकर तीन बार तर्पण करना चाहिये। जैसे—ॐ नमः शिवाय शिवं तर्पयामि। वाम मार्ग में जल के स्थान फर मद्य से तर्पण किया जाता है। तदनन्तर इष्टदेवता को गायत्री मन्त्र का अट्ठाईस बार जप करना चाहिये। यदि गायत्री न हो तो वैदिक मत का आश्रयण कर ब्रह्मगायत्री का जप करना चाहिये।।१२१-१२६।।

शिवगायत्री

तान्त्रिकः शिवगायत्रीं जपेत्साऽथ निरूप्यते ।
ॐ तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि ।
तन्नः शिवः प्रचोदयात् ॥१२७॥
ततः शुद्धमना मौनी मूलमष्टोत्तरं शतम् ।
जपित्वा चार्पयेदेवं स्तुत्वा नत्वेष्टदेवताम् ॥१२८॥
सूर्यमण्डलतो देवं विन्यसेद्धृदये स्वके ।
ततो गुरूँश्च प्रणमेदिति सन्ध्या तु तान्त्रिकी ॥१२९॥

शिवगायत्री—जप के लिये तान्त्रिक को शिवगायत्री का जप करना चाहिये, जो इस प्रकार है—ॐ तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि तन्नः शिवः प्रचोदयात्। इस गायत्री के जप के बाद शुद्ध मन से मौन रहकर मूल मन्त्र का एक सौ आठ जप करना चाहिये। तदनन्तर उस जप को देवता को समर्पित करके इष्टदेवता की स्तुति करने के बाद प्रणाम करके सूर्यमण्डल से देवता को लाकर अपने हृदय में स्थापित करने के पश्चात् गुरु को प्रणाम वना चाहिये। इसे ही तान्त्रिक सन्ध्या कहा जाता हैं।।१२७-१२९।।

त्रिकालमेवं कर्त्तव्या सन्ध्यालोपात्फलं न हि।
दैवतो यदि लोपश्च तदा मूलं शतं जपेत् ॥१३०॥
प्रायश्चित्ताय तं कृत्वा कुर्वीत समयागताम्।
वैदिकं तर्पणं कृत्वा ततस्तान्त्रिकमाचरेत् ॥१३१॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलेन न्यासमाचरेत्।
ऋष्यादित्रितयस्याथ पुरतो धेनुमुद्रया ॥१३२॥
वं जपन्नमृतीकृत्य जलं तत्र सचक्रकम्।
साङ्गावरणकं देवं ध्यात्वा मूलं समुच्चरेत् ॥१३३॥
अमुकं तर्पयामीति चोक्त्वा चाष्टोत्तरं शतम्।
तदर्थमथवा विंशत्यष्टयुक्तमुखाब्जके ॥१३४॥
देवस्यामृतबुद्ध्या तत्तीर्थतोयैः प्रतर्पयेत्।

यह सन्ध्या प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों कालों में करनी चाहिये। सन्ध्या का लोप होने पर कोई फल प्राप्त नहीं होता। यदि किसी कारण से सन्ध्या का लोप हो जाय तब प्रायश्चित्त के लिये मूल मन्त्र का सौ बार जप करके वैदिक तर्पण करने के उपरान्त तान्त्रिक तर्पण करना चाहिये। इसके लिये तीन प्राणायाम करके मूल मन्त्र से ऋष्यादि न्यास, करन्यास और अङ्गन्यास करना चाहिये। तदनन्तर अपने आगे धेनु-मुद्रा से 'वं' बीजमन्त्र के जप से उस जल का अमृतीकरण करके उसमें अंग एवं आवरण देवताओं के सहित चक्र में स्थापित देवता का ध्यान करके मूल मन्त्र का उच्चारण करने के बाद 'अमुकं तर्पयामि' कहकर एक सौ आठ बार, चौवन बार अथवा अट्ठाईस बार देवता के मुखकमल में अमृतबुद्धि से उस तीर्थजल से तर्पण करना चाहिये।।१३०-१३४।।

तदावरणदेवाँश्च तद्वदेकैकवारकम् ॥१३५॥
सन्तर्प्य देवं स्वहृदि तीर्थे सूर्यं विसर्जयेत्।
गुरुं दिगीशाँश्च खगान्नत्वा भाण्डं करे दधत् ॥१३६॥
एकान्तं निर्जनं यायान्मनोज्ञं दोषवर्जितम्।
दिगन्तरं न वीक्षेत यावत्प्राप्नोति वै गृहम् ॥१३७॥
प्रदक्षिणं यज्ञवाटं कृत्वा पादौ च हस्तकौ।
प्रक्षाल्याचम्य पूजाया गृहद्वारान्तरे स्थितः ॥१३८॥
गेहे च द्वारदेशस्थः प्रणम्य मनसा गुरुम्।
प्रणमेदिष्टदेवं स्वं दिक्पालानपि चेतसा ॥१३९॥

तदनन्तर उस देवता के आवरण देवताओं का भी उसी प्रकार एक-एक बार तर्पण

करके देवता का अपने हृदय में एवं सूर्य का तीर्थ में विसर्जन करना चाहिये। गुरु और आकाशगत दिक्पालों को प्रणाम करके हाथ में पात्र को लेकर एकान्त, जनशून्य, मनोज्ञ एवं दोषरहित मार्ग से गमन करते हुये जबतक पूजागृह न प्राप्त हो जाय तबतक किसी अन्य दिशा की ओर नहीं देखना चाहिये। यज्ञ के लिये निश्चित की गई भूमि की प्रदक्षिणा करके हांथ-पैर धोकर आचमन करके पूजागृह के द्वार के मध्य में जाकर मन ही मन स्थित हो रास्ते में वट गुरु को प्रणाम करके अपने इष्टदेव एवं दिक्पालों को भी मन ही मन प्रणाम करना चाहिये।।१३५-१३९।।

यत्पूर्वमर्जितं पापं तद्दिनेऽन्यदिनेऽपि वा।
तत्पापस्यापनोदार्थं मन्त्रद्वयमुदीरयेत् ॥१४०॥
हे देव प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमिदं मनः।
तन्निस्सारय चित्तान्मे पापं फट् हुं च ते नमः ॥१४१॥
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नृषु साक्षिकाः ॥१४२॥
हुंफडिति ब्रूयात्क्रोधदृष्ट्या पश्येच्च पार्श्वयोः।
एवं कृते प्रथमतः पापोत्सादनकर्मणि ॥१४३॥
यत्स्याद् दृढतरं पापं तद् दूरे चात्र तिष्ठतु।
अतीते पूजनं स्थानं स्वं प्रयातु पुनश्च तत् ॥१४४॥
यत्स्यादल्पतरं पापं तन्नाशमुपगच्छतु।
पूजां त्यक्त्वास्य पापस्य काममिष्टं क्षणाद्भवेत् ॥१४५॥

तदनन्तर उसी पूर्व में दिन अथवा अन्य दिन किये गये पापों के विनाश के लिये निम्नांकित दो मन्त्रों का पाठ करना चाहिय—

हे देव प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमिदं मनः।
तन्निस्सारय चित्तान्मे पापं फट् हुं च ते नमः।।
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नृषु साक्षिकाः।।

अर्थात् हे देव! प्राकृत चित्त वाला यह मन पापाक्रान्त हो गया है; अतः आप उस पाप को मेरे चित्त से निकाल दीजिये। फट् हुं से आपको नमस्कार है। सूर्य, चन्द्र, यम, काल एवं पञ्चमहाभूत मनुष्यों के शुभ और अशुभ कर्मों के साक्षी हैं।

तदनन्तर 'हुं फट्' बोलकर क्रुद्ध दृष्टि से दोनें ओर अवलोकन करे। इस प्रकार से पापोत्सादन कर्म करने पर जो अधिक बलवान पाप होता है, वह उस पूजन स्थान से दूर चला जाता है एवं जो बहुत छोटा पाप होता है, वह नाश को प्राप्त हो जाता है और पूजा से इष्ट की प्राप्ति शीघ्र हो जाती है।।१४०-१४५।।

ततः प्रक्षाल्य पादौ च हस्तावाचम्य यत्नतः ।
दद्यादर्घ्यं दिनेशाय तत्प्रकार इहोच्यते ॥१४६॥
गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ कृत्वा तु मण्डलम् ।
सिन्दूरेण ततः पश्चादुपविश्य निजासने ॥१४७॥
प्राङ्मुखः प्रणमेदिष्टदेवतां भक्तितत्परः ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा सूर्यमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥१४८॥
ह्रीं ह्रीं स इति सूर्यस्य त्र्यक्षरो मन्त्र ईरितः ।
विन्यस्य च तथेन्द्रादीन् ध्यात्वा सूर्यमनन्यधीः ॥१४९॥
पद्मद्वयाभयवरान्दधतं कराब्जैर्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम् ।
रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि ॥१५०॥

तदनन्तर हाथ-पैर धोकर आचमन करके यत्नपूर्वक भगवान् सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिये; एस अर्घ्य-निवेदन की विधि इस प्रकार है—गोबर से लीपी गयी भूमि पर सिन्दूर से मण्डल बनाकर अपने आसन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठकर भक्तिपरायण होकर इष्टदेवता को प्रणाम करने के बाद मन्त्रज्ञ को सूर्यमन्त्र से तीन प्राणायाम करके 'ह्रीं ह्रीं सः' इस त्र्यक्षर सूर्यमन्त्र का एवं इन्द्र आदि का विन्यास करके एकाग्र चित्त से सूर्य का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

पद्मद्वयाभयवरान्दधतं कराब्जैर्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम्।
रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि।।

अर्थात् करकमलों में दो कमल, अभय एवं वरमुद्रा को धारण किये हुये, माणिक्य मौलि में माणिक्य धारण करने वाले, सुन्दर अरुण अङ्ग वाले, तीन नेत्र वाले, रक्त कमल के आसन पर विराजमान, समस्त गुणों के सागरस्वरूप एवं समस्त संसार के अधिपति भगवान् सूर्य का मैं भजन करता हूँ।।१४६-१५०।।

तत्कल्पोक्तविधानेन पूजयेदुपचारकैः ।
पुरतो मण्डलं कृत्वा जलेन चतुरस्रकम् ॥१५१॥
निधाय तत्र साधारं सजलं ताम्रपात्रकम् ।
गन्धपुष्पाक्षतान् दर्भदूर्वासर्षपसंयुतान् ॥१५२॥
सतिलान्युक्तपुष्पाणि यवांश्चापि प्रविन्यसेत् ।
सूर्यमन्त्रेण तत्पात्रं स्पृशन्नष्टोत्तरं शतम् ॥१५३॥
अभिमन्त्र्य च तत्पात्रं समुत्थाय करद्वयात् ।
मूर्द्धान्तं सूर्यमन्त्रेण दद्यादर्घ्यं विचक्षणः ॥१५४॥
ह्रीं ह्रीं सः सग्रहराशिनक्षत्रपदमुच्चरेत् ।
ततश्च योगकरणे परिवृत्तासनेति च ॥१५५॥

संस्थितः श्रीसूर्यायैष तेऽर्घ्यः स्वाहा मनुः स्मृतः।
चतुस्त्रिंशदक्षरोऽयं सूर्यस्यार्घ्यनिवेदने ॥१५६॥
जपेत्तत्तु यथाशक्ति सूर्यमन्त्रमनन्यधीः।
तदर्घ्याम्बुयुतं सूर्यं ध्यायेद्देशिकसत्तमः ॥१५७॥
स्तुत्वा प्रणम्य विसृजेन्मण्डलात्तं दिवाकरम्।

उपर्युक्त रूप से भगवान् सूर्य का ध्यान करने के पश्चात् सूर्यकल्प में कथित विधि से उपचारों द्वारा पूजन करना चाहिये। अपने सामने जल से चतुरस्र मण्डल बनाकर उसपर आधार-सहित जलपूर्ण ताम्रपात्र रखकर उसमें चन्दन, फूल, अक्षत, कुश, दूब, सरसों, तिल एवं यव डाल करके उस पात्र को स्पर्श करते हुए एक सौ आठ बार सूर्यमन्त्र का जप करके अभिमन्त्रित करने के बाद उसे दोनों हाथों से मस्तक से ऊपर उठाकर सूर्यमन्त्र से अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। सूर्य का अर्घ्यदान मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं ह्रीं सः सग्रहराशिनक्षत्रयोगकरणपरिवृत्तासनसंस्थितश्रीसूर्य्यायैष तेऽर्घ्यः स्वाहा। सूर्य को अर्घ्य-निवेदन-हेतु चौंतीस अक्षरों का यह मन्त्र कहा गया है। तदनन्तर श्रेष्ठ साधक को एकाग्र चित से सूर्यमन्त्र का यथाशक्ति जप एवं उस अर्घ्यजल से युक्त सूर्य का ध्यान करने के बाद स्तुति-प्रणाम करके मण्डल से सूर्य का विसर्जन करना चाहिये।।१५१-१५७।।

तत उत्थाय विधिवद् द्वारपूजां समाचरेत् ॥१५८॥
द्वारमर्घ्याम्बुना प्रोक्ष्य तन्मध्ये विघ्नपं यजेत्।
तद्दक्षिणे महालक्ष्मीं वामे चापि सरस्वतीम् ॥१५९॥
द्वारश्रियं च तन्मध्ये शाखयोर्दक्षिणान्ययोः।
ऊर्ध्वभागोत्तरं यावत्पञ्च पञ्चविभागके ॥१६०॥
नाम्नश्चाद्याक्षरं बिन्दुनामयुक्तं च ङेऽन्तकम्।
समुच्चार्य हृदन्तं च देवानेतान् प्रपूजयेत् ॥१६१॥
गणपतिं क्षेत्रपालं ततश्च वसुधारया।
युक्तं शङ्खनिधिं दक्षे वामे वसुमतीयुतम् ॥१६२॥
पूजयित्वा पद्मनिधिं तदधो दक्षवामतः।
मायाशक्तिं च हृच्छक्तिं गङ्गां च यमुनां तथा ॥१६३॥
धातारं च विधातारं दं देहल्यै नमो नमः।
आदौ तु पश्चिमद्वारपूजा चेयं प्रकाशिता ॥१६४॥

तत्पश्चात् अर्घ्य जलपात्र को वहाँ से उठाकर द्वारपूजा करनी चाहिये। इसके लिये द्वार के मध्यदेश को उस अर्घ्यजल से धोकर उसके मध्य में गणेश का पूजन करना

चाहिये। गणेश के दाँयें भाग में महालक्ष्मी का और बाँयें भाग में सरस्वती का पूजन करना चाहिये। उसके मध्य में द्वारलक्ष्मी का पूजन करने के बाद द्वार के दक्षिण एवं वाम भागस्थ शाखाओं में ऊपर से नीचे तक पाँच-पाँच को देवता के नाम के प्रथम अक्षर में बिन्दु लगाकर चतुर्थ्यन्त नाम में नमः लगाकर इन देवताओं का पूजन करना चाहिये। पश्चिम द्वार के दक्षिण भाग में गं गणपतये नमः, वसुधारासंयुताय शं शंखनिधये नमः, मां मायाशक्त्यै नमः, गं गङ्गायै नमः एवं धां धात्रे नमः से पूजन करना चाहिये। पश्चिम द्वार के ही वाम भाग में क्षं क्षेत्रपालाय नमः, वसुमतीसंयुताय पं पद्म-निधये नमः, हं हच्छक्त्यै नमः, यं यमुनायै नमः, विं विधात्रे नमः से पूजन करने के बाद दं देहल्यै नमः से देहली का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पश्चिम द्वार का पूजन सम्पन्न हो जाता है॥१५८-१६४॥

नन्दी चापि महाकालो द्वारयोर्दक्षवामयोः।
सम्पूज्यैवमुदग्द्वारं प्राग्याम्ये च प्रपूजयेत् ॥१६५॥
द्वारपालौ क्रमात्तेषु गणेशवृषभावपि।
भृङ्गिरीटी तथा स्कन्द उमाचण्डेश्वरौ तथा ॥१६६॥
विष्णोर्नन्दः सुनन्दश्च चण्डश्चापि प्रचण्डकः।
बलश्च प्रबलश्चैव भद्रश्चापि सुभद्रकः ॥१६७॥
वक्रतुण्डश्चैकदन्तो महोदरगजाननौ।
लम्बोदरश्च विकटो गाणेशा द्वारपालकाः ॥१६८॥
विघ्नराजो धूम्रवर्णः क्रमात् पश्चिमद्वारतः।
देव्याश्चैव तु योगिन्योऽष्टावेता द्वारपालिकाः ॥१६९॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा च श्रिया सह ॥१७०॥

उत्तर द्वार के दक्ष भाग में नं नन्दिने नमः से नन्दी का एवं वाम भाग में मं महाकालाय नमः से महाकाल का पूजन करना चाहिये। उत्तर द्वार के पूजन के पश्चात् पूर्व और दक्षिण द्वार का पूजन करना चाहिये। पूर्व द्वार के दक्ष भाग में गं गणपतये नमः, भृं भृंगरीटये नमः, उं उमाय नमः, नं नन्दाय नमः एवं चं चण्डाय नमः से पूजन करके वाम भाग में वृं वृषभाय नमः, सं स्कन्दाय नमः, चं चण्डेश्वराय नमः, सुं सुनन्दाय नमः एवं प्रं प्रचण्डाय नमः से पूजन करना चाहिये।

दक्षिण द्वार के दक्ष भाग में बं बलाय नमः, भं भद्राय नमः, वं वक्रतुण्डाय नमः, मं महादेवाय नमः एवं लं लम्बोदराय नमः से पूजन करके वाम भाग में प्रं प्रबलाय नमः, सुं सुभद्राय नमः, एं एकदन्ताय नमः, गं गजाननाय नमः एवं विं विकटाय नमः से पूजन करना चाहिये।

पश्चिम द्वार के द्वारपाल धूम्र वर्ण के विघ्नराज हैं। उत्तर द्वार की द्वारपालिका अष्टयोगिनियाँ हैं। पूर्व द्वार की ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी और वैष्णवी द्वारपालिकायें हैं तथा दक्षिण द्वार की वाराही, ऐन्द्री, चामुण्डा और महालक्ष्मी हैं।।१६५-१७०।।

अथ वक्ष्ये द्वारदेवध्यानं तन्त्रेषु गोपितम्।
देवद्वारं द्वारदेवाः स्वयमुद्घाटयन्ति यत्॥१७१॥
पाशाङ्कुशफलाम्भोजपर्णपाणिञ्च तुन्दिलम्।
वीरं विघ्नेश्वरं वन्दे गजवक्त्रं त्रिलोचनम्॥१७२॥
पद्मद्वयवराभीतिलसत् पाणिचतुष्टयाम्।
निर्दग्धहेमगौराङ्गीं महालक्ष्मीं त्रिलोचनाम्॥१७३॥
अक्षस्रक्पुस्तकाभीतिवरहस्तां त्रिलोचनाम्।
श्वेतपद्मासनां शुक्लां श्वेतवस्त्रां सरस्वतीम्॥१७४॥
कपालशूलविलसत् कृपाणं कृष्णविग्रहम्।
त्र्यक्षं तीक्ष्णं भावयामि क्षेत्रेऽस्मिन् क्षेत्रनायकम्॥१७५॥
वसुन्धरां दक्षभुजेनालिङ्ग्य तु सुभाण्डिनम्।
वामे शङ्खधरं मुक्तानिभं शङ्खनिधिम्भजे॥१७६॥

द्वारदेवताओं का ध्यान—अब समस्त तन्त्रों में गोपनीय रूप से विद्यमान द्वारदेवताओं के ध्यान का वर्णन करता हूँ। द्वारदेवता स्वयं ही देवद्वार का उद्घाटन करते हैं। गणेश का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—जिनके हाथों में पाश, अंकुश, कला और कमलपत्र हैं; जो तुन्दिल हैं; जिनका मुख हाथी के समान है एवं जिनके तीन नेत्र हैं, उन वीर विघ्नेश्वर की हम वन्दना करते हैं।

महालक्ष्मी का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—महालक्ष्मी के दो हाथों में कमल, एक हाथ में वरमुद्रा और एक हाथ में अभयमुद्रा शोभित है, उनके अङ्ग तप्त सोने के समान गौर हैं एवं तीन नेत्र हैं।

सरस्वती का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—सरस्वती के हाथों में रुद्राक्ष की माला, पुस्तक, वर और अभय मुद्रा है। उनके नेत्र तीन हैं। वे श्वेत कमल के आसन पर आसीन हैं। उनके अङ्गों का वर्ण श्वेत है एवं वस्त्र भी श्वेत हैं।

क्षेत्रपाल का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—इस क्षेत्र में हाथों में कपाल, त्रिशूल और कृपाण से शोभित; कृष्ण वर्ण शरीर वाले, तीन भयानक नेत्र वाले क्षेत्रनायक का मैं चिन्तन करता हूँ।

वसुन्धरा-सहित शङ्खनिधि का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—सुन्दर कलश

से समन्वित वसुन्धरा को दाहिने हाथ से आलिङ्गित किये हुये एवं बाँयें हाथ में शङ्ख को धारण करने वाले मुक्ता के सदृश श्वेत शङ्खनिधि का मैं भजन करता हूँ।

आलिङ्गन्तं वसुमतीं ललाटे पद्मचिह्नितम्।
भजे पद्मनिधिं नित्यं वामेनोत्पलधारिणम् ॥१७७॥
वराङ्कुशाभीतिपाशहस्तां संसारमूलिकाम्।
त्रिनेत्रां श्यामवर्णान्तां श्यामां मायामहं भजे ॥१७८॥
पाशाङ्कुशवराभीतिं दधानामरुणप्रभाम्।
ग्राहारूढामहं वन्दे गङ्गां सर्वसरिद्वराम् ॥१७९॥
कृष्णकच्छपमारूढां कण्ठे नीलोत्पलस्रजम्।
वराभयकरां वन्दे कालिन्दीं कालविग्रहाम् ॥१८०॥
कर्त्तारं जगतां वन्दे शङ्खचक्रगदाम्बुजम्।
विभ्राणं गरुडारूढं धातारं कृष्णविग्रहम् ॥१८१॥
रक्तं रक्तारविन्दाक्षं वराभयकमण्डलुम्।
हंसारूढं विधातारं वन्दे त्र्यक्षसमन्वितम् ॥१८२॥
सिंहारूढां श्यामवर्णां खड्गखेटकधारिणीम्।
अधःस्थां देहलिं वन्दे पश्चिमास्यां सुदक्षिणाम् ॥१८३॥

पद्मनिधि का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—दाहिने हाथ से वसुमती का आलिङ्गन करते हुये, बाँयें हाथ से कमल को धारण किये हुये एवं कमल के चिह्न से चिह्नित ललाट वाले पद्मनिधि का मैं नित्य स्मरण करता हूँ।

माया शक्ति का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—वर, अंकुश, अभय एवं पाश को हाथों में धारण करने वाली, संसार की मूल कारणस्वरूपा, तीन नेत्रों वाली, श्याम वर्ण शरीर वाली श्यामा माया का मैं स्मरण करता हूँ।

गंगा का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—पाश, अङ्कुश, वर और अभय मुद्रा को धारण करने वाली, अरुण वर्ण की कान्ति वाली, ग्राह पर आरूढ़, समस्त नदियों में श्रेष्ठ गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ।

यमुना का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—काले कछुये पर सवार, कण्ठ में नीले कमलों की माला धारण की हुई, वर एवं अभय मुद्रा से समन्वित हाथों वाली, कृष्ण वर्ण शरीर वाली कालिन्दी को मैं प्रणाम करता हूँ।

धाता का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—समस्त जगत् का निर्माण करने वाले, हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं कमल धारण करने वाले, गरुड़ पर आसीन, कृष्ण वर्ण शरीर वाले धाता को मैं प्रणाम करता हूँ।

विधाता का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—रक्त वर्ण वाले, रक्तकमल-सदृश आँखों वाले, हाथों में वर-अभय एवं कमण्डलु धारण करने वाले, हंस पर आसीन, तीन नेत्रों से समन्वित विधाता को मैं प्रणाम करता हूँ।

देहली देवी का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—सिंह पर आसीन, श्याम वर्ण वाली, हाथों में तलवार एवं ढाल धारण करने वाली, पश्चिम मुख वाली, अतिशय उदार, निम्न भाग में अवस्थित देहली को मैं प्रणाम करता हूँ।।१७७-१८३।।

पश्चिमद्वारमासाद्य तालत्रितयपूर्वकम्।
द्वारमुद्घाट्य चास्त्रेण मन्त्रितान् सर्षपाक्षतान् ॥१८४॥
पुष्पयुक्ताँस्तु विकिरेन्मण्डपाभ्यन्तरे बुधः।
नाराचमुद्रया सम्यगस्त्रमन्त्रेण देशिकः ॥१८५॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतोदिशम्।
याश्चात्र निवसन्त्यन्यदेवता भुवि संस्थिताः ॥१८६॥
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥१८७॥
श्लोकयोरन्ततश्चास्त्रं पठन्नाराचमुद्रया।
जह्यात्तान्मण्डपस्यान्तस्ततो विघ्नांस्तु निर्गतान् ॥१८८।
स्ववामाङ्गस्य सङ्कोचान्मार्गं दत्त्वापसारयेत्।
अस्त्रमन्त्रं स्मरन् वामपार्ष्णिघातत्रयेण च ॥१८९॥
भौमानुत्सादयेत्तालत्रितयेनान्तरिक्षगान्।
तिर्य्यग्दृष्ट्यवलोकेन दिव्यान् विघ्नान्निवारयेत् ॥१९०॥
दक्षपादं पुरस्कृत्य प्रविशेद्देवमन्दिरम्।
शाक्तस्तु वामपादेन द्वारमाच्छाद्य वाससा ॥१९१॥
पञ्चगव्यार्घ्यतोयाभ्यां प्रोक्षयन्मण्डपान्तरम्।
सम्मार्जनोपलेपाद्यैर्दर्पणोदरवत्कृतम् ॥१९२॥
विमलं धूपदीपादिपुष्पदामाभिशोभितम्।
पञ्चवर्णरजश्चित्रं स्थानशुद्धिरियं मता ॥१९३॥

श्रेष्ठ साधक पश्चिम द्वार पर आकर तीन ताली बजाते हुये द्वार को खोलकर अस्त्रमन्त्र 'फट्' से अभिमन्त्रित अक्षत, सरसों एवं पुष्प को अस्त्रमन्त्र का उच्चारण करते हुये नाराच मुद्रा से मण्डप के भीतर विकीर्ण करे। साथ ही नाराच मुद्रा से,

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतोदिशम्।
याश्चात्र निवसन्त्यन्यदेवता भुवि संस्थिताः।।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।।

(जो भूत-पिशाच सभी दिशाओं को आक्रान्त किये हुए हैं या जो यहाँ पर निवास करते हैं एवं जो अन्य देवता इस स्थान पर स्थित हैं, वे यहाँ से दूर हट जायँ। जो भूतगण भूमि पर स्थित हैं, वे भाग जायँ एवं जो भूत विघ्न करने वाले हैं, वे भगवान् शिव की आज्ञा विनष्ट हो जायँ।)

इन दोनों श्लोकों को अस्त्रमन्त्र से युक्त का पाठ करते हुये मण्डप से बाहर जा रहे विघ्नों के लिये अपने बाँयें अंग का सिकोड़ कर मार्ग प्रदान कर अस्त्रमन्त्र का स्मरण करते हुये बाँयीं एँड़ी से तीन आघात कर भूमि पर स्थित विघ्नों को भगाकर तीन ताली बजाते हुये अन्तरिक्ष में रहने वाले विघ्नों को एवं तिरछी दृष्टि से देखकर दिव्य विघ्नों का वहाँ से निवारण करके दाँयाँ पाँव आगे करके देव-मन्दिर में प्रवेश करना चाहिये। शाक्तों को बाँयाँ पैर आगे करके प्रवेश करना चाहिये। तदनन्तर द्वार को कपड़े से ढककर पञ्चगव्ययुक्त अर्घ्यजल से मण्डप के भीतरी भागों का प्रोक्षण करते हुये सम्मार्जन और लेपादि से दर्पण के समान स्वच्छ बनाये गये, निर्मल धूप, दीप, पुष्पमाला से सुशोभित मण्डप को पाँच रंगों के चूर्णों द्वारा चित्रित करे। इसे ही स्थान-शुद्धि कहा जाता है।।१८४-१९३।।

नैर्ऋत्यामर्चयेद्वास्तुपुरुषं चन्दनादिभिः।
तत्रैव वास्त्वधीशं च ब्रह्मणे नम इत्यपि ॥१९४॥
रक्तवर्णं रक्तवर्णशक्तिद्वादशसंयुतम्।
पूजयित्वा दीपनाथं भैरवं प्रार्थयेदिति ॥१९५॥
अतितीक्ष्ण महाकाय कल्पान्तदहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥१९६॥
ॐफडिति च मन्त्रेण पूजावेदीं ततो विशेत्।
संस्कुर्य्यादासनस्थानं चतुर्भिर्वीक्षणादिभिः ॥१९७॥
संस्कारे तत्र सम्पूज्या वेद्यन्ताः पीठदेवताः।
आधारशक्तिमारभ्य स्वासनं तत्र विन्यसेत् ॥१९८॥
पूजासनमथात्मीयं चैलाजिनकुशोत्तरम्।
तत्रोपविश्य विधिवत् स्मरेद्विष्णुं गुरुं तथा ॥१९९॥
मेरुपृष्ठ ऋषिः प्रोक्तः सावित्रीच्छन्द ईरितम्।
पृथिवी देवता प्रोक्ता विनियोगो निजासने ॥२००॥
पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥२०१॥

आसनस्य चतुष्कोणे गणेशं च सरस्वतीम्।
दुर्गां क्षेत्रपतिञ्चापि वह्न्यादिषु समर्चयेत् ॥२०२॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वस्तिकासनमास्थितः।
पद्मासनगतो वापि ऋजुकायो मनस्स्थिरः ॥२०३॥

मण्डप के नैर्ऋत्य कोण में वास्तु पुरुष का चन्दन आदि से पूजन करके वहीं पर वास्तु अधिपति को 'वास्त्वधीशं ब्रह्मणे नमः' कहकर पूजन करे। रक्त वर्ण की बारह शक्तियों से समन्वित रक्तवर्ण वाले दीपों के स्वामी भैरव का पूजन करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

अतितीक्ष्ण महाकाय कल्पान्तदहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि।।

अर्थात् अत्यन्त भयानक विशाल शरीर वाले, कल्पान्त में भस्म करने के समान हे भैरव! आपको प्रणाम है। आप हमें पूजा करने की आज्ञा प्रदान करें।

ॐ फट् कहकर पूजा वेदी के निकट बैठे। चारो ओर देखकर बैठने के स्थान को संस्कृत करे। इस प्रकार संस्कृत उस स्थान पर वेदी के किनारे पीठदेवता का पूजन करके आधार शक्ति से आरम्भ करके अपने आसन तक का वहाँ पर विन्यास करे। पूजा के लिये मृगचर्म, कम्बल अथवा कुश के अपने आसन पर बैठकर विष्णु और अपने गुरु का विधिवत् स्मरण करके अपने आसन का इस प्रकार विनियोग करे—
ॐ अस्य श्रीआसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः, सावित्री छन्दः, पृथिवी देवता, आसनोपवेसने विनियोगः। तदनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे—

पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्।।

अर्थात् हे पृथ्वि! तुमने लोकों को धारण किया हुआ है और हे देवि! तुम्हें विष्णु ने धारण कर रखा है। हे देवि! तुम मुझे धारण करो एवं आसन को पवित्र करो।

तत्पश्चात् उत्तरमुख अथवा पूर्वमुख स्वस्तिकासन अथवा पद्मासन में सीधा बैठकर मन को स्थिर करके आसन के अग्निकोण में गं गणेशाय नमः से गणेश का, नैर्ऋत्य कोण में सं सरस्वत्यै नमः से सरस्वती का, वायव्य कोण में दुं दुर्गायै नमः से दुर्गा का एवं ईशान कोण में क्षं क्षेत्रपतये नमः से क्षेत्रपाल का अर्चन-पूजन करना चाहिये।।१९४-२०३।।

पूजाद्रव्यस्थापनक्रमः

स्थापयेद्दक्षिणे भागे पूजाद्रव्याणि चात्मनः।
सुवासिताम्बुसम्पूर्णे सव्ये कुम्भं सुशोभनम् ॥२०४॥

प्रक्षालनाथ करयोः पात्रे पृष्ठे निवेशयेत्।
घृतादिज्वलितान् दीपान् स्थापयेत् परितः शुभान्॥२०५॥
दर्पणं चामरं छत्रं तालवृन्तञ्च पादुके।
यथायथं तु संस्थाप्य संस्कुर्यात्तानि चात्मवान्॥२०६॥
पुष्पनैवेद्यगन्धादीन् ह्रीं हूं फडिति मन्त्रतः।
नाराचमुद्रया दृष्ट्वा समयांश्च विलोकयन्॥२०७॥
दृष्टं वाचात्मविज्ञातं सम्यक् पुष्पादिदूषणम्।
अस्पृश्यस्पर्शनं वापि यदन्यायार्जितञ्च वा॥२०८॥
तथा निर्माल्यसंस्पृष्टं कीटाद्यारोहणञ्च यत्।
तत्पूर्वन्नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात्॥२०९॥
ततो रमिति मन्त्रेण शिखां दीपस्य संस्पृशेत्।
स तु स्याच्छुभदो दीपो निष्क्रव्यादः सुखप्रदः॥२१०॥
पतङ्गकीटकेशादिदाहात् क्रव्यादसञ्ज्ञितः।
वसामज्जादिसम्भूतैर्घृताद्यैरुपयोजितम्॥२११॥
अज्ञानरूपं तत्सर्वं दोषं स्पर्शाद्विनश्यति।
क्षौंबीजमुच्चरेन्मन्त्री देवतीर्थेन संस्पृशेत्॥२१२॥
पानीयं घटमध्यस्थं दृष्ट्वा सम्यक् च साधकः।
वामेन पाणिना धृत्वा वामपार्श्वस्थितं घटम्॥२१३॥
पात्राधारे न्यसेन्न्यूनं यदत्राज्ञानतो भवेत्।
जलाशयशवस्पर्शाज्जलं स्थाने च सङ्गतम्॥२१४॥
इत्यादि दूषणं नश्येत्तत्प्रियं देवपूजने।

इसके बाद अपने दक्ष भाग में पूजन-सामग्री को रखकर वाम भाग में सुगन्धित जल से पूर्ण सुन्दर कलश स्थापित करे। दोनों हाथ धोने के लिये अपने पीछे पात्र रखे। घी से जले शुभ दीपक को चारो ओर स्थापित करे। दर्पण, चामर, छत्र, तालवृन्त और खड़ाऊँ को निश्चित स्थानों पर स्थापित करे एवं आत्मवत् उनका संस्कार करे। पुष्प, नैवेद्य और गन्धादि को अपने सामने रखकर 'ह्रीं हूँ फट्' मन्त्र बोलते हुये नाराच मुद्रा से देखकर अन्य सामग्रियों को भी देखते हुये निम्न मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये—

दृष्टं वाचात्मविज्ञातं सम्यक् पुष्पादिदूषणम्।
अस्पृश्यस्पर्शनं वापि यदन्यायार्जितं च वा।।
तथा निर्माल्यसंस्पृष्टं कीटाद्यारोहणं च यत्।
तत्पूर्वन्नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात्।।

इसके बाद 'रं' मन्त्र से दीपक की शिखा का स्पर्श करे। ऐसा करने से वह दीपक राक्षसी प्रवृत्ति से रहित एवं सुखप्रद होता है। पतङ्ग, कीट, केश आदि के जलने से उसमें क्रव्यादत्व दोष आ जाता है; साथ ही वसा, मज्जा आदि से उत्पन्न घी आदि का उपयोग करने के कारण हुये सभी अज्ञात दोष उस दीपक के स्पर्श करने से विनष्ट हो जाते हैं। 'क्ष्रौं' बीज का उच्चारण करके देवतीर्थ के अग्रभाग से घट के भीतर स्थित जल का स्पर्श करे एवं उसे सम्यक् रूप से देखकर वाम पार्श्व में स्थित घड़े को बाँयें हाथ से पकड़कर पात्राधार पर रखे। उस जल में जो भी अज्ञात दोष होते है, जो दोष जलाशय में शवस्पर्श के कारण होते हैं अथवा दूषित स्थान की संगति के कारण जो दोष होते हैं, वे सभी दोष देवपूजन से नष्ट हो जाते हैं।।२०४-२१४।।

ततः कृताञ्जलिः पूतो वामदक्षिणपार्श्वयोः ॥२१५॥
गुरुं गणपतिं नत्वा पुरतः स्वेष्टदेवताम्।
सुगन्धपुष्पाण्यादाय चन्दनाक्तानि मन्त्रवित् ॥२१६॥
हौं मन्त्रेणाथ करयोरस्त्रमन्त्रेण मर्द्दयेत्।
तत्पुष्पं वामहस्तेन समादाय च मस्तकम् ॥२१७॥
भ्रामयेत्परितस्तारं जपन्नाघ्राय तत्पुनः।
हौं ॐ पूर्वं पठेच्छ्लोकमिमं साधकसत्तमः ॥२१८॥
सर्वत्र विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः।
मृत्युरोगभयक्लेशाः पतन्तु रिपुमस्तके ॥२१९॥
अस्त्रमन्त्रेण नाराचमुद्रयेशदिशि त्यजेत्।
करशुद्धिं ततोऽस्त्रेण कुर्यात्तालत्रयं ततः ॥२२०॥
ऊर्ध्वोर्ध्वमस्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धमपि तेन च।
तेन सम्पतितं तेजो वह्निप्राकारमुद्रया ॥२२१॥
रक्षेदात्मनि शूलेन प्राणायामत्रयं चरेत्।
भूतशुद्धिं ततः कुर्य्यात्तत्प्रकारमथ ब्रुवे ॥२२२॥

तदनन्तर पवित्र होकर हाथ जोड़कर अपनी बाँयीं ओर गुरु को एवं दाँयीं ओर गणेश को तथा सामने इष्टदेवता को प्रणाम कर मन्त्रज्ञ साधक चन्दनलिप्त सुगन्धित पुष्पों को 'हौं' मन्त्र से हाथ में लेकर 'फट्' मन्त्रोच्चारण-पूर्वक उसे मलकर बाँयें हाथ में लेकर ॐ काजप करते हुये मस्तक के चारो ओर घुमाने के बाद उसे सूँघकर इस प्रकार श्लोक पढ़े—

हौं ॐ सर्वत्र विलयं यान्तु ये मां हिंसति हिंसकाः।
मृत्युरोगभयक्लेशाः पतन्तु रिपुमस्तके।।

अर्थात् जो हिंसक मेरी हिंसा करते हैं, वे सर्वत्र नष्ट हो जायँ। मृत्यु, रोग, भय, क्लेश सभी मेरे दुश्मनों के माथे पर गिर जायँ।

उपर्युक्त श्लोकमन्त्र पढ़ने के बाद उस फूल को अस्त्र-मन्त्र पढ़कर नाराच मुद्रा से ईशान कोण में फेंक दे। तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्र से करशुद्धि करके तीन बार ताली बजाकर ऊपर ही ऊपर अस्त्र-मन्त्र से ही दिग्बन्धन करे। उससे पतित तेज से वह्नि-प्राकार मुद्रा द्वारा शूल से आत्मरक्षा करे एवं तीन प्राणायाम करे। (वह्निप्राकार मुद्रा दोनों हाथों को त्रिशूल मुद्रा से युक्त करके मस्तक के चारो ओर व्यत्यस्त रूप से घुमाने से बनती है। त्रिशूलमुद्रा कनिष्ठा अङ्गुली को अंगूठे से दबाकर शेष तीनों अंगुलियों—तर्जनी, मध्यमा, अनामिका को सीधी करने से बनती है।) इसके बाद भूतशुद्धि करे, जिसकी विधि अब कही जा रही है।।२१५-२२२।।

भूतशुद्धिः

पादतो जानुपर्यन्तं चतुरस्रं सचक्रकम्।
लंयुतं पीतवर्णं च भूस्थानं ब्रह्मदैवतम् ॥२२३॥
अधिष्ठितं निवृत्त्याख्यकलया स्थानमुच्यते।
समुत्पत्तेस्तु जीवानामेवं रूपं विचिन्तयेत् ॥२२४॥
जान्वोरानाभिपर्यन्तमपां स्थानं सितप्रभम्।
अर्धचन्द्रनिभं शृङ्गद्वयं तत्पद्मलाञ्छितम् ॥२२५॥
षट्कोणं बिन्दुभिः षट्कैर्युतं वंबीजसंयुतम्।
प्रतिष्ठाकलया युक्तं ध्यायेत्तद्विष्णुदैवतम् ॥२२६॥
नाभ्यादिकण्ठपर्यन्तमारक्तं रुद्रदैवतम्।
रंबीजयुक्तं कलया युतं विद्याख्यया तथा ॥२२७॥
दीप्तिमत् स्वस्तिकोपेतं त्रिकोणाकारतां गतम्।
महाप्रलयवत्स्थानं वह्नितत्त्वं विचिन्तयेत् ॥२२८॥
कण्ठाद् भूमध्यपर्यन्तं षट्कोणाकारतां गतम्।
षड्बिन्दुलाञ्छितं वृत्तं वेष्टितं कृष्णवर्णकम् ॥२२९॥
वायुस्थानं शान्तिकलाधिष्ठितं शिवदैवतम्।
यंबीजरूपं ध्यात्वेत्थं प्राणरूपं विचिन्तयेत् ॥२३०॥
भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रान्तमाकाशस्थानमुच्यते।
वृत्ताकारन्धूम्रवर्णं महोच्चध्वजलाञ्छितम् ॥२३१॥
शान्त्यतीताख्यकलयाधिष्ठितं शिवदैवतम्।
हंबीजयुक्तं ध्यात्वेत्थं देहे भूतानि विन्यसेत् ॥२३२॥

भूत-शुद्धि—पैर से जानु तक चक्रसहित 'लं' बीज से युक्त, पीतवर्ण चतुरस्र का ध्यान करे एवं यह भावना करे कि भूमि पर इस स्थान पर निवृत्ति कला द्वारा ब्रह्मा अधिष्ठित हैं और यही जीवों की उत्पत्ति का भी स्थान है।

जानुओं से नाभि तक श्वेत वर्ण वाला जलस्थान है। इसमें अर्द्धचन्द्राकार दो दलों का कमल है। इसमें विन्दुयुक्त एक षट्कोण चक्र में 'वं' बीज द्युतिमान है। यहाँ पर प्रतिष्ठा कला से युक्त विष्णु देवता का ध्यान करना चाहिये।

नाभि से कण्ठ तक लाल रुद्र देवता का स्थान है, यहाँ पर रं बीज है और विद्याकला का निवास है। यहाँ पर स्वस्तिकयुक्त त्रिकोण प्रकाशमान है। यहाँ महाप्रलय के समान वह्नितत्त्व का चिन्तन करना चाहिये।

कण्ठ से ऊपर भ्रूमध्य तक एक ऐसे षट्कोण का चिन्तन करे, जो छः बिन्दुओं से युक्त है एवं एक वृत्त से घिरा हुआ है। यह काले रंग का है। यह वायु तत्त्व का का स्थान है और यहाँ शान्तिकला से युक्त देवता शिव अधिष्ठित हैं। इसका बीज 'यं' है। यहाँ वायु तत्त्व का ध्यान प्राणरूप से करना चाहिये।

भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र तक आकाश का क्षेत्र है। यह वृत्ताकार है। इसका वर्ण धूम्र है। यह अति उच्च ध्वजा से युक्त है। यहाँ की कला शान्त्यतीता है। यह शिव देवता का अधिष्ठान है। यह 'हं' बीज से युक्त है। इस प्रकार से ध्यान करके शरीर में भूतों का विन्यास करना चाहिये।।२२३-२३२।।

धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालसुशोभितम्।
कृत्वा तत्कर्णिकासंस्थं प्रदीपकलिकानिभम् ॥२३३॥
सुषुम्णावर्त्मना जीवं परमात्मनि योजयेत्।
योगयुक्तेन विधिना सोहंमन्त्रेण साधकः ॥२३४॥
तेनैव सर्वभूतानि विलीनानि विचिन्तयेत्।
शरीरे वामकुक्षौ तु चिन्तयेत्पापपूरुषम् ॥२३५॥
वामकुक्षिस्थितं पापपूरुषं कज्जलप्रभम्।
ब्रह्महत्याशिरस्कन्धं स्वर्णस्तेयभुजद्वयम् ॥२३६॥
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम्।
तत्संसर्गपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ॥२३७॥
उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम्।
खड्गचर्मधरं क्रूरं रुष्टं पापं विचिन्तयेत् ॥२३८॥
तथा संशोषयेदेनं पूरकादिक्रमेण वै।
विधाय प्राणसंरोधं वायुबीजेन वायुना ॥२३९॥

मूलाधारोत्थितेनैव वह्निना निर्दहेच्च तत्।
एवं सन्दह्य परितो द्वात्रिंशन्मात्रया ततः ॥२४०॥
भस्मना सहितं मन्त्री रेचयेदिडया पुनः।
वामनाड्यां चन्द्रबीजं कुन्देन्द्वयुतसुप्रभम् ॥२४१॥
भालेन्दुराजे संयोज्य ततः षोडशमात्रया।
सुषुम्णया चतुष्षष्टिमात्रया तोयबीजकम् ॥२४२॥
ध्यात्वाऽमृतमयीं सृष्टिं पञ्चाशद्वर्णरूपिणीम्।
तया देहं विचिन्त्यैवं मनसा पिङ्गलाध्वना ॥२४३॥
द्वात्रिंशन्मात्रया मन्त्री लंबीजेन दृढं नयेत्।
सञ्जाते सकले देहे देवतोपासनक्षमे ॥२४४॥
आत्मलीनानि तत्त्वानि स्वस्थानं प्रापयेत्ततः।
आत्मानं हृदयाम्भोजादानयेत्परमात्मनः ॥२४५॥
हंसमन्त्रेण विधिवत्तेजोरूपं कलेवरम्।
देवताराधने योग्यमुत्पन्नमिति भावयेत् ॥२४६॥
भूतशुद्धिविहीनेन कृता पूजाभिचारवत्।
विपरीतफलं दद्याद्भक्त्या पूजनं यथा ॥२४७॥
भूतशुद्धिं विधायेत्थं प्राणस्थापनमाचरेत्।

धर्मकन्द से उत्पन्न सुशोभित ज्ञाननाल की कर्णिका में दीपशिखा के समान स्थित जीव को सुषुम्णा मार्ग से परमात्मा के साथ युक्त करे। इस प्रकार योगयुक्त करके साधक सोहं मन्त्र से उसमें सभी भूतों के विलय का चिन्तन करे। इसके बाद शरीर की वाम कुक्षि में पापपुरुष का चिन्तन करे।

वाम कुक्षि में स्थित पापपुरुष का रंग काला है। उसका शिर ब्रह्महत्या है एवं उसकी दोनों भुजायें स्वर्ण की चोरी हैं। सुरापान उसका हृदय है एवं गुरु की शय्या उसकी कमर है। उसके संसर्ग से दोनों पैरों के सहित उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पापपूर्ण हैं। उपपातक उसके रोम हैं। उसकी दाढ़ी और आँखें लाल हैं। तलवार-ढाल से युक्त वह रुष्ट एवं क्रूर है। इस प्रकार से पापपुरुष का चिन्तन करना चाहिये।

पूरक आदि के द्वारा क्रम से इसका शोषण करे। पूरक करके वायु बीजं 'यं' से कुम्भक करे। श्वास रोककर यं बीज का जप करे। तब मूलाधार से अग्नि को उठाकर इसे जला दे। कुम्भक के समय बत्तीस बार रं बीज के जप से इसे जलावे। तब भस्म-सहित उस पापपुरुष को इड़ा नाड़ी से रेचक करके बाहर निकाले और सामने पटक दे। इसके बाद वाम नाड़ी से कुन्द के समान श्वेत प्रभायुक्त चन्द्रबीज 'वं' को सोलह

बार जपते हुए पूरक के साथ ललाटस्थित चन्द्रमा से जोड़ दे। फिर कुम्भक में चौंसठ बार वं बीज के जप से पचास वर्णरूपिणी सृष्टि को नष्ट समझे और पिङ्गला नाड़ी से बत्तीस बार लं बीज जपते हुए अपने शरीर को दृढ़ मानकर श्वास बाहर निकाल दे। इस प्रकार सारा शरीर देव-उपासना के योग्य हो जाता है। तदनन्तर अपने में विलीन तत्त्वों को अपने स्थानों पर पूर्ववत् ले आये। आत्मा को अपने हृदय-कमल में परमात्मा से युक्त करके 'हंसः सोहं' मन्त्र के जप से अपने शरीर को विधिवत् तेजोरूप बनाकर यह समझे कि देवता के आराधना की क्षमता इसमें आ गयी है। भूत-शुद्धि के विना कीगई पूजा अभिचार के समान होती है। यह भक्तिपूर्वक की गई पूजा के विपरीत फल प्रदान करनक वाली होती है। इस प्रकार भूत-शुद्धि करने के बाद अपने देह में प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिये।।२३३-२४७।।

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रः

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य मुनयोऽजेशपद्मजाः ॥२४८॥
ऋग्यजुःसामच्छन्दांसि प्राणशक्तिस्तु देवता।
ऋषीञ्छिरसि वक्त्रे तु च्छन्दांसि हृदि देवताम् ॥२४९॥
आम्बीजाय नमो गुह्ये पादे ह्रीं शक्तये नमः।
नाभौ नमः क्रों कीलाय नियोगोऽसुस्थितावितिः ॥२५०॥
ॐ आंह्रींक्रोंअङ्कवर्गं सानुस्वारं नमो हृदि।
पञ्चतत्त्वं समुच्चार्य दीर्घाकारं तथैव च ॥२५१॥
इञ्चवर्गञ्च शब्दादिशिरसे वह्निगेहिनी।
तानि बीजानि उं तादृक्टवर्गं श्रोत्रकादि च ॥२५२॥
प्रोक्त्वा तदात्मनेऽत्रैव शिखायै च वषड्वदेत्।
तानि बीजानि एं तुं च वागादीनि तदात्मने ॥२५३॥
ऐमुक्त्वा कवचायेति हुं वदेत्तदनन्तरम्।
चतुर्बीजं च पूर्वोक्तमों पवर्गं च तादृशम् ॥२५४॥
वाण्याद्यात्मन औनेत्राय वौषट् च तथा वदेत्।
चतुर्बीजं च अन्तादृग्यवर्गं मनआदि च ॥२५५॥
तदात्मने स्वरश्चान्त्योऽस्त्राय फट् चेति संवदेत्।
अङ्गुष्ठादौ हस्ततलान्ते न्यसेदेवमेव हि ॥२५६॥
नाभ्यधश्चापि कण्ठाधो मूर्द्धाधोऽथ तदन्तकम्।
आं ह्रीं क्रों क्रमतो न्यस्य हृत्पद्माष्टदलेषु च ॥२५७॥
पूर्वतः क्रमतो वर्णान् कर्णिकायां हृदन्तकान्।
लं रं हं षं यं च वं च सं शं क्षं इति वर्गतः ॥२५८॥

दिक्षु न्यसेत्ततो ध्यायेत्प्राणशक्तिं हृदि स्थिताम्।
तस्या ध्यानं तदत्रैव तद् ब्रवीमि शृणु प्रिये॥२५९॥
रक्ताब्धिपोतारुणपद्मसंस्थां पाशाङ्कुशेष्वासवरासिबाणान्।
शूलं कपालं दधतीं कराब्जै रक्तां त्रिनेत्रां प्रणमामि देवीम्॥२६०॥

इति प्राणशक्तिध्यानम्

प्राणप्रतिष्ठा का विनियोग इस प्रकार किया जाता है—ॐ अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठा-मन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः, ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि, चैतन्यरूपा प्राणशक्ति-र्देवता प्राणस्थापने विनियोगः।

इसका ऋष्यादि न्यास इस प्रकार होता है—ब्रह्मविष्णुमहेश्वरेभ्यः ऋषिभ्यो नमः शिरसि, ऋग्यजुःसामछन्दोभ्यो नमः मुखे, प्राणशक्त्यै देवतायै नमो हृदि, आं बीजाय नमो गुह्ये, ह्रीं शक्तये नमः पादयोः, क्रों कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

हृदयादि न्यास इस प्रकार होता है—ॐ आं ह्रीं क्रों अं कं खं गं घं ङं आकाश-वाय्वग्निजलपृथिव्यात्मने आं हृदयाय नमः, ॐ आं ह्रीं क्रों इं चं छं जं झं ञं शब्द-स्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा, ॐ आं ह्रीं क्रों उं टं ठं डं ढं णं श्रोत्रत्वक्च-क्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट्, ॐ आं ह्रीं क्रों एं तं थं दं धं नं वाक्पाणिपाद-पायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम्, ॐ आं ह्रीं क्रों ओं पं फं बं भं मं वक्तव्यादानगमन-विसर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने अः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

इसके पश्चात् 'आं नमः' से नाभि से पैरों तक न्यास करे। 'ह्रीं नमः' से नाभि से हृदय तक न्यास करे। 'क्रों नमः' से हृदय से मस्तक तक न्यास करे। तदनन्तर 'आं ह्रीं क्रों के साथ लं रं हं षं यं वं शं क्षं—इन आठ वर्णों का हृदयकमल की कर्णिका के अष्टदल पद्म में आठों दिशाओं में न्यास करे। इसके बाद प्राणशक्ति को अपने हृदय में स्थित समझे। उसका ध्यान भी इसी स्थान पर कहता हूँ; हे प्रिये! श्रवण करो। प्राणशक्ति देवी का वर्ण लाल है, वे रक्त समुद्र में लाल कमल पर स्थित हैं; उनके करकमल में पाश, अङ्कुश, धनुष, वर, तलवार, बाण, त्रिशूल और कपाल हैं। उन देवी के तीन लाल नेत्र हैं। ऐसी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।।२४८-२६०।।

हस्तं निधाय हृदये प्राग्बीजं यादिकाष्टकम्॥२६१॥
हंसः सोहं मम प्राणा वदेदिह द्विरुक्तितः॥२६२॥
उक्त्वा तथैव च पुनर्मम जीव इह स्थितः।
पुनस्तदुक्त्वा मम तु वाङ्मनश्चक्षुरुच्चरेत्॥२६३॥

श्रोत्रं घ्राणः प्राण इहागत्य सुखं चिरन्ततः ।
तिष्ठन्तु वह्निजायान्तमुक्त्वा तारं ततो जपेत् ॥२६४॥
वपुर्ज्योतिर्मयं ध्यायेदिति स्यात्प्राणसंस्थितिः ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा मातृकान्यासमाचरेत् ॥२६५॥

ध्यान करने के उपरान्त हृदय पर हाथ रखकर 'आं क्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः सोहं मम प्राणा इह प्राणा मम जीव इह स्थितः मम वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं घ्राणः प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' इस प्रकार बोलकर 'ॐ' का जप करे। तदनन्तर अपने शरीर को ज्योतिर्मय होने का ध्यान करे। यही प्राणसंस्थिति होती है। इसके बाद तीन प्राणायाम करके मातृका न्यास करे।।२६२-२६५।।

प्राणायामास्त्रिधा प्रोक्तास्तान्त्रवैदिकयौक्तिकाः ।
संसिद्धिः पापनाशाय योगसिद्धिः फलं क्रमात् ॥२६६॥
मातृकाख्यश्च मन्त्राख्यस्तान्त्रिको द्विविधो मतः ।
मातृकाख्यो जपस्यादौ जपस्यान्ते कृतो यदि ॥२६७॥
वर्णव्यत्यासादिदोषानशेषान् हन्ति तं शृणु ।
वामया पूरयेद्वायुं स्वरैः काद्यैश्च कुम्भके ॥२६८॥
रेचयेद्यादिभिर्दक्षनासायां मातृकादिभिः।
यावच्छक्तो नियम्यासुं मनसैव मनुं जपेत् ॥२६९॥
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्नासां धृत्वा तु मान्त्रिकः ।
प्राणायामत्रयं प्रोक्तं यदन्यन्मनसा कृतम् ॥२७०॥
जपपूजादिकं तस्य दोषमेव व्यपोहति ।
गायत्रीं शिरसा सार्द्धं सप्तव्याहृतिपूर्विकाम् ॥२७१॥
प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिर्जपेत्स इहोत्तमः ।
मध्यमूलाद्यावदग्रमङ्गुष्ठेन निपीड्यते ॥२७२॥
मात्रा सा प्रोच्यते सद्भिर्योगेऽभीष्टं प्रयच्छति ।
जानु प्रदक्षिणीकुर्याद्यावत्कालेन हस्तकः ॥२७३॥
तावत्कालमिता मात्रा स्वनिश्वाससमापि च ।
जघन्यो रविमात्रः स्याज्जिनमात्रस्तु मध्यमः ॥२७४॥
श्रेष्ठः षड्वर्गमात्रः स्याद्योगत्रयसुसाधकः ।
केवले कुम्भके सिद्धे सिद्धिः स्याद्राजयोगजा ॥२७५॥
वीर्यस्तम्भश्च बह्वायुर्वलीपलितनाशनम् ।
पूरके कुम्भके सिद्धे क्रियायोगस्य सिद्धयः ॥२७६॥

तान्त्रिक, वैदिक और यौगिक—तीन प्रकार के प्राणायाम होते हैं। तान्त्रिक प्राणायाम से सिद्धि, वैदिक प्राणायाम से पापनाश और यौगिक प्राणायाम से योगसिद्धि प्राप्त होती है। तान्त्रिक प्राणायाम दो प्रकार का होता है—मातृका प्राणायाम और मन्त्र प्राणायाम। इनमें से मातृका प्राणायाम जप के पहले करना चाहिये। जप के अन्त में यदि इसे किया जाता है, तो इसके फस्वरूप वर्णव्यत्यय दोष होता है, जो सब कुछ नष्ट कर देता है। अतः पहले मातृका प्राणायाम का ही वर्णन सुनो।

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः—इन सोलह स्वरों से बाँयीं नाड़ी से साँस ले। कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं से कुम्भक करे और यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं से दाँयीं नाड़ी से रेचक करे। यथाशक्ति इस प्रकार प्राणायाम करके मन में ही मन्त्रजप करे।

कनिष्ठा, अनामिका एवं अंगूठे से नासिका को पकड़कर मान्त्रिक प्राणायाम भी तीन प्रकार का होता है। किये गये मानसिक जप-पूजन आदि के कारण उत्पन्न दोषों को यह प्राणायाम विनष्ट करता है। सातों व्याहृतियों के पहले ॐ और शिरोमन्त्र लगाकर गायत्री से प्राणायाम करना उत्तम माना गया है। इस गायत्री का रूप इस प्रकार का होता है—ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्। मध्यमा के मूल से अंगुष्ठाग्र को छूने में जितना समय लगता है, उसे एक मात्रा कहते हैं। यही मात्रा योग में अभीष्ट होती है। हाथ से घुटने की प्रदक्षिणा जितनी देरी में होती है, उतने ही समय को मात्रा कहते हैं। इसी मात्रा के अनुसार श्वास-प्रश्वास की क्रिया प्राणायाम में करनी चाहिये। बारह मात्रा का प्राणायाम अधम, चौबीस मात्रा का प्राणायाम मध्यम और छत्तीस मात्रा का प्राणायाम श्रेष्ठ होता है। यह तीनों प्रकार के योगों में सिद्धिप्रद होता है। कुम्भक के सिद्ध होने से राजयोगज सिद्धि प्राप्त होती है; साथ ही वीर्य-स्तम्भन, लम्बी आयु एवं शरीर पर वृद्धावस्था के चिह्नों का विनाश होता है। पूरक एवं कुम्भक के सिद्ध होने पर क्रियायोग सिद्ध होता है।।२६६-२७६।।

पूर्वोक्ता न च शीतोष्णबाधा क्षुत्तृड्भवापि च।
पूरकः कुम्भको रेचो यदा तुल्यः प्रजायते ॥२७७॥
हठयोगस्तदा सिद्धो ह्यणिमाद्यष्टसिद्धये।
ईषत्फलं जघन्ये तु मध्यं मध्ये परेऽखिलम् ॥२७८॥
निरन्तराब्दत्रितयाभ्यासात् सर्वं भवेत् फलम्।
प्राणायामविधिः प्रोक्तो मया तुभ्यं वरानने ॥२७९॥

पूर्वोक्त सिद्धियों के प्राप्त होने पर साथ साधक को जाड़ा, गर्मी, भूख, प्यास से सम्बन्धित भय नहीं होता। पूरक, कुम्भक एवं रेचक यदि बराबर मात्रा में हो जाय तब हठयोग की सिद्धि होती है। इससे अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। इन फलों में पहले को अधम कहा गया है। मध्य वाले को मध्यम और अन्तिम को उत्तम कहा गया है। निरन्तर तीन वर्षों तक अभ्यास करने पर ये फल प्राप्त होते हैं। हे वरानने पार्वति! इस प्रकार आपको प्राणायाम की विधि मैंने बतलायी।।२७७-२७९।।

ऋषिर्गुरुत्वाच्छिरसि वर्णत्वाच्छन्द आनने।
चित्तज्ञा देवतायास्तु हृदये धारणं मतम्॥२८०॥

ऋषि गुरु के समान होते हैं, अतः उन्हें शिर पर धारण करना चाहिये। वर्णरूप होने के कारण छन्द को मुख में धारण करना चाहिये एवं देवता चित्त के ज्ञाता होते हैं; इसलिये उन्हें हृदय में धारण करना चाहिये।।२८०।।

ऋ गताविति धातुस्तु ऋवर्णः प्रापको मतः।
षिः षणार्थस्तु विज्ञानमतस्तत्प्रापकस्तु सः॥२८१॥
छदिर्धातुरितीच्छायामत्र यस्मात्प्रवर्तते।
मुखमिच्छाप्रदं छन्दो मन्त्रार्थच्छादनात्तु वा॥२८२॥
क्रीडार्थको दिविर्धातुः सम्पूर्णं देवतापदम्।
साधकेष्टं ददातीति देवता परिकीर्त्तिता॥२८३॥
रक्षमाणो यदात्मीयहृदयेऽस्ति चिदात्मकः।
तस्मात्तं च नमस्कुर्यान्मुख्याङ्गुष्ठेन संस्पृशेत्॥२८४॥
स्वाहया क्रियते सम्यग्विष्टपाहरणं यतः।
अनामातर्जनीभ्यां सा चाकृष्टाभ्यामिहेष्यते॥२८५॥
शिखा वषट्पदं यच्च शिखयात्मतनुर्ग्रहः।
यस्मात्तस्माद्वषडिति क्रियतेऽङ्गुलिमध्यया॥२८६॥
ग्रहणार्थः कवचधातुर्हुंहस्तेन गृह्यते।
शरीरतस्तु कवचं तर्जन्यानामयाऽपि तत्॥२८७॥
यथार्थज्ञानकृद्वौषट् तन्नेत्राभ्यां प्रजायते।
तस्मात्तदुक्तं तत्र वौषट् तर्जन्याद्यैस्तु तत्स्मृतम्॥२८८॥
एकाक्षत्वात् कुबेरादिदेवेष्वेकं तमुच्चरेत्।
भ्यान्तं विष्ण्वादिके रुद्रादौ तु नेत्रत्रयात्मकम्॥२८९॥
आध्यात्मिकादिरूपं यत्साधकस्य विनीयते।
अविद्याजातमस्त्रं तत्फट् कराभ्यां प्रपञ्च्यते॥२९०॥

गति अर्थ में ऋ धातु ऋवर्ण का अर्थ प्राप्त कराने वाला होता है एवं षि षण अर्थ का वाचक है, जिसका तात्पर्य है—विज्ञान; अतः विज्ञान अर्थात् विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कराने वाले को ऋषि कहा जाता है। इच्छा अर्थ में छदि धातु प्रयुक्त है अर्थात् जिससे प्रवृत्ति होती है, उसे छन्द कहा जाता है। मुख के लिये इच्छाप्रद होने के कारण अथवा मन्त्रों के आवरणस्वरूप होने के कारण उसे छन्द कहा जाता है। 'दिव्' धातु क्रीड़ार्थक है। सम्पूर्ण देवता पद साधकों के अभीष्ट को प्रदान करने वाला है; अतः उसे देवता कहा जाता है। रक्षा करता हुआ वह देवता अपने हृदय में चित् रूप से विद्यमान रहता है; अतः उन्हें प्रणाम करते समय अंगूठे से हृदय का स्पर्श किया जाता है। स्वाहा से संसार का सम्यक् रूप से आहरण किया जाता है, इसीलिये अनामा तर्जनी से न्यास उसे आकृष्ट करने के लिये किया जाता है। शिखा में न्यास वषट् पद से किया जाता है; क्योंकि शिखा से अपने शरीर का ग्रहण किया जाता है; इसलिये वषट् से न्यास मध्यमा अङ्गुली से किया जाता है। कवच धातु ग्रहणार्थक है एवं ग्रहण हाथ से किया जाता है; इसीलिये इसलिये शरीर में कवच का न्यास तर्जनी और अनामिका से किया जाता है। वौषट् यथार्थ ज्ञानप्रद है और वह ज्ञान नेत्रों से होता है; इसीलिये तर्जनी आदि से उसका न्यास किया जाता है। कुबेर आदि देवों को एक ही आँख होने के कारण उनके न्यास में 'नेत्रं' का प्रयोग करना चाहिये। विष्णु आदि द्विनेत्री देवों में 'नेत्राभ्यां' कहना चाहिये एवं रुद्रादि तीन आँखों वाले देवों में 'नेत्रत्रयाभ्याम्' का प्रयोग करना चाहिये। जो साधक आध्यात्मिक आदि रूप में विनियोग करते हैं, वे अविद्याजात 'फट्' से हाथों से न्यास करते हैं।।२८१-२९०।।

प्राणायामं मातृकायाः कृत्वा न्यासान् समाचरेत्।
ते चैकविंशतिः प्रोक्ताः कामनाभेदतोऽपि च ॥२९१॥
अधिकारिविभेदेन नित्यत्वेनापि केनचित्।
देवताभेदतो वापि तद्रहस्यान्निरूप्यते ॥२९२॥

न्यास—मातृकाओं से प्राणायाम करके न्यास करना चाहिये। कामनाभेद से वे न्यास इक्कीस प्रकार के होते हैं। अधिकारीभेद से, नित्यत्वभेद से अथवा देवताभेद से भी कुछ लोग इसके भेद करते हैं; अतः इसके रहस्य का अब निरूपण किया जा रहा है।।२९१-२९२।।

पुरुषे दैवते नित्या केवलं स्वरमातृका।
यन्न्यासादुपचर्याद्या धर्माः सिद्धान्तिसाधके ॥२९३॥
ऋषिर्ब्रह्मा देवता तु मातृकाख्या सरस्वती।
हलो बीजानि गायत्री छन्दः शक्ति स्वराः स्मृताः ॥२९४॥

अव्यक्तं कलिमुद्दिष्टं नियोगोऽभीष्टसिद्धये।
दक्षे करतले तस्य पृष्ठे च करभे तथा ॥२९५॥
अङ्गुष्ठादिष्वथो वामे विपर्यासेन विन्यसेत्।
बिन्दुयुक्तान् क्रमेणैव स्वरान् न्यासोऽयमादिमः ॥२९६॥
अयं चेन्न्यासतो वामः संहारन्यास उच्यते।

पुरुष देवता और नित्याओं में केवल स्वरमातृका से जो न्यास होता है, उससे धर्म और सिद्धान्त की सिद्धि होती है। मातृका न्यास का विनियोग इस प्रकार होता है—ॐ अस्य श्रीमातृकान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, मातृकाख्या सरस्वती देवता, हलो बीजानि, स्वराः शक्तयः, अव्यक्तं कीलकम्, अभीष्टसिद्धये विनियोगः।

अङ्गन्यास इस प्रकार होता है—ॐ ब्रह्म ऋषये नमः शिरसि, ॐ गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, ॐ मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः हृदि, ॐ हल्भ्यो बीजेभ्यो नमो गुह्ये, ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः पादयोः, ॐ अव्यक्ताय कीलकाय नमो नाभौ।

दाहिने हाथ में अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं—इन अष्टमातृकाओं का न्यास दाहिने हाथ के करतल और करपृष्ठ में, मणिबन्ध से कनिष्ठा के मूल तक, हाथ के बाहरी भाग में और अंगुष्ठादि पाँचों अंगुलियों में करना चाहिये। इसके बाद बाँयें हाथ में भी उन्हीं स्थानों में उसी प्रकार ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः—इन आठ मातृकाओं का न्यास करना चाहिये। सइका स्वरूप इस प्रकार होता है—अं नमः—दक्षिणहस्तस्य करतले, आं नमः—दक्षिणहस्तस्य करपृष्ठे, इं नमः—दक्षिणकरभे, ईं नमः—दक्षिणांगुष्ठे, उं नमः—दक्षिणतर्जन्याम्, ऊं नमः—दक्षिणमध्यमायाम्, ऋं नमः—दक्षिणानामिकायां, ॠं नमः—दक्षिणकनिष्ठाङ्गुल्याम्, ऌं नमः—वामहस्तस्य कनिष्ठिकाङ्गुल्याम्, ॡं नमः—वामानामिकायाम्, एं नमः—वाममध्यमायाम्, ऐं नमः—वामतर्जन्याम्, ओं नमः—वामाङ्गुष्ठे, औं नमः—वामकरभे, अं नमः—वामकरपृष्ठे, अः नमः—वामकरतले। इस न्यास को स्थितिन्यास कहा जाता है; अब संहार न्यास का विवेचन किया जाता है।।२९३-२९६।।

पापशत्रुक्षयाद्यर्थं क्रमेणादौ समाचरेत् ॥२९७॥
सविसर्गैः स्वरैर्यस्तु केवलं न्यासवत्कृतः।
सृष्टिन्यासः प्रयोगादौ कर्त्तव्यस्तस्य सिद्धये ॥२९८॥
वामात् करतलात्तत्तु कनिष्ठान्तं तु विन्यसेत्।
अष्टौ स्वराँल्लकारादींस्तथा दक्षतलादपि ॥२९९॥
अकाराद्यन् बिन्दुसर्गयुक्तान् न्यासोऽयमीरितः।
स्थित्यादौ मुनिदेवादिप्राग्वत् कायस्थितावयम् ॥३००॥

पापों और शत्रुओं के विनाश के लिये सेहार न्यास किया जाता है। सृष्टि न्यास दाहिने हाथ से प्रारम्भ किया जाता है और संहार न्यास बाँयें हाथ से प्रारम्भ किया जाता है। विसर्गसहित स्वरों से जो न्यास किया जाता है, उसे सृष्टि न्यास कहते हैं। प्रयोग के पहले सिद्धि के लिये यह न्यास किया जाता है। इसका स्वरूप इस प्रकार होता है—अः नमो दक्षिणकरतले, आः नमो दक्षिणकरपृष्ठे, इः नमो दक्षिणकरभे, ईः नमो दक्षिणाङ्गुष्ठे, उः नमो दक्षिणतर्जन्याम्, ऊः नमो दक्षिणमध्यमायाम्, ऋः नमो दक्षिणा-नामिकायाम्, ॠः नमो दक्षिणकनिष्ठिकायाम्, ऌः नमो वामहस्तस्य कनिष्ठाङ्गुल्याम्, ॡः नमो वामानामिकायाम्, एः नमो वाममध्यमायाम्, ऐः नमो वामतर्जन्याम्, ओः नमो वामाङ्गुष्ठे, औः नमो वामकरभे, अंः नमो वामकरपृष्ठे, अः नमो वामकरतले।

ककारादिणकारान्तान् वर्णान् पञ्चदशैव हि।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं दक्षहस्तस्य पर्वणि ॥३०१॥
न्यसेद्विन्दुयुतान् सर्वान् वामेऽप्येवं तु तादिकान्।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं हस्तयुग्मेऽपि विन्यसेत् ॥३०२॥
युगपत् पादिकान् वर्णान् ब्रूयात्पञ्च नमोऽन्तकान्।
तत्तत्स्थाने करं दत्त्वा करशुद्धिकरस्त्वयम् ॥३०३॥

'क' से 'ण' तक के पन्द्रह वर्णों का न्यास दाहिने हाथ के पन्द्रह पर्वों में करना चाहिये तथा 'त' से 'श' तक के अक्षरों का न्यास बाँयें हाथ के अंगुलिपर्वों में करना चाहिये। ष स ह ळ क्ष—इन पाँच अक्षरों में नमः लगाकर सभी स्थानों पर हाथ रखकर न्यास करना चाहिये। जैसे—कं नमः दक्षिणाङ्गुष्ठमूले, खं नमः दक्षिणाङ्गुष्ठमध्ये, गं नमः दक्षिणाङ्गुष्ठाग्रे, घं नमः दक्षिणतर्जनीमूले, ङं नमः दक्षिणतर्जनीमध्ये, चं नमः दक्षिणतर्जन्यग्रे, छं नमः दक्षिणमध्यमामूले, जं नमः दक्षिणमध्यमामध्ये, झं नमः दक्षिणमध्यमाग्रे, ञं नमः दक्षनामिकामूले, टं नमः दक्षानामिकामध्ये, ठं नमः दक्षानामिकाग्रे, डं नमः दक्षकनिष्ठामूले, ढं नमः दक्षकनिष्ठामध्ये, णं नमः दक्षकनिष्ठाग्रे।

तं नमः वामाङ्गुष्ठमूले, थं नमः वामाङ्गुष्ठमध्ये, दं नमः वामाङ्गुष्ठाग्रे, धं नमः वामतर्जनीमूले, नं नमः वामतर्जनीमध्ये, पं नमः वामतर्जन्यग्रे, फं नमः वाममध्यमा-मूले। बं नमः वाममध्यमामध्ये, भं नमः वाममध्यामाग्रे, मं नमः वामानामिकामूले, यं नमः वामानामिकामध्ये, रं नमः वामानामिकाग्रे, लं नमः वामकनिष्ठामूले, वं नमः वामकनिष्ठामध्ये, शं नमः वामकनिष्ठाग्रे। तदनन्तर षं सं हं ळं क्षं नमो दक्षहस्ते एवं षं सं हं लं क्षं नमो वामहस्ते।।३०१-३०३।।

अंआंमध्ये कवर्गः स्यादिंईंमध्ये चवर्गकः ।
उंऊंमध्ये टवर्गस्तु एंऐंमध्ये तवर्गकः ॥३०४॥
ओंऔंमध्ये पवर्गः स्यादंअः मध्ये तु यादिकाः ।
एभिः सबिन्दुकैरङ्गुल्यादिन्यासो हृदादिकः ॥३०५॥
कर्त्तव्योऽस्यापि ऋष्यादिविनियोगस्य सिद्धये ।
षडङ्गशुद्ध्यै क्रोधादिजातपापनिवृत्तये ॥३०६॥

करन्यास इस प्रकार किया जाता है—

१. अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः
२. इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः
३. उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः
४. एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः
५. ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां नमः
६. अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—

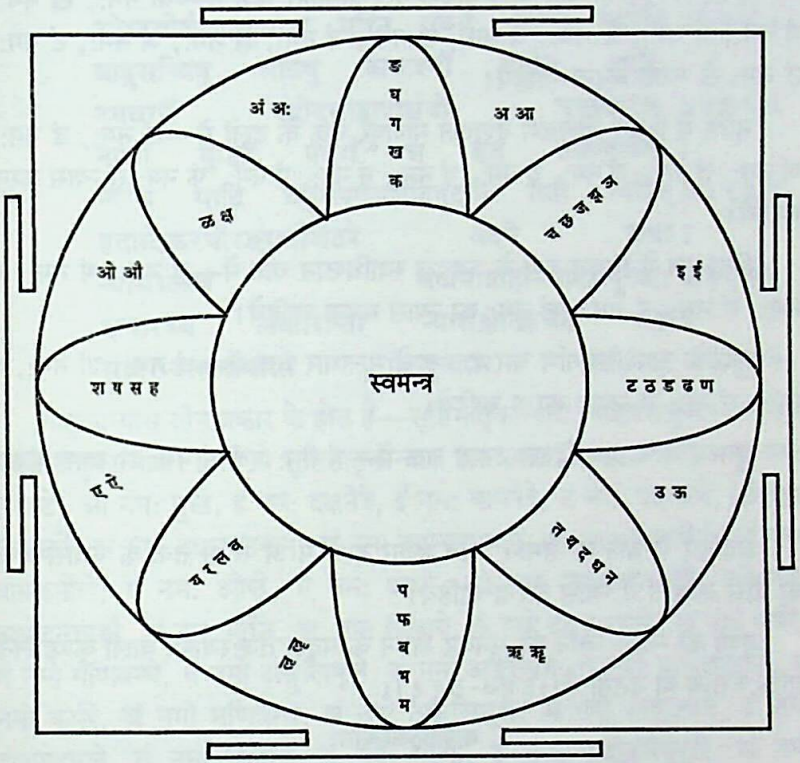
१. अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः
२. इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा
३. उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्
४. एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम्
५. ओं पं फं बं भं मं औं नेत्राय वौषट्
६. अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः अस्त्राय फट्।

ऋष्यादि विनियोग की सिद्धि, षडङ्ग-शुद्धि एवं क्रोध आदि के कारण हुये पाप की निवृत्ति के लिये यह न्यास करना चाहिये।।३०४-३०६।।

तालत्रयेण दिग्बन्धं प्रकुर्यादस्त्रमन्त्रतः ।
ततो ध्यायेत्पद्मवर्णं श्वेतं शिरसि संस्थितम् ॥३०७॥
कर्णिकायां निजं मन्त्रं संस्मरेत् केशराष्टके ।
स्वरयुग्मं तथा पत्रेष्वपि सप्तसु कादिकान् ॥३०८॥
सप्तवर्गानष्टमेऽत्र ळंक्षमेवं विचिन्तयेत् ।
एवं चिन्तयतो रोगो ह्यपमृत्युर्विनश्यति ॥३०९॥

तदनन्तर तीन ताली बजाकर अस्त्र-मन्त्र से दिग्बन्ध करना चाहिये। इसके बाद अपने शिर पर श्वेत वर्ण के कमल का ध्यान करते हुये उसकी कर्णिका में अपने मन्त्र का स्मरण करना चाहिये। उसके आठो केशरों में दो-दो स्वर और पत्रों में कवर्ग,

चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग यवर्ग, शवर्ग एवं ळ क्ष—इस अष्टवर्ग का ध्यान करना चाहिये। ऐसा करने से रोग एवं अपमृत्यु का विनाश होता है।।३०७-३०९।।



अन्तर्मातृकान्यासः

अथान्तर्मातृकान्यासं वक्ष्येऽन्तःसिद्धिकारकम्।
यं कृत्वा योगिनां चित्तं पातके न प्रवर्त्तते ॥३१०॥
मूलाधारे ध्वनिं श्रुत्वा प्रबुद्धा शक्तिकुण्डली।
क्वचित् पावकसङ्काशा सूक्ष्मतेजस्स्वरूपिणी ॥३११॥

अन्तर्मातृका न्यास—अब अन्तःसिद्धि को प्रदान करने वाले अन्तर्मातृका न्यास का वर्णन करता हूँ; जिसके करने से योगियों के चित्त की प्रवृत्ति पापकर्मों में नहीं होती। यहाँ पर अन्तर्मातृका न्यास का विवेचन नहीं किया गया है। अन्य तन्त्रों में इसकी विधि इस प्रकार कही गई है—

कण्ठदेश में स्थित धूम्राभ विशुद्धिचक्र के सोलह दलों में—अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नमः, ऋं नमः, ॠं नमः, ऌं नमः, ॡं नमः, एं नमः,

ऐं नमः, ओं नमः, औं नमः, अं नमः, अः नमः से न्यास करना चाहिये।

हृदय में मूँगे के वर्ण वाले द्वादश दल अनाहत चक्र में—कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः से न्यास करना चाहिये।

नाभि में स्थित नीलवर्ण दशदल मणिपूर चक्र के दलों में—डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः से न्यास करना चाहिये।

लिङ्गमूल में विद्युत् वर्ण के षड्दल स्वाधिष्ठान चक्र में—बं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः का न्यास करना चाहिये।

गुदा के ऊपर स्वर्णाभ चार दल वाले मूलाधार चक्र में—वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः से न्यास करना चाहिये।

भ्रूमध्य में चन्द्राभ द्विदल आज्ञा चक्र में—हं नमः एवं क्षं नमः से न्यास करना चाहिये।

सहस्रार में बर्फ के समान श्वेत हजार दलों में अं से क्षं तक के पचास वर्णों का बीस आवृत्ति में न्यास करना चाहिये।

वर्णों की न्यास-ध्वनि को सुनकर अग्नि के सदृश तेजःस्वरूप वाली कुण्डलिनी शक्ति चैतन्य हो उठती है।।३१०-३११।।

बहिर्मातृकान्यासः

बहिर्न्यासमथो वक्ष्ये पूर्वोक्तब्रह्मरन्ध्रके।
वर्णाम्बुजे सन्ध्यायेन्मातृकाख्यसरस्वतीम् ॥३१२॥
पञ्चाशद्वर्णभेदैर्निजसुवदनदोःपादयुक्कुक्षिवक्षो-
देशां भास्वत् कपर्दाकलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम्।
अक्षस्रक्कुम्भचिन्तालिखितवरकरां त्रीक्षणां पद्मसंस्था-
मक्षाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि ॥३१३॥

बहिर्मातृका न्यास—अब बहिर्मातृका न्यास का विवेचन किया जा रहा है। पूर्व में विवेचित ब्रह्मरन्ध्र में स्थित लाल कमल पर मातृका सरस्वती का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—पचास वर्णभेदों से जिनका सुन्दर मुख, भुजायें एवं पादयुक्त कुक्षि से लेकर वक्षःस्थल तक कौड़ियों एवं मोतियों की माला से विभूषित, माथे पर चन्द्रकला को धारण की हुई, हाथों में रुद्राक्ष की माला, कलश, अभय और वर मुद्रा धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली, कमल के आसन पर विराजमान, अक्षों के आभूषण धारण की

हुई, स्थूल जघन एवं स्तनों वाली भारती को मैं प्रणाम करता हूँ।।३१२-३१३।।

ललाटे मुखवृत्तेऽक्षिश्रवोनासासु गण्डयोः।
ओष्ठयोर्दन्तपङ्क्त्योश्च मूर्ध्नि वक्त्रे न्यसेत् स्वरान्॥३१४॥
बाहुसन्धिषु साग्रेषु कचवर्गौ न्यसेत् सुधीः।
टतवर्गौ पदोदस्तद्वत्पार्श्वयोः पृष्ठदेशतः॥३१५॥
नाभौ कुक्षौ पवर्गं च हृदं सककुत्ततः।
न्यस्य यादि चतुर्वर्णाञ्छादिषट्कं ततो न्यसेत्॥३१६॥
हृदादिकरयोरङ्घ्र्योर्जठरे वदने तथा।
न्यासस्त्वयं वर्णमात्राहीनपाठप्रपूरकः॥३१७॥
क्षमारभ्य अकारान्तो न्यासश्चैत्क्रियते तदा।
संहारन्यासनामासौ बिन्दुन्यास इतीरितः॥३१८॥

मातृकान्यास तीन प्रकार के होत हैं—सृष्टिमातृकान्यास, संहारमातृकान्यास एवं स्थितिमातृकान्यास। इनमें से सृष्टिमातृकान्यास इस प्रकार किया जाता है—अं नमः ललाटे, आं नमः मुखे, इं नमः दक्षनेत्रे, ईं नमः वामनेत्रे, उं नमः दक्षकर्णे, ऊं नमः वामकर्णे, ऋं नमः दक्षनासायाम्, ॠं नमः वामनासायाम्, ऌं नमः दक्षकपोले, ॡं नमः वामकपोले, एं नमः ओष्ठे, ऐं नमः अधरे, ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ, औं नमः अधोदन्तपङ्क्तौ, अं नमः मूर्ध्नि, अः नमः जिह्वाग्रे, कं नमो दक्षबाहुमूले, खं नमो कूपरि, गं नमो मणिबन्धे, घं नमो अङ्गुलिमूले, ङं नमो अङ्गुल्यग्रे, चं नमो वामबाहुमूले, छं नमो कूपरि, जं नमो मणिबन्धे, झं नमो अङ्गुलिमूले, ञं नमो अङ्गुल्यग्रे, टं नमः दक्षपादमूले, ठं नमः जानुनि, डं नमः गुल्फे, ढं नमः पादाङ्गुलिमूले, णं नमः पादाङ्गुल्यग्रे, तं नमः वामपादमूले, थं नमः जानुनि, दं नमः गुल्फे, धं नमः पादाङ्गुलिमूले, नं नमः पादाङ्गुल्यग्रे, पं नमः दक्षपार्श्वे, फं नमः वामपार्श्वे, बं नमः पृष्ठे, भं नमः नाभौ, मं नमः जठरे, यं त्वगात्मने नमः हृदये, रं असृगात्मने नमः दक्षांसे, लं मांसात्मने नमः ककुदि, वं मेदात्मने नमः वामांसे, शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयाद्दक्षभुजाग्रान्तम्, षं मज्जात्मने नमः हृदयाद्वामभुजाग्रान्तम्, सं शुक्रात्मने नमः हृदयाद्दक्षपादाग्रान्तम्, हं आत्मने नमः हृदयाद्वामपादाग्रान्तम्, ळं अन्तरात्मने नमः हृदयान्मस्तकान्तम्, क्षं परमात्मने नमः हृदयान्मुखपर्यन्तम्, अः नमः ललाटे, आः नमः मुखे, इः नमः दक्षनेत्रे, ईः नमः वामनेत्रे।

संहारमातृकान्यास का प्रकार यह है—क्षं परमात्मने नमः हृदयान्मुखपर्यन्तम्, ळं अन्तरात्मने नमः हृदयादुदरपर्यन्तम्, हं आत्मने नमः हृदयादिवामपादपर्यन्तम्, सं शुक्रात्मने नमः हृदयादिदक्षपादपर्यन्तम्, षं मज्जात्मने नमः हृदयाद्वामबाहुपर्यन्तम्, शं

अस्थ्यात्मने नमः हृदयाद्दक्षबाहुपर्यन्तम्, वं मेदात्मने नमः वामस्कन्धे, लं मांसात्मने नमः ककुदि, रं असृगात्मनं नमः दक्षांसे, यं त्वगात्मने नमः हृदये, मं नमः उदरे, भं नमो नाभौ, बं नमः पृष्ठे, फं नमः वामपादे, पं नमः दक्षपादे, नं नमः पादाङ्गुल्यग्रे, धं नमः वामपादाङ्गुष्ठमूले, दं नमः वामपादगुल्फे, थं नमः वामपादजानुनि, तं नमः वाम-पादमूले, णं नमः दक्षपादङ्गुल्यग्रे, ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, डं नमः दक्षपादजानुनि, ठं नमः दक्षपादगुल्फे, टं नमः दक्षपादमूले, ञं नमो वामकराङ्गुल्यग्रे, झं नमो वामकराङ्गुलिमूले, जं नमः वाममणिबन्धे, छं नमः वामकूपरि, चं नमः वामबाहुमूले, ङं नमः दक्षकराङ्गुल्यग्रे, घं नमः दक्षकराङ्गुलिमूले, गं नमः दक्षमणिबन्धे, खं नमः दक्षकूपरि, कं नमः दहबाहुमूले, अः नमः मुखे, अं नमः मूर्ध्नि, औं नमः अधोदन्तपंक्तौ, ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ, ऐं नमः अधरे, एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे, ल्रृं नमः वामकपोले, ल्रं नमः दक्षकपोले, ॠं नमः वामनासापुटे, ऋं नमः दक्ष नासापुटे, ऊं नमः वामकर्णे, उं नमः दक्षकर्णे, ईं नमः वामनेत्रे, इं नमः दक्षनेत्रे, आं नमः मुखवृत्ते, अं नमः ललाटे।

स्थितिमातृका न्यास का स्वरूप इस प्रकार होता है—डं नमः दक्षपादगुल्फे, ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, णं नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, तं नमः वामपादमूले, थं नमः जानुनि, दं नमः गुल्फे, धं नमः वामपादाङ्गुलिमूले, नं नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे, पं नमः दक्षपार्श्वे, फं नमः वामपार्श्वे, बं नमः पृष्ठे, भं नमः नाभौ, मं नमः जठरे, यं त्वगात्मने नमः हृदि, रं असृगात्मने नमः दक्षांसे, लं मांसात्मने नमः ककुदि, वं मेदात्मने नमः वामांसे, शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादिदक्षबाहुपार्श्वे, षं मज्जात्मने नमः हृदयादिवामबाहुपार्श्वे, सं शुक्रात्मने हृदिदक्षिणपादपर्यन्तम्, हं आत्मने नमः हृदिवामपादपर्यन्तम्, ळं अन्तरात्मने नमः हृद्युदरपर्यन्तम्, क्षं परमात्मने नमः हृदादिमुखपर्यन्तम्, अं नमः शिरसि, आं नमः मुखे, इं नमः दक्षनेत्रे, ईं नमः वामनेत्रे, उं नमः दक्षकर्णे, ऊं नमः वामकर्णे, ऋं नमः दक्षनासापुटे, ॠं नमः वामनासापुटे, ऌं नमः दक्षकपोले, ल्रृं नमः वामकपोले, एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे, ऐं नमः अधरोष्ठे, ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ, औं नमः अधोदन्तपंक्तौ, अं नमः मूर्ध्नि, अः नमः मुखे, कं नमः दक्षबाहुमूले, खं नमः कूपरे, गं नमः मणिबन्धे, घं नमः अङ्गुलिमूले, ङं नमः अङ्गुल्यग्रे, चं नमः वामबाहुमूले, छं नमः कूपरे, जं नमः मणिबन्धे, झं नमः अङ्गुलिमूले, ञं नमः अङ्गुल्यग्रे, टं नमः दक्षपादमूले, ठं नमः दक्ष-पादजानुनि।

इस प्रकार के न्यासों को करने से पाठ में वर्ण-मात्राहीनता पूरी होती है। 'क्ष' से आरम्भ करके 'अ' तक यदि न्यास किया जाता है तो उसे ही संहारन्यास कहते हैं और यही बिन्दुन्यास के नाम से भी जाना जाता है।।३१४-३१८।।

वाममार्गे प्रवृत्तानां शक्तिसेवनकारिणाम्।
अन्तर्न्यासात्परं बिन्दुन्यासे स्याच्छुक्रधारणम् ॥३१९॥

यावत्क्लिन्ना भवेच्छक्तिस्तावद्भोगो विधीयते ।

शक्ति का सेवन करने वाले वाममार्गियों को अन्तर्मातृका न्यास करने के बाद बिन्दुन्यास करने से उनका वीर्य-स्तम्भन होता है; क्योंकि जब तक शक्ति क्लिन्न नहीं हो जाती तब तक उन्हें मैथुन करना पड़ता है; इसलिये उनके लिये वीर्यस्तम्भन आवश्यक है।।३१९।।

वामदक्षमार्गेण देवताध्यानम्

वामदक्षिणमार्गेण देवताध्यानमुच्यते ॥३२०॥
अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम् ।
अर्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दवासां वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम् ॥३२१॥

वाम एवं दक्षिण मार्ग से देवता का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटंकं विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम्।
अर्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दवासां वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम्।।

अर्थात् वर्णेश्वरी देवी के अगले दो हाथों में अक्षमाला और हरिण है, पीछे वाले दो हाथों में टंक और पुस्तक हैं। तीन नेत्रों से वे सुशोभित हैं, अर्द्धचन्द्र उनके मौलि पर विराजमान है। लाल कमल के समान उनके वस्त्र हैं। स्तनभार से वे झुकी हुई हैं। ऐसी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।।३२०-३२१।।

शाक्तो मनोरथः पूर्णो विसर्गन्यासमाचरेत् ।
ततो बिन्दुः पतेत्तस्मादतो बिन्दुविसर्गकौ ॥३२२॥
न्यासौ प्रोक्तौ यदा शाक्तवामिनः कौलिकस्य वा ।
शाक्तैस्तृप्तिं विना सर्वं न्यासेनापि विमुच्यते ॥३२३॥
तदाऽसौ निरयं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
इह लोकेऽप्यवंशः स्याद्विहीनो ब्रह्मतेजसा ॥३२४॥
भोगमोक्षधिया वामे पतितुं ये समुद्यताः ।
विना मन्त्रं सर्पमणिं ते ग्रहीतुं समुद्यताः ॥३२५॥
विसर्गमातृकान्यासो भवेत् केवलमातृवत् ।
विशेषस्तु विसर्गान्तो वर्णोच्चारो भवेदिति ॥३२६॥
बिन्दुसर्गयुताण्डादि ठान्तान् वर्णान् स्थितौ न्यसेत् ।
पूर्वोक्ता एव मन्त्राद्याः षडङ्गध्यानमुच्यते ॥३२७॥
सिन्दूरकान्तिममिताभरणान् त्रिनेत्रां
विद्याक्षसूत्रमृगपोतवरान् दधानाम् ।

पार्श्वस्थितां भगवतीमपि काञ्चनाभां
ध्यायेत् कराब्जधृतपुस्तकवर्णमालाम् ॥३२८॥

मनोरथों को पूर्ण करने के लिये शाक्त को विसर्गयुक्त मातृकाओं से न्यास करना चाहिये; क्योंकि इसी के पश्चात् विन्दुपात होता है। अत: शाक्त के लिये विन्दु एवं विसर्ग दोनों के द्वारा न्यास करना कहा गया है।

वाममार्गी अथवा कौल के लिये जिस न्यास को करना अपेक्षित है, उस न्यास को यदि वह नहीं करता है तो शक्ति तृप्त नहीं होती; फलस्वरूप जब तक चन्द्र-सूर्य रहते हैं तब तक वह नरकवास करता है; साथ ही इस संसार में उसकी वंशवृद्धि नहीं होती एवं उसका ब्रह्मतेज भी नष्ट हो जाता है। भोग और मोक्ष के लोभ से वाममार्ग में प्रविष्ट होने के लिये जो प्रयत्नशील होता है, वह मानों मन्त्र के विना सर्पमणि को ग्रहण करने की चेष्टा करता है।

विसर्गयुक्त मातृकाओं से न्यास माता के समान होता है। विशेषकर जब विसर्ग के अन्त में वर्णों का उच्चारण होता है। विन्दु-विसर्ग से युक्त 'ड' से प्रारम्भ करके 'ठ' से अन्त होने वाले पचास वर्णों से पूर्ववर्णित स्थितिन्यास करना चाहिये। अब षडङ्ग ध्यान का वर्णन करता हूँ।

सिन्दूर वर्ण के समान कान्ति वाली, प्रचुर आभरणों वाली, तीन नेत्रों वाली, हाथों में पुस्तक, अक्षमाला, मृग और वरमुद्रा धारण करने वाली, उनके बगल में खड़ी देवी का वर्ण स्वर्णाभ है एवं उनके करकमलों में पुस्तक और वर्णमाला है; ऐसी भगवती का ध्यान करना चाहिये।।३२२-३२८।।

न्यासाः कार्यास्तु वटुभिः स्थितिसंहारसृष्टयः ।
संहारसृष्टिस्थितयो न्यस्यन्ते गृहसेविभिः ॥३२९॥
वानप्रस्थाश्च यतयो सृष्टिस्थितिलयान् क्रमात् ॥३३०॥
न्यासान् कुर्युरिति प्रोक्तो मातृकान्यासविस्तरः ।

ब्रह्मचारियों को स्थिति, संहार और सृष्टिक्रम से न्यास करना चाहिये। गृहस्थों को संहार, सृष्टि एवं स्थितिक्रम से न्यास करना चाहिये। वानप्रस्थों और यतियों को सृष्टि, स्थिति एवं संहारक्रम से न्यास करना चाहिये। इस प्रकार मातृकान्यास का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया।।३२९-३३०।।

कलामातृकान्यासः

वक्ष्ये कलामातृकाया न्यासं तस्य ऋषिः स्मृतः ॥३३१॥
प्रजापतिश्च गायत्री छन्दः स्यादत्र देवता ।
सरस्वती मातृकाख्या नियोगोऽभीष्टसिद्धये ॥३३२॥

तारैः षडङ्गं कुर्वीत ह्रस्वदीर्घान्तरस्थितैः ।
ध्यानं कलामातृकाया न्यासे वक्ष्ये शृणु प्रिये ॥३३३॥
हस्तैः पद्मं रथाङ्गं गुणमथ हरिणं पुस्तकं वर्णमालां
टङ्कं शुभ्रं कपालं स्रवदमृतलसद्धेमकुम्भं वहन्तीम् ।
मुक्ताविद्युत्पयोदस्फटिकमणिजपाबन्धुरैः पञ्चवक्त्रै-
स्त्र्यक्षैर्वक्षोजनम्रां सकलशशिनिभां शारदां तां नमामि ॥३३४॥

अब कलामातृकान्यास का विवेचन किया जा रहा है। इसके ऋषि प्रजापति, छन्द गायत्री एवं देवता मातृका सरस्वती होते हैं; अभीष्ट-सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। विनियोग का स्वरूप इस प्रकार होता है—ॐ अस्य श्रीकलामातृका-न्यासस्य प्रजापतिर्ऋषिः, गायत्री छन्दः, मातृकाख्या सरस्वती देवता अभीष्टसिद्धये विनियोगः।

करन्यास इस प्रकार किया जाता है—अं ॐ आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, इं ॐ ईं तर्जनीभ्यां नमः, उं ॐ ऊं मध्यमाभ्यां नमः, एं ॐ ऐं अनामिकाभ्यां नमः, ओं ॐ औं कनिष्ठाभ्यां नमः, अं ॐ अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

षडङ्ग न्यास इन मन्त्रों से किया जाता है—अं ॐ आं हृदयाय नमः, इं ॐ ईं शिरसे स्वाहा, उं ॐ ऊं शिखायै वषट्, एं ॐ ऐं कवचाय हुम्, ओं ॐ औं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं ॐ अः अस्त्राय फट्।

कलामातृका का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए—हाथों में कमल, रथाङ्ग, हरिण, पुस्तक, अक्षमाला, टंक, शुभ्र कपाल एवं चूते हुये अमृत से सुशोभित स्वर्णकलश को धारण की हुई; मोती, विद्युत्, मेघ, स्फटिक मणि एवं जपापुष्पस्वरूप पाँच मुख वाली, तीन नेत्रों वाली, विशाल स्तनों के भार से झुकी हुई, सम्पूर्ण चन्द्र के समान कान्ति से युक्त शारदा को मैं प्रणाम करता हूँ।।३३१-३३४।।

ध्यात्वैवं तारपूर्वान्तामकाराद्यां च मातृकाम् ।
बिन्दुयुक्तां ङेऽन्तकलानामाढ्यां नमसान्विताम् ॥३३५॥
पूर्वोक्तशुद्धमात्राणां न्यासस्थानेषु विन्यसेत् ।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्याशान्तिस्तथर्द्धिका ॥३३६॥
दीपिका रेचिका चापि मोचिका चापराभिधा ।
सूक्ष्मा सूक्ष्मामृता ज्ञानामृता चाप्यायिनी ततः ॥३३७॥
व्यापिनी व्योमरूपा चानन्ता सृष्टिः समृद्धिका ।
स्मृतिर्मेधा ततः कान्तिर्द्युतिर्लक्ष्मीः स्थिरा स्थितिः ॥३३८॥

सिद्धिर्जरा पालिनी च क्षान्तिरीश्वरिका रतिः।
कामिका वरदा चान्या ह्लादिनी प्रीतिसंयुता ॥३३९॥
दीर्घा तीक्ष्णा तथा रौद्री माया निद्रा च तन्द्रिका।
क्षुधा स्यात्क्रोधिनी पश्चात्क्रियोत्कारी समृत्युका ॥३४०॥
पीता श्वेताऽरुणा पश्चादसिता नतयान्विता।
उक्ता कलामातृकेयं स्थानेऽकारादिके न्यसेत् ॥३४१॥

इस प्रकार ध्यान करके ॐ के साथ अकारादि मातृका को बिन्दुयुक्त करके चतुर्थ्यन्त नाम के पश्चात् नमः लगाकर पूर्वोक्त शुद्ध मात्राओं का न्यासस्थानों में न्यास काना चाहिये। यह कलामातृकान्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ अं निवृत्यै नमः ललाटे, ॐ आं प्रतिष्ठायै नमः मुखवृत्ते, ॐ इं विद्यायै नमः दक्षनेत्रे, ॐ ईं शान्त्यै नमः वामनेत्रे, ॐ उं इन्धिकायै नमः दक्षकर्णे, ॐ ऊं दीपिकायै नमः वामकर्णे, ॐ ऋं रेचिकायै नमः दक्षनासायाम्, ॐ ॠं मोचिकायै नमः वामनासायाम्, ॐ ऌं सूक्ष्मायै नमः दक्षगण्डे, ॐ ॡं सूक्ष्मातीतायै नमः वामगण्डे, ॐ एं अमृतायै नमः ऊर्ध्वोष्ठे, ॐ ऐं ज्ञानायै नमः अधरोष्ठे, ॐ ओं व्योमरूपायै नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ, ॐ औं आप्यायिन्यै नमः अधोदन्तपंक्तौ, ॐ अं व्यापिन्यै नमः शिरसि, ॐ अः अनन्तरूपायै नमः मुखे, ॐ कं सृष्ट्यै नमः दक्षबाहुमूले, ॐ खं वृद्ध्यै नमः दक्षकूपरे, ॐ गं स्मृत्यै नमः दक्षमणिबन्धे, ॐ घं मेधायै नमः दक्षकरतले, ॐ ङं कान्त्यै नमः दक्षकराग्रे, ॐ चं लक्ष्म्यै नमः वामबाहुमूले, ॐ छं धृत्यै नमः वामकूपरे, ॐ जं स्थिरायै नमः वाममणिबन्धे, ॐ झं स्थित्यै नमः वामकरतले, ॐ ञं सिद्ध्यै नमः वामकराग्रे, ॐ टं जरायै नमः दक्षोरुमूले, ॐ ठं पालिन्यै नमः दक्षजानुनि, ॐ डं शान्त्यै नमः दक्षगुल्फे, ॐ ढं ईश्वर्यै नमः दक्षपादे, ॐ णं रत्यै नमः दक्षपादाग्रे, ॐ तं कामिकायै नमः वामोरुमूले, ॐ थं वरदायै नमः वामजानुनि, ॐ दं ह्लादिन्यै नमः वामगुल्फे, ॐ धं प्रीत्यै नमः वामपादतले, ॐ नं दीर्घायै नमः वामपादाग्रे, ॐ पं तीक्ष्णायै नमः दक्षपार्श्वे, ॐ फं रौद्र्यै नमः वामपार्श्वे, ॐ बं मायायै नमः पृष्ठे, ॐ भं निद्रायै नमः नाभौ, ॐ मं तन्द्रिकायै नमः जठरे, ॐ यं क्षुधायै त्वगात्मने नमः हृदि, ॐ रं क्रोधिन्यै असृगात्मने नमः दक्षांसे, ॐ लं क्रियायै मांसात्मने नमः ककुदि, ॐ वं उत्कार्यै मेदात्मने नमः वामांसे, ॐ शं मृत्यवे अस्थ्यात्मने नमः हृदयकराग्रे, ॐ षं पीतायै मज्जात्मने नमः हृदयवामाग्रे, ॐ सं श्वेतायै शुक्रात्मने नमः नाभ्यादिदक्षपादान्तम्, ॐ हं अरुणायै जीवात्मने नमः वामपादान्तम्, ॐळं असितायै परमात्मने नमः हृदादिकुक्षौ, ॐ क्षं सितायै नमः हृदादिमुखे।।३३५-३४१।।

तत्र नादात्मनो जाताः स्वरजास्तु सदाशिवात्।
अक्षमालां पुस्तकं च पाशञ्चापि कपालकम् ॥३४२॥

हस्तैर्दधत्यो ध्येयास्ताः पीतगन्धानुलेपनाः ।
विष्णोरुकारात् सञ्जाताः कचवर्गकला दश ॥३४३॥
पद्महस्तास्तथा रक्ता अक्षमालाधरा वराः ।
विष्णोरुकारात् सञ्जाताष्टतवर्गकला दश ॥३४४॥
श्यामा अभयशङ्खाब्जवरहस्ताः समीरिताः ।
मकारा रुद्रतो जाताः पयवर्गकला नव ॥३४५॥
शरच्चन्द्रनिभा हस्तैरभयं शूलमेव च ।
कपालं च वरन्येया दधत्य इति साधकैः ॥३४६॥
शकारादिकपञ्चानामीश्वरो बिन्दुतो भवेत् ।
अभयं हरिणं टङ्कं वरं च करपल्लवैः ॥३४७॥
दधत्यो रक्तवर्णाश्च ध्येया न्यासे कलात्मके ।

सदाशिव से नादात्मक स्वरों की उत्पत्ति होती है। हाथों में अक्षमाला, पुस्तक, पाश एवं कपाल धारण किये हुये पीले गन्धा का अनुलेप लगाये इन स्वरों का ध्यान करना चाहिये। विष्णु के उकार से क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ—इन दश कलाओं की उत्पत्ति हुई है। इनका ध्यान हाथों में पद्म और अक्षमाला लिये, रक्त वर्ण का करना चाहिये। विष्णु के उकार से ट ठ ढ ण तथा त द ध न—इन दश कलाओं की उत्पत्ति हुई है। श्यामवर्ण इन कलाओं का ध्यान हाथों में अभय, शङ्ख, पद्म और वरमुद्रा लिये करना चाहिये। रुद्र से प फ ब भ म य र ल व—इन नौ कलाओं की उत्पत्ति हुई है। शरच्चन्द्र-सदृश वर्ण वाले इनके स्वरूप का ध्यान हाथों में अभय, शूल, कपाल और वरमुद्रा लिये हुये साधक को करना चाहिये। ईश्वररूपी बिन्दु से श ष स ह क्ष—इन पाँच कलाओं की उत्पत्ति हुई है। कलात्मक न्यास में रक्त वर्ण वाले इन कलाओं का ध्यान हाथों में अभय, हरिण, टंक एवं वरमुद्रा लिये करना चाहिये।।३४२-३४७।।

केशवादिमातृकान्यासः

केशवादिमातृकायाः साध्यो नारायणो मुनिः ॥३४८॥
अमृताद्या तु गायत्रीच्छन्दो लक्ष्मीर्हरिः सुरः ।
द्विरुक्तैः शक्तिश्रीकामैः षडङ्गानि समाचरेत् ॥३४९॥
शङ्खचक्रगदापद्मकुम्भादर्शाब्जपुस्तकम् ।
बिभ्रतं मेघचपलावर्णं लक्ष्मीहरिं भजे ॥३५०॥

केशवादि मातृका के ऋषि नारायण, छन्द अमृता गायत्री एवं देवता श्रीहरि कहे गये हैं। इनका करन्यास इस प्रकार किया जाता है—ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः, श्रीं तर्जनीभ्यां नमः, क्लीं मध्यमाभ्यां नमः, ह्रीं अनामिकाभ्यां नमः, श्रीं कनिष्ठाभ्यां नमः

क्लीं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। षडङ्गन्यास इस प्रकार होता है—ह्रीं हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, क्लीं शिखायै वषट्, ह्रीं कवचाय हुम्, श्रीं नेत्राभ्यां वौषट्, क्लीं अस्त्राय फट्। देवता श्रीहरि का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—विष्णुजी के हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म है तथा लक्ष्मी जी के हाथों में कलश, दर्पण, कमल और पुस्तक है। विष्णु जी मेघ के समान और लक्ष्मी जी बिजली के समान कान्ति से सुशोभित हैं। मैं उन दोनों को प्रणाम करता हूँ।।३४८-३५०।।

शक्तयस्तु प्रियाङ्केषु निषण्णाः सस्मिताननाः।
एवं ध्यात्वा न्यसेच्छक्तिश्रीकामपुटिताक्षराम् ॥३५१॥
तारादिहृदयान्ताश्च केशवाद्याश्च शक्तयः।
भ्यान्ता नमोऽन्ता उच्चार्याः स्थानेऽकारादिके न्यसेत् ॥३५२॥
कलामात्रा तु शाक्तानां नित्योऽयं विष्णुसेवने।
केशवः कीर्तिसंयुक्तः कान्तिर्नारायणान्विता ॥३५३॥
माधवस्तुष्टिसंयुक्तो गोविन्दः पुष्टिसंयुतः।
विष्णुश्च धृतिसंयुक्तः शान्तियुङ्मधुसूदनः ॥३५४॥
त्रिविक्रमः क्रियायुक्तो वामनो दययान्वितः।
श्रीधरो मेधया युक्तो हृषीकेशश्च हर्षया ॥३५५॥
पद्मनाभयुता श्रद्धा लज्जा दामोदरान्विता।
वासुदेवश्च लक्ष्मीयुङ्मधुसूदनसरस्वती ॥३५६॥
प्रद्युम्नः प्रीतिसंयुक्तोऽनिरुद्धो रतिसंयुतः।
चक्री जया गदी दुर्गा शार्ङ्गी तु प्रभयान्वितः ॥३५७॥
खड्गी तु समया युक्तः शङ्खी चण्डीसमन्वितः।
हली वाणीसमायुक्तो मुशली च विलासिनी ॥३५८॥
शूली विजयया युक्तः पाशी विरजयान्वितः।
अङ्कुशी विश्वया युक्तो मुकुन्दो विनयान्वितः ॥३५९॥
नन्दजः सुनदायुक्तो नन्दी सत्यासमन्वितः।
नरः ऋद्ध्या नरकजित्समृद्ध्या शुद्धियुग्घरिः ॥३६०॥
कृष्णो बुद्ध्या भूत्या सत्यो मत्या युक् सात्वतस्स्मृतः।
भूधरः क्लेदिनीयुक्तो विश्वमूर्तिश्च क्लिन्नया ॥३६१॥
वैकुण्ठो वसुधायुक्तो वसुदापुरुषोत्तमौ।
बली तु परया युक्तो बलानुजपरायणे ॥३६२॥
बालसूक्ष्मे वृषघ्नस्तु सन्ध्यायुक्प्रज्ञया वृषः।
हंसः प्रभासमायुक्तो वराहो निशयान्वितः ॥३६३॥

विमलो मेधया युक्तो नृसिंहो विद्युतान्वितः।
केशवाद्या मातृकोक्ता यादियोगश्च पूर्ववत् ॥३६४॥

किञ्चित् मुस्कान के साथ अपने-अपने प्रियतमों के गोद में विराजमान शक्तियों का ध्यान करते हुये शक्ति अर्थात् ह्रीं, श्रीं एवं काम अर्थात् क्लीं से सम्पुटित अक्षरों से इनका न्यास काना चाहिये। न्यास का स्वरूप इस प्रकार होता है—

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अं क्लीं श्रीं ह्रीं केशवकीर्तिभ्यां नमः ललाटे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं आं क्लीं श्रीं ह्रीं नारायणकान्तिभ्यां नमः मुखवृत्ते।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं इं क्लीं श्रीं ह्रीं माधवतुष्टिभ्यां नमः दक्षनेत्रे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईं क्लीं श्रीं ह्रीं गोविन्दपुष्टिभ्यां नमः वामनेत्रे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं उं क्लीं श्रीं ह्रीं विष्णुधृतिभ्यां नमः दक्षकर्णे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऊं क्लीं श्रीं ह्रीं मधुसूदनशान्तिभ्यां नमः वामकर्णे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऋं क्लीं श्रीं ह्रीं त्रिविक्रमक्रियाभ्यां नमः दक्षनासायाम्।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ॠं क्लीं श्रीं ह्रीं वामनदयाभ्यां नमः वामनासायाम्।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऌं क्लीं श्रीं ह्रीं श्रीधरमेधाभ्यां नमः दक्षगण्डे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ॡं क्लीं श्रीं ह्रीं हृषीकेशहर्षाभ्यां नमः वामगण्डे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं एं क्लीं श्रीं ह्रीं पद्मनाभश्रद्धाभ्यां नमः ओष्ठे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं दामोदरलज्जाभ्यां नमः अधरे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ओं क्लीं श्रीं ह्रीं वासुदेवलक्ष्मीभ्यां नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं औं क्लीं श्रीं ह्रीं संकर्षणसरस्वतीभ्यां नमः अधोदन्तपंक्तौ।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अं क्लीं श्रीं ह्रीं प्रद्युम्नप्रीतिभ्यां नमः मस्तके।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अः क्लीं श्रीं ह्रीं अनिरुद्धरतिभ्यां नमः मुखे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कं क्लीं श्रीं ह्रीं चक्रीजयाभ्यां नमः दक्षकरमूले।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं खं क्लीं श्रीं ह्रीं गदीदुर्गाभ्यां नमः दक्षकूर्परे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं गं क्लीं श्रीं ह्रीं शार्ङ्गिप्रभाभ्यां नमः दक्षमणिबन्धे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं घं क्लीं श्रीं ह्रीं खड्गीसत्याभ्यां नमः दक्षाङ्गुलिमूले।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ङं क्लीं श्रीं ह्रीं शङ्खीचण्डाभ्यां नमः दक्षांगुल्यग्रे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं चं क्लीं श्रीं ह्रीं हलीवाणीभ्यां नमः वामकरमूले।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं छं क्लीं श्रीं ह्रीं मुसलीविलासिनीभ्यां नमः वामकूर्परे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जं क्लीं श्रीं ह्रीं शूलीविजयाभ्यां नमः मणिबन्धे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं झं क्लीं श्रीं ह्रीं पाशीविरजाभ्यां नमः वामाङ्गुलिमूले।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ञं क्लीं श्रीं ह्रीं अंकुशीविश्वाभ्यां नमः वामांगुल्यग्रे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं टं क्लीं श्रीं ह्रीं मुकुन्दविनयाभ्यां नमः दक्षपादमूले।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ठं क्लीं श्रीं ह्रीं नन्दजसुनदाभ्यां नमः दक्षजानुनि।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं डं क्लीं श्रीं ह्रीं नन्दीसत्याभ्यां नमः दक्षपादगुल्फे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ढं क्लीं श्रीं ह्रीं नरऋद्धीभ्यां नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं णं क्लीं श्रीं ह्रीं नरकजित्समृद्धिभ्यां नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं तं क्लीं श्रीं ह्रीं हरिशुद्धिभ्यां नमः वामपादमूले।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं थं क्लीं श्रीं ह्रीं कृष्णबुद्धिभ्यां नमः वामपादजानुनि।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं दं क्लीं श्रीं ह्रीं सत्यभूतिभ्यां नमः वामपादगुल्फे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं धं क्लीं श्रीं ह्रीं सात्वतमतिभ्यां नमः वामपादाङ्गुलिमूले।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नं क्लीं श्रीं ह्रीं शौरीक्षमाभ्यां नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं पं क्लीं श्रीं ह्रीं शूररमाभ्यां नमः दक्षपार्श्वे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं फं क्लीं श्रीं ह्रीं जनार्दनोमाभ्यां नमः वामपार्श्वे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं बं क्लीं श्रीं ह्रीं भूधरक्लेदिनीभ्यां नमः पृष्ठे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भं क्लीं श्रीं ह्रीं विश्वमूर्तिक्लिन्नाभ्यां नमः नाभौ।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं मं क्लीं श्रीं ह्रीं वैकुण्ठवसुधाभ्यां नमः हृदि।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं यं क्लीं श्रीं ह्री त्वगात्मने पुरुषोत्तमवसुदाभ्यां नमः हृदि।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं रं क्लीं श्रीं ह्रीं असृगात्मने बलीपराभ्यां नमः दक्षांसे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं लं क्लीं श्रीं ह्रीं मांसात्मने बलानुजपरायणाभ्यां नमः ककुदि।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वं क्लीं श्रीं ह्रीं मेदात्मने बालसूक्ष्माभ्यां नमः वामांसे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शं क्लीं श्रीं ह्रीं अस्थ्यात्मने वृषघ्नसन्ध्याभ्यां नमः हृदादि-दक्षहस्तान्तम्।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं षं क्लीं श्रीं ह्रीं मज्जात्मने वृषप्रज्ञाभ्यां नमः हृदादिवामहस्तान्तं।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सं क्लीं श्रीं ह्रीं शुक्रात्मने हंसप्रभाभ्यां नमः हृदादिदक्षपादान्तम्।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं हं क्लीं श्रीं ह्रीं प्राणात्मने वराहनिशाभ्यां नमः हृदयादिवाम-पादान्तम्।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ळं क्लीं श्रीं ह्रीं जीवात्मने विमलमेधाभ्यां नमः हृदयाद्युदरे।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्षं क्लीं श्रीं ह्रीं क्रोधात्मने नृसिंहविद्युताभ्यां नमः हृदयादिमुखे।

श्रीकण्ठादिमातृकान्यासः

वक्ष्येऽथ शिवभक्तानां श्रीकण्ठादिकमातृकाम्।
मुनिः स्याद्दक्षिणामूर्तिर्गायत्रं छन्द ईरितम्॥३६५॥
अर्धाद्रिजो हरो देवो नियोगः सर्वसिद्धये।
हलो बीजानि गुह्ये तु स्वराञ्छक्तीः पदोर्न्यसेत्॥३६६॥

ह्रस्वदीर्घान्तरे कृत्वा प्राग्वद्वर्गान् ह्रसौं तथा।
षड्दीर्घसंयुतं कृत्वा षडङ्गानि न्यसेत्ततः ॥३६७॥
बन्धूककाञ्चननिभं रुधिराक्षमालाः
पाशाङ्कुशौ च वरदं निजबाहुदण्डैः।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामः ॥३६८॥

अब शिवभक्तों के लिये श्रीकण्ठादि मातृकान्यास का वर्णन करता हूँ। इसके ऋषि दक्षिणामूर्त्ति, छन्द गायत्री एवं देवता अर्द्धनारीश्वर कहे गये हैं; अभीष्टसिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। विनियोग का स्वरूप इस प्रकार होता है—ॐ अस्य श्रींकण्ठादिमातृकान्यासस्य दक्षिणामूर्तिऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, श्रीअर्द्धनारीश्वरो देवता, हलो बीजानि, स्वराः शक्तयः अव्यक्तयः कीलकानि अभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोगः। इसका ऋष्यादि न्यास इस प्रकार किया जाता है—दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः शिरसि, गायत्रीच्छन्दसे नमः मुखे, अर्द्धनारीश्वरो देवतायै नमः हृदये, हलो बीजेभ्यो नमः गुह्ये, स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः पादयोः, अव्यक्तेभ्यः कीलकेभ्यो नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास का स्वरूप इस प्रकार होता है—अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः, उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः, एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः, ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां नमः, अं यं रं लं वं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि न्यास इस प्रकार होता है—अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा, उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्, एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम्, ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं यं रं लं वं अः अस्त्राय फट्।

अर्द्धनारीश्वर का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—मैं सदैव अर्धनारीश्वर के श्रीविग्रह की शरण लेता हूँ। उनका वर्ण बन्धूकपुष्प और सुवर्ण के समान रक्त-पीत मिश्रित है। वह अपनी भुजाओं में सुन्दर अक्षमाला, पाश, अंकुश और वरद मुद्रा धारण किये हुए हैं। अर्द्धचन्द्र उनका आभूषण है। उनके तीन नेत्र हैं।

ह्रसौं ते मातृकामुक्त्वा देवान्ते च समुच्चरेत्।
ङेऽन्तफेऽन्तकतच्छक्तिं नमोऽन्ता मातृकास्थले ॥३६९॥
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राण्यसून् वदेत्।
शक्तिं क्रोधन्तथात्मानं ङेऽन्तं यादिदशस्वपि ॥३७०॥
श्रीकण्ठपूर्णोदर्यौ चानन्तो विरजयान्वितः।
सूक्ष्मेशः शाल्मलीयुक्तौ लोलाक्षीयुक् त्रिमूर्तिकः ॥३७१॥

अमरेशो वर्त्तुलाक्ष्या वर्षीशो दीर्घघोणया ।
भारभूतिर्दीर्घमुख्या तिथीशो गोमुखीयुतः ॥३७२॥
स्थाण्वीशो दीर्घजिह्वायुग्हरः कुण्डोदरीयुतः ।
झिण्टीशश्चोर्ध्वकेशी च भौतिको विकृतास्यया ॥३७३॥
सद्यो ज्वालामुखी चानुग्रहश्चोल्कामुखीयुतः ।
अक्रूरः श्रीमुखी महासेनो विद्यामुखीयुतः ॥३७४॥
क्रोधनश्च महाकाल्या चण्डेशश्च सरस्वती ।
पञ्चान्तकः सर्वसिद्धिगौरीयुक्तः प्रकीर्तितः ॥३७५॥
शिवोत्तमेशो विन्यस्यो युक्तस्त्रैलोक्यविद्यया ।
एकरुद्रो मन्त्रशक्त्या कूर्मेशश्चाष्टशक्तियुक् ॥३७६॥
एकनेत्रो भूतमात्रायुक्तः स्याच्चतुराननः ।
लम्बोदर्या युतः प्रोक्तस्त्वजेशो द्राविणीयुतः ॥३७७॥
सर्वेशो नागरीयुक्तः सोमेशः खेचरीयुतः ।
लाङ्गलीशश्च मञ्जर्य्या दारुकेशश्च रूपिणी ॥३७८॥
वारिण्या चार्धनारीशो ह्युमाकान्तः पुनर्युतः ।
काकोदर्या तथाषाढी पूतनायुक्त ईरितः ॥३७९॥
चण्डीशो भद्रकालीयुगत्रीशो योगिनीयुतः ।
मीनेशः शङ्खिनीयुक्तो मेषेशस्तर्जनीयुतः ॥३८०॥
लोहितः कालरात्र्या च शिखीशः कुब्जिनीयुतः ।
छगलण्डः कपर्द्दिन्या द्विदण्डीशश्च वज्रया ॥३८१॥
महाकालो जयायुक्तो बालीशः सुमुखेश्वरी ।
भुजङ्गो रेचनीयुक्तः पिनाकी माधवीयुतः ॥३८२॥
खड्गीशो वारुणीयुक्तो बकेशो वायवीयुतः ।
श्वेतो रक्षोविदारिण्या भृगुः सहजया युतः ॥३८३॥
नकुलीशश्च लक्ष्मीयुक् शिवेशो व्यापिनीयुतः ।
संवर्त्तको महामायायुक्त एतास्तु मातृकाः ॥३८४॥
श्रीकण्ठाख्यादिमहेशान्तं पदं ङेऽन्तं प्रयोजयेत् ।
सर्वे रुद्राः स्मृता रक्ता धृतशूलकपालकाः ॥३८५॥
शक्तयो रुद्रपीठस्थाः सिन्दूरारुणविग्रहाः ।
रक्तोत्पलकपालाभ्यामलंकृतकराम्बुजाः ॥३८६॥

श्रीकण्ठादि मातृकान्यास न्यास इस प्रकार किया जाता है—

ह्सौः अं श्रीकण्ठेशपूर्णोदरीभ्यां नमः।
ह्सौः आं अनन्तेशविरजाभ्यां नमः।
ह्सौः इं सूक्ष्मेशशाल्मलीभ्यां नमः।
ह्सौः ईं त्रिमूर्तीशलोलाक्षीभ्यां नमः।
ह्सौः उं अमरेशवर्तुलाक्षीभ्यां नमः।
ह्सौः ऊं वर्षीशदीर्घघोणाभ्यां नमः।
ह्सौः ऋं भारभूतीशदीर्घमुखीभ्यां नमः।
ह्सौः ॠं तिथीशगोमुखीभ्यां नमः।
ह्सौः ऌं स्थाण्वीशदीर्घजिह्वाभ्यां नमः।
ह्सौः ॡं हरेशकुण्डोदरीभ्यां नमः।
ह्सौः एं झिण्टीशोर्ध्वकेशीभ्यां नमः।
ह्सौः ऐं भौतिकेशविकृतमुखीभ्यां नमः।
ह्सौः ओं सद्योजातेशज्वालामुखीभ्यां नमः।
ह्सौः औं अनुग्रहेशोल्कामुखीभ्यां नमः।
ह्सौः अं अक्रूरेशश्रीमुखीभ्यां नमः।
ह्सौः अः महासेनेशविद्यामुखीभ्यां नमः।
ह्सौः कं क्रोधीशमहाकालीभ्यां नमः।
ह्सौः खं चण्डेशसरस्वतीभ्यां नमः।
ह्सौः गं पञ्चान्तकेशगौरीभ्यां नमः।
ह्सौः घं शिवोत्तमेशत्रैलोक्यविद्याभ्यां नमः।
ह्सौः ङं एकरुद्रेशमन्त्रशक्तिभ्यां नमः।
ह्सौः चं कूर्मेशाष्टशक्तिभ्यां नमः।
ह्सौः छं एकनेत्रेशभूतमातृभ्यां नमः।
ह्सौः जं चतुराननेशलम्बोदरीभ्यां नमः।
ह्सौः झं अजेशद्राविणीभ्यां नमः।
ह्सौः ञं सर्वेशनागरीभ्यां नमः।
ह्सौः टं सोमेशखेचरीभ्यां नमः।
ह्सौः ठं लाङ्गलीशमञ्जरीभ्यां नमः।
ह्सौः डं दारुकेशरूपिणीभ्यां नमः।
ह्सौः ढं अर्धनारीशवारिणीभ्यां नमः।
ह्सौः णं उमाकान्तेशकाकोदरीभ्यां नमः।
ह्सौः तं आषाढ़ीशपूतनाभ्यां नमः।

ह्सौः थं दण्डीशभद्रकालीभ्यां नमः।
ह्सौः दं अत्रीशयोगिनीभ्यां नमः।
ह्सौः धं मीनेशशंखिनीभ्यां नमः।
ह्सौः नं मेषेशतर्जनीभ्यां नमः।
ह्सौः पं लोहितेशकालरात्रिभ्यां नमः।
ह्सौः फं शिखीशकुब्जिनीभ्यां नमः।
ह्सौः बं छगलण्डकपर्दिनीभ्यां नमः।
ह्सौः भं द्विरण्डीशवज्रिणीभ्यां नमः।
ह्सौः मं महाकालेशजयाभ्यां नमः।
ह्सौः यं बालीशसुमुखेश्वरीभ्यां नमः।
ह्सौः रं भुजङ्गेशरेवतीभ्यां नमः।
ह्सौः लं पिनाकीशमाधवीभ्यां नमः।
ह्सौः वं खड्गीशवारुणीभ्यां नमः।
ह्सौः शं बकेशवायवीभ्यां नमः।
ह्सौः षं श्वेतेशरक्षोविदारिणीभ्यां नमः।
ह्सौः सं भृग्वीशसहजाभ्यां नमः।
ह्सौः हं नकुलीशलक्ष्मीभ्यां नमः।
ह्सौः लं शिवेशव्यापिनीभ्यां नमः।
ह्सौः क्षं संवर्तकेशमहामायाभ्यां नमः।

सभी रुद्रों का वर्ण लाल है। सभी के हाथों में त्रिशूल और कपाल है। सभी शक्तियाँ रुद्रों की गोद में विराजमान हैं। सभी सिन्दूर-जैसे लाल वर्ण की हैं। शक्तियों के हाथों में लाल कमल और कपाल है।।३६९-३८६।।

भुवनेशीबीजमातृकान्यासः

येनोपास्या महाविद्या दक्षै तस्याधिकारिता।
भुवनेशी बीजपूर्वमातृकान्यसने सुराः ॥३८७॥
ऋषिः शक्तिस्तु गायत्री छन्दः स्यान्मातृकामयी।
भुवनेशी देवताऽथ नियोगोऽभीष्टसिद्धये ॥३८८॥
ह्रस्वदीर्घान्तरगतैः षड्वर्गैर्दीर्घसंयुतैः।
प्राग्वद्धरे षडङ्गं स्यादङ्गुष्ठादि तथैव च ॥३८९॥
उद्यत्कोटिदिवाकरप्रतिनिभोत्तुङ्गोरुपीनस्तनीं
बद्धार्धेन्दुकिरीटहाररशनामञ्जीरसंशोभिता।

बिभ्राणा करपङ्कजैर्जपवटीं पाशाङ्कुशौ पुस्तकं
दिश्यान्नो जगदीश्वरी त्रिनयना पद्मे निषण्णा सुखम् ॥३९०॥

भुवनेश्वरी बीजन्यास—जिसकी उपासना से दश महाविद्याओं की साधना का अधिकार प्राप्त होता है, उस भुवनेश्वरी के बीजपूर्वक मातृकान्यास में देवगण तत्पर रहते हैं। प्रत्येक मातृका के पहले ह्रीं और बाद में नमः लगाकर न्यास करना ही भुवनेश्वरी बीजन्यास कहलाता है। इसके ऋषि शक्ति हैं, छन्द मातृका गायत्री है एवं देवता भुवनेशी हैं। अभीष्टसिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसका करन्यास इस प्रकार किया जाता है—अं कं खं गं घं ङं आं ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः, उं टं ठं डं ढं णं ऊं ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः, एं तं थं दं धं नं ऐं ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः, ओं पं फं बं भं मं औं ह्रौं कनिष्ठाभ्यां नमः, अं यं रं लं वं शं षं सं हं अः ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि न्यास का स्वरूप इस प्रकार होता है—अं कं खं गं घं ङं आं ह्रां हृदयाय नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं ह्रीं शिरसे स्वाहा, उं टं ठं डं ढं णं ऊं ह्रूं शिखायै वषट्, एं तं थं दं धं नं ऐं ह्रैं कवचाय हुम्, ओं पं फं बं भं मं औं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं यं रं लं वं शं षं सं हं अः ह्रः अस्त्राय फट्।

इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—करोड़ों उदीयमान सूर्य के समान आभा वाली, लम्बी जङ्घाओं वाली, स्थूल स्तनों वाली, किरीट में बद्ध अर्द्धचन्द्र, हार, कमरबन्द एवं नूपुर से शोभायमान, करकमलों में जपमाला, पाश, अंकुश और पुस्तक धारण करने वाली, कमल पर सुखपूर्वक आसीन तीन नयनों से युक्त जगत् की स्वामिनी भुवनेश्वरी हमलोगों की रक्षा करें।।३८७-३९०।।

लज्जाबीजं पूर्वमुक्त्वा मातृकान्यास एव हि।
भुवनेशी मातृकाणां न्यासो नापत्यसाधने ॥३९१॥

ध्यान करने के पश्चात् शरीर के तत्तत् अंगों में इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ह्रीं अं नमः ललाटे, ह्रीं आं नमः मुखवृत्ते, ह्रीं इं नमः दक्षनेत्रे, ह्रीं ईं नमः वामनेत्रे, ह्रीं उं नमः दक्षकर्णे, ह्रीं ऊं नमः वामकर्णे, ह्रीं ऋं नमः दक्षनासापुटे, ह्रीं ॠं नमः वामनासापुटे, ह्रीं ऌं नमः दक्षकपोले, ह्रीं ॡं नमः वामकपोले, ह्रीं एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे, ह्रीं ऐं नमः अधरोष्ठे, ह्रीं ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ, ह्रीं औं नमः अधोदन्तपंक्तौ, ह्रीं अं नमः जिह्वाग्रे, ह्रीं अः नमः कण्ठे, ह्रीं कं नमः दक्षबाहुमूले, ह्रीं खं नमः दक्षकूपरे, ह्रीं गं नमः दक्षमणिबन्धे, ह्रीं घं नमः दक्षकराङ्गुलिमूले, ह्रीं ङं नमः दक्षकराङ्गुल्यग्रे, ह्रीं चं नमः वामबाहुमूले, ह्रीं छं नमः वामकूपरि, ह्रीं जं नमः वाममणिबन्धे, ह्रीं झं नमः वामकराङ्गुलिमूले, ह्रीं ञं नमः वामकराङ्गुल्यग्रे, ह्रीं टं नमः दक्षोरुमूले, ह्रीं ठं नमः

दक्षजानुनि, ह्रीं डं नमः दक्षगुल्फे, ह्रीं ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, ह्रीं णं नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, ह्रीं तं नमः वामोरुमूले, ह्रीं थं नमः वामजानुनि, ह्रीं दं नमः वामगुल्फे, ह्रीं धं नमः वामपादाङ्गुलिमूले, ह्रीं नं नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे, ह्रीं पं नमः दक्षपार्श्वे, ह्रीं फं नमः वामपार्श्वे, ह्रीं बं नमः पृष्ठे, ह्रीं भं नमः नाभौ, ह्रीं मं नमः जठरे, ह्रीं यं नमः हृदये, ह्रीं रं नमः दक्षकुक्षौ, ह्रीं लं नमः गलपृष्ठे, ह्रीं वं नमः वामकुक्षौ, ह्रीं शं नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्, ह्रीं षं नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्, ह्रीं सं नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्, ह्रीं हं नमः हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्, ह्रीं ळं नमः कट्यादिपादाङ्गुल्यन्तम्, ह्रीं क्षं नमः कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम्। अपत्य-साधन के लिये यह न्यास नहीं करना चाहिये।।३९१।।

श्रीलक्ष्मीबीजमातृकान्यासः

श्रीबीजपूर्वकः कार्यो लक्ष्मीकामैर्गृहस्थितैः।
ऋषिर्भृगुश्च गायत्रीच्छन्दो मातृस्वरूपिणी ॥३९२॥
लक्ष्मीस्तु देवता प्रोक्ता हरस्थाने शरौ कुरु।
न्यासार्थं तु षडङ्गादि शेषं श्रीबीजपूर्वकम् ॥३९३॥
विद्युद्दामसमप्रभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शुण्डादण्डसमुद्धृतामृतघटैरासिच्यमानामिमाम्।
बिभ्राणां करपङ्कजैर्जपवटीं पद्मद्वयं पुस्तकं
भास्वद्रत्नसमुज्ज्वलां कुचनतां ध्यायेज्जगत्स्वामिनीम् ॥३९४॥

श्रीलक्ष्मीबीज मातृकान्यास—जो गृहस्थ लक्ष्मी अर्थात् धन की कामना से पूजन करना चाहते हैं, उन्हें श्रीबीज से मातृकान्यास करना चाहिये। इसके ऋषि भृगु, छन्द गायत्री एवं देवता मातृकास्वरूपिणी लक्ष्मी कही गई हैं। इसका करन्यास इस प्रकार है—अं कं खं गं घं ङं आं श्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं श्रीं तर्जनीभ्यां नमः, उं टं ठं डं ढं णं ऊं श्रूं मध्यमाभ्यां नमः, एं तं थं दं धं नं ऐं श्रैं अनामिकाभ्यां नमः, ओं पं फं बं भं मं औं श्रौं कनिष्ठाभ्यां नमः, अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं श्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि न्यास इस प्रकार किया जाता है—अं कं खं गं घं ङं आं श्रां हृदयाय नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं श्रीं शिरसे स्वाहा, उं टं ठं डं ढं णं ऊं श्रूं शिखायै वषट्, एं तं थं दं धं नं ऐं श्रैं कवचाय हुम्, ओं पं फं बं भं मं औं श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अस्त्राय फट्।

लक्ष्मीबीजमातृका न्यास इस प्रकार किया जाता है—श्रीं अं नमः ललाटे, श्रीं आं नमः मुखवृत्ते, श्रीं इं नमः वामनेत्रे, श्रीं उं नमः दक्षकर्णे, श्रीं ऊं नमः वामकर्णे, श्रीं

ऋं नमः दक्षनासापुटे, श्रीं ॠं नमः वामनासापुटे, श्रीं लृं नमः दक्षकपोले, श्रीं ॡं नमः वामकपोले, श्रीं एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे, श्रीं ऐं नमः अधरोष्ठे, श्रीं ओं नमः ऊर्ध्वदन्त-पंक्तौ, श्रीं औं नमः अधोदन्तपंक्तौ, श्रीं अं नमः जिह्वाग्रे, श्रीं अः नमः कण्ठे, श्रीं कं नमः दक्षबाहुमूले, श्रीं खं नमः दक्षकूपरे, श्रीं गं नमः दक्षमणिबन्धे, श्रीं घं नमः दक्षकराङ्गुलिमूले, श्रीं ङं नमः दक्षकराङ्गुल्यग्रे, श्रीं चं नमः वामबाहुमूले, श्रीं छं नमः वामकूपरे, श्रीं जं नमः वाममणिबन्धे, श्रीं झं नमः वामकराङ्गुलिमूले, श्रीं ञं नमः वामकराङ्गुल्यग्रे, श्रीं टं नमः दक्षोरुमूले, श्रीं ठं नमः दक्षजानुनि, श्रीं डं नमः दक्षगुल्फे, श्रीं ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, श्रीं णं नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, श्रीं तं नमः वामोरुमूले, श्रीं थं नमः वामजानुनि, श्रीं दं नमः वामगुल्फे, श्रीं धं नमः वामपादाङ्गुलिमूले, श्रीं नं नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे, श्रीं पं नमः दक्षपार्श्वे, श्रीं फं नमः वामपार्श्वे, श्रीं बं नमः पृष्ठे, श्रीं भं नमः नाभौ, श्रीं मं नमः जठरे, श्रीं यं नमः हृदये, श्रीं रं नमः दक्षकुक्षौ, श्रीं लं नमः गलपृष्ठे, श्रीं वं नमः वामकुक्षौ, श्रीं शं नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्, श्रीं षं नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्, श्रीं सं नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्, श्रीं हं नमः हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्, श्रीं लं नमः कट्यादिपादाङ्गुल्यन्तम्, श्रीं क्षं नमः कट्यादि-ब्रह्मरन्ध्रान्तम्।

इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—जगत्स्वामिनी लक्ष्मी जी का ध्यान करता हूँ। विद्युत्तरंगों के समान कान्ति वाली, हिमालय पर्वत के सदृश श्वेत वर्ण वाले शुण्डरूपी दण्डस्वरूप चार भुजाओं द्वारा उठाये गये अमृतकलशों अभिषिक्त होने वाली, करकमलों में जपवटी, दो कमल एवं पुस्तक धारण करने वाली, देदीप्यमान रत्नों से प्रकाशमान होने वाली, स्तनभार से झुकी हुई संसार की अधिष्ठात्री देवी का मैं ध्यान करता हूँ।।३९२-३९४।।

कामबीजमातृकान्यासः

कामिनीमात्रसिद्ध्यर्थं कामबीजादिपूर्वकम्।
कुर्याच्च मातृकान्यासं मुनिः सम्मोहनः स्मृतः ॥३९५॥
गायत्रीच्छन्द उद्दिष्टं देवता मातृकामयी।
सम्मोहनी महादेवी पूर्वयुक्त्या षडङ्गकम् ॥३९६॥
बालार्ककोटिरुचिरां स्फटिकाक्षमालां
कोदण्डमिक्षुजनितं स्मरपञ्चबाणान्।
विद्यां च हस्तकमलैर्दधतीं त्रिनेत्रां
ध्यायेत्समस्तजननीं नवचन्द्रचूडाम् ॥३९७॥

कामबीजादिपूर्वक न्यास—वाञ्छित स्त्री की प्राप्ति के लिये 'क्लीं' कामबीज

के सहित मातृकाओं से न्यास करना चाहिये। इस न्यास के ऋषि सम्मोहन, छन्द गायत्री एवं देवता मातृकामयी सम्मोहनी हैं। इसका करन्यास: इस प्रकार होता है— अं कं खं गं घं ङं आं क्लां अंगुष्ठाभ्यां नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं क्लीं तर्जनीभ्यां नमः, उं टं ठं डं ढं णं ऊं क्लूं मध्यमाभ्यां नमः, एं तं थं दं धं नं ऐं क्लैं अनामिकाभ्यां नमः, ओं पं फं बं भं मं औं क्लौं कनिष्ठाभ्यां नमः, अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं क्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। साथ ही इन मन्त्रों से हृदयादि न्यास करना चाहिये— अं कं खं गं घं ङं आं क्लां हृदयाय नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं क्लीं शिरसे स्वाहा, उं टं ठं डं ढं णं ऊं क्लूं शिखायै वषट्, एं तं थं दं धं नं ऐं क्लैं कवचाय हुम्, ओं पं फं बं भं मं औं क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अस्त्राय फट्।

न्यास का स्वरूप इस प्रकार होता है—क्लीं अं नमः ललाटे, क्लीं आं नमः मुखवृत्ते, क्लीं इं नमः दक्षनेत्रे, क्लीं ईं नमः वामनेत्रे, क्लीं उं नमः दक्षकर्णे, क्लीं ऊं नमः वामकर्णे, क्लीं ऋं नमः दक्षनासापुटे, क्लीं ॠं नमः वामनासापुटे, क्लीं ऌं नमः दक्षकपोले, क्लीं ॡं नमः वामकपोले, क्लीं एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे, क्लीं ऐं नमः अधरोष्ठे, क्लीं ओं नमः ऊर्ध्व-दन्तपंक्तौ, क्लीं औं नमः अधोदन्तपंक्तौ, क्लीं अं नमः जिह्वाग्रे, क्लीं अः नमः कण्ठे, क्लीं कं नमः दक्षबाहुमूले, क्लीं खं नमः दक्षकूर्परे, क्लीं गं नमः दक्षमणिबन्धे, क्लीं घं नमः दक्षाङ्गुलिमूले, क्लीं ङं नमः दक्षाङ्गुल्यग्रे, क्लीं चं नमः वामबाहुमूले, क्लीं छं नमः वामकूर्परे, क्लीं जं नमः वाममणिबन्धे, क्लीं झं नमः वामाङ्गुलिमूले, क्लीं ञं नमः वामकराङ्गुल्यग्रे, क्लीं टं नमः दक्षोरुमूले, क्लीं ठं नमः दक्षजानुनि, क्लीं डं नमः दक्षगुल्फे, क्लीं ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, क्लीं णं नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, क्लीं तं नमः वामोरुमूले, क्लीं थं नमः वामजानुनि, क्लीं दं नमः वामगुल्फे, क्लीं धं नमः वामपादाङ्गुलिमूले, क्लीं नं नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे, क्लीं पं नमः दक्षपार्श्वे, क्लीं फं नमः वामपार्श्वे, क्लीं बं नमः पृष्ठे, क्लीं भं नमः नाभौ, क्लीं मं नमः जठरे, क्लीं यं नमः हृदये, क्लीं रं नमः दक्षकुक्षौ, क्लीं लं नमः गलपृष्ठे, क्लीं वं नमः वामकुक्षौ, क्लीं शं नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्, क्लीं षं नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्, क्लीं सं नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्, क्लीं हं नमः हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्, क्लीं ळं नमः कट्यादिपादाङ्गुल्यन्तम्, क्लीं क्षं नमः कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम्।

इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—मैं सम्मोहिनी देवी का ध्यान करता हूँ। इनका वर्ण उदीयमान करोड़ों सूर्य के समान सुन्दर, करकमलों में स्फटिक की माला, ईख का धनुष, काम के पाँच बाण और विद्या धारण करने वाली, तीन नेत्रों वाली, नूतन चन्द्रमा को अपने चूडा में धारण करने वाली, समस्त जगत् की मातास्वरूपा देवी का ध्यान करता हूँ।।३९५-३९७।।

शक्तिश्रीकामबीजमातृकान्यासः

शक्तिश्रीकामबीजानां मातृकान्यासतो नृणाम्।
शत्रुत्वाद्या मन्त्रदोषा नश्यन्ति बहुवर्णिताः ॥३९८॥
महासम्मोहन ऋषिर्गायत्रीच्छन्द ईरितम्।
सम्मोहनीनाम देवी न्यासः प्राङ्मातृकासमः ॥३९९॥
ध्यायेयमक्षवलयेक्षुशरासपाश-
पद्मद्वयाङ्कुशवरान्नव पुस्तकं च।
आबिभ्रतीं नवभजैररुणां कुचार्त्तां
सम्मोहनीं त्रिनयनां नवचन्द्रचूडाम् ॥४००॥

शक्तिश्रीकामबीज न्यास—मन्त्रों के शत्रुत्वादि बहुत दोषों का विनाश 'ह्रीं श्रीं क्लीं' के सहित मातृकान्यास से होता है। इस न्यास के ऋषि महासम्मोहन, छन्द गायत्री एवं देवी सम्मोहनी हैं। इसके करन्यास का स्वरूप इस प्रकार है—अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः, उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः, एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः, ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां नमः, अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। इसी प्रकार अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा, उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्, एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम्, ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् एवं अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अस्त्राय फट् से अंगन्यास किया जाता है।

मातृकाओं का अंगों में न्यास इस प्रकार किया जाता है—ह्रीं श्रीं क्लीं अं नमः ललाटे, ह्रीं श्रीं क्लीं आं नमः मुखवृत्ते, ह्रीं श्रीं क्लीं इं नमः दक्षनेत्रे, ह्रीं श्रीं क्लीं ईं नमः वामनेत्रे, ह्रीं श्रीं क्लीं उं नमः दक्षकर्णे, ह्रीं श्रीं क्लीं ऊं नमः वामकर्णे, ह्रीं श्रीं क्लीं ऋं नमः दक्षनासापुटे, ह्रीं श्रीं क्लीं ॠं नमः वाम-नासापुटे, ह्रीं श्रीं क्लीं ऌं नमः दक्षकपोले, ह्रीं श्रीं क्लीं ॡं नमः वामकपोले, ह्रीं श्रीं क्लीं एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे, ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं नमः अधरोष्ठे, ह्रीं श्रीं क्लीं ओं नमः ऊर्ध्व-दन्तपंक्तौ, ह्रीं श्रीं क्लीं औं नमः अधोदन्तपंक्तौ, ह्रीं श्रीं क्लीं अं नमः जिह्वाग्रे, ह्रीं श्रीं क्लीं अः नमः कण्ठे, ह्रीं श्रीं क्लीं कं नमः दक्षबाहुमूले, ह्रीं श्रीं क्लीं खं नमः दक्षकूर्परि, ह्रीं श्रीं क्लीं गं नमः दक्षमणिबन्धे, ह्रीं श्रीं क्लीं घं नमः दक्षाङ्गुलिमूले, ह्रीं श्रीं क्लीं ङं नमः दक्षाङ्गुल्यग्रे, ह्रीं श्रीं क्लीं चं नमः वामबाहुमूले, ह्रीं श्रीं क्लीं छं नमः वामकूर्परि, ह्रीं श्रीं क्लीं जं नमः वाममणिबन्धे, ह्रीं श्रीं क्लीं झं नमः वामाङ्गुलिमूले, ह्रीं श्रीं क्लीं ञं नमः वामाङ्गुल्यग्रे, ह्रीं श्रीं क्लीं टं नमः दक्षोरुमूले, ह्रीं श्रीं क्लीं ठं नमः दक्षजानुनि, ह्रीं श्रीं क्लीं डं नमः दक्षगुल्फे,

ह्रीं श्रीं क्लीं ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, ह्रीं श्रीं क्लीं णं नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, ह्रीं श्रीं क्लीं तं नमः वामोरुमूले, ह्रीं श्रीं क्लीं थं नमः वामजानुनि, ह्रीं श्रीं क्लीं दं नमः वामगुल्फे, ह्रीं श्रीं क्लीं धं नमः वामाङ्गुलिमूले, ह्रीं श्रीं क्लीं नं नमः वामाङ्गुल्यग्रे, ह्रीं श्रीं क्लीं पं नमः दक्षपार्श्वे, ह्रीं श्रीं क्लीं फं नमः वामपार्श्वे, ह्रीं श्रीं क्लीं बं नमः पृष्ठे, ह्रीं श्रीं क्लीं भं नमः नाभौ, ह्रीं श्रीं क्लीं मं नमः जठरे, ह्रीं श्रीं क्लीं यं नमः हृदये, ह्रीं श्रीं क्लीं रं नमः दक्षकुक्षौ, ह्रीं श्रीं क्लीं लं नमः गलपृष्ठे, ह्रीं श्रीं क्लीं वं नमः वामकुक्षौ, ह्रीं श्रीं क्लीं शं नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्, ह्रीं श्रीं क्लीं षं नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्, ह्रीं श्रीं क्लीं सं नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्, ह्रीं श्रीं क्लीं हं नमः हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्, ह्रीं श्रीं क्लीं ळं नमः कट्यादिपादाङ्गुल्यन्तम्, ह्रीं श्रीं क्लीं क्षं नमः कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम्।

इनके स्वरूप का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—हाथों में अक्षवलय, ईख का धनुष-बाण, दो कमल, पाश, अंकुश और पुस्तक धारण करने वाली, लाल वर्ण से सुशोभित, विशाल स्तनों के भार से पीड़ित, तीन नेत्र वाली एवं मस्तक पर द्वितीया के चन्द्र को धारण करने वाली सम्मोहनी देवी का मैं ध्यान करता हूँ।।३९८-४००।।

गणेशमातृकान्यासः

सर्वविघ्ननिरासार्थमवश्यं न्यासमाचरेत्।
गणेशमातृकायास्तु मुनिर्गणक ईरितः ॥४०१॥
निवृद्गायत्रिकाछन्दो देवः शक्तिविनायकः।
स्मृत्या दीर्घाद्यया चाङ्गं कृत्वा ध्यायेद्गजाननम् ॥४०२॥
शूलाङ्कुशवराभीतिपाणिं रक्ताब्जहस्तया।
प्रिययालिङ्गितं रक्तं त्रिनेत्रं गणपं भजे ॥४०३॥
विघ्नेशो ह्रीसमायुक्तो विघ्नराजः श्रियायुतः।
विनायकः पुष्टियुतः शान्तियुक्तः शिवोत्तमः ॥४०४॥
विघ्नकृत्स्वस्तिसंयुक्तो विघ्नहर्ता सरस्वती।
गणस्तु स्वाहया युक्त एकदन्तः सुमेधया ॥४०५॥
द्विदन्तः कान्तिसंयुक्तो गजवक्त्रश्च कामिनी।
निरञ्जनो मोहिनीयुक्कपर्दी तु नटीयुतः ॥४०६॥
दीर्घजिह्वः पार्वतीयुक्छङ्कुकर्णश्च ज्वालिनी।
वृषध्वजो नन्दया युक्सुयशागणनायकौ ॥४०७॥
गजेन्द्रः कामरूपिण्या शूर्पकर्णस्तथोमया।
त्रिलोचनस्तेजोवत्या लम्बोदरस्तु सत्यया ॥४०८॥

महानन्दश्च विघ्नेश्या चतुर्मूर्तिः स्वरूपया ।
सदाशिवः कामदायुगामोदो मदजिह्वया ॥४०९॥
दुर्मुखो भूतिसंयुक्तः सुमुखो भौतिकायुतः ।
प्रमोदः सितया युक्त एकपादो रमायुतः ॥४१०॥
द्विजिह्वो महिषीयुक्तः शूरश्चापि तु जम्भिनी ।
वीरो विकर्णया युक्तः षण्मुखो भ्रुकुटीयुतः ॥४११॥
वरदो लज्जया वामदेवः स्याद्दीर्घघोणया ।
धनुर्धरो वक्रतुण्डो द्विरदो यामिनीयुतः ॥४१२॥
सिनीशो रात्रिसंयुक्तः कामान्धो ग्रामणीयुतः ।
मत्तः शशिप्रभायुक्तो विमत्तो लोललोचनः ॥४१३॥
मत्तवाहनचञ्चलो जटी दीप्तिसमन्वितः ।
मुण्डी सुभगया युक्तः खड्गी दुर्भगया तथा ॥४१४॥
वरेण्यश्च शिवायुक्तो भगायुग्वृषकेतनः ।
भक्तप्रियश्च भगिनी गणेशो भोगिनीयुतः ॥४१५॥
मेघनादः सुभगया व्यापी स्यात्कालरात्रियुक् ।
गणेश्वरः कालिकेति प्रोक्ता विघ्नेशमातृका ॥४१६॥
त्वगादियोगो यादीनां पूर्ववत् परिकीर्तितः ।

गणेशमातृका न्यास—समस्त विघ्नों के निराकरण के लिये गणेशमातृका न्यास अवश्य करना चाहिये। इस न्यास के ऋषि गणक, छन्द निवृद् गांयत्री एवं देवता शक्तिविनायक कहे गयें हैं। इसका करन्यास तत्तत् अंगुलियों में इन मन्त्रों द्वारा किया जाता है—अं कं खं गं घं ङं आं ह्रां गां अंगुष्ठाभ्यां नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं ह्रीं गीं तर्जनीभ्यां नमः, उं टं ठं डं ढं णं ऊं ह्रूं गूं मध्यमाभ्यां नमः, एं तं थं दं धं नं ऐं ह्रैं गैं अनामिकाभ्यां नमः, ओं पं फं बं भं मं औं ह्रौं गौं कनिष्ठाभ्यां नमः, अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः ह्रः गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। हृदयादि अंगों में इस प्रकार न्यास किया जाता है—अं कं खं गं घं ङं आं ह्रां गां हृदयाय नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं ह्रीं गीं शिरसे स्वाहा, उं टं ठं डं ढं णं ऊं ह्रूं गूं शिखायै वषट्, एं तं थं दं धं नं ऐं ह्रैं गैं कवचाय हुम्, ओं पं फं बं भं मं औं ह्रौं गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः ह्रः गः अस्त्राय फट्। इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—शूल, अंकुश, वर और अभय मुद्रा से समन्वित हाथ वाले, हाथों में रक्तकमल धारण की हुई प्रिया द्वारा आलिङ्गित, रक्त वर्ण वाले, त्रिनेत्र गणेश का मैं भजन करता हूँ।

विघ्नेशमातृका का शरीर के तत्तत् अंगों में इस प्रकार न्यास किया जाता है—

अं ह्रीयुक्ताय विघ्नेशाय नमः शिरसि, आं श्रीयुक्ताय विघ्नराजाय नमः मुखपृष्ठे, इं पुष्टियुक्ताय विनायकाय नमः दक्षनेत्रे, ईं सरस्वतीयुक्ताय शिवोत्तमाय नमः वामनेत्रे, उं स्वस्तियुक्ताय विघ्नहर्त्रे नमः दक्षकर्णे, ऊं स्वाहायुक्ताय गणाय नमः वामकर्णे, ऋं सुमेधायुक्ताय एकदन्ताय नमः दक्षनासापुटे, ॠं कान्तियुक्ताय द्विदन्ताय नमः वामनासापुटे, ऌं कामिनीयुक्ताय गजवक्त्राय नमः दक्षगण्डे, ॡं मोहिनीयुक्ताय निरञ्जनाय नमः वामगण्डे, एं नटीयुक्ताय कपर्दिने नमः ऊर्ध्वोष्ठे, ऐं पार्वतीयुक्ताय दीर्घजिह्वाय नमः अधरोष्ठे, ओं ज्वालिनीयुक्ताय शङ्कुकर्णाय नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ, औं नन्दायुक्ताय वृषध्वजाय नमः अधोदन्तपंक्तौ, अं सुयशायुक्ताय गणनायकाय नमः जिह्वाग्रे, अः कामरूपिणीयुक्ताय गजेन्द्राय नमः कण्ठे, कं उमायुक्ताय शूर्प्पकर्णाय नमः दक्षबाहुमूले, खं तेजोवतीयुक्ताय त्रिलोचनाय नमः दक्षकूपरि, गं सत्यायुक्ताय लम्बोदराय नमः दक्षमणिबन्धे, घं विघ्नेशीयुक्ताय महानन्दाय नमः दक्षकराङ्गुलिमूले, ङं स्वरूपायुक्ताय चतुर्मूर्त्तये नमः दक्षकराङ्गुल्यग्रे, चं कामदायुक्ताय सदाशिवाय नमः वामबाहुमूले, छं मदजिह्वायुक्ताय आमोदाय नमः वामकूपरि, जं भूतियुक्ताय दुर्मुखाय नमः वाममणिबन्धे, झं भौतिकायुक्ताय सुमुखाय नमः वामकराङ्गुलिमूले, ञं सितायुक्ताय प्रमोदाय नमः वामकराङ्गुल्यग्रे, टं रमायुक्ताय एकपादाय नमः दक्षोरुमूले, ठं महिषीयुक्ताय द्विजिह्वाय नमः दक्षजानुनि, डं जम्भिनीयुक्ताय शूराय नमः दक्षगुल्फे, ढं विकर्णायुक्ताय वीराय नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, णं भ्रुकुटीयुक्ताय षण्मुखाय नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, तं लज्जायुक्ताय वरदाय नमः वामोरुमूले, थं दीर्घघोणायुक्ताय वामदेवाय नमः वामजानुनि, दं यामिनीयुक्ताय धनुर्धराय नमः वामगुल्फे, धं यामिनी-युक्ताय वक्रतुण्डाय नमः वामपादाङ्गुलिमूले, नं यामिनीयुक्ताय द्विरदाय नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे, पं रात्रियुक्ताय सिनीशाय नमः दक्षपार्श्वे, फं ग्रामणीयुक्ताय कामान्धाय नमः वामपार्श्वे, बं शशिप्रभायुक्ताय मत्ताय नमः पृष्ठे, भं लोललोचनायुक्ताय विमत्ताय नमः नाभौ, मं चञ्चलायुक्ताय मत्तवाहनाय नमः जठरे, यं दीप्तियुक्ताय जटिने नमः हृदये, रं सुभगायुक्ताय मुण्डिने नमः दक्षस्कन्धे, लं दुर्भगायुक्ताय खड्गिने नमः गलपृष्ठे, वं शिवायुक्ताय वरेण्याय नमः वामस्कन्धे, शं भगायुक्ताय वृषकेतनाय नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्, षं भगिनीयुक्ताय भक्तप्रियाय नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्, सं भोगिनीयुक्ताय गणेशाय नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्, हं सुभगायुक्ताय मेघनादाय नमः हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्, लं कालरात्रियुक्ताय व्यापिने नमः हृदयादिगुह्यान्तम्, क्षं कालिकायुक्ताय गणेश्वराय नमः हृदयादिमूर्धान्तम्।।४०१-४१६।।

प्रपञ्चयागन्यासः

प्रपञ्चयागन्यासोऽयं वक्ष्यते भुक्तिमुक्तिदः ।।४१७।।

महागणेशमन्त्रेण प्राणायामत्रयं चरेत्।
ऋषिः प्रपञ्चयागस्य गणकश्छन्द ईरितम् ॥४१८॥
गायत्री तु निवृत्पूर्वा महागणपतिः सुरः।
शीर्षादिषु न्यसेत्ताँश्च गंबीजं चापि गुह्यके ॥४१९॥
स्वाहाशक्तिं पादयोस्तु नियोगोऽभीष्टसिद्धये।
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गमिति पूर्वषड्दीर्घयुग्मकम् ॥४२०॥
उच्चार्य कुर्यादङ्गानि तथाङ्गुष्ठादिषु न्यसेत्।
तलद्वयं तथास्त्रेण कृत्वा दिग्बन्धमाचरेत् ॥४२१॥
तर्जन्यङ्गुष्ठशब्देन दशदिक्ष्वथ चिन्तयेत्।
ततो ध्यानं प्रकुर्वीत गणपस्येष्टसिद्धये ॥४२२॥
हस्तीन्द्राननमिन्दुचूडमरुणच्छायं त्रिनेत्रं रसा-
दाश्लिष्टं प्रियया सपद्मकरया स्वाङ्कस्थया सन्ततम्।
बीजापूरगदाधरे त्रिशिरयुक्चक्राब्जपाशोत्पल-
ब्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशान् हस्तैर्वहन्तं भजे ॥४२३॥
महागणपतेर्मन्त्रमष्टवारं जपेत्ततः।
गमित्येकाक्षरं बीजं गणकोऽस्य मुनिर्मतः ॥४२४॥
देवो विघ्नेश्वरश्छन्दो निवृद्गायत्रिकाभिधा।
प्रपञ्चाख्यस्य यागस्य साङ्गतासिद्धिहेतवे ॥४२५॥
चतुश्चत्वारिंशत्सङ्ख्यजपार्थं विनियोजनम्।
अथ षड्दीर्घयुक्तेन कुर्यादङ्गानि गेन तु ॥४२६॥
गदापाशाङ्कुशकरं त्र्यक्षं च तुन्दिलं वरम्।
सिन्दूराभं चन्द्रमौलिं सर्पभूषं गलन्मदम् ॥४२७॥
एकवारं जपेत्पश्चाद् गणानान्त्वेति वैदिकम्।

प्रपञ्चयाग न्यास—अब भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करने वाले प्रपञ्चयाग न्यास का वर्णन किया जा रहा है। इसमें सर्वप्रथम महागणेश मन्त्र से तीन प्राणायाम करना चाहिये। बारह अक्षरों का महागणेश मन्त्र है—'ह्रीं गं ह्रीं महागणपतये स्वाहा।' इसके पश्चात् विनियोग करना चाहिये। इस प्रपञ्चयाग न्यास के ऋषि गणक हैं, छन्द निवृत् गायत्री है एवं देवता महागणपति हैं। इसका ऋष्यादि न्यास इस प्रकार किया जाता है—अस्य श्रीमहागणपतिमन्त्रस्य गणकऋषये नमः शिरसि। निवृद्गायत्रीछन्दसे नमः मुखे। महागणपतिदेवतायै नमः, हृदि। गं बीजाय नमः गुह्ये। स्वाहा शक्तये नमः पादयोः। महागणपतिप्रसादसिद्धयर्थे विनियोगः करसम्पुटे। करन्यास का स्वरूप इस प्रकार होता है—ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं ॐ गां अंगुष्ठाभ्यां नमः, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं

ग्लौं श्रीं गीं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं ह्रीं गूं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं क्लीं गैं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं ग्लौं गौं कनिष्ठाभ्यां नमः, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। षडङ्गन्यास इन मन्त्रों से करना चाहिये—ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं ॐ गां हृदयाय नमः, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं श्रीं गीं शिरसे स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं ह्रीं गूं शिखायै वषट्, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं क्लीं गैं कवचाय हुम्, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं ग्लौं गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गः अस्त्राय फट्।

अस्त्र मन्त्र फट् से दिग्बन्ध करे। तर्जनी एवं अंगुठे के योग से दशों दिशाओं में चुटकी बजावे। तब इष्टसिद्धि की प्राप्ति के लिये गणपति का इस प्रकार ध्यान करे—मैं महागणपति का ध्यान करता हूँ। गजेन्द्र का मुख, मस्तक पर चन्द्र, अरुण वर्ण, तीन नेत्र से युक्त है। अपनी गोदी में प्रिया को सस्नेह बिठाकर आलिङ्गन किये हुए हैं। उनकी प्रिया के हाथ में कमल है। उनके आठ हाथों में बीजापूर, गदा, त्रिशूल, चक्र, कमल, पाश, उत्पल, धान की बाली, अपना दाँत और रत्नकलश है।

ध्यान के पश्चात् महागणेश मन्त्र 'ह्रीं गं ह्रीं महागणपतये स्वाहा' का जप आठ बार करे। इसके बाद 'गं' इस एकाक्षर बीजमन्त्र का चौवालीस बार जप करे। इस एकाक्षर बीजमन्त्र के ऋषि गणक, छन्द निवृद्गायत्री एवं देवता विघ्नेश्वर कहे गये हैं। प्रपञ्चयाग की साङ्गता-सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घ बीजमन्त्र 'गां, गीं, गूं, गैं, गौं, गः' से इसका करन्यास एवं अङ्गन्यास किया जाता है। इसके पश्चात् हाथों में गदा, पाश एवं अंकुश धारण करने वाले, तीन नेत्र वाले, शोभन तोन्द वाले, सिन्दूर के समान कान्ति वाले, चन्द्रमा को अपनी मौलि में धारण करने वाले, सर्प का आभूषण धारण करने वाले एवं प्रवहमान मद वाले गणेश का ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् एक बार वैदिक मन्त्र 'गणानान्त्वा' का पाठ करना चाहिये।।४१७-४२७।।

गणेशमालामन्त्रः

गणेशमालामन्त्रस्य मुनिस्तु गणकः स्मृतः।
छन्दो मितं गणपतिर्देवता परिकीर्त्तितः ॥४२८॥
ह्रींक्रों तारो नमः सर्वं डेऽन्तं विद्याधिपं ततः।
सर्वार्थसिद्धिदायेति सर्वदुःखप्रशेति च ॥४२९॥
ततो मनाय एह्येहि भगवन् वादयेति च।
स्तम्भयेति द्वयं ह्रीं गं गां नमो वह्निगेहिनी ॥४३०॥
क्रोंह्रीमित्थं पञ्चपञ्चाशद्वर्णो मन्त्र उच्यते।
जपेदिमं चतुर्वारं मुन्यादिसहितं न्यसेत् ॥४३१॥

न्यासपूर्वं त्रिवारं तु मातृकाध्यानपूर्वकम्।
स्वरादिसप्तवर्गैस्तु ग्रहान् सप्त प्रविन्यसेत् ॥४३२॥
मुखे बाह्वोः पादयोश्च जठरे हृदये क्रमात्।
तारो माया च हंसश्च सोऽहं स्वाहेति वै पुनः ॥४३३॥
प्रपञ्चयागमन्त्रोऽयमष्टार्णः समुदीरितः।
प्रपञ्चयागमन्त्रस्य मुनिर्ब्रह्मा समीरितः ॥४३४॥
परमाद्या समाख्याता गायत्री छन्द उत्तमम्।
महः परं समाख्यातं देवताचिन्मयात्मिकम् ॥४३५॥
त्रयन्तेऽबाधितं नित्यं सर्वव्यापि निरञ्जनम्।
विलोमगैः पञ्चवर्णैः प्रपञ्चमनुसंस्थितैः ॥४३६॥
ह्रस्वदीर्घान्तस्थकादिवर्गैः पूर्वसमन्वितैः।
तारमायादिकैरेतैर्युक्तैर्हरिहराक्षरैः ।
षडङ्गानि प्रकुर्वीत जातियुक्तानि देशिकः ॥४३७॥
वेदादिपञ्चमनुभिः परिचीयमानं
मानं निरस्य मुनिभिर्जगदेकमूलम्।
सच्चित्समस्तगमनश्वरमच्युतं तत्तेजः
परं भजत पूर्णकृपाम्बुराशि ॥४३८॥
वेदादिमाययोरन्ते क्षकारान्तान् सबिन्दुकान्।
पृथगुच्चार्य हंसोऽहं स्वाहेति च वदन् हृदि ॥४३९॥
विभावयेदिमान् वर्णानात्मवह्नौ जुहोम्यहम्।
एवं हुत्वा क्षकारान्तानकारान्तान् पुनर्हुनेत् ॥४४०॥
सविसर्गान् क्षकारान्तान् विन्यसन्मातृकास्थले ।
एवं प्रपञ्चयागाख्यमातृकान्यास ईरितः ॥४४१॥

गणेशमाला मन्त्र—इस गणेश माला मन्त्र के ऋषि गणक, छन्द मित एवं देवता गणपति कहे गये हैं। पचपन अक्षरों के गणेश माला मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—ह्रीं क्रों ॐ नमः सर्वविद्याधिपाय सर्वार्थसिद्धिदाय सर्वदुःखप्रशमनाय एह्येहि भगवन् बादय स्तम्भय स्तम्भय ह्रीं गं गां नमः वह्निगेहिनी क्रों ह्रीं। विनियोग के पश्चात् इस मालामन्त्र का चार बार जप करना चाहिये। इसके बाद ऋषि आदि का न्यास करना चाहिये। तदनन्तर मातृका-ध्यानपूर्वक स्वरादि सात वर्गों के द्वारा सात ग्रहों का इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः रेणुकायुक्ताय सूर्याय नमः मुखे, ॐ कं खं गं घं ङं अमृतायुक्ताय चन्द्राय नमः बाह्वोः, ॐ चं छं जं झं ञं धर्मायुक्ताय भौमाय नमः पादयोः, ॐ टं ठं डं ढं णं

यशस्विनीयुक्ताय बुधाय नमः जठरे, ॐ तं थं दं धं नं शाङ्करीयुक्ताय बृहस्पतये नमः हृदये, ॐ पं फं बं भं मं ज्ञानरूपायुक्ताय शुक्राय नमः कण्ठे, ॐ यं रं लं वं शं वं सं हं ळं क्षं शक्तियुक्ताय शनैश्चराय नमः नाभौ।

प्रपञ्चयागमन्त्र—ॐ ह्रीं हंसस्सोहं स्वाहा—यह आठ अक्षरों का प्रपञ्चयाग मन्त्र होता है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं त्रिविध दुःखों से रहित, नित्य, सर्वव्यापी तथा निरञ्जन परंमहः चिन्मयात्मिका देवता हैं। इसका करन्यास इस प्रकार किया जाता है—ॐ ह्रीं अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ ह्रीं उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। हृदयादि न्यास इस प्रकार होता है—ॐ ह्रीं अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रीं उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्, ॐ ह्रीं एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम्, ॐ ह्रीं ओं पं फं बं भं मं औं नेत्राय वौषट्, ॐ ह्रीं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अस्त्राय फट्।

तदनन्तर इस प्रकार ध्यान किया जाता है—मैं उस अगम, अनश्वर, अच्युत, सत् चित् स्वरूप, सर्वव्यापी, तेजोरूप ब्रह्म का ध्यान करता हूँ, जो वेद के आरम्भिक पाँच मन्त्रों द्वारा परिचीयमान हैं, जो मुनियों के द्वारा जगत् का मूल कारण बतलाया गया है, जो अप्रमेय है, जो कृपा का सागर है।

इसके बाद हृदय में 'ॐ ह्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं हंसः सोहं स्वाहा' का उच्चारण करते हुये भावना करे कि मैं आत्मा की अग्नि में इन वर्णों का हवन कर रहा हूँ। फिर पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अं आं इं ईं उं ऊं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं के वर्णों का हवन करे। इसके बाद विसर्गसहित अं से क्षं तक का मातृकास्थलों में इस प्रकार न्यास करे—अः नमः शिरसि, आः नमः मुखवृत्ते, इः नमः दक्षनेत्रे, ईः नमः वामनेत्रे, उः नमः दक्षकर्णे, ऊः नमः वामकर्णे, ऋः नमः दक्षनासापुटे, ॠः नमः वामनासापुटे, ऌः नमः दक्षकपोले, ॡः नमः वामकपोले, एः नमः ऊर्ध्वोष्ठे, ऐः नमः अधरोष्ठे, ओः नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ, औः नमः अधोदन्तपंक्तौ, अं: नमः जिह्वाग्रे, अः नमः कण्ठे, कः नमः दक्षबाहुमूले, खः नमः दक्षकूपरि, गः नमः दक्षमणिबन्धे, घः नमः दक्षकराङ्गुलिमूले, ङः नमः दक्षकराङ्गुल्यग्रे, चः नमः वामबाहुमूले, छ नमः वामकूपरि, जः नमः वाममणिबन्धे, झः नमः वाम-

कराङ्गुलिमूले, ञः नमः वामकराङ्गुल्यग्रे, टः नमः दक्षोरुमूले, ठः नमः दक्षजानुनि, डः नमः दक्षगुल्फे, ढः नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, णः नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, तः नमः वामोरुमूले, थः नमः वामजानुनि, दः नमः वामगुल्फे, धः नमः वामपादाङ्गुलिमूले, नः नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे, पः नमः दक्षपार्श्वे, फः नमः वामपार्श्वे, बः नमः पृष्ठे, भः नमः नाभौ, मः नमः जठरे, यः नमः हृदये, रः नमः दक्षकुक्षौ, लः नमः गलपृष्ठे, वः नमः वामकुक्षौ, शः नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्, षः नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्, सः नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्, हः नमः हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्, ळः नमः कट्यादिपादाङ्गुल्यन्तम्, क्षः नमः कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम्।।४२८-४४१।।

योगपीठन्यासः

एकविंशं ततो योगपीठाख्यं न्यासमाचरेत्।
तत्पूर्वमुक्तं च ततः स्वेष्टमन्त्रस्य सञ्चरेत्॥४४२॥
तत्तत्कल्पोदितान् पश्चात्तत्तन्मुद्राः प्रदर्शयेत्।
आगमोक्तेन मार्गेण न्यासान्नित्यं करोति यः॥४४३॥
देवताभावमाप्नोति मन्त्रसिद्धिः प्रजायते।
यो न्यासकवचच्छन्नो मन्त्रजापपरप्रियः॥४४४॥
दृष्ट्वा विघ्नाः पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः।
अकृत्वा न्यासजालं यो मूढात्मा कुरुते जपम्॥४४५॥
विघ्नैः स बाध्यते नूनं व्याघ्रैर्मृगशिशुर्यथा।
न्यासानां प्रचरत्वेन फलानामपि भूरिता॥४४६॥
उक्तन्यासो न हि त्याज्यः कामतस्त्वधिकं चरेत्।

योगपीठन्यास—अब इक्कीसवें प्रकार के योगपीठ न्यास का समाचरण करना चाहिये। तत्तत् योगपीठ के नाम के साथ अपने इष्टमन्त्र से यह न्यास किया जाता है। तत्पश्चात् उसकी मुद्रा भी प्रदर्शित करनी चाहिये। आगमोक्त मार्ग से जो इस न्यास को नित्य करता है, उसे देवताभाव प्राप्त होता है और मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जो न्यास-कवच से युक्त होकर मन्त्रजप में निरत रहता है, उसे देखते ही सभी विघ्न वैसे ही दूर भाग जाते हैं, जैसे सिंह को देखकर हाथी भाग जाते हैं। इस न्यासजाल को किये विना जो मूर्ख जप करता है, वह विघ्नों द्वारा वैसे ही बाधित होता है, जैसे बाघ मृग-शावक को बाधित करता है। न्यासों की अधिकता से फलों की भी प्रचुरता होती हैं। अतः उक्त न्यास का त्याग नहीं करना चाहिये; अपितु कामना के अनुरूप अधिक मात्रा में करना चाहिये।।४४२-४४६।।

ॐ क्लीमिति तु बीजाभ्यां मुद्राया बन्धनं चरेत्।
दर्शयेन्मूलमन्त्रेण हसौं बीजेन संन्यसेत्॥४४७॥

ध्यानं कुर्यात्ततो मन्त्री तत्तत्कल्पोक्तवर्त्मना।
तदपि द्विविधं प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं तथा ॥४४८॥
आत्मनो हृदयाम्भोजे कर्णिकाकेशरोज्ज्वले।
प्रफुल्ले सोमसूर्याग्निमण्डलेन विराजिते ॥४४९॥
स्वस्येष्टदेवतां तत्र यजेदागमबोधिताम्।
एवं यद्वेदनं तद्धि सगुणं ध्यानमीरितम् ॥४५०॥
यज्जीवब्रह्मणोरैक्यं सोऽहं स्यामिति वेदनम्।
तदेवं निर्गुणं ध्यानमिति वेदविदो विदुः ॥४५१॥

ॐ क्लीं बीज से मुद्राबन्धन करना चाहिये, मूल मन्त्र से मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये एवं ह्सौं बीज से न्यास करना चाहिये। इसके बाद मन्त्री को उस मन्त्र के कल्प में वर्णित मार्ग के अनुसार ध्यान करना चाहिये। ध्यान के भी दो प्रकार होते हैं—सगुण तथा निर्गुण। अपने हृदयकमल के श्वेत कर्णिकाकेशर के सोम-सूर्याग्नि मण्डल में विराजमान अपने इष्टदेव का ध्यान करके आगमोक्त विधि से पूजन करना सगुण ध्यान कहलाता है। जिस ध्यान में जीव और ब्रह्म में ऐक्य का भाव होता है, सोहं की अनुभूति होती है, उसे निर्गुण ध्यान कहा जाता है।।४४७-४५१।।

अथान्तर्यजनं वक्ष्ये यथावदवधारय।
वामनाडीं समाकृष्य किञ्चिदाकुञ्चयेद् गुदम्।
रेचयेत्सममार्गेण जिह्वां तालुगतां चरेत् ॥४५२॥
शक्तिं शिवे परे युक्त्वा किञ्चिदाकुञ्चयेदधः।
कृत्वेत्थं तु यजेत्पीठे न्यासमार्गेण मन्त्रवित् ॥४५३॥
तस्मिन् पीठे स्थितामिष्टदेवतां मूर्तिविग्रहाम्।
ध्यात्वा यजेच्चन्दनाद्यैर्मानसैर्भोजनान्तकैः ॥४५४॥
भोजनावसरे त्वन्तर्वैश्वदेवं समाचरेत्।
मूलाधारे स्मरेत् कुण्डं कुण्डल्यग्निसमुज्ज्वलम् ॥४५५॥
आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मचतुरस्रके ।
धर्माधर्मान्विते त्र्यस्रे मूलमन्त्रपुरःसरम् ॥४५६॥
अहं जुहोमि स्वाहेति प्रत्येकं जुहुयात्ततः।
अहन्ताऽसत्यपैशुन्यकामक्रोधादिकं हविः ॥४५७॥
मन एव स्रुवः प्रोक्ताः सुषुम्णा दिगुदीरिता।
तदन्ते तन्मयो भूत्वा जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥४५८॥
मूलं तत्सर्वसम्पत्त्यै देवतायै निवेदयेत्।
ततः प्रणम्य च गुरुं पूजाचक्रं समुद्धरेत् ॥४५९॥

अब अन्तर्यजन का वर्णन करता हूँ, इसे यथावत् धारण करो। वाम नाड़ी से साँस खींचकर गुदा का कुछ आकुंचन करे, जिह्वा को तालू से लगा ले और दाँयीं नाड़ी से रेचन करे। शक्ति जब परशिव से युक्त हो जाय तब अपने अधोभाग का थोड़ा आकुंचन करे। ऐसा करके इष्ट का यजन पीठ पर न्यासमार्ग से करे।

उस पीठ पर विराजमान इष्टदेवता के रूप की कल्पना करके ध्यान करके चन्दनसमर्पण से लेकर नैवेद्य-समर्पण तक मानसिक पूजन इन मन्त्रों से करे—लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां, हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः अंगुष्ठतर्जनीभ्यां, यं वाय्वात्मकं धूपमाघ्रापयामि नमः तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्याम्, रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि नमः अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां, वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि नमः अङ्गुष्ठनाभिकाभ्याम्, सं सर्वात्मकं ताम्बूलादिसर्वोपचारान् समर्पयामि नमः। नैवेद्य के अन्त में बलि वैश्वदेव करे। इसके बाद मूलाधार में अग्नि के समान प्रदीप्त कुण्ड की कल्पना करे। वह कुण्ड चौकोर है, चारों दिशाओं में आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और अज्ञानात्मा है। कुण्ड में एक त्रिकोण है, जो धर्म-अधर्म से युक्त है। उसमें पहले मूल मन्त्र के साथ अहं जुहोमि स्वाहा कहकर अहन्ता, असत्य, पैशुन्य, काम, क्रोध का हवन करे; जैसे—ॐ नमः शिवाय अहन्तां अहं जुहोमि स्वाहा, ॐ नमः शिवाय असत्यं अहं जुहोमि स्वाहा, ॐ नमः शिवाय पैशुन्यं अहं जुहोमि स्वाहा, ॐ नमः शिवाय कामं अहं जुहोमि स्वाहा, ॐ नमः शिवाय क्रोधं अहं जुहोमि स्वाहा।

इस हवन में मन ही स्रुवा होती है। तदनन्तर मूलाधार से प्रारम्भ होने वाली सुषुम्णा नाड़ी में प्रवेश करके कुण्डलिनी से ऐक्य स्थापित करके सहस्रार में शिव से सायुज्य प्राप्त करके एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करने के बाद समस्त सम्पत्तियों की प्राप्ति के लिये मूल मन्त्र को देवता को अर्पित कर दे। तब गुरु को प्रणाम करके पूजाचक्र का उद्धार करे।।४५२-४५९।।

सुवर्णरचिते पीठे भूपाला वशवर्त्तिनः।
रजतालंकृतं यन्त्रं सर्वैश्वर्यप्रदं मतम्।।४६०।।
यन्त्रन्तु स्फाटिकं स्वच्छं मनोऽभिलषितं ददेत्।
माणिक्यरचितं चेदं राज्यदं भुक्तिमुक्तिदम्।।४६१।।
कृतं मरकतैर्यन्त्रं सर्वशत्रुविनाशनम्।
लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं सर्वसिद्धिकरं मतम्।।४६२।।
श्रीखण्डं शक्तिदं श्रेयं पौष्टिकं रक्तचन्दनम्।
श्रीपर्णीपीठमुद्दिष्टं पूजार्थं धनराज्यदम्।।४६३।।
बैल्वके बहुला सम्पद्भूर्जपत्रे चतुष्पदाः।
गण्डकीभवपाषाणे भुक्तिमुक्तिरदूरतः।।४६४।।

भूमौ सिन्दूररजसा रचितं सर्वकामदम्।
सीसकांस्यकृतं यन्त्रं सम्पत्तिं सन्ततिं हरेत् ॥४६५॥
फलकायां परे भित्तौ स्थापयेन्न कदाचन।
स्थापितं यदि मोहेन नाशयेत्तस्य तत्कुलम् ॥४६६॥
अरत्न्यङ्गुलविस्तारं प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोत्तरे।
पलप्रमाणं कर्त्तव्यमर्चापीठं मनोहरम् ॥४६७॥
पूर्वार्धोच्चं प्रकुर्वीत चतुरस्रं समन्ततः।
तस्मिन् पीठे तु निर्माणं पूजाचक्रस्य कारयेत् ॥४६८॥
माणिक्यादिकपीठेषु मानं न्यूनं न दोषयेत्।
श्रीपर्णीचन्दनादीनामधिकं चेन्न दोषकृत् ॥४६९॥

पूजन यन्त्र—सुवर्ण-निर्मित पीठ पर पूजन करने से राजा वश में होते हैं एवं चाँदी से बनाये गये चक्र पर पूजन करने से समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। स्वच्छ स्फटिक पर निर्मित यन्त्र मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है एवं माणिक्य पर निर्मित यन्त्र राज्य और भुक्ति-मुक्ति का प्रदायक होता है। मरकत के यन्त्र पर पूजन करने से समस्त शत्रुओं का विनाश होता है एवं त्रिलोह अर्थात् सोना, चाँदी, ताँबा मिलाकर बनाये गये यन्त्र पर पूजन करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। श्वेत चन्दन से निर्मित यन्त्र शक्तिप्रद और रक्तचन्दन से निर्मित यन्त्र पुष्टिप्रद होता है। श्रीपर्णी से निर्मित यन्त्र पर पूजन करने से धन और राज्य की प्राप्ति होती है। बेल के वृक्ष की लकड़ी से बने चक्र पर पूजन करने से बहुत सम्पत्ति मिलती है एवं भोजपत्र पर निर्मित चक्र पर पूजन करने से चौपायों अर्थात् हाथी, घोड़े, गाय आदि की प्राप्ति होती है। गण्डकी नदी से प्राप्त पत्थर पर यन्त्र बनाकर पूजन करने से शीघ्र ही भुक्ति-मुक्ति दोनों की प्राप्ति होती है। भूतल पर सिन्दूर से चक्र बनाकर पूजन करने से सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है। सीसा और काँसे से बने चक्र पर पूजन करने से सम्पत्ति और सन्तति का विनाश होता है। फलक के परे भित्ति पर कभी भी चक्र नहीं बनाना चाहिये; यदि मोहवश कोई ऐसा करता है तो कुल के सहित उसका विनाश हो जाता है। लगभग ५० ग्राम वजन का पीठचक्र एक हाथ लम्बा-चौड़ा वर्गाकार बनाना चाहिये। इसकी स्थापना एक बीत्ता लम्बी-चौड़ी एवं एक बीत्ता ऊँची चौकोर वेदी पर करनी चाहिये अथवा उस वेदी पर मनोहर चक्र ही का निर्माण करना चाहिये। माणिक्य आदि से निर्मित पीठों के निर्माण में वजन में कमी से कोई दोष नहीं होता एवं श्रीपर्णी, चन्दनादि से निर्मित पीठों मे वजन अधिक होने पर भी कोई दोष नहीं होता।।४६०-४६९।।

अग्रे शुभग्रहौघेष्वनुकूलगुणवत्सु च।
नवार्च्चां कारयेदेषां सति तिथ्यादिकेक्षणे ॥४७०॥

क्षौद्राज्यदुग्धैः प्रथमं नारिकेराम्भसा ततः ।
अभिषिच्याथ तोयेन क्वथितेन वरौषधैः ॥४७१॥
आवाह्याभ्यर्च्य तल्लग्ने चक्रे संस्थाप्य पूजयेत् ।
गन्धपुष्पैर्नवैर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यतर्पणैः ॥४७२॥
त्रिरात्रं पूजयेद्देवि त्रिसन्ध्यं च ततो निशि ।
मकारैः पञ्चभिर्युक्ताश्चरेयुर्वामिनोऽर्च्चनम् ॥४७३॥
निशायां शक्तिपूजां च द्वितीयायां च कौलिकः ।
एवं दिनत्रयं कृत्वा ततो नित्यक्रमं भजेत् ॥४७४॥
एवं देवीप्रतिष्ठायां क्रमः सान्निध्यकारकः ।
स्त्रीशूद्राणां वामिनां च कौलिकानामयं विधिः ॥४७५॥
महापापं न कुर्वन्ति पशुवद्वेदमार्गतः ।
आख्यानदैश्च रघुभिः सन्ध्यावन्दननाशितैः ॥४७६॥
पातकैस्ते न लिप्यन्ते तस्मात्तेऽपशवः स्मृताः ।
वामिनोपासितं यन्त्रं तेषां दृष्टिपथे गतम् ॥४७७॥
तद्देवताक्षोभकरं विक्षिप्तः साधको भवेत् ।
दक्षिणोपासितं यन्त्रं सूर्याग्निसमतेजसम् ॥४७८॥
पापिनो नैव पश्यन्ति यथोलूकास्तमोदृशः ।

प्रथमतः शुभ ग्रह, नक्षत्र, मुहूर्त्त आदि का विचार कर शुभ तिथि में इस पूजन का आयोजन करना चाहिये। पूजन चक्र को पहले गाय के दूध, घी और मधु से धोने के पश्चात् नारियल के पानी से साफ करके औषधिकाष्ठ के क्वाथ जल से अभिषेक करना चाहिये। शुभ लग्न में उस चक्र में देवता का आवाहन करके स्थापित करने के उपरान्त गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से तीन दिनों तक तीनों सन्ध्याओं में अथवा रात्रि में पूजन करना चाहिये। वाममार्गियों को यह पूजन पञ्च मकार से करना चाहिये। कौलों को द्वितीया की रात्रि में शक्ति-पूजन करना चाहिये। इस प्रकार तीन दिनों तक अर्चन करने के बाद नित्य क्रम का अनुष्ठान करना चाहिये। इस प्रकार से देवी की प्रतिष्ठा का क्रम सान्निध्य प्रदान करने वाला होता है। प्रतिष्ठा की यह विधि स्त्रियों, शूद्रों, वाममार्गियों एवं कौलिकों के लिये कही गई है। वैदिक मार्ग में इस प्रकार का पशुवत् आचार-पालनरूप महापाप नहीं करना चाहिये। इस प्रकार के आख्यानद महापाप से सन्ध्या-वन्दनादि का नाश हो जाता है। वाममार्गियों को पाप नहीं लगता, इसलिये उन्हें पशु कहा जाता है। वाममार्गियों के उपासनायन्त्र को देखने मात्र से वैदिकों के देवता क्षुब्ध हो जाते हैं और साधक पागल हो जाता है। दक्षिण मार्ग से उपासित यन्त्र में सूर्य और अग्नि के समान तेज होता है। जिस प्रकार उल्लू

को दिन में नहीं दिखायी पड़ता; केवल रात में ही दिखायी पड़ता है, उसी प्रकार पापियों को भी दक्षिणमार्गी सूर्योदय नहीं दिखायी पड़ता।।४७०-४७८।।

यथा नृभिर्दिनकरोदयः सर्वैरिहेष्यते ॥४७९॥
दक्षसंस्थापितं यन्त्रं तथा पुण्यात्मनां मतम्।
सर्वेषामेव भूतानां तुल्यदुःखसुखावुभौ ॥४८०॥
वामदक्षिणमार्गौ तु तद्वन्मार्गो दिवौकसाम्।
प्राधान्यं तु पुरन्ध्रीणां वामाङ्गे दक्षिणाङ्गके ॥४८१॥
पुंसां तथैव मार्गोऽपि कार्याकार्यविभेदतः।
कुण्डाश्च गोलका जातिविच्युता ये द्विजादयः ॥४८२॥
असंस्कृताश्च ये विप्रास्ते व्रात्याः परिकीर्तिताः।
ब्राह्मण्यहानिकृत्तेषां मद्यं मांसं च मैथुनम् ॥४८३॥
अब्राह्मणा वाममार्गे प्रवृत्तास्तैस्तु सेवितम्।
कौलेन वाथ वामेन सिद्ध्यत्येव न संशयः ॥४८४॥
सिद्धिः सञ्जायतेऽन्येषां नरकायैव केवलम्।

जिस प्रकार सभी मनुष्यों को सूर्य की उदय ही अभीष्ट होता है, वैसे ही दक्षिण मार्ग से स्थापित यन्त्र पुण्यप्रदायक होता है। जिस प्रकार वाम एवं दक्षिण मार्ग समस्त प्राणियों के लिये समान रूप से सुख-दुःख देने वाले होते हैं; वैसे ही स्वर्गवासी स्त्रियों अर्थात् अप्सराओं के लिये वामांग एवं पुरुषों अर्थात् देवों के लिये दक्षिणांग प्रधान होता है; उसी प्रकार कार्य-अकार्य के भेद से मार्ग भी होते हैं। [1]कुण्ड, [2]गोलक अथवा जातिच्युत द्विजादि एवं असंस्कृत विप्र 'व्रात्य' कहे गये हैं। मद्य, मांस एवं मैथुन के सेवन से उपर्युक्त के ब्राह्मणत्व की हानि होती है।

वाममार्ग में प्रवृत्त ब्राह्मणेतरों अथवा कौलों द्वारा निःसन्देह रूप से मद्य, मांस, मैथुन के सेवन से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है; लेकिन अन्य लोगों को इनके सेवन से मात्र नरक की ही प्राप्ति होती है।।४७९-४८४।।

आदौ वेदोदितैर्मन्त्रैर्विप्रोऽग्न्युत्तारणं चरेत् ॥४८५॥
अग्निः सप्तिं वाजमिति सप्तर्चं सूक्तमुच्यते।
मुनिस्त्रिष्टुप्छन्द उक्तं देवताग्निः प्रकीर्तितः ॥४८६॥
अग्निशब्देन सहितं सूक्तमेतच्छतं जपेत्।
अभिषिञ्चेद् गन्धतोयैस्ततः सम्पूर्णसूक्तकैः ॥४८७॥

---

१. अपने पति के जीवित रहने पर दूसरे पुरुष से उत्पन्न मनुष्य को कुण्ड कहा जाता है।
२. विधवा से जो उत्पन्न होता है, उसे गोल कहते हैं।

अभिषिञ्चेच्छतावृत्त्याग्न्युत्तारणमिदं स्मृतम्।
क्षालयेद्धातुजं यन्त्रं मृदा चाद्भिस्तु नित्यशः ॥४८८॥
पिष्टान्तकाद्यैः काष्ठस्य मण्यादेः केवलं जलात्।
एवं प्रक्षालितं यन्त्रं मण्डयेच्चन्दनादिना ॥४८९॥
पुरतः स्थापयेत्पीठे दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः।
मूलमन्त्रेणाथ तेषां स्वस्य देवाङ्गतश्चरेत् ॥४९०॥

ब्राह्मण को सर्वप्रथम वेदों में कथित अग्निसूक्त के मन्त्रों द्वारा यन्त्र का अग्न्युत्तारण संस्कार करना चाहिये। अग्निसूक्त की सात ऋचायें इस प्रकार हैं—

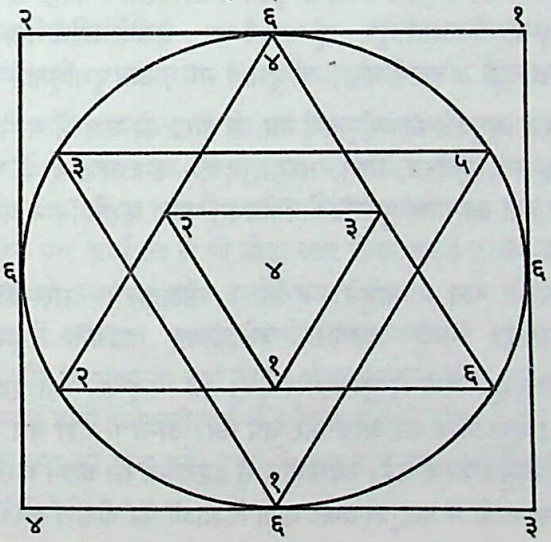
१. अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददातग्निवीरंश्रुत्यं कम्रनिष्ठाम्।
अग्नी रोदसी विचरत्समज्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरन्धिम्।।
२. अग्ने रेभमसः सदिस्तु भद्राग्निर्महो रोदसी आविवेश।
अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि।।
३. अग्निर्हत्यजरतः कर्णमावाग्निरद्र्यो निरदहज्जरूथम्।
अग्निरत्रिं घर्म्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजया सृजत्वम्।।
४. अग्निर्दाद्रविणं वरिपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रासनोति।
अग्निर्दिवि हतव्यमाततानाग्नेर्धामानि बिभृता पुरुत्रा।।
५. अग्निमुक्थैर्ऋषयो विह्वयन्तेग्निं नरो यामनिबाधतासः।
अग्निवर्यो अन्तरिक्षे पतन्तोग्निः सहस्रा परियाति गोनाम्।।
६. अग्नि विश ईलेत मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो विजाताः।
अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्याग्नेर्गन्र्यूतिर्धत आग्निषत्ता।।
७. अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महा तवोचामासुवृक्तिम्।
अग्ने प्रावजरितारं थविष्ठाग्ने महि द्रविणमायजस्व।।

इस अग्निसूक्त के ऋषि वाज, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता अग्नि कहे गये हैं। अग्नि शब्द से प्रारम्भ होने वाले अग्निसूक्त की इन सात ऋचाओं का एक सौ बार जप करना चाहिये। तदनन्तर सम्पूर्ण सूक्त के द्वारा सुगन्धित जल से यन्त्र का अभिषेक करना चाहिये। इस अग्निसूक्त के सौ पाठ से सम्पन्न अभिषेक को अग्न्युत्तारण कहा जाता है। धातु से निर्मित यन्त्र की सफाई नित्य मिट्टी एवं जल से करनी चाहिये। काष्ठ-निर्मित यन्त्र को पिष्ट आदि से स्वच्छ करना चाहिये एवं मणिनिर्मित यन्त्र को जल से ही साफ करना चाहिये। इस प्रकार स्वच्छ किये गये यन्त्र पर चन्दन आदि का लेप लगाना चाहिये। तदनन्तर अपने सामने पीठ पर यन्त्र को स्थापित करके मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि प्रदान करते हुये यह भावना करनी चाहिये कि उसमें इष्टदेव का आगमन हो गया है।

वृत्तेन वेष्टितं सम्यक् त्रिकोणं चन्दनाम्भसा।
तद्बहिश्चतुरस्रं च विदध्यान्मत्स्यमुद्रया ॥४९१॥
सम्पूज्य गन्धैर्देवाद्यमण्डलाय नमोऽणुना।
अङ्गानि चतुरग्न्यादिकोणेषु पुरतस्तथा ॥४९२॥
पठंश्चास्त्रं समभ्युक्ष्य शङ्खाधारं प्रविन्यसेत्।
उक्त्वा शङ्खादि चाधारं मण्डले स्थापयेत्त्वथ ॥४९३॥
मं रं धर्मप्रदेत्युक्त्वा वदेद्दशकलात्मकम्।
ङेऽन्तं वह्नेर्मण्डलं च देवनाम च कीर्त्तयेत् ॥४९४॥
ततोऽर्घ्यपात्राधाराय नमः शङ्खं स्वमन्त्रतः।
प्रक्षाल्यामुकदेवार्घ्यपात्रं संस्थापयाम्यहम् ॥४९५॥
एवमुक्त्वा तदाधारे संस्थाप्यैनं च तत्र हि।
अं सूर्यमण्डलं प्रोच्य ङेऽन्तं देवस्य नाम तु।
अर्घ्यपात्राय च नमो मनुनानेन पूजयेत् ॥४९६॥
तत्पात्रमपि तत्रैव भावयेद् भूमिमण्डलम्।
षट्कोणं तत्र चाङ्गानि पूजयेत् पूर्ववत्ततः ॥४९७॥
कला द्वादश सूर्यस्य प्रोक्तास्तत्र प्रदक्षिणम्।
ततः सुधामयैस्तोयैर्मूलान्ते मातृकां जपेत् ॥४९८॥
विलोमां पूरयेत्तस्मिन् पूजको मनुनामुना।
ॐ सोममण्डलायेति षोडशेति कलात्मने ॥४९९॥
अमुकार्घ्यामृतायेति नमः शङ्खप्रपूरणे।
गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपाः ॥५००॥
दूर्वा इत्यर्घ्यपात्रस्य प्रोक्तं द्रव्याष्टकं सुराः।
तत्तोयं गन्धपुष्पाद्यैः पूजयित्वा समर्च्चयेत् ॥५०१॥
कलाषोडशकं चान्द्रं पश्चात्सर्वकलासु च।
प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत पूजान्ते साधकस्ततः ॥५०२॥
प्राग्वत्तीर्थं समावाह्य मूलमन्त्रेण तत्र तु।
संयोज्य मूलमन्त्रेण पुष्पं न्यस्य शराणुना ॥५०३॥
प्रदर्श्य गालिनीं मुद्रां मुद्रया धेनुसञ्ज्ञया।
अमृतीकृत्य विधिवत् स्वधाबीजेन साधकः ॥५०४॥
ध्यात्वेष्टदेवतां तत्र सकलीकरणं चरेत्।
अङ्गन्यासेन चास्त्रेण कल्पयेच्च दिशो दश ॥५०५॥

तत्र मन्त्रेण संवीक्ष्य मुद्रया शङ्खसञ्ज्ञया।
अवष्टभ्य ततो दीप्य मुद्रया योनिरूपया ॥५०६॥
गन्धपुष्पादिभिस्तत्र पूजयेदिष्टदेवताम्।
षडङ्गानि च सम्पूज्य मन्त्रयेन्मूलमन्त्रतः ॥५०७॥
अष्टकृत्वस्ततश्चार्घ्यं दापयेन्मत्स्यमुद्रया।
तच्छङ्खस्थं जलं किञ्चित्कुम्भतोये विनिक्षिपेत् ॥५०८॥
अर्घ्यस्योत्तरदिग्भागे पाद्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्कं च संस्थाप्य त्रिकोणेषु यथाक्रमम् ॥५०९॥
एकैकपात्रं मूलेन सप्तकृत्वोऽभिमन्त्रयेत्।
मधुपर्कस्तु सक्षौद्रो दधि तत्र न लभ्यते ॥५१०॥
दधि दुग्धं गुडक्षौद्रे घृतप्रतिनिधिर्न हि।
परमं तत्पदं देवि मधुसञ्ज्ञं यदुच्यते ॥५११॥
तदाप्यायनं यत्कर्म तत्प्रोक्तं मधुपर्ककम्।

अर्घ्य-स्थापन—चन्दन-मिश्रित जल से बिन्दु, त्रिकोण, षट्कोण, वृत्त और चतुरस्र से युक्त मत्स्य मुद्रा से मण्डल बनाकर चतुरस्र के अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य और वायव्य कोणों में तथा पूर्वादि दिशाओं में षडङ्ग मन्त्रों से पूजा करनी चाहिये। इसके पश्चात् ॐ हृदयाय नमः, ॐ शिरसे स्वाहा, ॐ शिखायै वषट्, ॐ कवचाय हुम्, ॐ नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ अस्त्राय फट् से चारो दिशाओं में षट्कोण में पूजा करनी चाहिये। पूजन चक्र निम्न प्रकार का होगा—



इसके बाद त्रिकोण की इष्ट मन्त्र से पूजा करनी चाहिये। इसके बाद अस्त्राय फट् से आधार का प्रक्षालन करके 'अं अग्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने पात्राधाराय नमः' मन्त्र से आधार को उस मण्डल पर रखे। इसके बाद 'मं रं धर्मप्रददशकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः' से आधार के ऊपर अग्निमण्डल की भावना करके शङ्ख को अपने मन्त्र से साफ करके 'अमुकदेवार्घ्यपात्रं स्थापयाम्यहम्' कहकर आधार पर शङ्ख को स्थापित करे। तब प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से अग्नि की दश कलाओं की प्राण-प्रतिष्ठा करके गन्धाक्षतों से उनकी पूजा करे। यथा—यं धूम्रार्चिषे नमः, रं ऊष्मायै नमः, लं ज्वलिन्यै नमः, वं ज्वालिन्यै नमः, शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, षं सुश्रियै नमः, सं सुरूपायै नमः, हं कपिलायै नमः, ळं हव्यवाहिन्यै नमः, क्षं कव्यवाहिन्यै नमः।

तदनन्तर उसी शंख में 'ॐ सूर्यमण्डलाय अर्थप्रदद्वादशकलात्मने अमुकदेवाय अर्घ्यपात्राय नमः' से सूर्यमण्डल की भावना करके सूर्यकलाओं की प्राण-प्रतिष्ठा करके इन मन्त्रों से पूजन करना चाहिये—कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नमः, गं फं धूम्रायै नमः, घं पं मरीच्यै नमः, ङ नं ज्वालिन्यै नमः, चं धं रुच्यै नमः, छं दं सुषुम्णायै नमः, जं थं भोगदायै नमः, झं तं विश्वायै नमः, ञं णं बोधिन्यै नमः, टं ठं धारिण्यै नमः। ढं डं क्षमायै नमः।

फिर उसी शंख में 'मं सोममण्डलाय कामप्रदषोडशकलात्मने अमुकदेवाय अर्घ्यपात्राय नमः' से चन्द्रमण्डल की भावना करके सोमकलाओं की प्राणप्रतिष्ठा करने के पश्चात् इन मन्त्रों से उनका पूजन करना चाहिये—अं अमृतायै नमः, आं मानदायै नमः, इं पूषायै नमः, ईं तुष्ट्यै नमः, उं पुष्ट्यै नमः, ऊं रत्यै नमः, ऋं धृत्यै नमः, ॠं शशिन्यै नमः, ऌं चन्द्रिकायै नमः, ॡं कान्त्यै नमः, एं ज्योत्स्नायै नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीत्यै नमः, औं अंगदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नमः।

इसके बाद अमुकदेवतार्घ्यामृताय नमः से शंख को जल से भरने के बाद गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सरसो, दूर्वा—इन आठ द्रव्यों को शंखपात्र में डालकर उस जल का गन्ध-पुष्पादि से विधिवत् पूजन करके निम्न मन्त्र से तीर्थों का आवाहन करे—

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि . जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

इसके बाद मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देवे। तब 'फट्' से रक्षा एवं मत्स्यमुद्रा से आच्छादन कर मूल मन्त्र का आठ बार जप करे। अन्त में दश बार अमृतबीज 'वं' का जप करके अमृतीकरण करे। स्वधाबीज से इष्टदेवता का ध्यान करके सकलीकरण करे। अङ्गन्यास मन्त्रों में फट् लगाकर दशो दिशाओं का वीक्षण करे। शंखमुद्रा और

योनिमुद्रा दिखावे। अवगुण्ठन करे। गन्ध-पुष्पादि से इष्टदेवता का पूजन करे। इष्ट देवता का षडङ्ग पूजन करके मूल मन्त्र से शंख के जल को अभिमन्त्रित करे।

अर्घ्य जल को पूर्वोक्त आठ कृत्यों से समन्वित करके मत्स्य मुद्रा से द्वारा आच्छादित करे। फिर उस शंखस्थित जल से थोड़ा जल लेकर कलश में डाले।

अर्घ्यपात्र के उत्तर तरफ पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क पात्रों का स्थापन यथाक्रम त्रिकोण में करे। एक-एक पात्र के जल को आठ-आठ बार मूल मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित करे। मधुपर्क में गुड़, दही और मधु होता है। यदि यह उपलब्ध न हो तब दही, दूध, गुड़, मधु, घी मिलाकर मधुपर्क पात्र में भरे। इन द्रव्यों का प्रतिनिधि न होने के कारण इनके सर्वश्रेष्ठ होने से ही इन्हें 'मधु' कहा जाता है और इनसे जिस कर्म में आप्यायन किया जाता है, उसे मधुपर्क कहते हैं।।४९१-५११।।

कांस्यस्य वाथ रौप्यस्य शैवः शङ्खवरो हरौ ॥५१२॥
महाशङ्खो वाममार्गे स्फाटिको ग्रहनायके।
दक्षिणे प्रोक्षणीपात्रमाधायाब्दिः प्रपूरयेत् ॥५१३॥
किञ्चिदर्घ्याम्बु संगृह्य प्रोक्षण्यम्भसि योजयेत्।
पुनराचमनीयार्थं पात्रं संस्थापयेत्ततः ॥५१४॥
पाद्यं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरुच्यते।
जातीलवङ्गकङ्कोलैर्मतमाचमनीयकम् ॥५१५॥
कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकम्।
पातयेत् प्रोक्षणीपात्रे ललितं प्रणवेन च ॥५१६॥
शुद्धाभिरद्भिर्विहितं पुनराचमनीयकम्।
द्रव्याभावे प्रदातव्याः क्षालितास्तण्डुलाः शुभाः ॥५१७॥

शिवपूजा में काँसे अथवा चान्दी का एवं विष्णुपूजा में शंख का मधुपर्कपात्र श्रेष्ठ होता है। वाममार्ग में कपाल का एवं सूर्यपूजा में स्फटिक-निर्मित मधुपर्कपात्र उत्तम होता है। अर्घ्यपात्र के दक्षिण भाग में स्थापित प्रोक्षणीपात्र से जल लेकर मधुपर्क पात्र में ड़ालना चाहिये एवं अर्घ्यपात्र से भी थोड़ा जल लेकर इसमें डाले। इसके बगल में आचमनीय पात्र को स्थापित करे। इसके बगल में पाद्य पात्र को स्थापित करे। आचमनीय पात्र में जायफल, लवङ्ग, कंकोल, इलायचीचूर्ण डाले। पाद्य पात्र में श्यामाक, दूब और विष्णुक्रान्ता चूर्ण डाले। प्रोक्षणीपात्र में कुश, फूल, यव, व्रीहि, लवण और चन्दन डाले। प्रोक्षणी पात्र में औषधि डालते समय 'ॐ' का जप करे। पुनः आचमनीय जल को शुद्ध करे। द्रव्यों के अभाव में इन पात्रों में धुला हुआ अक्षत डालना चाहिये।।५१२-५१७।।

अथार्घ्यादिकपात्राणां फलं वक्ष्ये शुभाशुभम्।
सर्वकामप्रदं स्वार्णं रौप्यमायुःसुतप्रदम् ॥५१८॥
सौभाग्यं ताम्रपात्रेण धर्मवृद्धिस्तु मृन्मये।
नारिकेले देवतुष्टिर्भवेत्पात्रे तथैव च ॥५१९॥
लक्ष्मीप्राप्तिर्बिल्वपात्रे ब्राह्मण्यं ब्रह्मवृक्षजे।
मारणोच्चाटने लौहं स्तम्भे पाषाणजं भवेत् ॥५२०॥
मन्त्रस्याराधने काष्ठं वाममार्गे तु तौम्बिकम्।
रत्नादीनां तु पात्राणि शुभलेखाङ्कितानि च ॥५२१॥
अर्घ्यनैवेद्यपूजार्थेऽञ्जलिदाने प्रपूजयेत्।
पात्राणामादरः कार्यः पात्राण्येवोत्तमानि च ॥५२२॥
बलिहोमक्रियाद्यं च विना पात्रं न सिद्ध्यति।
षट्त्रिंशदङ्गुलं पात्रमुत्तमं परिकीर्त्तितम् ॥५२३॥
मध्यमं तत्त्रिभागोनं कनिष्ठं द्वादशाङ्गुलम्।
वस्वङ्गुलविहीनं च न पात्रं कारयेत् क्वचित् ॥५२४॥

अर्घ्यादि पात्रों का फल—अब अर्घ्यादि पात्रों का फल कहा जा रहा है। सोने के पात्र से समस्त कामनायें सिद्ध होती हैं, चाँदी के पात्र से आयु और पुत्र की प्राप्ति होती है, ताम्रपात्र से सौभाग्य की वृद्धि होती है, मिट्टी के पात्र से धर्म की वृद्धि होती है, नारियल के पात्र से देवताओं को तुष्टि मिलती है, बेलकाष्ठ के पात्र से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है एवं पलाशकाष्ठ के पात्र से ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। मारण एवं उच्चाटन कर्म में लौहपात्र श्रेष्ठ होता है। स्तम्भन कार्य में पत्थर के पात्र स्थापित होते हैं। मन्त्र के आराधन में काष्ठपात्र उत्तम माने जाते हैं एवं वाममार्ग में तुम्बी का पात्र श्रेष्ठ होता है। रत्नादि के पात्रों पर शुभ रेखा अंकित करनी चाहिये। अर्घ्य, नैवेद्य, पूजन और अञ्जलिदान में इनका पूजन करना चाहिये। पात्रों का आदर करना चाहिये; क्योंकि पात्र ही उत्तम होते हैं। बलि, होम-क्रिया आदि की सिद्धि विना पात्र के नहीं होती। छत्तीस अङ्गुल का पात्र उत्तम माना जाता है, उसके तीसरे भाग न्यून अर्थात् बारह अंगुल कम चौबीस अंगुल का पात्र मध्यम होता है एवं बारह अंगुल का पात्र अधम माना जाता है। आठ अंगुल से कम का पात्र कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिये।।५१८-५२४।।

नाभीविवररूपाणि पुण्डरीकाकृतीनि च।
शङ्खनीलोत्पलाभानि पात्राणि परिकल्पयेत् ॥५२५॥
श्वेतादीन्यतिशस्तानि विप्रादीनां क्रमेण च।
सेचयेत् प्रोक्षणीपात्रतोयैर्मूलं समुच्चरेत् ॥५२६॥

आत्मानं यागवस्तूनि पूजाद्रव्यादिमण्डलम्।
दर्शयेद्धेनुमुद्रां च द्रव्यशुद्धिरियं मता ॥५२७॥

नाभिविवर या श्वेत कमल के आकार का शंख-जैसी नीलोत्पल आभा से युक्त पात्रों को बनवाना चाहिये। विप्रादि के लिये क्रम से पात्रों को श्वेत, सुन्दर एवं प्रशस्त होना चाहिये। मूल मन्त्र के उच्चारणपूर्वक प्रोक्षणीपात्र के जल से स्वयं का, यज्ञीय वस्तुओं का, पूजा-द्रव्यों का और पूजा-मण्डल का प्रोक्षण करना चाहिये एवं धेनुमुद्रा दिखानी चाहिये। इसे ही द्रव्यशुद्धि कहा गया है।।५२५-५२७।।

योगपीठे न्यासदेवांस्तत्तत्स्थानेषु पूजयेत्।
मणिपीठे भावनया ततः पूज्या स्वदेवता ॥५२८॥
आत्मानं देवतारूपं ध्यायेन्मूलेन पञ्च तु।
पुष्पस्याञ्जलयो देया मस्तके हृदये गुदे ॥५२९॥
पादयोः सर्वगात्रे च पूजयेच्चन्दनादिभिः।
चतुर्भिरुपचारैश्च नैवेद्यं विनिवेदयेत् ॥५३०॥
गुरूपदिष्टविधिना शेषमन्यत् समापयेत्।
प्रोक्षण्यद्भिः प्रयुञ्जीत सर्वमेतत्समाहितः ॥५३१॥
ततश्चार्घ्यकरं कार्यं यज्ञकार्यमथोच्यते।

योगपीठ में तत्तत् स्थानों पर देवताओं का न्यास करके उनकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर मणिपीठ पर भावना के द्वारा अपने देवता का पूजन करना चाहिये। अपने को देवता के रूप में मानकर मूल मन्त्र से मस्तक, हृदय, गुदा, पैर एवं सर्वाङ्ग—इन पाँच स्थानों पर पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिये; साथ ही चन्दन-पुष्प-धूप-दीप—इन चार उपचारों से पूजन कर नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। गुरु के उपदेशानुसार शेष पूजन करके समापन करना चाहिये। इन सभी कार्यों में जल से प्रोक्षण आदि एकाग्र चित्त से करना चाहिये। इसके बाद अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। अब यज्ञकार्य कहा जा रहा है।।५२८-५३१।।

मूलाधारे चतुष्कोणमग्निकुण्डं विचिन्तयेत् ॥५३२॥
तत्राग्निं कुण्डलीरूपं ध्यायेन्मूलं समुच्चरन्।
धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा तु वै ॥५३३॥
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमष्टावृत्तीर्जुहोम्यहम्।
आत्माग्नौ जुहोमि स्वाहेति श्लोकान्ते प्रोच्चरेत्पुनः ॥५३४॥
पुनर्मूलं पुनः श्लोकः पुनः पापं जुहोमि च।
कृत्याकृत्येति सङ्कल्पो विकल्पो धर्म एव च ॥५३५॥

उक्त्वा पृथक् च स्वाहान्तं पुनः श्लोकमिमं पठेत्।
प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीषु च ॥५३६॥
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णं वह्नौ जुहोम्यहम्।
स्वाहान्तेनाहुतिं दत्त्वा प्राणायामनिरोधतः ॥५३७॥
निरस्तनिखिलोपाधिमात्मानं चिन्मयं स्मरेत्।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिन्यासमाचरेत् ॥५३८॥

मूलाधार में चतुष्कोण अग्निकुण्ड की कल्पना करे। उसमें कुण्डलिनी के रूप में अग्नि का ध्यान मूल मन्त्रोच्चारणपूर्वक करे। तदनन्तर मूल मन्त्र का उच्चारण कर

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा तु वै।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमष्टावृत्तीर्जुहोम्यहं पुण्यं जुहोमि स्वाहा।।

पुनः मूल मन्त्र के साथ

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा तु वै।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमष्टावृत्तीर्जुहोम्यहं पापं जुहोमि स्वाहा।।

पुनः मूल मन्त्र के साथ

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा तु वै।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमष्टावृत्तीर्जुहोम्यहं कृत्यं जुहोमि स्वाहा।।

पुनः मूल मन्त्र के साथ

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा तु वै।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमष्टावृत्तीर्जुहोम्यहमकृत्यं जुहोमि स्वाहा।।

पुनः मूल मन्त्र के साथ

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा तु वै।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमष्टावृत्तीर्जुहोम्यहं संकल्पं जुहोमि स्वाहा।।

पुनः मूल मन्त्र के साथ

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा तु वै।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमष्टावृत्तीर्जुहोम्यहं विकल्पं जुहोमि स्वाहा।।

इन मन्त्रों से आहुति प्रदान करने के उपरान्त पुनः

प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीषु च।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णं वह्नौ जुहोम्यहं स्वाहा।।

कहकर अन्तिम आहुति प्रदान करने के बाद पूरक करके कुम्भक करे। कुम्भकावस्था में सभी उपाधियों से विमुक्त आत्मा को चिन्मय रूप में स्मरण करे। इसके बाद तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे।।५३२-५३८।।

पूजापीठं विनिर्माय पूजयेत् पीठदेवताः ।
गुरुपङ्क्तिरुदक्पूज्या महागणपतिस्त्ववाक् ॥५३९॥
पूजयेदनलादीनि देवस्याधस्तु सप्त च ।
मण्डूकश्चापि तस्योर्ध्वं रुद्रः कालानलस्तथा ॥५४०॥
मूलप्रकृतिमाधारशक्तिं कूर्मं तथान्तकम् ।
वराहं तस्य दंष्ट्राग्रे पृथिवीमर्चयेत्पुनः ॥५४१॥
तस्यां सुधार्णवं तस्मिन् दीपञ्च नवरत्नकम् ।
स्वर्णशैलं च तन्मध्ये तदूर्ध्वं नन्दनं वनम् ॥५४२॥
तन्मध्ये कल्पवृक्षांश्च तन्मध्ये रत्नभूमिकाम् ।
स्वर्णप्राकारमस्यान्ते तन्मध्ये रत्नमण्डपम् ॥५४३॥
तस्यान्तः स्वर्णवेदी च रत्नसिंहासनं पुनः ।
वेदीमध्ये भावनीयं पूजयेच्चन्दनादिना ॥५४४॥
पूजाचक्राधारपीठं सिंहासनमिति स्मरेत् ।
तत्पादेषु यजेत् सम्यगाग्नेयादिशिवान्तकम् ॥५४५॥
धर्मं वृषतनुं चित्रं ज्ञानं कृष्णं च सिंहवत् ।
वैराग्यं भूतवत् पीतमैश्वर्यं कृष्णहस्तिवत् ॥५४६॥
अधर्मादींश्चित्रवर्णान् पीठस्याधः समर्चयेत् ।
माया विद्ये च तन्मध्येऽनन्तं तत्त्वाकृतिं यजेत् ॥५४७॥
तस्य मूर्ध्नि यजेत् पद्ममष्टप्रकृतिपत्रकम् ।
आनन्दकन्दकं संविन्नालं विकारकेशरम् ॥५४८॥
मातृकाकर्णिकोपेतं तत्पत्रेषु क्रमाद्यजेत् ।
सिद्ध्यष्टकं चाणिमाद्यं तन्नामानि ब्रवीम्यहम् ॥५४९॥
अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः ॥५५०॥
अधोऽधः कर्णिकायास्तु सूर्यः सोमस्तथानलः ।
गुणान् सत्त्वादिकांस्तत्र तद्वदग्रे त्रयं यजेत् ॥५५१॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाँश्च ततो दिक्षु च मध्यतः ।
ज्ञानं माया कला विद्या परपूर्वं च तत्त्वकम् ॥५५२॥
केशरेषु तथा मध्ये पूर्वादिषु यथाक्रमम् ।
तत्तन्मन्त्रोक्तपीठस्य नव शक्तीः प्रपूजयेत् ॥५५३॥

पूजापीठ बनाकर पीठदेवताओं का पूजन करे। पीठ के उत्तर दिशा में गुरुपंक्ति का एवं दक्षिण दिशा में महागणपति का पूजन करे। देव के नीचे अनलादि सात एवं

मण्डूक का पूजन करे। उसके ऊपर रुद्र, कालानल, मूल प्रकृति, आधार शक्ति, कूर्म एवं वराह का पूजन करे। वराह के दाँतों पर पृथ्वी का अर्चन करे। पृथ्वी पर सुधासमुद्र की, उसमें नवरत्नमय द्वीप की, उन द्वीपों के मध्य में स्वर्णपर्वत की, उसके ऊपर नन्दन वन की, नन्दन वन के मध्य में कल्पवृक्षों की, उनके मध्य में रत्नभूमि की, रत्नभूमि के अन्त में स्वर्णप्राकार की, स्वर्णप्राकार के मध्य में रत्नमण्डप की, उसके भीतर स्वर्णवेदी पर रत्नसिंहासन की—इस प्रकार की वेदी में भावना करके चन्दनादि से पूजन करते हुये पूजाचक्र का आधारपीठ सिंहासन के समान है—ऐसा चिन्तन करे। उसके अग्निकोण के पाद से प्रारम्भ करके ईशान तक के पायों में इस प्रकार से पूजन करे। चित्र-विचित्र वर्ण के वृषभ के समान धर्म का, कृष्णवर्ण सिंह के समान ज्ञान का, भूतवत् पीत वर्ण वैराग्य का, कृष्ण हस्ति के समान ऐश्वर्य का पूजन करे। विचित्र वर्ण वाले अधर्मादि का पूजन पीठ के नीचे करे। अग्निकोण का पाया धर्म है। नैर्ऋत्य कोण का पाया ज्ञान है। वायव्य कोण का पाया वैराग्य है और ईशान कोण का पाया ऐश्वर्य है। अग्नि में धर्माय नमः, नैर्ऋत्य में ज्ञानाय नमः, वायव्य में वैराग्याय नमः, ईशान में ऐश्वर्याय नमः से पूजन करे। अधर्म-अज्ञान-अवैराग्य और अनैश्वर्य श्वेत वर्ण के हैं। इनका पूजन पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर में अधर्माय नमः, अज्ञानाय नमः, अवैराग्याय नमः एवं अनैश्वर्याय नमः से करे। यह पूजा पीठ के नीचे करे। मध्य में माया-अविद्या के साथ अनन्त का पूजन तत्त्वाकृति रूप से करे। उसके मूर्धा में अष्टदल पद्म के दलों में आठ प्रकृतियों का पूजन करे। केशर में आनन्दकन्द और सविन्मय नाल का यजन करे। कमल के आठ दलों में अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व—इन आठ सिद्धियों का पूजन करे। कर्णिका के नीचले भाग में सूर्य, सोम, अग्नि एवं सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण का यजन करे। दिशाओं में ब्रह्मा, विष्णु, महेश और ईश्वर का पूजन करे। उनके सामने ज्ञान, माया, कला, विद्या का पूजन करे। केशरों में एवं मध्य में पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके मन्त्रोक्त नव पीठशक्तियों का पूजन करे।।५३९-५५३।।

पीठमन्त्रेण गन्धाद्यैः पीठं समन्ततोऽर्च्चयेत्।
चतुर्थीनमसा युक्तैः स्वस्वदैवतनामभिः ॥५५४॥
मध्ये पुष्पाञ्जलिं दद्यात् पीठमन्त्रेण साधकः।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य्य षष्ठ्यन्तं पीठनाम च ॥५५५॥
मूर्त्तिं च कल्पयामीति मूर्त्तिमध्ये विनिक्षिपेत्।
पूनर्मूलं समुच्चार्य देवनाम ततः परम् ॥५५६॥
मूर्त्तिं च पूजयामीति तां पुष्पेण समर्च्चयेत्।

पीठमन्त्र से गन्धादि द्वारा पीठ पर चारो ओर आने देवता के चतुर्थ्यन्त नाम के साथ नमः लगाकर पूजन करे। तदनन्तर साधक पीठ के मध्य में पीठमन्त्र द्वारा पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। तदनन्तर मूल मन्त्र, षष्ठ्यन्त पीठनाम का उच्चारण करने के बाद 'पीठमूर्त्तिं कल्पयामि' कहकर मूर्त्ति के मध्य में पुष्प-निक्षेप करे। फिर मूल मन्त्र का उच्चारण कर देवता के नाम के पश्चात् 'मूर्त्तिं पूजयामि' कहकर पुष्पों से पूजन करे।

एकपीठेऽन्यपूजां च विना यन्त्रं करोति यः ॥५५७॥
देवताशापमाप्नोति रौरवं नरकं व्रजेत्।
तन्त्रेण पूजयेद्यन्त्रं देवताशापमाप्नुयात् ॥५५८॥
आवाह्य देवतामेकामर्च्चयेच्चान्यदेवताम्।
अन्ययन्त्रेऽन्यपूजा वा देवता शापकारिणी ॥५५९॥
पूजनं बहुमूर्तीनामेकपीठे भवेद्यदि।
पृथक्चन्दनपुष्पाणि धूपदीपादिमन्त्रतः ॥५६०॥

एक पीठ पर विना यन्त्र के दूसरे देवताओं का जो पूजन करता है, उसे देवता का शाप प्राप्त होता है और वह रौरव नरक में जाता है। तन्त्रमार्ग के द्वारा यन्त्र में पूजन करने से पूजक देवता के शाप का भागी होता है। एक देवता का आवाहन करके दूसरे देवता का पूजन करना या एक देवता के यन्त्र में दूसरे देवता का पूजन करना देवता के शाप का कारण होता है। एक पीठ पर यदि अनेक मूर्तियों का पूजन करना अभीष्ट हो तो प्रत्येक का आवाहन-पूजन अलग-अलग करना चाहिये। प्रत्येक को गन्ध-पुष्प-धूप-दीपादि पृथक्-पृथक् चढ़ाना चाहिये।।५५७-५६०।।

खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते।
व्यङ्गेऽनर्हपशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ॥५६१॥
अन्यमन्त्रार्च्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते।
देशेष्वेतेषु नो कुर्युः सन्निधानं दिवौकसः ॥५६२॥
गणेशसूर्यविष्ण्वीशदेवीनां पूजनं क्रमात्।
दशस्थानानि देवानां पूजने कल्पितानि च ॥५६३॥
सान्निध्यं सर्वदेवानामवश्यं मन्त्रतो भवेत्।
मन्त्रस्तु जीववत्प्रोक्तः प्रतिमाद्यं शरीरवत् ॥५६४॥
सिद्धायामपि सामग्र्यां विना मन्त्रं फलं न हि।
शिवलिङ्गे मणौ यन्त्रे शालग्रामे घटे रवौ ॥५६५॥
स्थण्डिलेऽग्नौ मूर्ध्नि हृदि स्थानेष्वेतेषु पूजयेत्।
भूमौ चैव कृता पूजा पुत्रायुर्धननाशिनी ॥५६६॥

साधक को खण्डित, टूटी-फूटी, भ्रष्ट, मानविवर्जित, अङ्गहीन, अनर्ह पशु द्वारा स्पृष्ट, अशुद्ध भूमि में पतित, दूसरे मन्त्र से अर्चित एवं पतित मनुष्यों के स्पर्श से दूषित स्थानों पर देवताओं का सन्निधान नहीं करना चाहिये। गणेश, सूर्य, विष्णु, महेश और देवी का पूजन करने के लिये दश स्थान कल्पित हैं। मन्त्रों से देवताओं का सान्निध्य अवश्य प्राप्त होता है। मन्त्र जीव के समान होते हैं और मूर्ति शरीर के समान होती है। सिद्ध पूजनसामग्रियें के होने पर भी मन्त्र के विना फल नहीं मिलता। शिवलिङ्ग में, मणियों में, यन्त्र में, शालग्राम में, कलश में, सूर्यमण्डल में, स्थण्डिल की अग्नि में, मूर्धा में एवं हृदय में देवताओं का पूजन करना चाहिये। भूमि में पूजन करने से पुत्र, आयु और धन का विनाश होता है।।५६१-५६६।।

दशाङ्गुलप्रमाणा वा तिथ्यङ्गुलमिता पुनः।
अभ्यर्च्या प्रथमा विष्णोर्गृहेषु गृहमेधिभिः ॥५६७॥
पञ्चसूत्रसमायुक्तं शिवलिङ्गं समर्चयेत्।
गृहस्थानां भुक्तिमुक्तिधनारोग्यप्रदं तु तत् ॥५६८॥
लिङ्गमस्तकविस्तारोपचितावथ दीर्घतः।
लिङ्गस्य लिङ्गशालक्या जलाहार्यास्तथैव च ॥५६९॥
लिङ्गपीठस्य पञ्चानां समता पञ्चसूत्रिका।
शालग्रामसमुत्पत्तिं शृण्वन्तु परमाद्भुताम् ॥५७०॥

गृहस्थों को घर में दश अंगुल या सोलह अंगुल ऊँची विष्णु-प्रतिमा का पूजन करना चाहिये। पञ्च सूत्र-समायुक्त शिवलिङ्ग का पूजन घर में करने से गृहस्थों को भोग, मोक्ष, धन और आरोग्य की प्राप्ति होती है। लिङ्ग के मस्तक का विस्तार, लिङ्ग की लम्बाई, लिङ्ग का घेरा, जलहरी और लिङ्गपीठ में समता ही लिङ्ग के पाँच सूत्र हैं। अब शालग्राम की परम अद्भुत उत्पत्ति का वर्णन सुनो।।५६७-५७०।।

गण्डक्या प्राक् तपस्तप्तं भवन्तु मम देवताः।
सर्वे पुत्राः सुखं दातुं जनानामिति ते सुराः ॥५७१॥
तस्यास्तु तपसा हृष्टा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
वरं दातुं समुद्युक्ता वव्रे सापि स्वपुत्रताम्।
अशक्तास्तं वरं दातुं तदा शप्तास्तया क्रुधा ॥५७२॥
प्रतारणं मम सुराः कृतं यस्मात् पुनः पुनः।
कीटयोनिं प्रपद्यध्वं क्रुद्धास्तेऽप्यशपंश्च ताम् ॥५७३॥
अविचार्य्य वयं शप्तास्त्वया यत्तपसोद्धते।
तेन कर्मविपाकेन त्वं वै कृष्णा नदी भव ॥५७४॥

अन्योऽन्यशापं श्रुत्वेत्थं महान् कोलाहलोऽभवत्।
प्रकम्पिताः सुरा याता ब्रह्माणं ते व्यजिज्ञपन् ॥५७५॥
ब्रह्मंस्त्राहि महाशापादन्योन्यपतितान् कुधा।
इति देववचः श्रुत्वा ब्रह्मा शङ्करमब्रवीत् ॥५७६॥
शिवः प्रोवाच धातारमहं संहारकारकः।
त्वं सृष्टिकर्ता विष्णुस्तु पालको बुद्धिमत्तरः ॥५७७॥
स प्रष्टव्यो यथासङ्कुचमुभयोः शम्भवेदिति।
तत्र माहेश्वरं श्रुत्वा वचनं विष्णुरब्रवीत् ॥५७८॥
शृणु ब्रह्मन् महादेव शृणु देवि गजानन।
मद्गणौ ब्राह्मणौ ग्राहमातङ्गौ शापतो यदा ॥५७९॥
भविष्यतस्तयोर्मोक्षं करिष्यामि कलेवरम्।
शीर्णं भविष्यति यदा तन्मेदोमज्जसम्भवाः ॥५८०॥
पाषाणान्तर्गताः कीटा वज्राख्याः प्रभविष्यथ।
अद्यैव गण्डकी पुण्या गङ्गातुल्या महानदी ॥५८१॥
गण्डक्यां गिरिराजस्य दक्षिणे दशयोजनम्।
विस्तीर्णं तन्मनुक्षेत्रं पुण्यं क्षेत्रं महीतले ॥५८२॥
चक्रतीर्थमिदं ख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारवती शिला ॥५८३॥
उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः।
सर्वदेवप्रीतिकरा भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥५८४॥
नद्यां तस्यान्तु पाषाणा ये तदन्तर्गताः सुराः।
पार्थिवांशं विना सर्वे वज्रकीटा भवन्त्विति ॥५८५॥
अनेनैव तु गण्डक्याः पुत्रत्वं भवतामपि।
प्रीताः सुरा न मूर्तेश्च न वृक्षस्यापि पूजनात् ॥५८६॥
सन्तोषो जायते तेषां गण्डक्यश्मार्चनाद्यथा।
इति विष्णुवचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥५८७॥
कीदृक्पूज्या शिला विष्णो किंस्वित्कस्य च वल्लभा।
किं फलं कोऽधिकारी च केन मार्गेण तद्वद ॥५८८॥
इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत्।

शालग्राम की उत्पत्ति—सभी देवता मेरे पुत्र होकर मुझे एवं लोगों को सुख प्रदान करें—इस उद्देश्य से बहुत पहले गण्डकी ने तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने उसके पास जाकर कहा कि वर माँगो। उसने

वर माँगा कि आप सभी मेरे पुत्र हो जायँ। ऐसा वर देने में उन्होंने अपने को जब अशक्त बताया तो उसने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप देते हुये कहा कि क्योंकि बार-बार देवताओं ने मुझे प्रताड़ित किया है; अत: आप सभी कीटयोनि में गिर जायँ। उसके इस शाप से क्रुद्ध होकर देवताओं ने भी शाप दिया कि हे तपस्या से उद्धत देवि! तुम्हारे द्वारा विना विचार किये ही हम सब शाप को प्राप्त हुये हैं, उस कर्मविपाक से तुम कृष्णा नदी हो जाओ। इस प्रकार के परस्पर शाप को सुनकर देवताओं में कोलाहल मच गया। भय से प्रकम्पित वे ब्रह्माजी के पास गये और निवेदन किया कि हे ब्रह्मन्! क्रोध से पतित एक-दूसरे के शाप से हमारी रक्षा करें। इस प्रकार के देवताओं के वचन सुनकर शाप-निराकरणार्थ उपाय के लिये ब्रह्मा ने जब शिव से कहा तो शिव ने कहा कि मैं संहार करने वाला हूँ। आप सृष्टिकर्त्ता हैं और विष्णु उसके पालक हैं और अत्यन्त बुद्धिमान् हैं; अत: उनसे ही पूछना चाहिये। तब ब्रह्मा और शिव दोनों विष्णु के पास गये। शिव से समस्त वृत्तान्त सुनकर विष्णु ने इस प्रकार कहा—हे ब्रह्मन्!, हे महादेव! हे देवि! हे गजानन! आप सुनिये, मेरे गण ग्राह और मातङ्ग ब्राह्मणों के शाप से जब शप्त हो जायेंगे तब उन दोनों को मैं मोक्ष प्रदान करूँगा। उनके शरीर जब शीर्ण हो जायेंगे तब उनके मेद एवं मज्जा से पत्थरों के भीतर वज्र नामक कीट उत्पन्न होंगे। आज से ही गण्डकी गंगा के समान पवित्र महानदी हो गयी है। गण्डकी हिमालय में जहाँ से निकली है, वहाँ से दश योजन तक हिमालय के दक्षिण भाग में वह संसार में पुण्यक्षेत्र कहलायेगा एवं तीनों लोकों में यह चक्रतीर्थ के नाम से विख्यात होगा। जहाँ पर शालग्राम शिला एवं द्वारवती शिला इन दोनों का संगम होगा, वहाँ मुक्ति प्राप्त होने में कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। यह गण्डकी सभी देवों की प्रिया और भोग-मोक्ष देने वाली होगी। इस नदी के भीतर पत्थर के रूप में जो देवता निवास करेंगे, वे सभी पार्थिव अंश के विना वज्रकीट होंगे। इस प्रकार आप लोग भी गण्डकी के पुत्र हो जायेंगे। देवताओं को मूर्ति और वृक्षों के पूजन से जितना सुख नहीं मिलता, उससे अधिक सुख-सन्तोष उन्हें गण्डकी के पत्थरों के पूजन से प्राप्त होगा। इस प्रकार विष्णु के वचन सुनकर ब्रह्मा ने कहा—किस प्रकार की शिला पूज्य है? विष्णु के लिये कौन शिला पूज्य है? वह शिला किसकी प्रिया है? उसके पूजन का क्या फल है? उसके पूजन का अधिकारी कौन है? किस मार्ग से उसकी पूजा होती है? यह सब कहें।।।५७१-५८८।।

पूजार्हशालिग्रामशिला

स्वीयवर्णशिला पूज्या ब्राह्मणाद्यैः सुखाप्तये ॥५८९॥
स्निग्धा शिला मन्त्रसिद्धिं रूक्षाऽसिद्धिं करोति च।
पाण्डुरा पापशमनी मलिना पापधीकरा ॥५९०॥

पीता पुत्रफलं दद्यादाम्रवर्णा सुतान् हरेत्।
नीला सन्दिशते लक्ष्मीं धूमाभा हरते मतिम् ॥५९१॥
रोगप्रदा रक्तवर्णा सिन्दूराभा महाकलिम्।
दारिद्र्यकारिणी वक्रा समा सर्वार्थसाधिका ॥५९२॥
स्थूला निहन्ति चैवायुः सूक्ष्मा स्वल्पमतिं हरेत्।
पूजाफलं लाञ्छितया निष्फलं लाञ्छनं विना ॥५९३॥

ब्रह्मा के उपर्युक्त वचन सुनकर विष्णु ने इस प्रकार कहा—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को सुख की प्राप्ति के लिये अपने वर्ण की शिला का पूजन करना चाहिये। चिकनी शिला के पूजन से मन्त्रसिद्धि होती है, रूखे शिला के पूजन से सिद्धि नहीं मिलती। पाण्डुर शिला पापों का नाश करने वाली होती है एवं मलिन शिला पापबुद्धि उत्पन्न करने वाली होती है। पीली शिला पुत्र प्रदान करने वाली होती है एवं आम्र वर्ण की शिला पुत्रों का हरण करने वाली होती है। नील वर्ण वाली शिला लक्ष्मी प्रदान करने वाली होती है एवं धूम के सदृश कान्ति वाली शिला बुद्धि का नाश करती है। लाल रंग की शिला ग्राम रोगप्रद होती है एवं सिन्दूरी रंग की शिला महान् कलह देने वाली होती है। वक्र शिला दारिद्र्य प्रदान करने वाली एवं सम शिला सर्वार्थ-सिद्धिप्रद होती है। स्थूल शिला के पूजन से आयु का नाश होता है एवं सूक्ष्म शिला के पूजन से बुद्धि भ्रष्ट होती है। लांछित अर्थात् चिह्नित शिला के पूजन का फल प्राप्त होता है, लेकिन विना लांछन के शिला का पूजन निष्फल होता है।।५८९-५९३।।

कपिला चित्तवैकल्यं नेत्ररोगञ्च कर्बुरा।
लग्ना भङ्गकलिं दद्याद्बहुचक्रा प्रधानताम् ॥५९४॥
लक्षणान्तरहीना चेदचक्रा विविधापदम्।
विकृतावर्त्तनाभिश्च वित्तान्नं कुरुते बहु ॥५९५॥
वंशच्छेदो गृहस्थानां नारसिंह्यां प्रजायते।
रेखावर्त्ता दुःखदात्री यथा सूक्ष्मा तथामृतम् ॥५९६॥

कपिल वर्ण के शालग्राम के पूजन से चित्त में विकलता होती है। कर्बूर अर्थात् चितकबरे वर्ण के शालग्राम के पूजन से आँखों में रोग होता है। जिसमें छोटे-छोटे टुकड़े संलग्न हों, वे शालग्राम यदा-कदा कलह प्रदान करने वाले होते हैं एवं बहुत चक्र वाले शालग्राम श्रेष्ठ होते हैं। अन्य चिह्न से रहित एवं चक्ररहित शालग्राम के पूजन से अनेक आपत्तियाँ आती हैं। जिस शालग्राम के अन्दर में चक्र एक चक्र से लेकर बहुत चक्र होते हैं, वे लक्षण युक्त माने जाते हैं। विकृत आवर्त्त एवं नाभि वाले शालग्राम प्रचुर धन एवं अन्न प्रदान करने वाले होते हैं। नृसिंहाकार शालग्राम के पूजन

से गृहस्थों के वंश का विनाश होता है। रेखाओं में आवर्त्त वाला शालग्राम दुःखदायी होता है। सूक्ष्म चिह्न वाले शालग्राम अमृत के समान होते हैं।।५९४-५९६।।

वैष्णवशालग्रामाः

यथा स्निग्धा तथा लक्ष्मीस्तद्विभेदानतः शृणु।
लक्ष्मीहरिः स विज्ञेयो यत्र पद्मं सचक्रकम् ॥५९७॥
केवला वनमाला वा गृहस्थानामभीष्टदः।
वासुदेवः स विज्ञेयो यद् द्वारे चक्रयुग्मकम् ॥५९८॥
निरन्तरं समं चापि स श्वेतः पापनाशनः।
सङ्कर्षणः स विज्ञेयः प्राक्पश्चाच्चक्रयुग्मकम् ॥५९९॥
संलग्नं पूर्वभागस्थं महद्बलसुशोभनम्।
प्रद्युम्ने सूक्ष्मचक्रं स्याच्छिद्रं दीर्घे विचिन्तयेत् ॥६००॥
शुषिरान्तर्बहुच्छिद्रं पीतमिष्टप्रदायकम्।
अनिरुद्धस्तु नीलाभो वर्तुलश्चातिशोभनः ॥६०१॥
रेखाद्वयं तु तद्द्वारि पृष्ठं पद्मेन लाञ्छितम्।
केशवः स तु विज्ञेय एकं वा द्वयमेव च ॥६०२॥
प्राग्वा पश्चाच्च चक्रं स्याच्चतुष्कोणः स भाग्यकृत्।
नारायणः श्यामवर्णो नाभौ चक्रं तथोन्नतम् ॥६०३॥
दीर्घरेखासमायुक्तं दक्षिणे सुकरं पृथु।
हरिरूपा शिला सा स्याद्यस्या ऊर्ध्वं मुखं भवेत् ॥६०४॥
हरिवद् दृश्यते द्वारं भुक्तिमुक्तिप्रदा तु सा।
परमेष्ठी स विज्ञेयः पद्मचक्रान्वितस्तु यः ॥६०५॥
बिल्वाकृतिश्च शुक्लाभः पृष्ठे च शुषिरं महत्।
विष्णुस्तु कृष्णवर्णः स्यात् स्थूलचक्रे शुभानने ॥६०६॥
द्वारोपरि तथा रेखा दृश्यते मध्यदेशतः।
नरसिंहस्तु कपिलः पृथग्वक्त्रो बृहन्मुखः ॥६०७॥
त्रयो वा पञ्च वा तत्र बिन्दवो गृहिणां न सन्।
कपिलो नरसिंहस्तु गुडलाक्षानिभो भवेत् ॥६०८॥

वैष्णव शालग्राम—स्निग्ध शालग्राम शिला लक्ष्मी के समान होती है, उसके भेद इस प्रकार होते हैं। जिस शालग्राम में पद्म और चक्र दोनों के चिह्न होते हैं, उसे लक्ष्मीनारायण कहते हैं। जिस शालग्राम शिला में केवल वनमाला का चिह्न होता है, वह गृहस्थों के अभीष्ट की सिद्धि प्रदान करने वाला होता है। जिस शालग्राम के द्वार

पर दो चक्र होता है, वह वासुदेवस्वरूप होता है। जो शालग्राम सभी ओर से सम हो और उसका वर्ण श्वेत हो तो उसके पूजन से पापों का विनाश होता है। जिस शालग्राम में पूर्व और पश्चिम तरफ दो चक्र होते हैं, उसे संकर्षण समझना चाहिये। जिस शालग्राम में पूर्वभाग में सुन्दर विशाल रत्न संलग्न हो, चक्र सूक्ष्म हो और छेद बड़ा हो, उसे प्रद्युम्न जानना चाहिये। जिसके छेद के भीतर बहुत से छेद हों और रंग पीला हो, उस शालग्राम के पूजन से इष्टसिद्धि होती है। यह भी प्रद्युम्न शिला के गुण हैं। अनिरुद्ध नामक शालग्राम की आभा नीले रंग की होती है, वह अतीव सुन्दर एवं गोलाकार होता है। जिस शालग्राम के द्वार पर दो रेखा हो एवं पीठ पर कमल का चिह्न हो, उसे केशव कहते हैं। जिस शालग्राम के पूर्व और पश्चिम में एक या दो चक्र हों और शिला चतुरस्र हो तो उसका पूजन भाग्यवर्द्धक होता है। नारायण नाम का शालग्राम श्याम वर्ण का होता है, उसके उन्नत नाभि में चक्र होता है। उसके छिद्र के दक्षिण में दीर्घ मोटी रेखा होती है। हरिरूप शालग्राम में छिद्र ऊपर होता है; हरि के सदृश दिखाई देने वाली द्वार से युक्त यह शिला भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली होती है। जो शालग्राम बेत की आकृति वाला, श्वेत वर्ण वाला, पीठ पर बड़े छेद वाला एवं पद्मचक्र के चिह्न से युक्त होता है, उसे परमेष्ठि जानना चाहिये। काले रंग का स्थूल चक्र एवं सुन्दर मुख वाली काले रंग की शिला को विष्णु-स्वरूप जानना चाहिये; उसके द्वार के ऊपर मध्यदेश से रेखा दिखाई देती है। नरसिंह नामक शालग्राम भूरे रंग का होता है। उसके छिद्र द्वार से प्रारम्भ होकर मध्य तक एक रेखा होती है। इसके द्वार का मुख बड़ा होता है। उस पर तीन या पाँच बिन्दु के चिह्न होते हैं। गृहस्थों को इसका पूजन नहीं करना चाहिये। भूरे रंग की नरसिंह शिला गुड़ या लाह के समान भी होता है।।५९७-६०८।।

स्थूलचक्रद्वयं मध्ये द्वारे रेखा सुशोभना।
महानृसिंहो विज्ञेयः पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतः ॥६०९॥
रेखाश्च केशराकारा मुखं दीर्घं भयानकम्।
लक्ष्मीनृसिंहो विज्ञेयश्चतुश्चक्रः सबिन्दुकः ॥६१०॥
पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तो वनमालाविराजितः।
वराहोऽसौ शक्तिलिङ्गचक्रे च विषमे तथा ॥६११॥
इन्द्रनीलनिभः स्थूलस्त्रिरेखालाञ्छितो भवेत्।
पृथ्वी वराहनाम्नी सा या वराहाकृतिः शिला ॥६१२॥
अभुग्ना नैव रेखैका गतराज्यप्रदायिका।
मत्स्याख्या सा शिला ज्ञेया बिन्दुत्रयविभूषिता ॥६१३॥

कांस्योद्भवा स्वर्णनिभा दीर्घा सा भुक्तिमुक्तिदा।
कूर्माख्या तु शिला पृष्ठे वर्तुला चोन्नता भवेत् ॥६१४॥
हरितं वर्णमाधत्ते कौस्तुभेन च चिह्निता।
शिला कूर्मस्य विज्ञेया कूर्माकारा तु या भवेत् ॥६१५॥
चक्राङ्किता तथा वृत्ता पूजिता सा पदप्रदा।
हयग्रीवोऽङ्कुशाकारा रेखा चक्रसमीपगा ॥६१६॥
बहुबिन्दुसमायुक्तं पृष्ठं नीरदनीलकम्।
ज्ञेयः सौम्यो हयग्रीवो हयग्रीवसमा शिला ॥६१७॥
दीर्घया रेखया युक्ता रेखा वा तादृशी भवेत् ॥६१८॥
हयशीर्षः स विज्ञेयो मुखं यस्य हयाकृति।
पद्माकृति भवेद्वापि साक्षमालं शिरस्तथा ॥६१९॥
वैकुण्ठस्तिलवर्णाभश्चक्रमेकं तथा ध्वजः।
द्वारोपरि तथा रेखा पूजकाय सुशोभनः ॥६२०॥

जिस शालग्राम के पीठ पर दो स्थूल चक्र हो, छिद्र द्वार पर सुन्दर रेखा हो और पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त हो, उसे महानृसिंह शिला कहते हैं। जिस शालग्राम में रेखायें केशराकार हों, छिद्र का मुख बड़ा एवं भयानक हो एवं विन्दुसहित चार चक्र हों, उसे लक्ष्मीनृसिंह शिला जानना चाहिये। पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त शालग्राम में यदि वनमाला का चिह्न हो तो उसे वराह लिङ्ग कहते हैं। वराह शालग्राम में चक्र यदि तीन या पाँच हो और वर्ण इन्द्रनील हो एवं स्थूल तीन रेखा हो तो उसे पृथ्वीनृसिंह कहते हैं। जो जो शालग्राम अभग्न हो एवं उसमें एक भी रेखा न हो, वह अपहृत राज्य को भी लौटाने वाला होता है। उसी शिला में यदि तीन विन्दु के चिह्न हों तों उसे मत्स्यावतार का शालग्राम कहते हैं। यदि उसमें कांस्य रंग का हो या सोने के रंग का बड़ा बिन्दु हो तो वह भोग और मोक्ष देने वाला होता है। कूर्म शालग्राम का पीठ उन्नत और वर्तुल अर्थात् गोल होता है। उसका वर्ण हरा होता है एवं वह कौस्तुभ के चिह्न से युक्त होता है। कूर्मशिला का आकार यदि कछुए के समान हो, उसमें चक्र और वृत्त का चिह्न हो तो पूजन करने पर वह शिला पद प्रदान करने वाली होती है। हयग्रीव नामक शालग्राम में चक्र के समीप अंकुश का चिह्न होता है, उसमें बहुत से बिन्दु के चिह्न होते हैं एवं उसका पीठ बादल के समान नीला होता है। हयग्रीव के सदृश शिला के छिद्र का मुख यदि दीर्घ रेखा से युक्त हो तो उसे हयशीर्ष शालग्राम कहते हैं। यह शिला घोड़े के अथवा कमल के आकार की होती है एवं इसके शिर पर अक्षमाला होती है। वैकुण्ठ नामक शालग्राम का रंग काले तिल के समान होता है। यह एक

चक्र और ध्वजचिह्न से युक्त होता है। इसके छिद्र के द्वार पर रेखा होती है। इसके पूजन से पूजक की शोभा बढ़ती है।।६०९-६२०।।

श्रीधरस्तु तथा देवश्चिह्नितो वनमालया।
कदम्बकुसुमाकारो रेखापञ्चकभूषितः ॥६२१॥
वामनः स तु विज्ञेयो योऽतिह्रस्वश्च वर्तुलः।
अतसीकुसुमप्रख्यो बिन्दुनोपरि शोभितः ॥६२२॥
दधिवामननामा च ऊर्ध्वाधश्चक्रसंयुतः।
महाद्युतिश्च ह्रस्वश्च सुभिक्षक्षेमदायकः ॥६२३॥
सुदर्शनस्तथा देवः श्यामवर्णो महाद्युतिः।
वामपार्श्वे तथा चक्रं रेखैकैव तु दक्षिणे ॥६२४॥
सहस्रार्जुननामासौ नानारेखामयो भवेत्।
बकाकारा यत्र पङ्क्तिः स नष्टद्रव्यदायकः ॥६२५॥
स्थूलो दामोदरो यस्य मध्ये चक्रं प्रतिष्ठितम्।
दूर्वाभो द्वारसङ्कीर्णपीतरेखो धनप्रदः ॥६२६॥
राधादामोदरो ज्ञेय ऊर्ध्वाधश्चक्रसंयुतम्।
नातिदीर्घमुखं मध्ये लम्बरेखः स भोगदः ॥६२७॥
दामोदरः स विज्ञेयो यश्चक्रद्वयलाञ्छितः।
सूक्ष्मं भवेच्च विवरं पूजितः सुखदः सदा ॥६२८॥
अनन्तो बहुवर्णः स्यान्नागभोगेन चिह्नितः।
अनेकचक्रसम्भिन्नः सर्वकामफलप्रदः ॥६२९॥

श्रीधर नामक शालग्राम में वनमाला होती है, इसका आकार कदम्ब के फूल के समान होता है एवं इसमें पाँच रेखायें होती हैं। वामन नामक शालग्राम अत्यन्त छोटा और गोल होता है, उसका रंग तीसी के फूल के समान होता है एवं उसके ऊपर बिन्दु होते हैं। दधिवामन नामक शालग्राम के ऊपर और नीचे चक्र होता है; यह अत्यन्त दीप्तिमान होने के साथ-साथ आकार में छोटा होता है। इसके पूजन से देश में सुभिक्ष एवं कल्याण होता है। सुदर्शन नामक श्याम वर्ण वाला अतिशय कान्तिमान शालग्राम बहुत रेखाओं से युक्त होता है; इसके बाँये भाग में चक्र एवं दाँयें भाग में एक रेखा होती है। सहस्रार्जुन नामक शालग्राम में बहुत-सी रेखायें होती हैं। इसके रेखाओं की पंक्ति यदि बगुले के आकार की हो तो यह नष्ट धन को वापस करने वाला होता है। मध्य में एक चक्र वाला दामोदर नामक शालग्राम स्थूल होता है; दूब के समान आभा वाले इस शालग्राम के संकीर्ण द्वार पर पीली रेखा हो तो यह धनप्रदायक होता है।

राधादामोदर नाम के शालग्राम के ऊपर और नीचे चक्र होते हैं। इसका मुख अधिक बड़ा नहीं होता एवं इसके बीच में लम्बी रेखा होती है; यह शालग्राम विविध भोग प्रदान करने वाला होता है। दो चक्रों से चिह्नित एंवं सूक्ष्म छिद्र वाले दामोदर नामक शिला का पूजन करने से सदा सुख की प्राप्ति होती है। अनन्त नाम का शालग्राम बहुरंगी होता है; साथ ही यह नागमुख के चिह्न से युक्त होता है एवं इसमें अनेक चक्र होते हैं। यह अनन्त शालग्राम सर्वार्थ-प्रदायक होता है।।६२१-६२९।।

पुरुषोत्तमनामासौ यस्य दिक्षु विदिक्षु च।
ऊर्ध्वान्यास्यानि दृश्यन्ते पुरुषार्थफलप्रदः ॥६३०॥
योगेश्वरः स विज्ञेयो लिङ्गं यस्य शिरोगतम्।
ब्रह्महत्यादिपापानां नाशको योगसिद्धिदः ॥६३१॥
पद्मनाभस्तथा रक्तः पङ्कजच्छत्रसंयुतः।
तुलस्या पूजयित्वा तं दरिद्रोऽपीश्वरो भवेत् ॥६३२॥
रश्मिज्वालो हिरण्याक्षश्चन्द्राभः स्फटिकोपमः।
अथवा जायते नानास्वर्णरेखाभिरन्वितः ॥६३३॥
गरुडः स विभुर्ज्ञेयो मध्ये पक्षद्वयान्विते।
सुदीर्घा दृश्यते रेखा स सर्पविषनाशकः ॥६३४॥
जनार्दनः स विज्ञेयः केवलानि स्फुटानि च।
यस्योदरे तु चक्राणि चत्वारि पितृतृप्तिकृत् ॥६३५॥
लक्ष्मीनारायणो ज्ञेयो वनमालाङ्कितोदरः।
सूक्ष्मद्वारश्चतुश्चक्रो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥६३६॥
हृषीकेशः स विज्ञेयो योऽर्धचन्द्राकृतिर्भवेत्।
तमभ्यर्च्यानुयात् स्वर्गं विषयाँश्च समीहितान् ॥६३७॥
लक्ष्मीनरहरिर्ज्ञेयः कृष्णवर्णः सबिन्दुकः।
वामपार्श्वे समे चक्रे गृहस्थाभीष्टदायकः ॥६३८॥
त्रिविक्रमः स विज्ञेयः श्यामवर्णो महाद्युतिः।
वामपार्श्वे चक्रयुग्ममेकरेखा तु दक्षिणे ॥६३९॥

पुरुषोत्तम नाम के शालग्राम की दशो दिशाओं में एवं ऊपर भी मुख दिखलायी देता है। यह धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्षरूप पुरुषार्थ फल को देने वाला होता है। जिस शालग्राम के मस्तक पर लिङ्ग बना रहता है, उसे योगेश्वर शालग्राम जानना चाहिये। यह ब्रह्महत्यादि पापों का विनाशक और योग की सिद्धि प्रदान करने वाला होता है। पद्मनाभ शालग्राम का रंग लाल होता है, इस पर कमल और छत्र के चिह्न अंकित

होते हैं। तुलसी से इसका पूजन करने पर दरिद्र भी ईश्वर अर्थात् ऐश्वर्य-सम्पन्न हो जाता है। हिरण्याक्ष नामक शालग्राम किरणों की ज्वाला से समन्वित, चन्द्र-सदृश कान्ति से युक्त एवं स्फटिक के सदृश अथवा अनेक स्वर्णरिखाओं से समन्वित होता है। गरुड़ नामक शालग्राम के मध्य में दो पंख के चिह्न होते हैं। इसमें एक लम्बी रेखा दिखाई देती है, यह शिला सर्पविष का नाश करने वाली होती है। जनार्दन नामक शालग्राम फूटा हुआ होता है, इसके पेट में चार चक्र होते हैं और इसके पूजन से पितृगण तृप्त होते हैं। लक्ष्मीनारायण नामक शालग्राम के उदर में वनमाला अङ्कित रहता है, इसके छिद्र का द्वार सूक्ष्म होता है और उसमें चार चक्र होते हैं। यह भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला होता है। अर्द्धचन्द्र के आकार का जो शालग्राम होता है, उसे हृषीकेश कहते हैं। इसके सम्यक् अर्चन से स्वर्ग मिलता है एवं विषयों से वैराग्य होता है। जिसमें विन्दु होता है और जिसका वर्ण काला होता है तथा जिसके बाँयें पार्श्व में दो या चार या छः चक्र होते हैं, उस शालग्राम का नाम लक्ष्मीनरहरि होता है; यह गृहस्थों के अभीष्ट को पूर्ण करने वाला होता है। उस शालग्राम को त्रिविक्रम कहते हैं, जिसका वर्ण काला हो एवं जो तेज प्रकाश से युक्त हो तथा जिसके बाँयें भाग में दो चक्र एवं दक्षिण भाग में एक रेखा हो।।६३०-६३९।।

कृष्णो ज्ञेयः शिला कृष्णा सचक्रो वा विचक्रकः।
प्रदक्षिणावर्तकृतो वनमालाविभूषितः ॥६४०॥
चतुर्मुखः स विज्ञेयो द्वे चक्रे मध्यदेशतः।
चतस्रः पार्श्वगा रेखा वेदशास्त्रागमप्रदः ॥६४१॥
विष्णोर्भेदा इमे प्रोक्ता अत्रैवावाहयेद्धरिम्।
विसर्जयेच्च पूजाऽन्ते प्रतिष्ठां नात्र कारयेत् ॥६४२॥

चक्रसहित अथवा चक्ररहित उस शालग्राम को कृष्ण कहते हैं, जिसका वर्ण काला हो, साथ ही जो प्रदक्षिणावर्त से युक्त हो एवं वनमाला से विभूषित हो। जिसके मध्य में दो चक्र हो एवं पार्श्व में जो चार रेखाओं से युक्त हो, उस शालग्राम को चतुर्मुख अर्थात् ब्रह्मा कहते हैं। इसके पूजन से वेद एवं आगमशास्त्र का ज्ञान प्राप्त होता है।

इस प्रकार वैष्णव शालग्राम के भेदों का वर्णन किया गया। इन्हीं में विष्णु का आवाहन करके पूजन करने के उपरान्त उनका विसर्जन करना चाहिये। इसमें प्राण-प्रतिष्ठा नहीं होती।।६४०-६४२।।

शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं न हि।
असमा नैव पूज्यन्ते सर्वकामफलार्थिभिः ॥६४३॥

शिला द्वादश यो नित्यं भक्त्या सम्पूजयेन्नरः।
दिने दिने धर्मवृद्धिः पापनाशो भवेदिह ॥६४४॥

समसंख्या में ही शालग्राम का पूजन करना चाहिये; लेकिन दो शालग्राम का पूजन नहीं करना चाहिये अर्थात् चार, छः, आठ, दश, बारह की संख्या में ही शालग्राम का पूजन करना चाहिये। समस्त काम्य फलों के प्राप्ति की आकांक्षा वालों को विषम संख्या में शालग्राम का पूजन नहीं करना चाहिये। जो बारह शालग्रामों का पूजन भक्तिपूर्वक नित्य करता है, उसके धर्म में प्रतिदिन वृद्धि होती है एवं पापों का विनाश होता है।।६४३-६४४।।

शैवशालग्रामाः

शिवनामा स विज्ञेयो यो लिङ्गाकारताङ्कितः।
स्वयन्तु लिङ्गाकृतिमान् मन्त्रसिद्धिविधायकः ॥६४५॥
त्र्यम्बकः स तु विज्ञेयो यो बिन्दुत्रयभूषितः।
शूलाकारा तथा रेखा गतायुष्ट्वप्रदायकः ॥६४६॥
धूर्जटिः स तु विज्ञेयो यत्र रेखा जटासमाः।
तिस्रो यत्र प्रदृश्यन्ते सोचितो ज्ञानदायकः ॥६४७॥
शम्भुस्तु पाण्डुरो ज्ञेयो बिन्दुः कृष्णस्तु मस्तके।
बिल्वप्रमाणस्तेजस्वी पूजितः स्त्रीवशङ्करः ॥६४८॥
ईश्वरः स तु विज्ञेयो रक्तो बिन्दुस्तु मस्तके।
एकचक्रो द्विचक्रो वा ह्यन्तरेऽधश्च गोपदम् ॥६४९॥
मृत्युञ्जयः स विज्ञेयो ह्यपमृत्युविनाशकः।
अधश्चकं तदूर्ध्वञ्च श्वेता रेखा त्रिशूलभाक् ॥६५०॥
चन्द्रशेखरनामासावर्धचन्द्रोऽस्ति मस्तके।
मध्ये चक्रद्वयं तस्य सेवनाद्रोगनाशनम् ॥६५१॥
चन्द्रः स एव विज्ञेयः कपिलो मूर्ध्नि रूक्षितः।
चक्रमध्ये भवेद्रेखा मारयेद्रिपुसन्ततिम् ॥६५२॥

शैव शालग्राम—लिङ्ग की आकृति वाले शालग्राम को शिव शालग्राम कहते हैं। जिसका आकार स्वयं लिङ्ग के समान हो गया हो, उसके पूजन से मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त होती है। जिस शालग्राम में तीन विन्दु हों, उसे त्र्यम्बक कहा जाता है। इसकी रेखायें शूल के आकार की होती हैं एवं पूजन करने से यह समाप्त आयु को भी प्रदान करने वाला होता है। जिस शालग्राम में जटा के समान तीन रेखायें होती हैं, उसे धूर्जटी कहा जाता है, यह उचित ज्ञान प्रदान करने वाला होता है। जो शालग्राम बेल

के बराबर आकार का एवं पाण्डुर वर्ण का हो, जिसके मस्तक पर काले विन्दु हों एवं जो तेज से युक्त हो, उसे शम्भु शालग्राम कहते हैं; इसके पूजन से स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं। जिस लाल रंग के शालग्राम के मस्तक पर विन्दु हो, जिसके भीतर एक या दो चक्र हो एवं नीचे गोपद का चिह्न हो, उसे ईश्वर शालग्राम कहते हैं। अकालमृत्यु के विनाश करने वाले मृत्युञ्जय शालग्राम के नीचे चक्र और ऊपर त्रिशूलाकार श्वेत रेखा होती है। चन्द्रशेखर नामक शालग्राम के मस्तक पर अर्द्धचन्द्र एवं मध्य में दो चक्र होते हैं; इसके पूजन से रोगों का विनाश होता है। जिस शालग्राम का रंग भूरा, मूर्धा रूखड़ा एवं चक्र के मध्य में रेखा होती है, उसे चन्द्र कहते हैं। यह शत्रुओं की सन्तति का विनाशक होता है।।६४५-६५२।।

शाक्तशालग्रामाः

शालग्रामानथो वक्ष्ये शाक्तान् कीटसमुद्भवान्।
येषां पूजनतो देवी भवानी सुप्रसीदति ॥६५३॥
श्रीविद्या सा तले चक्रमूर्ध्वे छत्रं प्रदृश्यते।
बाह्ये घण्टाङ्कितो मूर्द्धा स्निग्धा सेव्याखिलैस्तदा ॥६५४॥
महाकाली तु सा ज्ञेया योक्तचिह्नसमन्विता।
द्विच्छिद्राद्याः सर्वशिलास्त्रिकोणेनाङ्कितास्तु याः ॥६५५॥
यदायुधाकृतिश्चान्तर्देवीं तत्र विनिर्दिशेत्।
देवीशिला सचक्रा या दक्षमार्गेण तां यजेत् ॥६५६॥
सार्चिता वाममार्गेण लोकद्वयसुखावहा।
या चक्ररहिता देवी शिलां तां वामतोऽर्चयेत् ॥६५७॥
स्पर्शः कार्यो न विप्राणां तस्या या क्षोभकृद्भवेत्।

शाक्त शालग्राम—कीटों से उत्पन्न शाक्त शालग्रामों का अब विवेचन किया जाता है, जिसके पूजन से देवी भवानी प्रसन्न होती हैं। श्रीविद्या महात्रिपुरसुन्दरी के शालग्राम के नीचे चक्र, ऊपर छत्र का चिह्न एवं बाहर घण्टा का चिह्न होता है। इसका मस्तक स्निग्ध अर्थात् चिकना होता है; इसके अर्चन से सब कुछ प्राप्त होता है। महाकाली शालग्राम उसे कहते हैं, जो आरम्भ में दो छेद होता है एवं सम्पूर्ण शिला त्रिकोण से चिह्नित होती है। देवीशिला उसे कहते हैं, जिसकी आकृति आयुध के समान होती है। चक्र से युक्त देवीशिला का अर्चन दक्षिण मार्ग से करना चाहिये। देवीशिला का अर्चन वाममार्ग से करने पर दोनों लोकों में सुख प्राप्त होता है। चक्ररहित देवी-शिला का अर्चन वाममार्ग से करना चाहिये। इसका स्पर्श विप्रों के लिये क्षोभकारक होता है।।६५३-६५७।।

सूर्यशालग्रामाः

सौरी शिला दुर्लभैव प्रायः कलियुगे सुराः ॥६५८॥
स्फटिकाभा भवेत्सा तु धर्मे मुक्ता विमुञ्चति।
सूर्यस्योर्ध्वस्थितं वह्निं साभिषिक्ता प्रवर्षणम् ॥६५९॥
कुरुते शपथे मिथ्याकृते स्यात्कुष्ठकारिका।
इत्यादिलक्षणैर्युक्ता शिला सूर्यस्य सम्मता ॥६६०॥

सूर्य शालग्राम—हे देवताओं! कलियुग में सूर्यशिला दुर्लभ है। सूर्य शालग्राम स्फटिक के समान आभा वाली होती है; यह धर्मच्युत करने वाली होती है। सूर्य-शालग्राम के ऊपर अग्नि का चिह्न होता है; इसका अभिषेक करने से वर्षा होती है। शपथ लेकर शपथ को पूरा न करने पर कोढ़ होता है। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त सूर्यशिला होती है।।६५८-६६०।।

गणेशशालग्रामाः

गणेशः स तु विज्ञेयो यस्तु शुण्डाङ्कितो भवेत्।
शुण्डाकारा शिला वापि गजाननसमापि वा ॥६६१॥

गणेश शालग्राम—उस शिला को गणेश शालग्राम कहते हैं, जिस पर हाथी के शूँड का चिह्न होता है या जिसकी आकृति शुण्ड के समान अथवा हाथी के मुख के समान होती है।।६६१।।

दिगीशशालग्रामाः

यस्या मध्ये महच्चक्रं सूक्ष्मचक्रं च यद्दिशि।
सा शिला तस्य दिक्पस्य सेव्या तद्दिशि राज्यदा ॥६६२॥

दिगीश शालग्राम—जिसके मध्य में बड़ा चक्र होता है एवं जिस दिशा में छोटा चक्र होता है, वह शिला उस दिशा के दिक्पाल की होती है; इस शिला के पूजन से साधक को सम्बन्धित दिशा का राज्य प्राप्त होता है।।६६२।।

ग्रहशालग्रामाः

अर्धचन्द्राकृतिर्यत्र दृश्यते शकलद्वयम्।
सा तु चन्द्रशिला त्र्यस्रयुक्ता भौमशिला मता ॥६६३॥
बाणाकारेण चिह्नेन ज्ञेया बुधशिला सुराः।
दीर्घेण चतुरस्रेण युक्ता गुरुशिला मता ॥६६४॥
पञ्चकोणा तु शुक्रस्य चापाकारा शनेर्मता।
शूर्पाकारा तु राहोः स्यात्केतोस्तु ध्वजरूपिणी ॥६६५॥

ग्रह शालग्राम—जिस शालग्राम में अर्द्धचन्द्र के दो चिह्न हों, उसे चन्द्रशिला कहते हैं। जिस पर त्रिकोण का चिह्न हो, उसे मंगल शालग्राम कहते हैं। जिस पर बाण का चिह्न हो, उसे देवताओं को बुध शालग्राम जानना चाहिये। वृहस्पति शालग्राम विशाल चतुर्भुज से युक्त होता है। शुक्र शालग्राम पर पाँच कोण बने होते हैं। शनैश्चर शिला धनुषाकार होती है। राहुशिला की आकृति सूप के समान होती है एवं केतु शालग्राम ध्वजस्वरूप होता है।।६६३-६६५।।

प्राप्ते कलियुगे घोरे वामाचारविमिश्रिते।
भक्ष्याभक्ष्यविचारादिरहिते म्लेच्छसङ्कुले ।।६६६।।
कामक्रोधादिभिर्व्याप्ते जने स्त्रीभिर्विनिर्जिते।
क्व शिष्यः क्व गुरुर्मन्त्रः क्व जपः क्व च सिद्धयः ।।६६७।।
अयुताब्दे कलेर्याते त्यजेद्विष्णुशिला महीम्।
तदर्धञ्जाह्नवीतोयं तदर्धन्देवताशिला ।।६६८।।
जप एव कलौ श्रेयाञ्छालग्रामार्चनं तथा।
सूर्यार्घ्यदानसमये दानं विभवतः परम् ।।६६९।।

आचार वामाचार-मिश्रित आचार वाले, भक्ष्य-अभक्ष्य आदि के विचार से रहित, म्लेच्छों के बहुतायत, काम-क्रोध आदि से व्याप्त एवं स्त्रियों के आधिपत्य वाले घोर कलियुग के प्राप्त होने पर शिष्य, गुरु, मन्त्र, जप एवं सिद्धियों का सर्वथा अभाव होगा। कलियुग के दस हजार वर्ष व्यतीत होने पर शालग्राम की विष्णुशिला पृथ्वी का त्याग कर देगी। उसके आधा अर्थात् कलियुग के पाँच हजार वर्ष व्यतीत होने पर गंगा का जल एवं उसका आधा अर्थात् दो हजार पाँच सौ वर्ष व्यतीत होने पर देवताशिला भी पृथ्वी का त्याग कर देगी। इसलिये कलियुग में मन्त्रों का जप एवं शालग्राम का अर्चन ही श्रेयष्कर है; साथ ही सूर्य को अर्घ्यदान करने के समय अपनी शक्ति के अनुसार दान देना ही सर्वश्रेष्ठ है।।६६६-६६९।।

मूर्त्यादावावाहनादिकम्

आवाहनादिकं कार्यं मूर्त्यादौ त्रिविधं तु तत्।
आदावावाहनं कार्यं त्रिर्जपेन्मूलमन्त्रकम् ।।६७०।।
स्वाल्लोकात् सूक्ष्मरूपेण देव आगत्य मूर्तिषु।
स्थित एवं भावयित्वा सुषुम्णावर्त्मना सुधीः ।।६७१।।
आनीय तेजः स्वस्थानान्नासिकारन्ध्रनिर्गतम्।
करपुष्पाञ्जलौ स्थाप्य तद्दद्याद्देवमूर्द्धनि ।।६७२।।
देवस्य तेजस्तन्मूर्त्तौ आवाहन्याख्यमुद्रया।
स्थापयेदुच्चरेन्मूलमेतदावाहनं मतम् ।।६७३।।

मूर्ति में आवाहन—मूर्ति आदि में आवाहन तीन प्रकार से होता है। पहले आवाहन में मूल मन्त्र का जप तीन बार करना चाहिये। तत्पश्चात् देवता अपने लोक से सूक्ष्म रूप से आकर मूर्ति में स्थित हो गये हैं—ऐसी भावना कर साधक को सुषुम्णा मार्ग से अपने ब्रह्मरन्ध्र से नासाछिद्र द्वारा बाहर आये हुये तेज.को हाथ में स्थित पुष्पाञ्जलि में स्थापित करके उसे देवता के मस्तक पर समर्पित करना चाहिये और देवता के उस तेज को आवाहनी मुद्रा द्वारा मूल मन्त्रोचारणपूर्वक मूर्ति में स्थापित करना चाहिये। इसे ही आवाहन कहते हैं।।६७०-६७३।।

विभोर्निवेशनं यन्त्रं स्थापनं कथितं बुधैः।
ततः संस्थापनं कुर्यादिह तिष्ठेति तिष्ठ च ।।६७४।।
मूलान्ते देवतानाम तस्यान्ते च पठेदिति।
आस्थापनीयमुद्रां च दर्शयित्वा विभावयेत् ।।६७५।।
या तु स्थिरा देवतेति पश्चात् सम्प्रार्थयेदिति।
देवेश भक्तिसुलभ सर्वावरणसंयुत ।।६७६।।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थितो भव।
एवं सम्प्रार्थ्य देवेशं सन्निधापनमाचरेत् ।।६७७।।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य सम्बुध्येत्तां च देवताम्।
इह त्वं सन्निधेहीति द्विरुक्त्वा स्वस्य सन्निधौ ।।६७८।।
स्थितं देवं तोषयेच्च सन्निधापनमुद्रया।
देवतायास्ततः कुर्यान्मूलमुच्चार्य सन्निधिम् ।।६७९।।

यन्त्र में देवस्थापन—अब यन्त्र में देव-स्थापन की जो विधि विद्वानों द्वारा कथित है, उसको कहता हूँ। मूल मन्त्र के बाद देवता का नाम और तब तिष्ठ तिष्ठ कहना चाहिये। जैसे—ॐ नमः शिवाय महादेव तिष्ठ तिष्ठ। तदनन्तर स्थापनी मुद्रा दिखाकर यह भावना करनी चाहिये कि देवता इसमें प्रतिष्ठित हो गये हैं। तत्पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

देवेश भक्तिसुलभ सर्वावरणसंयुत।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थितो भव।।

अर्थात् भक्ति द्वारा सुलभ समस्त आवरणों से युक्त हे देवेश! जब तक मैं आपकी पूजा करूँगा तब तक आप यहाँ सम्यक् प्रकार से विराजमान हों। इस प्रकार प्रार्थना करने के पश्चात् सन्निधापन करना चाहिये। इसके लिये मूल मन्त्र का उच्चारण करके सम्बुद्ध्यन्त देवनाम बोलकर दो बार 'इह त्वं सन्निधेहि' कहना चाहिये; जैसे—ॐ नमः शिवाय शिव इह त्वं सन्निधेहि सन्निधेहि। तदनन्तर सन्निधापन मुद्रा दिखाकर

स्थित देवता को सन्तुष्ट करना चाहिये। तत्पश्चात् मूल मन्त्र के उच्चारण-पूर्वक देवता की सन्निधि प्राप्त करनी चाहिये।।६७४-६७९।।

सम्बुध्य तां वदेत्पश्चात्सन्निरुद्धो भवेति च।
द्विरुच्चरेत्कृपापूर्णां भक्तिभावनिरोधिताम् ॥६८०॥
प्रतिमायां स्थिरं यातां देवतामिति चिन्तयेत्।

मूल मन्त्रसहित सम्बुद्ध्यन्त देवनाम के पश्चात् दो बार 'सन्निरुद्धो भव' का उच्चारण करके देवता का सन्निरोध करना चाहिये अर्थात् अन्य स्थान पर गमन करने से रोकना चाहिये। सन्निरोधन मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होता है—ॐ नमः शिवाय महादेव त्वं सन्निरुद्धो भव सन्निरुद्धो भव। तदनन्तर भक्तिभाव से निरोधित किये गये देवता कृपापूर्वक प्रतिमा में स्थिर हो गये—ऐसी भावना करनी चाहिये।।६८०।।

देवतां सम्मुखीकुर्यान्मूलमुच्चार्य देशिकः ॥६८१॥
सम्बुध्य तां वदेत्पश्चात् सम्मुखो भव इत्यपि।
ध्यायेत् स्वसम्मुखं देवं सुप्रसन्नाननाम्बुजम् ॥६८२॥
सम्मुखीकरणीं मुद्रां दर्शयेदिति तत्स्मृतम्।
देवावगुण्ठनं कार्यं मूलमुच्चार्य मन्त्रवित् ॥६८३॥
सम्बुध्य तामवगुण्ठितो भवेदिति प्रदर्शयेत्।
अवगुण्ठनमुद्राञ्च दर्शयेच्चिन्तयेदिति ॥६८४॥
भक्त्या सम्मोहितं देवं विस्मयोत्फुल्ललोचनम्।
सकलीकरणं चैव देवस्य हृदयादिषु ॥६८५॥
षडङ्गमन्त्रान् विन्यस्य मूलमुच्चार्य देवताम्।
सम्बुध्य तां च सकलीकृतो भव वदेत्ततः ॥६८६॥
ध्यायेदङ्गानि देवे तु प्रतिष्ठाप्याङ्गदेवताः।
यस्माद्भिन्नस्वभावानां यदभिन्नं प्रयोजनम् ॥६८७॥
अङ्गानामङ्गिना सार्द्धं सकलीकरणाद्भवेत्।

तब देशिक मूल मन्त्र से देवता का सम्मुखीकरण करे। मूल मन्त्र के बाद देवता और इसके बाद 'सम्मुखो भव' बोले। यह इस प्रकार होगा—ॐ नमः शिवाय भो महादेव त्वं सम्मुखो भव। साथ ही उनका स्मरण करते हुये सम्मुखीकरण मुद्रा प्रदर्शित करे एवं इस प्रकार ध्यान करे कि प्रसन्न मुख वाले देवता हमारे सामने उपस्थित हैं।

तदनन्तर मूल मन्त्र के बाद सम्बुद्ध्यन्त देवनाम के पश्चात् 'अवगुण्ठितो भव' कहकर अवगुण्ठन मुद्रा प्रदर्शित करते हुये देवता का अवगुण्ठन करना चाहिये एवं

आश्चर्य के कारण खिले नेत्रों वाले देवता सम्मोहित हो गये—ऐसी भावना करनी चाहिये। सकलीकरण में देवता के हृदय आदि छः अङ्गों में मन्त्र का विन्यास करने के बाद मूल मन्त्रसहित सम्बुद्ध्यन्त देवनाम के पश्चात् 'सकलीकृतो भव' कहकर यह ध्यान करना चाहिये कि देवता के अंग में अन्य देवों के अंग प्रतिष्ठित हो गये हैं। क्योंकि भिन्न स्वभाव वाले अंगों का प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न होता है; अतः अंगों का अंगी के साथ सकलीकरण करने से वे एक हो जाते हैं।।६८१-६८७।।

अमृतीकरणं वक्ष्ये पीठे संस्थाप्य देवताम् ॥६८८॥
बद्ध्वा सम्यग्धेनुमुद्रां देवमूर्ध्नि प्रवर्षणम्।
जायते चामृतश्चैति ध्यायन्नर्घ्योदकेन च ॥६८९॥
त्रिः सिञ्चेन्मूलमन्त्रेण दीपिनीमन्त्रमन्त्रितम्।
अकारादिक्षकारान्तमातृकाभिस्त्रिधा पुनः ॥६९०॥
वाग्भवं वद युग्मं च वाग्वादिनि च वाग्भवम्।
क्लींक्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभमित्याद्यपि ॥६९१॥
कुरुयुग्मं कामबीजमों मोक्षं कुरु युग्मकम्।
प्रासादश्च पुनः प्रासादः सप्तत्रिंशदक्षरः ॥६९२॥
दीपिनीमनुराख्यातो देवताया हि वृद्धिकृत्।
मूलं सम्बोधनान्तं च देवनामामृतीकृतः।
भवेति च वदेदित्थममृतीकरणं त्विदम् ॥६९३॥

अब अमृतीकरण का वर्णन करता हूँ। देवता को पीठ पर स्थापित करके धेनु मुद्रा प्रदर्शित करते हुये देवता के शिर पर अमृतवर्षा होने की भावना करे और अर्घ्य जल से मूल मन्त्र बोलकर 'अ' से 'क्ष' तक की मातृका का तीन बार उच्चारण करने के बाद दीपिनी मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से तीन बार सिञ्चित करे। सैंतीस अक्षरों वाले दीपिनी मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं ॐ मोक्षं कुरु कुरु हौं हौं। इस दीपिनी मन्त्र से देवता की वृद्धि होती है। तदनन्तर मूल मन्त्र के पश्चात् सम्बुद्ध्यन्त देवनाम के बाद 'अमृतीकृतो भव' कहने से देवता का अमृतीकरण होता है।।६८८-६९३।।

परमीकरणं वक्ष्ये महामुद्रां च बन्धयेत्।
उच्चार्य मूलं देवं च पूर्ववत्परमीकृतिः।
कृतो भवेति च प्रोच्य ध्यायेद्देवस्य मस्तके।
परमामृतवृद्धिं च देवस्य हृदयं स्पृशन् ॥६९४॥
कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां च मम स्थाने वदेत्तथा।
देवतानामशेषं च सर्वं प्राग्वत्तदेव हि ॥६९५॥

तत्तद्दैवतकल्पोक्तास्ततो मुद्राः प्रदर्शयेत्।
मुदं स्वं पूरयन्त्यद्धा देहद्वारेण चात्मनः ॥६९६॥
या अर्पयन्त्ययत्नेन मुद्रास्ताः शक्तयो मताः।
मोदयन्ति ग्रहादिभ्यः पापौघं द्रावयन्ति च ॥६९७॥
मोदनं द्रावणं यस्मादतो मुद्गाः प्रकीर्तिताः।

अब परमीकरण का वर्णन करता हूँ। महामुद्रा बाँधकर मूल मन्त्र के बाद सम्बुद्ध्यन्त देवनाम कहने के बाद पूर्ववत् 'अमृतीकृतो भव' कहते हुये देवता के हृदय को स्पर्श कर ऐसी भावना करे कि देवता के मस्तक पर परमामृत की वृद्धि हो रही है। परमीकरण मुद्रा में हाथों की अंगुलियाँ परस्पर ग्रथित होती हैं और अँगूठे सीधे प्रसारित रहते हैं।

इसके बाद पूर्वोक्त प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र से प्राणप्रतिष्ठा करे। यहाँ पर प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र में 'मम' के स्थान पर 'अमुकदेवस्य' कहना चाहिये। प्राणप्रतिष्ठा करने के बाद उस देवता के कल्प के अनुसार मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये।

मुद्रा देहद्वार से शरीर के भीतर प्रवेश करके स्वयं को एवं आत्मा को आनन्दित करती है। ग्रहों को हर्ष प्रदान करती है एवं पापसमूहों का नाश करती है। इस प्रकार यह मोदन और द्रावण दोनों करती है; इसीलिये इसे मुद्रा कहते हैं।।६९४-६९७।।

ततः सम्पूजयेद्देवं शक्त्यालभ्योपचारकैः ॥६९८॥
तत्रादौ पूजनं कार्यं षोडशैरुपचारकैः।
आसनं स्वागतं चार्घ्यं पाद्यमाचमनीयकम् ॥६९९॥
मधुपर्कमाचमनं स्नानं वस्त्रमलंकृतिम्।
गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपनैवेद्यवन्दनम् ॥७००॥
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारान् हि षोडश।
दशोपचारा मध्या स्यात्सा गृहस्थैर्विधीयते ॥७०१॥
अर्घ्यं पाद्यं तथाचामो मधुपर्कस्तथाचमः।
गन्धादयो निवेद्यान्ताः उपचारा दश स्मृताः ॥७०२॥
गन्धादयो निवेद्यान्ताः पूजा पञ्चोपचारिका।
अगृहस्थैर्गृहस्थैर्वा कर्त्तव्या कार्यतत्परैः ॥७०३॥

इसके बाद यथोपलब्ध सामग्रियों से देवता का पूजन करे। पहले षोडशोपचार पूजन करना चाहिये। षोडशोपचार के सोलह उपचार हैं—आसन, स्वागत, अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, अलङ्कार, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य एवं वन्दन। पूजन में इन्हीं सोलह उपचारों का प्रयोग करना चाहिये।

दशोपचार से पूजन मध्यम कहा गया है, यह गृहस्थों द्वारा किया जाता है। दशोपचार में अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य होते हैं।

पञ्चोपचार पूजन में गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य होते हैं। गृहस्थ या अगृहस्थ दोनों को ही तत्पर होकर पूजन अवश्य करना चाहिये।।६९८-७०३।।

पूजाविधिः

आदौ कुर्याद्देशिकस्तु वेदमन्त्रेण पूजनम्।
ततश्च तान्त्रिकैर्मन्त्रैर्वामी शूद्रश्च तन्त्रतः ॥७०४॥

पूजन-विधि—देशिक को सर्वप्रथम वैदिक मन्त्रों से पूजन करके तब तान्त्रिक मन्त्रों से पूजन करना चाहिये। वाममार्गी एवं शूद्र को तान्त्रिक मन्त्र से पूजन करना चाहिये।।७०४।।

ॐअंहंहमिदमिदं गृहाण चेति ठद्वयम्।
योज्यः सर्वोपचारेषु मन्त्रः पञ्चदशाक्षरः ॥७०५॥
पठेद्वा वैदिकस्यान्ते तत्र तन्त्रं तु वैदिकः।
सर्वत्र वह्निजायायाः स्थाने शूद्रो नमः पठेत् ॥७०६॥
देवस्य वामभागे तु दद्यान्मूलेन चासनम्।
पौष्पं दारुमयं वास्त्रं चार्म्मं कौशं च तैजसम् ॥७०७॥
पौष्पं पुष्पादिरचितं कुशदूर्वादिसंयुतम्।
नानावर्णसुगन्धं च कोमलं सर्वकामदम् ॥७०८॥
यस्य यानि निषिद्धानि पुष्पाण्युक्तानि तैः कृतम्।
केवलैरासनं हन्ति साधकस्य मनोरथान् ॥७०९॥

समस्त उपचारों के साथ 'ॐ हं हं इदमिदमिदं गृहाण ठः ठः' इस पन्द्रह वर्णात्मक मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये अथवा वैदिक मन्त्रों के अन्त में स्वाहा लगाना चाहिये। तान्त्रिक मन्त्रों में शूद्र को 'स्वाहा' के स्थान पर 'नमः' का प्रयोग करना चाहिये। देवता के वाम भाग में मूल मन्त्र से पुष्प, लकड़ी, वस्त्र, चर्म, कुश अथवा भस्म का आसन प्रदान करना चाहिये।

पौष्प आसन कुश दूर्वा आदि से युक्त अनेक रंग के सुगन्धित फूलों के निर्मित होने के कारण कोमल एवं समस्त कामनाओं को देने वाला होता है। जिस देवता के लिये जो पुष्प निषिद्ध हो, उस पुष्प से निर्मित आसन साधक के मनोरथ का नाश करने वाला होता है।।७०५-७०९।।

यज्ञदारुसमुद्भूतं बैल्वं वा चन्दनोद्भवम्।
गम्भार्य्या वा समाख्यातं श्रीपर्णस्येप्सितप्रदम् ॥७१०॥
सकण्टकक्षीरयुततालशालविवर्जितम् ।
चैत्ये श्मशाने सम्भूतं वर्ज्जयेच्च बिभीतकम् ॥७११॥
रोमजं वाल्कलं कौशजातं कार्पाससम्भवम्।
वस्त्रं चतुर्विधं श्रेष्ठं पूर्वपूर्वमुदाहृतम् ॥७१२॥
सिंहव्याघ्रतरक्षूणां छागस्य महिषस्य च।
गजानां तुरगाणां च कृष्णसारस्य चर्मणः ॥७१३॥
आसनं निर्मितं श्रेष्ठं निषिद्धं खारकौक्कुरम्।
शृगालस्य वृकस्यापि गोः शशस्य कपेस्तथा ॥७१४॥
कुशः काशः शरो ग्रन्थिर्यवो दूर्वाश्च बिल्वजाः।
वीरणं च नडो गुन्द्रः पूर्वाभावे परः परः ॥७१५॥
योगपीठस्य सदृशमेतेषामासनं स्मृतम्।
पूर्वं पूर्वं श्रेष्ठतमं कौशं दशविधं स्मृतम् ॥७१६॥
सुवर्णतारताम्राणां सवङ्गानां परम्परम्।
हीनं निषिद्धं लोहं तु कांस्यं सैसं च पैत्तलम् ॥७१७॥

यज्ञवृक्ष, बेल, चन्दन, गम्भारी अथवा श्रीपर्ण से बने आसन से सभी इच्छायें पूर्ण होती हैं। काँटेदार, दूध वाले वृक्ष, ताड़ और शाल वृक्ष की लकड़ी से आसन नहीं बनाना चाहिये। मठ अथवा श्मशान में स्थित वृक्ष और लिसोड़े की लकड़ी का भी आसन नहीं बनाना चाहिये। कपास-निर्मित वस्त्रासन, कुश-निर्मित कुशासन, वल्कल-निर्मित चर्मासन एवं रोमज अर्थात् कम्बल के आसन श्रेष्ठ होते हैं। इनमें भी क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते हैं। सिंह, व्याघ्र, लकड़बग्घा, बकरा, भैंसा, हाथी, घोड़े और काले मृग के चर्म से निर्मित आसन श्रेष्ठ होते हैं। गदहा, कुत्ता, सियार, भेड़िया, गाय, खरगोश एवं बन्दर के चर्म से बने आसन निषिद्ध हैं। कुश, काश, शरकण्डा, बेंत, यव, दूब, बल्व, खश, नरकुल, गुन्द्र से बने आसन क्रमशः ग्रहणीय होते हैं। कुश की जातियों से निर्मित ये दस प्रकार के आसन योगपीठ के समान होते हैं। सोना, चाँदी, ताँबा, वंग—इन धातुओं से निर्मित आसन क्रमशः निम्न स्तर के माने जाते हैं। लोहा, शीशा, कांसा और पीतल के आसन निषिद्ध हैं।।७१०-७१७।।

साङ्गं सावरणं देवं पूजार्थमिह चागतम्।
इति ध्यात्वा तु मूलान्ते स्वागतं परिकीर्त्तयेत् ॥७१८॥
ततोऽर्घ्यं मूर्ध्नि दद्याच्च कालोऽस्य त्रिविधो मतः।
आगताय तथार्चायां स्नातुमासनगाय च ॥७१९॥

पूजान्ते गन्तुकामाय देवायार्घ्यं प्रदापयेत्।

ऐसी भावना करे कि देवता अपने अङ्गों एवं आवरणों के सहित पूजा के लिये यहाँ आ गये हैं। इस प्रकार का ध्यान करके मूल मन्त्र के साथ 'स्वागतम्' लगाकर उनका स्वागत करना चाहिये। तदनन्तर उनक मूर्द्धा तीन बार अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। इनमें से पहला अर्घ्य आने वाले के पूजन के लिये, दूसरा आसन पर स्थित के स्नान के लिये एवं तीसरा अर्घ्य पूजा के अन्त में प्रस्थान करने को उद्यत देवता के लिये प्रदान करना चाहिये।।७१८-७१९।।

अर्घ्यद्रव्ययुतैस्तोयैरुपचारमनुं पठन् ॥७२०॥
आगते स्नानकाले च नैवेद्योपक्रमेऽपि च।
त्रिविधः पाद्यकालः स्यात्पाद्यं स्यात्पादधावनम् ॥७२१॥

अर्घ्य द्रव्य से संयुक्त अर्घ्य जल से उपचार मन्त्र को पढ़ते हुये तीन वार पाद्य समर्पण करना चाहिये—आने पर, स्नान के समय एवं नैवेद्य प्रदान करने के पहले। यह पाद्य पाँव धोने के लिये प्रदान किया जाता है।।७२०-७२१।।

पाद्ये च मधुपर्के च स्नाने वस्त्रोपवीतयोः।
भोजने चाचमः शुद्धतोयैः षोढा प्रकीर्तितः ॥७२२॥

शुद्ध जल से छः बार आचमन प्रदान करना चाहिये—पाद्य के समय, मधुपर्क के समय, स्नान के समय, वस्त्र समर्पण करते समय, यज्ञोपवीत समर्पण करते समय एवं भोजन के समय।।७२२।।

क्षौद्रं कृत्वा कांस्यपात्रे दद्याद्देवमुखाम्बुजे।
दिवसे दधिसंयुक्तमुपचारमनुं पठन् ॥७२३॥
जातीफललवङ्गैलाचन्द्रकङ्कोलचूर्णयुक् ।
पुनराचमनीयार्थं तोयं देवमुखेऽर्पयेत् ॥७२४॥

दिन में उपचार मन्त्र पढ़ते हुये दधि के साथ कांस्य पात्र में मधु रखकर देवता के मुख में प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर जायफल, लवंग, इलायची, कपूर, कंकोल चूर्ण मिला जल आचमन के लिये देवता के मुख में अर्पित करना चाहिये।

सुगन्धतैलैरभ्यर्च्य सुगन्धामलकादिभिः।
उद्वर्त्तनं विधायाथ स्नापयेदुष्णवारिणा ॥७२५॥
गन्धोदकैश्च मूलेन यथाशक्त्यभिषेचयेत्।
दुग्धदध्याज्यमधुभिः खण्डेन च पृथक्पृथक् ॥७२६॥
नारिकेलोदकेनापि तथा तालफलाम्बुना।
गन्धद्रव्यैश्च बहुभिस्तथा गन्धोदकेन च ॥७२७॥

ऐक्षवेणोदकेनापि सकर्पूरादिगन्धिना।
शुद्धोदकैश्च मूलेन यथाशक्त्यभिषेचयेत् ॥७२८॥
कदलीपनसाश्वत्थरसेनापि सुगन्धिना।
शतं सहस्रमयुतं शक्त्या वाथाभिषेचयेत् ॥७२९॥

सुगन्धित तेल लगाकर में सुगन्धित आमला आदि के पिष्ट से उद्वर्तन लगाने के बाद गर्म जल से स्नान कराना चाहिये। मूल मन्त्र बोलते हुए यथाशक्ति गन्धोदक, दूध, दही, घी, मधु, गुड़, से अलग-अलग अभिषेक करना चाहिये। नारियल जल, ताड़फल के जल, अनेक गन्धद्रव्य, गन्धोदक, इक्षुरस (गन्ने का रस), कर्पूर आदि से सुगन्धित जल एवं शुद्ध जल से भी मूल मन्त्र बोलते हुए यथाशक्ति अभिषेक करना चाहिये। सुगन्धित केला, कटहल एवं पीपल के रस से एक सौ बार, एक हजार बार अथवा दश हजार बार मन्त्रोच्चारणपूर्वक यथाशक्ति अभिषेक करना चाहिये।

शङ्खं सम्पूज्य तेनैव स्नापयेत्तमनन्यधीः।
सर्वेषां प्रीतिदः शङ्खो न सूर्यस्य कदाचन ॥७३०॥
पञ्चामृतैस्तीर्थतोयैरभिषिक्तः शिवो मुदम्।
लभते नाथ शङ्खोदैस्ततः शुद्धोदकेन च ॥७३१॥
स्नानं पुरुषसूक्तेन कार्यं मूलेन वा त्रिभिः।

शङ्ख का पूजन करके उसी के द्वारा देवता को स्नान कराना चाहिये; क्योंकि सूर्य के अतिरिक्त सभी देवों को शंख अत्यन्त प्रिय होता है। पंचामृत और तीर्थजल से अभिषेक शिव को प्रीतिकर है। शंखजल यदि उपलब्ध न हो तो शुद्ध जल से ही अभिषेक करना चाहिये। स्नान पुरुषसूक्त से कराना चाहिये अथवा पुरुषसूक्त, मूल मन्त्र एवं स्नानमन्त्र—इन तीनों से कराना चाहिये।।७३०-७३१।।

प्रदेयं विष्णवे मुख्यं पीतं कौशेयमम्बरम् ॥७३२॥
शिवाय च सरस्वत्यै पार्श्वनाथाय शुभ्रकम्।
रक्तं शक्त्यर्कविघ्नानां भौमसौगतयोरपि ॥७३३॥
कृष्णं भैरवकाल्यादे राधादेर्नीलमम्बरम्।
अच्छिद्रं मलहीनं च सद्यदनन्यधारितम् ॥७३४॥
कार्पासजं वा कौशेयं राङ्कवं वा विशिष्यते।

विष्णु को पीला रेशमी वस्त्र अर्पण करना चाहिये। शिव, सरस्वती एवं पार्श्वनाथ को श्वेत वस्त्र प्रदान करना चाहिये। देवी, सूर्य, गणेश, मंगल एवं बुध को लाल वस्त्र अर्पण करना चाहिये। भैरव एवं काली को काला तथा राधा को नीला रेशमी वस्त्र अर्पण करना चाहिये। अछिद्र, निर्मल, नया, जो किसी ने धारण न किया हो, ऐसा

वस्त्र देवता को अर्पण करना चाहिये। कपास, रेशम या हरिण के बाल से बने वस्त्र श्रेष्ठ होते हैं।।७३२-७३४।।

तैलादिदूषिताद्रोगः सच्छिद्राद् व्रात्यता भवेत् ।।७३५।।
परकीयाच्च दारिद्र्यं जीर्णादायुःक्षयो भवेत् ।
दग्धाद्विपद्भवेद्दास्यं दत्ते गात्रावलम्बिते ।।७३६।।
सूचीविद्धात् स्फोटकादि मलिनात् कान्तिहीनता ।
उप्तकेशे पुत्रनाशः पूजनादौ प्रयोजिते ।।७३७।।
तानि नानाविधानि स्युर्मुकुटादिप्रभेदतः।
स्त्रीपुम्प्रभेदतश्चापि विज्ञेयानि विचक्षणैः ।।७३८।।

पूजन आदि में तेल आदि से दूषित वस्त्र प्रयोग करने से साधक को रोग होता है। छिद्रयुक्त वस्त्र के प्रयोग से साधक में संस्कारहीनता आती है। दूसरे का वस्त्र प्रयोग करने से दरिद्रता होती है। फटे वस्त्र के प्रयोग से आयु क्षीण होती है। जला वस्त्र प्रयोग करने से विपत्ति आती है। शरीर में लगाया हुआ वस्त्र प्रयोग करने से दास्यभाव प्राप्त होता है। सूई से सिले वस्त्र का प्रयोग करने से चेचक आदि होता है। मलिन वस्त्र के प्रयोग से कान्तिहीनता होती है एवं बाल सटे वस्त्र के प्रयोग से पुत्र का नाश होता है। इसी प्रकार मुकुटादि आभूषणों में भी पे ही दोष होते हैं। स्त्री-पुरुष भेद से भी उन्हीं दोषों को जानना चाहिये।।७३५-७३८।।

चूर्णं घृष्टं धूमसारः सम्मर्द्दः प्राणिसम्भवः ।
गन्धः पञ्चविधो ज्ञेयो मोददः स्वर्गवासिनाम् ।।७३९।।
प्रशस्तगन्धयुक्तानां पत्रचूर्णानि यानि च ।
तानि गन्धाह्वयानि स्युश्चूर्णाद्यः प्रथमः स्मृतः ।।७४०।।
घृष्टो मलयजो गन्धः सरलो देवदारु च ।
कृष्णागुरुः कदम्बश्च द्वितीयोऽयं प्रकीर्तितः ।।७४१।।
शतपत्रीरसे मग्नाच्चन्दनागुरुकादिकात् ।
पिप्पलीयन्त्रतः काचकुप्यां सिद्धस्तृतीयकः ।।७४२।।
कृष्णागुरुश्चन्दनदेवदारु कालीयकं बालकभद्रमुस्तम् ।
शिलारसः कुन्दरकोलकं च सेवन्ति काकं तुरगाभिधानम् ।।७४३।।
मृत्कर्पटैः संयुतकाचकुप्यां दत्त्वा मुखे लोहमलोहसूत्रैः ।
निष्कासितो धूमरसस्तु तस्य सौगन्धिकैः काचकठोरकेयः ।।७४४।।
महामोदनामा सुरामोदकारी तथा भूतयक्षोरगातङ्ककारी ।
ज्वरारोचकच्छर्दिशङ्कापहारी ललाटे स्थितो दृष्टिदोषापहारी ।।७४५।।

यथाभागमनेके तु सुगन्धागन्धवारिभिः ।
मर्दिताः स चतुर्थस्तु सम्मर्द इति कीर्त्यते ॥७४६॥
कस्तूरिका चैकभागा द्वौ भागौ मुस्तकस्य च ।
तदर्धंलाजटामांसी त्वक्कुष्ठं च शिलारसः ॥७४७॥
चतुर्भागं बालकं च घृतभृष्टा तथा नखी ।
सुगन्धकोकिला लोहबाणो राजवचा तथा ॥७४८॥
अष्टौ भागाः केशरस्य मुरायाश्चैव षोडश ।
कृष्णागुरुश्च कालीयं तद्भागाष्टकमुच्यते ॥७४९॥
तथा सेवन्तिकाकस्य भागानेकत्र मर्दयेत् ।
कामोदनामा सम्मर्दो देवताराजतोषकृत् ॥७५०॥
कास्तूरिकश्चौतुमदः प्राणजात इतीर्यते ।
पञ्चमोऽयं सुगन्धस्तु देवदानवतोषकृत् ॥७५१॥

गन्ध—स्वर्गवासियों को आनन्द प्रदान करने वाले गन्ध पाँच प्रकार के होते हैं—चूर्ण, घिसा हुआ, धूमसार, सम्मर्दित और प्राणिसम्भूत। इनमें से पहला गन्ध 'चूर्ण' प्रशस्त सुगन्धित पत्र-पुष्पों से तैयार किया जाता है। दूसरा घिस कर तैयार किया हुआ गन्ध होता है; इसमें मलयागिरि चन्दन, सरल, देवदारु, कृष्ण अगुरु एवं कदम्ब आते हैं। तीसरा धूम्रसार गन्ध शतावरी के रस में चन्दन, अगुरु आदि मिलाकर पिप्पली यन्त्र से काचकुप्पी में सिद्ध कर बनाया जाता है। यह गन्ध विविध द्रव्यों से तैयार किया जाता है; इसमें कृष्ण अगुरु, चन्दन, देवदारु, पीला चन्दन, बालक (ह्रीबेर), भद्रमुस्तक (शतमूली), शिलाजीत, कुन्दर, कोलक = वारिवाह, सेवन्ती, कौवाठोंठी, अश्वकर्ण, अश्वगन्ध को मिट्टी के बर्तन में रखकर काचकूपी से युक्त करके मुख को लोहमलोह से बन्द करने के बाद निकल रहे धुँयें से तैयार होता है। यह देवताओं को महान् आनन्ददायक एवं भूतों, यक्षों तथा सर्पों के लिये आतंककारी होता है। यह ज्वर, अरुचि एवं छर्दी का विनाशकारी होता है। इसे ललाट में लगाने से दृष्टिदोष नहीं लगता। अनेक सुगन्धित पदार्थों को यथाभाग जल में मर्दन कर बनाया गया गन्ध सम्मर्द कहलाता है। पाँचवें प्रकार का प्राणिजात गन्ध कस्तूरी एक भाग, दो भाग मुस्तक, आधा भाग जटामांसी, कुष्ठ और शिलाजीत, चौथाई भाग बालछड़, घृतभृष्टा, नखी, सुगन्धकोकिला (अश्वगन्ध), लोहबाण एवं राजवचा, आठवाँ भाग केशर एवं सोलहवाँ भाग मुरा, उसका आठवाँ भाग कृष्ण अगुरु, पीला चन्दन, सेवन्ती—इन सबों को मिलाकर मर्दन कर तैयार किया जाता है। यह देवताओं और राजाओं को सन्तुष्टि प्रदान करने वाला होता है। इसमें कस्तूरी का मद मिश्रित होने से इसे

प्राणिजात कहा जाता है। पाँचवें प्रकार का यह गन्ध देव और दानव—दोनों को सन्तुष्टि प्रदान करने वाला होता है।।७३९-७५१।।

पुष्पं पञ्चविधं प्रोक्तं परं चापरमेव च।
उत्तमं मध्यमं हीनं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्।।७५२।।
परं सुवर्णपुष्पं स्यात्तत्सदा योग्यमेव हि।
अभ्यङ्गपूर्वकं देयमर्चनार्हं सदा भवेत्।
अपरं राजतं पुष्पं ताम्रजं च प्रकीर्तितम्।।७५३।।
सदायोग्यञ्चेदमपि त्रिवर्षं चैकवर्षकम्।
तुलसी केतकी पद्मं करवीरञ्च मालती।।७५४।।
पञ्चैतान्युत्तमान्याहुर्मध्यमानि तथा दश।
मल्लिका कुन्दमन्दारबकुलार्जुनकिंशुकाः।।७५५।।
पारिजातमशोकं च बिल्वं चम्पकमेव च।
एतद्भिन्नं सुवर्णं च सुगन्धहतमुच्यते।।७५६।।
तत्तन्मन्त्रविधानेषु विहितानि समर्च्चयेत्।
नार्पयद्भूमिपतितं कोष्णकं कृमिभक्षितम्।।७५७।।
अङ्गलग्नं समाघ्रातं म्लानं पर्युषितं तथा।
उग्रगन्धमगन्धं च मध्याह्नस्नानतस्तथा।।७५८।।
पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमुखम्।
दुःखदन्तु समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम्।।७५९।।
चित्रपूजासु सर्वासु न विरुद्धस्य दूषणम्।
अधोमुखार्पणं नेष्टं पुष्पाञ्जलिविधौ न तत्।।७६०।।

पुष्प—पुष्प पाँच प्रकार के होते हैं—पर, अपर, उत्तम, मध्यम एवं हीन। अब इनके लक्षणों को कहता हूँ। सोने से निर्मित फूल 'पर' होता है; यह सदा-सर्वदा पूजन में प्रयोग करने के योग्य होता है। इसे साफ करके देवता को अर्पण करना चाहिये। सोने का फूल सदैव देवार्पण के योग्य होता है। चाँदी और ताँबे से बने फूल 'अपर' कहलाते हैं। चाँदी का फूल तीन वर्ष तक और ताँबे का फूल एक वर्ष तक चढ़ाने के योग्य रहता है। तुलसी, केतकी, कमल, कनैल और मालती—इन पाँच फूलों को 'उत्तम' माना जाता है। मध्यम कोटि के पुष्प दश होते हैं—मल्लिका (बेला), कुन्द, मन्दार, मौलसिरी, अर्जुन, पलास, पारिजात (हरसिंगार), अशोक, बेल एवं चम्पा। इनसे भिन्न पुष्प सुगन्धहीन होते हैं। सुन्दर होने पर भी इन्हें निकृष्ट माना जाता है।

तत्तत् मन्त्रों के द्वारा विधान के अनुसार विहित फूलों से पूजन करना चाहिये। उन

फूलों का अर्पण न करे, जो जमीन पर गिर गये हों, जो गर्म हों, जिनमें कीड़ों ने छेद किया हो, जो शरीर से छू गये हों, जिनके गन्ध को सूँघा गया हो, जो मुर्झा गये हों, जो बासी हों, जिनमें तेज गन्ध हो एवं जिनमें गन्ध ही न हो। मध्याह्न स्नान के बाद पुष्प नहीं चढ़ाना चाहिये। पत्र, पुष्प और फल अधोमुख नहीं चढ़ाना चाहिये; क्योंकि इससे दुःख प्राप्त होता है। ये जिस प्रकार उत्पन्न होते हैं, वैसे ही इन्हें चढ़ाना चाहिये। चित्रपूजा में पुष्पों के उलट-पलट होने से कोई दोष नहीं होता। पुष्पाञ्जलि में भी अधोमुखार्पण दोष नहीं माना जाता।।७५२-७६०।।

न पर्युषितदोषोऽस्ति तुलसीबिल्वचम्पके।
जलजे बकुलेऽगस्त्ये मालाकारगृहेषु च ।।७६१।।
केतकीकुटजैर्नेशं नार्चयेदक्षतैर्हरिम्।
न दूर्वया यजेद् दुर्गां बिल्वपत्रैर्दिवाकरम् ।।७६२।।
लम्बोदरं तुलस्या च एतद्भीनैः समर्चयेत्।
नार्कपुष्पैर्यजेद्देवीमादित्यं तगरेण च ।।७६३।।
गणेशाय च सूर्याय रक्तपुष्पमतिप्रियम्।
पुष्पाभावे प्रवालैर्वा तदभावे च कोरकैः ।।७६४।।
तदभावे फलैः पत्रैस्तदभावे तृणैः कुशैः।
कपित्थं दाडिमं कोलं जम्बूचिञ्चामलाम्रकम् ।।७६५।।
मातलुङ्गं च जम्बीरं पनसं श्रेष्ठमुच्यते।

तुलसी, बेलपत्र, चम्पा, कमल, मौलसिरी एवं अगस्त्य के फूल तथा माली के घर स्थित फूल वासी नहीं होते।

केतकी एवं कुटज के फूल शिव को नहीं अर्पित करना चाहिये। अक्षत से विष्णु की पूजा नहीं करनी चाहिये। दूर्वा से दुर्गा का अर्चन नहीं करना चाहिये। सूर्य को बेलपत्र नहीं चढ़ाना चाहिये। गणेश को तुलसी नहीं चढ़ानी चाहिये। अकवन के फूल से देवी की एवं तगर-पुष्प से आदित्य की पूजा नहीं करनी चाहिये।

गणेश और सूर्य को लाल फूल अतिशय प्रिय होते हैं। फूलों के अभाव में गणेश का पूजन मूँगा से और सूर्य का पूजन कमलनाल से करना चाहिये। इनके भी उपलब्ध न होने पर फल अथवा पत्र से पूजन करना चाहिये और यदि इनकी भी अनुपलब्धता हो तो घास और कुश से पूजन करना चाहिये। पूजन-हेतु कत्था, अनार, बेर, जामुन, इमली, आमला, आम, मातुलुंग (चकोतरा), जम्बीर, कटहल के फल श्रेष्ठ कहे गये हैं।।७६१-७६५।।

अथ पुष्पोपचारान्ते कुर्यादावरणार्चनम् ।।७६६।।

मन्त्रसम्पुटितैर्वर्णैर्मातृकायाः सबिन्दुकैः ।
क्रमेण गन्धपुष्पाद्यैर्देवस्याङ्गं समर्चयेत् ॥७६७॥
लयाङ्गत्वेन मातॄणां स्थानाङ्गेषु ततः परम् ।
आदावावरणं पूज्यं तदन्ते देवतां यजेत् ॥७६८॥
एवमभ्यर्च्य सर्वास्ता यथोक्ता वृत्तिदेवताः ।
केशरेष्वग्निकोणादौ हृदयादीनि पूजयेत् ॥७६९॥
नेत्रं मध्ये दिशास्वस्त्रं ध्यातव्याश्चाङ्गदेवताः ।
तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः ॥७७०॥
वरदाभयदारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः ।
अग्नीशासुरवायव्यमध्यदिक्षुक्रमात् स्थिताः ॥७७१॥

फूलों से अर्चन करने के उपरान्त आवरण-पूजन करना चाहिये। सविन्दु मातृका वर्णों को मूल मन्त्र से सम्पुटित करके क्रमशः गन्ध-पुष्प से देवता के अङ्गों का अर्चन करना चाहिये। लयाङ्गत्वेन उनकी शक्तियों का पूजन करने के उपरान्त आवरणदेवताओं का पूजन सम्पन्न करने के बाद देवता का पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार यथोक्त सभी आवरण देवताओं के पूजन के बाद केशर में एवं अग्नि आदि कोणों में हृदयादि का पूजन करना चाहिये अर्थात् अग्निकोण में हृदय, ईशान कोण में शिर, नैर्ऋत्य कोण में शिखा, वायव्य कोण में कवच का पूजन करने के उपरान्त मध्य में नेत्र और चारो दिशाओं में अस्त्र का पूजन करने के बाद अंगदेवता का ध्यान करना चाहिये। इनकी शक्तियाँ हिमसदृश, स्फटिक-सदृश, श्याम, नीला, काला और लाल वर्ण की किरणों से युक्त हैं; साथ ही सभी वर और अभय मुद्रा से समन्वित हैं। ये सभी क्रमशः अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य एवं वायुकोण में; मध्य में तथा पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर दिशाओं में स्थित हैं।।७६६-७७१।।

देवस्य पुरतः प्राची ज्ञेयावरणपूजने ।
तदादिपरिवाराणां प्रादक्षिण्येन पूजनम् ॥७७२॥
अङ्गमन्त्रास्तु पूजायामोमश्चान्ताश्चान्ताहुतौ तथा ।
स्वाहान्ता अथ देवस्याभिमुखं ताः समास्थिताः ॥७७३॥

आवरण-पूजन में मध्य बिन्दु में स्थित देवता के आगे पूर्व दिशा मानी जाती है। वहीं से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रम में आवरणदेवताओं का पूजन करना चाहिये। षडङ्गों की पूजा में अङ्गमन्त्रों के अन्त में ॐ लगाना चाहिये एवं आहुति के अन्त में स्वाहा लगाना चाहिये। सभी शक्तियों का मुख देवता की ओर रहता है।।७७२-७७३।।

ततो यजेल्लोकपालान् स्वस्वदिक्षु व्यवस्थितान्।
आयुधानि तदग्रे च तेषां ध्यानमथोच्यते ॥७७४॥
इन्द्रं सुराधिपं पीठमैरावतगतं विभुम्।
सहस्रनेत्रं द्विभुजं पीठवज्रधरं भजे ॥७७५॥
अग्निं तेजोऽधिपं रक्तं श्वेतशक्तिकरं प्रभुम्।
सभूषणं मेषवाहं देवरं कान्तलोचनम् ॥७७६॥
यमं प्रेताधिपं कृष्णं महिषोपरि संस्थितम्।
कालदण्डकरं क्रूरं वृतं दूतैर्भयानकैः ॥७७७॥
रक्षोऽधिपं च निर्ऋतिं शवासनसमास्थितम्।
धूमाभं खड्गहस्तञ्च पिङ्गलश्मश्रुकूर्चकम् ॥७७८॥
मकरे संस्थितं विद्युन्निभं पाशकराम्बुजम्।
शुभ्राङ्गं तुन्दिलं वन्दे वरुणं यादसां पतिम् ॥७७९॥
वायुं प्राणप्रियं धूम्रं रक्ताङ्कुशकरं परम्।
वानप्रस्थसमारूढं धावन्तं वेगतो भजे ॥७८०॥
यक्षाधिपं कुबेरं च शुक्लं शुक्लगदाधरम्।
नारसिंहासनारूढं पानपात्रयुतं भजे ॥७८१॥
विद्याधिपं नीलशूलधरं वृषभवाहनम्।
त्रिनेत्रं भालचन्द्रं च जटाजूटधरं सितम् ॥७८२॥
गौरं नागाधिपं मूर्ध्नि फणामण्डलभूषितम्।
पीनोत्तुङ्गं चक्रधरमनन्तं विश्वलं भजे ॥७८३॥
लोकाधिपं विधातारं रक्तं पद्मकरं शुभम्।
हंसारूढं वेदपाठं कुर्वन्तं तमहं भजे ॥७८४॥

लोकपाल-पूजन—आवरणदेवताओं के पूजन के उपरान्त अपनी-अपनी दिशाओं में विद्यमान लोकपालों का एवं उनके समक्ष ही उनके आयुधों का भी पूजन करना चाहिये। लोकपालों का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

देवताओं के राजा, ऐरावत के पीठ पर वज्र-सहित आसीन, हजार नेत्र एवं दो भुजाओं वाले इन्द्र का मैं स्मरण करता हूँ।

सुन्दर आँखों वाले तेज के अधिपति अग्नि का वर्ण लाल है। उनके हाथ में श्वेत शक्ति है। वे अलंकारों से सुशोभित हैं एवं उनका वाहन भेड़ा है।

प्रेतों के अधिपति यमराज का वर्ण काला है। वे भैंसे पर सवार हैं। हाथ में कालदण्ड है, आकृति भयानक है एवं वे भयानक दूतों से घिरे हुये हैं।

राक्षसों के अधिपति निर्ऋति शव के आसन पर समासीन हैं। धूम-सदृश कान्ति वाले उनके हाथ में तलवार है एवं दाढ़ी-मूँछ के बाल भूरे हैं।

मकर पर विराजमान, बिजली के समान प्रकाशित, हाथ में पाश धारण करने वाले, सुन्दर शरीर एवं बढ़े पेट वाले जलाधिपति वरुण को मैं प्रणाम करता हूँ।

प्राणाधिपति वायु का वर्ण धूम्र है। हाथ में लाल अंकुश है। वानप्रस्थ पर विराजमान हैं। इस प्रकार के वेग से धावमान वायु का मैं स्मरण करता हूँ।

यक्षों के अधिपति कुबेर का वर्ण श्वेत है। हाथ में श्वेत गदा है। मनुष्य उनका वाहन है। हाथ में पानपात्र है। उनका मैं स्मरण करता हूँ।

ईशान विद्याओं के अधिपति हैं। हाथ में नीला त्रिशूल है। वाहन वृषभ है। तीन नेत्र हैं, माथे पर चन्द्रमा है। मस्तक पर जटाजूट है एवं वर्ण श्वेत है।

नागों के अधिपति अनन्त का वर्ण गौर है। मूर्द्धा फणों के मण्डल से सुशोभित है। फण मोटे और खड़े हैं, हाथ में चक्र है। वे विश्व को धारण किये हुये हैं।

लोकाधिपति ब्रह्मा का वर्ण लाल है। हाथ में सुन्दर कमल है। हंस पर सवार हैं, वेदपाठ कर रहे हैं। ऐसे ब्रह्मा का मैं ध्यान करता हूँ।।७७४-७८४।।

पुनर्मूलं समुच्चार्य साङ्गायै सपरीति च।
वारायै च नामदेव्याश्चतुर्थ्यन्तमुदीरयेत् ॥७८५॥
नम इत्यर्च्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैः साधकस्त्रिधा।
धूपपात्रं ततोऽस्त्रेण लक्षयेत् पूजयेत्ततः ॥७८६॥
हृदाणुनाथ नास्त्रेण घण्टां सम्पूज्य वादयेत्।
धूपो देयो गणेशस्य प्रियः प्रोक्तस्तु गुग्गुलुः ॥७८७॥
सर्जं देव्या महेशस्य निर्यासो देवदारुजः।
विष्णोः कृष्णागुरुः सिह्नं भास्करस्य प्रियं मतम् ॥७८८॥

इस प्रकार पूजन करने के बाद मूल मन्त्र के साथ 'साङ्गायै सपरिवारायै अमुक-देव्यै नमः' कहकर तीन बार देवी का अर्चन गन्ध-पुष्प आदि से करना चाहिये। तदनन्तर 'फट्' बोलकर धूपपात्र दिखाकर 'घण्टादेवाय नमः' कहकर घण्टा का पूजन करके घण्टा बजाना चाहिये। गणेश को गुग्गुल का धूप प्रिय है। देवी को धूना राल का एवं महेश को देवदारु का धूप प्रिय है। विष्णु को काला अगुरु एवं सूर्य को मैनसिल का धूप प्रिय है।।७८५-७८८।।

शक्तेर्दशाङ्गं वक्ष्यामि शैलेयं मलयोद्भवम्।
नखं कुष्ठं सर्जरसमेकैकांशं प्रकल्पयेत् ॥७८९॥

शिलारसागुरुजटामांसीभागद्वयं मतम्।
षण्माक्षिकं सिता चाष्टौ धूपोऽयं शक्तिमोहनः ॥७९०॥

शक्ति के दशाङ्ग धूप—शक्ति के दशाङ्ग धूप का वर्णन करता हूँ। एक-एक भाग शैलेय गन्ध-द्रव्य, श्वेत चन्दन, नख, कूठ एवं धूना; दो-दो भाग शिलाजीत, अगुरु एवं जटा-मासी; छः भाग मधु एवं आठ भाग कपूर—इन सबों को कूटकर मिलाकर दशाङ्ग धूप बनाया जाता है। इसे शक्तिमोहन धूप कहते हैं।।७८९-७९०।।

हरीतकीसर्जरसमुरामांस्यः कुभागिकाः।
लाक्षा त्रिभागा चत्वारो भागाः शैलजमुस्तयोः ॥७९१॥
पञ्चभागं नखं प्रोक्तं षड्भागं कुष्ठमुच्यते।
द्वादशांशो गुरुः केशविघ्नो विष्णुदशाङ्गकः ॥७९२॥

विष्णु के दशाङ्ग धूप—हर्रे, धूना, मुरा एवं मांसी एक-एक भाग; लाह तीन भाग; शिलाजीत एवं मुस्त चार भाग; नख पाँच भाग, कूठ छः भाग, बारहवाँ अंश अगर—सबों को कूट-पीसकर एक में मिलाने से विष्णु को हर्ष-प्रदायक दशाङ्ग धूप बनता है।।७९१-७९२।।

मधु मुस्ता घृतं गन्धो गुग्गुल्वगुरुशैलजम्।
सरलं सिह्लसिद्धार्थैः शेषदेवदशाङ्गकः ॥७९३॥

शेष देवों का दशाङ्ग धूप—मधु, मुस्ता, घी, गन्ध, गुग्गुलु, अगुरु, शिलाजीत, मैनसिल, सरल और सरसों को कूटकर मिलाकर शक्ति एवं विष्णु के अतिरिक्त शेष सभी देवों का दशाङ्ग धूप बनता है।।७९३।।

वामेन तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे।
न धूपं वितरेद् भूमौ नासने न पटे तथा ॥७९४॥
यथा तथाधारगतं कृत्वा तं विनिवेदयेत्।
मेदोमज्जायुतो नेष्टो विष्णवे दारुसम्भवः ॥७९५॥

धूप जलाकर देवता के वाम भाग में रखना चाहिये; सामने अथवा दाहिने भाग में नहीं रखना चाहिये। धूप को भूमि पर, आसन पर अथवा कपड़े पर नहीं बिखेरना चाहिये। जिस किसी प्रकार से आधार पर धूपपात्र रखकर धूप निवेदन करना चाहिये। विष्णु के लिये मेद-मज्जा से युक्त धूप नहीं प्रदान करना चाहिये; अपितु लकड़ी से उत्पन्न धूप ही प्रदान करना चाहिये।।७९४-७९५।।

दीपदानविधिः

पूजयित्वा स्वमन्त्रेण घण्टावादनपूर्वकम्।
दीपं दद्यात्तु विभवैर्नानावाद्यपुरस्सरम् ॥७९६॥

तारो जयध्वनिपदं मन्त्रमानेऽग्निगेहिनी ।
एकादशाक्षरो मन्त्रो घण्टायाः सर्वसिद्धिदः ॥७९७॥
आवाहनार्घ्यधूपेषु पुष्पे नैवेद्यदीपयोः ।
घण्टानादं प्रकुर्वीत विशेषाद्धूपदीपयोः ॥७९८॥
पूजाकालं विनान्यत्र कुर्यात्तस्या न वादनम् ।
नानया च विना पूजां कारयेत्सिद्धिलालसः ॥७९९॥

दीपक—अपने मन्त्र से घण्टा वादन-सहित दीप का पूजन करके अपने वैभव के अनुसार नाना वाद्य बजाकर दीपक अर्पित करना चाहिये। घण्टा का सर्वसिद्धिप्रद ग्यारह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ जयध्वनि मन्त्रमाने स्वाहा। देवता के आवाहन के साथ-साथ अर्घ्य, धूप, दीप एवं नैवेद्य अर्पित करते समय घण्टानाद करना चाहिये। विशेषत: धूप-दीप अर्पण के समय घण्टानाद अवश्य करना चाहिये। पूजाकाल के अतिरिक्त समय में घण्टावादन नहीं करना चाहिये। यदि सिद्धि प्राप्त करने की लालसा हो तो घण्टा के बिना कभी भी पूजन नहीं करना चाहिये।।७९६-७९९।।

गोसर्पिषा वा तैलेन वर्त्त्या च लघुगर्भया ।
उच्चैः प्रदर्शयेद्दीपं न च भेदादिना क्वचित् ॥८००॥
न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपं स्नेहाद् घृतादिकान् ।
दत्त्वा मिश्रीकृतस्नेहात्तामिस्रं नरकं व्रजेत् ॥८०१॥
पारावतभ्रमाकारं भ्रामयेच्च प्रदर्शयेत् ।
देवस्य सर्ववयवाञ्छ्लोकमेकं ततः पठेत् ॥८०२॥
सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥८०३॥

गोघृत या तेल के बीच में छोटी बत्ती लगाकर दीपक जलाकर उसे ऊँचा उठाकर दिखाना चाहिये। चर्बी आदि का दीपक कभी नहीं दिखाना चाहिये। तेल में घी आदि मिलाकर दीपक नहीं जलाना चाहिये। ऐसा करने से दिखाने वाले को तामिस्र नरक प्राप्त होता है। कपोतों के गोल-गोल घूमने के समान दीपक को देवता के पूरे शरीर के इर्द-गिर्द घुमाते हुये दिखाने के साथ-साथ यह श्लोक भी पढ़ना चाहिये—

सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।

आशय यह है कि सुन्दर प्रकाशयुक्त, सभी ओर के अन्धकार को दूर करने वाले, बाहर-भीतर ज्योति प्रदान करने वाले इस महान् दीपक को आप ग्रहण करें।

दक्षिणे सार्षपं तैलं तिलतैलस्य वामतः।
सितावर्तिर्दक्षिणतो वामतो रक्तवर्तिका ॥८०४॥
पात्रेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन।
कृत्वा तु पृथिवीभागे दीपमुत्सृजते नरः।
स तापपापं नरकं प्राप्नोति च शतं समाः ॥८०५॥
नैव निर्वापयेद्दीपं लक्ष्मीनाशकरो यतः।
पाद्यमाचमनीयं च दत्त्वा नैवेद्यमर्पयेत् ॥८०६॥

देवता के दक्षिण भाग में सरसों तेल का एवं बाँयें भाग में तिल तेल का दीपक रखना चाहिए। तेल के दीपकों में दक्षिण भागस्थ सरसों तेल में श्वेत बत्ती एवं वाम भागस्थ तिलतैल में लाल बत्ती जलानी चाहिये। दीपक जलाकर पात्र में रखकर दीप प्रदान करना चाहिये; भूमि पर नहीं देना चाहिये। जो मनुष्य पृथ्वी पर दीपक रखता है, उसे तापपाप के साथ सौ वर्षों तक नरक में दुःख भोगना पड़ता है। जलते दीपक को बुझाना नहीं चाहिये; ऐसा करने से लक्ष्मी का नाश होता है। दीपक दिखाने के बाद पाद्य और आचमनीय प्रदान कर नैवेद्य समर्पण रना चाहिये।।८०४-८०६।।

नैवेद्यसमर्पणविधिः

निधाय स्वर्णकं पात्रं साधारं मण्डले त्विह।
संस्थाप्य चतुरस्रं च संस्कुर्याच्छास्त्रमार्गतः ॥८०७॥
अस्त्रमन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य चक्रमुद्राभिरक्षितम्।
स्पर्शदृष्ट्यादिदोषाँश्च वायुबीजेन शोषयेत् ॥८०८॥
स्पृशन्दक्षकराग्रेण वह्निबीजेन निर्दहेत्।
वंबीजेनामृतीकृत्य मूलमन्त्रेण तत्पुनः ॥८०९॥
स्पृशेत् कराभ्यां विधिवदष्टवाराभिमन्त्रितम्।
धेनुमुद्रां प्रदर्श्याथ गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ॥८१०॥
देवमभ्यर्च्य कुर्याच्च पुष्पाञ्जलिमनन्यधीः।
हेमपात्रस्थितं दिव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम् ॥८११॥
पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण मम सिद्धये।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य स्वाहान्तं जलमर्पयेत् ॥८१२॥
कराभ्यां संस्पृशन् पात्रं नैवेद्यान्ते नमो वदेत्।
देवस्य दक्षिणे हस्ते जलं दत्त्वा पठेदिदम् ॥८१३॥
अमृतोपस्तरणमसि स्वाहेति भवाक्षरः।
दर्शयेद्दक्षहस्तेन विकचोत्पलसन्निभाम् ॥८१४॥

नैवेद्य—अर्घ्य जल से देवता के सामने चतुरस्र मण्डल बनाकर उस पर आधार रखकर आधार पर छः रसों से युक्त पाँच प्रकार के परमान्न रखे हुये सोने के पात्र को स्थापित कर उसका शास्त्रीय मार्ग से संस्कार, अस्त्रमन्त्र 'फट्' से प्रोक्षण, चक्रमुद्रा से अभिरक्षण, वायुबीज 'यं' से स्पर्श-दृष्टि आदि दोष का शोषण, वह्निबीज 'रं' द्वारा अपने दाहिने हाथ से पात्र को स्पर्श करते हुये उन दोषों का दहन, 'वं' बीज से अमृतीकरण करने के उपरान्त पुनः हाथों से उसका स्पर्श कर मूल मन्त्र से आठ बार अभिमन्त्रित करके धेनुमुद्रा दिखाकर गन्ध-पुष्प से अर्चन करना चाहिये। तत्पश्चात् देवता का अर्चन करनें के बाद समाहित चित्त होकर के पुष्पाञ्जलि प्रदान करते हुये यह मन्त्र पढ़े—

हेमपात्रस्थितं दिव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम्।
पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण मम सिद्धये।।

अर्थात् स्वर्णपात्र में स्थित दिव्य सुसंस्कृत छः रसों से युक्त पाँच प्रकार के परमान्न को मेरी सिद्धि के लिये ग्रहण कीजिये।

इसके बाद मूल मन्त्र के साथ स्वाहा लगाकर जल प्रदान करना चाहिये; फिर नैवेद्यपात्र को हाथों से स्पर्श करके नैवेद्य प्रदान करके 'नमः' का उच्चारण करना चाहिये। तत्पश्चात् देवता के दाहिने हाथ में जल देकर ग्यारह अक्षरों का यह मन्त्र पढ़े—अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा। पुनः आठ बार मूल मन्त्र का उच्चारण कर अभिमन्त्रित पात्र का हाथों से स्पर्श करना चाहिये। तदनन्तर दाहिने हाथ से बन्द कमल के समान आकार बनाकर प्रदर्शित करना चाहिये।।८०७-८१४।।

दर्शयित्वा ग्रासमुद्रां पञ्च प्राणाहुतीश्चरेत्।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठयोगः प्राणस्य मुद्रिका ।।८१५।।
तया ग्रासं गृहीत्वा प्राणाय स्वाहेति संवदेत्।
तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठयोगेऽपानपदं वदेत् ।।८१६।।
स्वाहान्तमध्यमानामाङ्गुष्ठयोगेन निर्वपेत्।
हित्वा कनिष्ठां सर्वाभिरुदानायाग्निगेहिनी ।।८१७।।
सर्वाभिस्तु समानाय स्वाहोक्त्वा ग्रासमर्पयेत्।
ततः स्वर्णादिजे पात्रे सुतोयं धेनुमुद्रया ।।८१८।।
अमृतीकृत्य देवाय देयं मन्त्रमिमं पठेत्।
नमस्ते देवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम्।
अन्नं निवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम् ।।८१९।।
परमानन्दसम्पूर्णो गृहाण जलमुत्तमम्।
उक्त्वैवं देवतावामे जलपात्रं निवेशयेत् ।।८२०।।

इस प्रकार ग्रास मुद्रा दिखाकर पञ्च प्राणाहुति प्रदान करते हुये उनकी मुद्रा दिखावे। ग्रास का स्पर्श करते हुये 'ॐ प्राणाय स्वाहा' कहकर कनिष्ठा एवं अनामिका को अंगूठे से स्पर्श करे। 'ॐ अपानाय स्वाहा' कहकर मध्यमा एवं तर्जनी को अंगूठे से स्पर्श करे। 'ॐ व्यानाय स्वाहा' कहकर अनामिका एवं मध्यमा को अंगूठे से स्पर्श करे। 'ॐ उदानाय स्वाहा' कहकर अनामिका, मध्यमा एवं तर्जनी को अंगूठे से स्पर्श करे। 'ॐ समानाय स्वाहा' कहकर अंगूठे से चारो अंगुलियों का स्पर्श करे। इसके बाद सोने आदि के पात्र में शुद्ध जल रखकर धेनुमुद्रा से उसका अमृतीकरण करके देवता को अर्पण करे और यह मन्त्र पढ़े—

नमस्ते देवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम्।
अन्नं निवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम्।।
परमानन्दसम्पूर्णो गृहाण जलमुत्तमम्।

अर्थात् हे देवदेवेश! सभी प्रकार से तृप्तिप्रदायक शुद्ध अन्न आपको समर्पित किया है, आप ग्रहण करके प्रकृतिस्थ हों और यह शीतल परमानन्द सम्पूर्ण उत्तम जल ग्रहण करें। ऐसा कहकर देवता के वाम भाग में उस जलपात्र को रख दे।

त्रिभिर्वर्णैः प्रदातव्यं देवार्थं पाकभोजनम्।
घृतपक्वं दुग्धसिद्धं साधितं केवलाग्निना ॥८२१॥
युक्तमैक्षवपङ्क्तेन तच्छूद्रस्य प्रशस्यते।
ततः पुष्पाञ्जलिं दद्यादस्त्रमन्त्रेण बन्धनम् ॥८२२॥
दिशां कृत्वा जवनिकां देवस्य परितो न्यसेत्।
अमृतात्मकनैवेद्यं नम इत्युच्चरेत् पुनः ॥८२३॥
धेनुमुद्रां प्रदर्श्याथ भुञ्जानां देवतां स्मरेत्।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा मूलमन्त्रं ददेज्जलम् ॥८२४॥
नैवेद्यान्ते त्वाचमनं दत्त्वा होमविधिं चरेत्।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्ण को पका हुआ भोजन देवता को समर्पित करना चाहिये। इन्हें भी घी में पकाया हुआ, दूध में सिद्ध किया हुआ और केवल अग्नि पर पकाया हुआ अन्न ही निवेदित करना चाहिये। शूद्रों को गुड़ से युक्त भोजन निवेदित करना चाहिये। इसके बाद पुष्पाञ्जलि प्रदान कर अस्त्रमन्त्र से दिग्बन्धन करके देवता को चारो ओर से घेर कर पर्दा करके 'अमृतात्मकनैवेद्यं नमः' कहकर धेनु-मुद्रा दिखाते हुये ऐसी भावना करे कि देवता भोजन कर रहे हैं। तदनन्तर एक सौ आठ बार मूल मन्त्र का जप कर देवता को जल समर्पित करना चाहिये। नैवेद्य के अन्त में आचमन प्रदान कर हवन करना चाहिये।।८२१-८२४।।

नैवेद्यान्ते होमविधिः

पूर्ववत्संस्कृते वह्नौ देवमावाह्य मन्त्रवित् ॥८२५॥
सम्पूज्य मूलमनुना पञ्चविंशतिमाहुतीः ।
हुनेदाज्येन हविषा तिलैर्वा पायसैः शुभैः ॥८२६॥
तण्डुलैस्तिलमिश्रैर्वा केवलैर्वापि पुष्पकैः ।
अङ्गावरणदेवानामेकैकामाहुतिं हुनेत् ॥८२७॥
उद्वास्य देवं वह्निं च पूजास्थानं व्रजेत्ततः ।
उपविश्यासने मन्त्रैर्दद्याद् भूतबलिं ततः ॥८२८॥

मन्त्रज्ञ को पूर्ववत् संस्कृत अग्नि में मूल मन्त्र से देवता का आवाहन-पूजन करके मूल मन्त्र से पच्चीस आहुति घृत, हविः, तिल, पायस, तिलमिश्रित चावल अथवा केवल चावल अथवा केवल पुष्प से प्रदान करनी चाहिये। अङ्गदेवताओं एवं आवरण देवताओं को भी एक-एक आहुति प्रदान करनी चाहिये। इसके बाद देवता और अग्नि का विसर्जन करके पूजास्थान में जाकर आसन पर बैठकर मन्त्र से भूत-बलि प्रदान करनी चाहिये।।८२५-८२८।।

भूतबलिः

ईशाने मण्डलं कृत्वा साधारं तत्र निक्षिपेत् ।
अन्नं व्यञ्जनतोयाढ्यं पात्रं पुष्पादिपूरितम् ।
तत्र भूतानि सम्पूज्य ततस्तेभ्यो बलिं हरेत् ॥८२९॥
ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः ।
योगिन्योऽप्यग्निरूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥८३०॥
भूचराः खेचराश्चैव ये तिष्ठन्त्यन्तरिक्षगाः ।
सर्वतः प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्विमं बलिम् ॥८३१॥
वामहस्तेन तत्पात्रे जलधारां समर्पयेत् ।
पुष्पाञ्जलिं समादाय भूतानि प्रार्थयेदिति ॥८३२॥
भूतानि यानीह वसन्ति भूमौ बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् ।
सन्तोषमासाद्य व्रजन्तु सर्वे समन्ततोऽन्यत्र नमोऽस्तु तेभ्यः ॥८३३॥
दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं नत्वा विहरन्तु यथासुखम् ।
भूतादीनि च नाराचमुद्रया विसृजेत्ततः ॥८३४॥

भूत-बलि—ईशान कोण में मण्डल बनाकर उसपर अन्न, व्यंजन, जल, पुष्प आदि से भरे पात्र को आधार-सहित स्थापित करके भूतों का पूजन करने के उपरान्त निम्न मन्त्र पढ़ते हुये उन्हें बलि प्रदान करना चाहिये—

ये रौद्रा रौद्रकर्म्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः।
योगिन्योऽप्यग्निरूपाश्च गणानामधिपाश्च ये।।
भूचराः खेचराश्चैव ये तिष्ठन्त्यन्तरिक्षगाः।
सर्वतः प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्विमं बलिम्।।

तदनन्तर उस बलिपात्र में बाँयें हाथ से जलधारा देकर पुष्पाञ्जलि लेकर भूतों की इस प्रकार प्रार्थना करे—

भूतानि यानीह वसन्ति भूमौ बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्।
सन्तोषमासाद्य व्रजन्तु सर्वे समन्ततोऽन्यत्र नमोऽस्तु तेभ्यः।।

अर्थात् जिन भूतों का इस भूतल पर निवास है, वे सब विधिवत् प्रदत्त बलि ग्रहण करके सन्तुष्ट होकर यहाँ से अन्यत्र चले जायँ, उन्हें प्रणाम है।

तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि देकर उन्हें प्रणाम करके 'इच्छानुरूप विहार करें' कहकर नाराच मुद्रा प्रदर्शित करते हुये भूतों का विसर्जन करना चाहिये।।८२९-८३४।।

देवं तृप्तमिति ध्यात्वा नैवेद्यं गतसारकम्।
सञ्चिन्त्य रक्षोदिग्भागे पात्रं तत्स्थापयेत्ततः ॥८३५॥
गोमयाद्भिस्तदस्त्रेण नैवेद्यं स्थापयेत्ततः।
देवोच्छिष्टं गृहीत्वा तु निर्माल्यभोजिने नमः ॥८३६॥
ऐशान्यां तु विनिक्षिप्य हस्तं प्रक्षालयेत्ततः।
पुनरामचमनं दद्यात् करोद्वर्त्तनमेव च ॥८३७॥
शुद्धमाचमनं दत्त्वा सुगन्धैर्गन्धयेत् करौ।
ततो दद्याच्च ताम्बूलं विष्णवे द्वादशाङ्गकम् ॥८३८॥
खादिरैलालवङ्गेन्दुचूर्णपर्णतमालकम् ।
जातीफलं च जावित्रीकस्तूरीकेशरैर्युतम् ॥८३९॥
पौगं फलमथ प्रोक्तं दशाङ्गं भास्करस्य तु।
मृगनाभितमालाभ्यां हीनं विद्येश्वरस्य तु ॥८४०॥
पञ्चाङ्गं चूर्णखदिरपर्णपूगफलेन्दुकम्।
शैवं देव्या जातिकोशयुतं तच्च महेशितुः ॥८४१॥

ऐसी भावना करे कि नैवेद्य के सारतत्त्व को ग्रहण करके देवता तृप्त हो गये। तब नैवेद्य पात्र को देवता के निकट से उठाकर नैर्ऋत्य कोण में गोबर आदि से लिपे स्थान पर अस्त्रमन्त्र के द्वारा स्थापित करे। नैवेद्य पात्र में से देवताओं के जूठन में से थोड़ा हाथ में लेकर 'निर्माल्यभोजिने नमः' कहकर ईशान कोण में फेंककर हाथ धोकर पुनः देवता को आचमन एवं करोद्वर्तन प्रदान करे। शुद्ध आचमन देकर हाथों को

सुगन्ध से सुगन्धित करे। इसके बाद ताम्बूल प्रदान करे। विष्णु का ताम्बूल बारह अंगों वाला होता है। कत्था, इलायची, लवङ्ग, कपूर, तमालपत्र, जायफल, जावित्री, कस्तूरी, केशर और सुपारी-चूर्ण—इन दश अंगों से युक्त ताम्बूल सूर्य को समर्पित किया जाता है। विद्याधिपति शिव के पान में कस्तूरी और तमाल नहीं होते। गणेश के पान में खैर का पंचाङ्ग, सुपारी और कपूर होते हैं। शिव और शक्ति का पान जातिकोश से युक्त होता है।।८३५-८४१।।

ततश्च मुकुटादीनि दद्याद् भूषणकानि च।
दर्शयेच्च तथादर्शं कल्पयेच्छत्रचामरे ॥८४२॥
शिरस्यारोप्य देवस्य दूर्वाक्षतपवित्रकम्।
आरार्त्रिकं ततः कुर्याद्धर्मकामार्थसिद्धये ॥८४३॥

इसके बाद देवता को मुकुट, आभूषण आदि प्रदान करे, दर्पण दिखावे, छत्र-चामर की कल्पना करे। देवता के शिर पर दूब, अक्षत-सहित पवित्रारोपण करे। इसके बाद धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि के लिये आरती करे।।८४२-८४३।।

सौवर्णे राजते कांस्ये लोकनेत्रमनोहरे।
कुङ्कुमेन लिखेत् पद्ममष्टपत्रं सुशोभनम् ॥८४४॥
कर्णिकायां महादीपं तत्पत्रेष्वष्टदीपकान्।
यवगोधूमरचिताञ्छर्करादुग्धसंयुतान् ।
वलयाञ्चितशोभाभिः शोभितान् घृतपूरितान् ॥८४५॥
अभिमन्त्र्य ततो मन्त्री रत्नेश्वर्य्या नवार्णतः।
श्रीं ह्रीं ग्लूं स्तूं त्वथ प्राग्वत्ततः श्रीं ह्रीमिति क्रमात् ॥८४६॥
रत्नेश्वर्य्याः समुद्दिष्टस्ततो मूलेन तां यजेत्।
ततस्तत्पात्रमुद्धृत्य मस्तकान्तं पुनः पुनः ॥८४७॥
नववारं भ्रामयेच्च चक्रमुद्रां प्रदर्शयेत्।
देवं प्रणम्य च ततः प्राणायामत्रयं चरेत् ॥८४८॥

सोना, चाँदी या कांसे की देखने में सुन्दर तश्तरी में कुमकुम से सुन्दर अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका (मध्य) में बड़ा दीपक और आठ दलों में आठ छोटा दीपक स्थापित करे। यव अथवा गेहूँ के आटे को दूध एवं शर्करा से सानकर सुन्दर दीपक बनाकर उसके किनारों को विविध शोभा से सुशोभित करके दीपकों को घी से पूर्ण करके नवाक्षरी रत्नेश्वरी मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे। रत्नेश्वरी मन्त्र है—श्रीं ह्रीं ग्लूं स्तूं श्रीं ह्रीं ग्लूं स्तूं ह्रीं। रत्नेश्वरी का मूल मन्त्र से पूजन करे। इसके बाद पात्र को हाथ में लेकर मस्तक के चारो ओर नव बार घुमावे एवं चक्रमुद्रा दिखावे। तदनन्तर देवता को प्रणाम करके तीन प्राणायाम करे।।८४४-८४८।।

मूलमन्त्रेणाथ पूर्वं न्यासपूर्वान् समाचरेत्।
अष्टोत्तरसहस्रं तु नव द्वे त्रिशतं तु वा ॥८४९॥
अष्टोत्तरशतं चापि जपेन्मूलमतन्द्रितः।
समाप्ते तु जपे मालां निदध्यान्मस्तकोपरि।
अर्घ्यपात्राज्जलं चैव गृहीत्वेदं पठेत्पुनः ॥८५०॥
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥८५१॥
देवस्य दक्षिणे हस्ते तोयं दत्त्वा समर्पयेत्।
जपश्च जपमाला च स्थाप्या रहसि वेष्टिता।
ततस्तु गीतस्तुतिभिर्घण्टावादनपूर्वकम् ॥८५२॥
ब्राह्मणो वेदमन्त्राद्यैः क्षत्रियः संहितादिभिः।
पौराणिकाद्यैर्वैश्यस्तु शूद्रस्तु प्राकृतादिभिः ॥८५३॥

इसके पश्चात् मूल मन्त्र से पूर्ववर्णित न्यासों को करके एकाग्र चित्त से एक हजार आठ, तीन सौ उनतीस अथवा एक सौ आठ बार मूल मन्त्र का जप करने के पश्चात् माला को शिर पर स्थापित करे। तत्पश्चात् अर्घ्यपात्र से जल लेकर निम्न मन्त्र को पढ़े—

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादाज्जगत्पते।।

अर्थात् गुप्त से गुप्त को भी आप गुप्त रखने वाले हैं। मेरे द्वारा किये गये जप को ग्रहण कीजिये। हे देव! आपकी प्रसन्नता से मुझे सिद्धि प्राप्त हो।

उक्त मन्त्र को पढ़कर देवता के दाहिने हाथ में जल देकर कृत जप का समर्पण करे। इसके बाद जप और जपमाला को वस्त्र में लपेटकर एकान्त पवित्र स्थान में रख दे। इसके बाद गीत, स्तुति, घण्टा-वादन के साथ ब्राह्मण वेदमन्त्र से, क्षत्रिय संहितामन्त्र से, वैश्य पौराणिक मन्त्र से एवं शूद्र प्राकृतिक मन्त्र से तर्पण करे।

वामिनस्तूपचारान्ते कुर्युर्मद्येन तर्पणम्।
तेषामनित्यो होमस्तु नित्यं तर्पणसेवनम् ॥८५४॥
कौलिकैः शक्तिसहितैस्तदुच्छिष्टञ्च सेचयेत्।
मोहाद्वा कामतः शूद्रः पुराणं वा स्मृतिं पठेत्।
संहितां नरकं याति पितृभिः सह पापकृत् ॥८५५॥
यः शूद्रो बुद्धिपूर्वन्तु शृणुयाच्छ्रावयेद् द्विजान्।
वेदाँस्तौ दुःखितावस्मिन् भवेऽन्यत्र च नारकौ ॥८५६॥

अधिकारमदाद्यस्तु धनस्य मदतोऽपि वा।
शूद्रस्तु शृणुयाद्वेदं स निर्वंशस्तु निर्धनः ॥८५७॥
अज्ञानाच्चेच्छ्रुतो वेदः श्रावितो वा द्विजन्मना।
प्राजापत्यत्रयं कृत्वा तौ संशुद्धौ भविष्यतः ॥८५८॥

वाममार्गियों को उपचार-समर्पण के उपरान्त मद्य से तर्पण करना चाहिये; उनके लिये नित्य हवन करना आवश्यक नहीं है, किन्तु तर्पण-पूजन नित्य करना चाहिये। कौल मार्गी को शक्तिसहित उसके उच्छिष्ट से सेचन करना चाहिये। शूद्र यदि मोहवश या कामवश पुराण, स्मृति अथवा संहिता का पाठ करता है, तो वह पापात्मा पितरों के सहित नरक जाता है। जो शूद्र अपनी बुद्धिमत्ता से द्विजों को वेदपाठ सुनाता है या उनसे सुनता है, वह स्वयं एवं सुनने अथवा सुनाने वाला द्विज—दोनों इस संसार में दुःखी रहते हैं और मरने पर नरक में वास करते हैं। अधिकार के मद से अथवा धन के घमण्ड से शूद्र यदि वेद का श्रवण करता है, तो वह निर्वंश एवं निर्धन होता है। अज्ञानतावश यदि शूद्र ने वेद सुन लिया अथवा ब्राह्मण ने उसे सुनाया तो वे दोनों ही तीन प्राजापत्य व्रत करके शुद्ध होते हैं।।८५४-८५८।।

ततोऽर्घ्यपात्रमादाय मूलमुच्चार्य मन्त्रतः।
साधु वासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया।
तत्सर्वं भगवन् देव गृहाणाराधनं वरम् ॥८५९॥
इत्यर्घ्योदकमुत्सृज्य किञ्चिद्देवस्य दक्षिणे।
करे समर्पयेद् विद्वान् कृतमाराधनं ततः।
भक्त्या प्रणम्य देवेशं श्लोकैरेभिः समर्पयेत् ॥८६०॥
यद्दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
निवेदितं च नैवेद्यं तद् गृहाणानुकम्पया ॥८६१॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर ॥८६२॥
कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम।
अन्तश्चारेण भूतानां द्रष्टा त्वं परमेश्वर ॥८६३॥
नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वचला भक्तिरव्ययास्तु सदा त्वयि ॥८६४॥
देवो दाता च भोक्ता च देवः सर्वमिदं जगत्।
देवो जयति सर्वत्र यो देवः सोऽहमेव हि ॥८६५॥

तब अर्घ्यपात्र लेकर मूल मन्त्र का उच्चारण करके—

साधु वासाधु वा कर्म्म यद्यदाचरितं मया।
तत्सर्वं भगवन्देव गृहाणाराधनं वरम्।।

(हे भगवन्! जिन साधु या असाधु कर्मो को मेरे द्वारा किया गया, उन सभी कर्मों को आप मेरी आराधना के रूप में श्रेष्ठ समझ कर ग्रहण करें।)

इस मन्त्र को पढ़कर अर्घ्यजल में से थोड़ा जल देवता के दाहिने हाथ में देकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके की गई आराधना देवता को समर्पित करते हुये निम्न श्लोकों का पाठ करे—

यद्दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
निवेदितं च नैवेद्यं तद् गृहाणानुकम्पया।।
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर।।
कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम।
अन्तश्चारेण भूतानां द्रष्टा त्वं परमेश्वर।।
नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वचला भक्तिरव्ययास्तु सदा त्वयि।।
देवो दाता च भोक्ता च देवः सर्वमिदं जगत्।
देवो जयति सर्वत्र यो देवः सोऽहमेव हि।।

(भक्तिमात्र से जो पत्र, पुष्प, फल, जल, नैवेद्य मैने निवेदित किया है, उन्हें हे देव! आप कृपा करके ग्रहण कीजिये। न मुझे आवाहन का ज्ञान है और न ही मुझे विसर्जन का ज्ञान है। मुझे पूजा-विधि का भी ज्ञान नहीं है। हे परमेश्वर! आप ही मेरी गति हैं। मन, कर्म और वचन से तुम्हारे अतिरिक्त मेरी कोई गति नहीं है। सभी भूतों के अन्तस्थ में रहकर आप ही द्रष्टा हैं। हे नाथ! हजारो योनियों में से जिस-जिस योनि में मेरा जन्म हो, उस-उस योनि में मेरी भक्ति आपमें निरन्तर बनी रहे। देव ही दाता है। देव ही भोक्ता है। देव ही यह सारा संसार है। देव ही सर्वत्र विजयी होते हैं। वह देव मैं ही हूँ)।।८५९-८६५।।

ततोऽर्घ्यपात्रतोयेन कुर्यादाराधनार्पणम्।
ब्रह्मार्पणस्य मनुना कुर्याद् ब्रह्मार्पणं ततः ।।८६६।।
तारस्तत्सत्पूर्वमिति प्राणबुद्धीति संवदेत्।
देहधर्माधिकारेति जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासूक्त्वा
मनसा वाचा कर्मणाभ्यन्तरा ततः ।।८६७।।
यच्छब्दश्चोदरेणेति शिष्ट्वा यच्च स्मृतं च यत्।
उक्तं यच्च कृतं तच्च सर्वं ब्रह्मार्पणं भवेत् ।।८६८।।

भूः स्वाहेति च मन्त्रोऽयं षट्षड्वर्णः समीरितः।
उद्वासयेत्ततो देवं परिवारगणैः सह ॥८६९॥
इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रणम्य परिभावयेत्।
देवस्याग्रे विलीनं तु रश्मिवृन्दमशेषतः ॥८७०॥
तेजोरूपं शिवं ध्यात्वा क्षमस्वेति पुनः पुनः।
क्षमयारोपयेत् स्वीये हृदम्भोजे तु देवताम् ॥८७१॥
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थानं परमेश्वर।
यत्ते ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम् ॥८७२॥
विसृज्यानेन मन्त्रेण ततः पूरकवायुना।
ध्यायेच्च मन्त्रेणानेन ध्यात्वा तां स्थापयेद्धृदि ॥८७३॥
तिष्ठ तिष्ठ परस्थाने स्वस्थाने परमेश्वर।
यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥८७४॥
इति संस्थाप्य सम्पूज्य स्वात्मानं तन्मयं स्मरेत्।

तत्पश्चात् अर्घ्यजल से आराधना का समर्पण करने के बाद ब्रह्मार्पण मन्त्र से ब्रह्मार्पण करे। छाछठ अक्षरों का ब्रह्मार्पण मन्त्र इस प्रकार है—ॐ तत्सत् प्राणबुद्धि-देहधर्म्माधिकारजाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्म्मणाभ्यन्तरा यच्चोदरेण शिष्वा यच्च स्मृतं यदुक्तं यच्च कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवेत् भूः स्वाहा।

तदनन्तर परिवार-सहित देवता का उद्वासन करे। पुष्पाञ्जलि देकर प्रणाम करके यह भावना करे कि देवता कि आगे सभी रश्मिवृन्द विलीन हो गये। तत्पश्चात् तेजोरूप शिव का ध्यान करके बार-बार क्षमा माँगते हुये देवता को अपने हृदयकमल में आरोपित करे। तदनन्तर निम्न मन्त्र से देवता का विसर्जन करे—

गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थानं परमेश्वर।
यत्ते ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम्।।

(हे सुरश्रेष्ठ! आप अपने उस परमपद स्थान में जाने की कृपा करे, जिस परम पद का ज्ञान ब्रह्मादि देवताओं को भी नहीं है)।

इस प्रकार से विसर्जन करने के बाद मन्त्र से ध्यान करके पूरक वायु से देवता को हृदय में लाकर निम्न मन्त्र से स्थापित करे—

तिष्ठ तिष्ठ परस्थाने स्वस्थाने परमेश्वर।
यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि।।

(हे परमेश्वर! आप अपने उस परमस्थान में विराजमान हों, जहाँ ब्रह्मा आदि सभी देवता मेरे हृदय में विराजमान रहते हैं)।

इस प्रकार से देवता को अपने हृदय में स्थापित करके पूजन करे और अपने को देवता के ही समान समझे।।८६६-८७४।।

ऐशान्यां मण्डलं कुर्याद् द्वारि पद्मविवर्जितम् ।।८७५।।
निर्माल्यं मोक्तुं पूजार्थं पञ्चायतनपूजने ।
कर्त्तव्यानि तु पञ्चैव ईशानाद्यं समर्च्चयेत् ।।८७६।।
लम्बोदरो गणेशस्य तेजश्चन्द्रो विवस्वतः ।
विष्वक्सेनो हरेः प्रोक्त ईश्वरी च महेशितुः ।।८७७।।
चण्डेश्वरो भवान्याश्च मन्त्रैरेतादृशं चरेत् ।
लेह्यचोष्यान्नपानादि निर्माल्यं प्रविलेपनम् ।।८७८।।
निर्माल्यभोजिनं तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया ।
इति नैवेद्यशेषं तु दत्त्वा नत्त्वा विसर्जयेत् ।।८७९।।
अथ ह्रीं ह्रीं सः बीजैस्तु सहितैर्नमसा पुनः ।
मन्त्रेण भास्करायार्च्चामच्छिद्रार्थं निवेदयेत् ।।८८०।।
नमो विवस्वते तुभ्यं भास्वते विष्णुतेजसे ।
जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ।।८८१।।
ततः कृताञ्जलिश्चित्तं स्थिरीकृत्य पठेदिति ।
यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम ।
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः ।।८८२।।

तदनन्तर पञ्चायतन पूजा के लिये ईशान कोण में अर्घ्य जल से कमल-रहित एक चतुरस्र मण्डल बनाये। उसपर निर्माल्यभोजी पंचायतन देवों का उनके मन्त्रों से पूजन करे। पहले ईशान में गणेश के लम्बोदर का पूजन करे, उसके बाद सूर्य के तेज का पूजन करे। विष्णु के पूजन में विष्वक्सेन का पूजन करे। महेशपूजन में ईश्वरी का पूजन करे। भवानी के पूजन में चण्डेश्वर का पूजन करे। निर्माल्य के लेह्य, चोष्य, अन्न-पान सबको एक में मिलाकर 'निर्माल्यभोजिने तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया' इस निर्माल्य-पूजन मन्त्र से निर्माल्यशेष का अर्पण करने के बाद प्रणाम करके विसर्जन करे। तदनन्तर पूजन में अच्छिद्रता के लिये 'ह्रीं ह्रीं सः नमः' के साथ 'नमो विवस्वते तुभ्यं भास्वते विष्णुतेजसे। जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने।' मन्त्र बोलकर सूर्य को पूजा निवेदित करे। इसके बाद हाथ जोड़कर स्थिर चित्त से यह पढ़े—

यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम।
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः।।

(मेरे यज्ञ में, तप में, पूजन में भी जो छिद्र अर्थात् त्रुटि हों, वह सब सूर्य की कृपा से अच्छिद्र अर्थात् त्रुटिहीन हो जायँ)।।८७५-८८२।।

अर्घ्यतोयेन च ततो गन्धपूजावशेषितम्।
आलोड्य किञ्चिन्मूलेन मन्त्रयेदष्टधा पुनः ॥८८३॥
प्रोक्षयेत्तेन तोयेन तत्स्थानं मूलमन्त्रतः।
निर्माल्यं मस्तके धार्य्यं मूलमन्त्रेण मन्त्रिणा ॥८८४॥
प्राश्य पादोदकं पश्चान्नैवेद्यं विभजेत्ततः।
तद्भक्तेभ्यः स्वयं भुक्त्वा तन्मयो हि वसेत्सुखम् ॥८८५॥
शैवस्तु शिवनिर्माल्यप्रसादस्याधिकारवान्।
अन्यो निरयमाप्नोति न दोषः पञ्चसङ्गमे ॥८८६॥
स्वयं तु लिङ्गतीर्थं वा प्रसादं वापि भक्तितः।
कृत्वा शैवा ह्यशैवा वा मुच्यन्ते पापराशितः ॥८८७॥
शूद्रसंस्थापितं लिङ्गं पूजयेद्वा नमेत्तदा।
तत्सम्बन्धिप्रसादादि गृह्णन्निरयमाप्नुयात् ॥८८८॥

तदनन्तर गन्ध एवं पूजा के अवशेष को मूल मन्त्र का आठ बार जप करके अर्घ्यजल के द्वारा मिलावे। उस जल से स्थान का मूल मन्त्र से प्रोक्षण करे। तब मूल मन्त्र से निर्माल्य को मस्तक पर धारण करे। पादोदक का पान करने के बाद नैवेद्य का विभाग करके भक्तों में वितरित करके स्वयं भी खाकर देवमय होकर सुखपूर्वक निवास करे। शिव-निर्माल्य के अधिकारी शैव ही होते हैं; अन्य कोई यदि इसे ग्रहण करता है तो वह नरकगामी होता है; लेकिन पंचायतन-पूजा में यह दोष नहीं लगता। स्वयं द्वारा स्थापित अथवा लिङ्गतीर्थ में शिव के प्रसाद को जो भक्तिपूर्वक ग्रहण करता है, वह शैव हो अथवा अशैव हो, समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। शूद्र द्वारा स्थापित शिवलिङ्ग का जो पूजन या नमन करता है या प्रसाद ग्रहण करता है, वह नरकगामी होता है।।८८३-८८८।।

प्रातरुत्थाय गुर्वादि स्मृत्वा सम्यक्समाचरेत्।
स्नानं सन्ध्यां तर्पणं च वैदिकं तान्त्रिकं तथा ॥८८९॥
आगत्य च गृहे पश्चात्प्राणायामत्रयं चरेत्।
कुर्याच्च मातृकान्यासं तथा छन्दर्षिदैवतम् ॥८९०॥
तन्मन्त्रस्य कराङ्गाख्यं न्यासं कृत्वा तथा स्थितिम्।
मन्त्रस्नानं देवतायाः पूजां पञ्चोपचारिकाम् ॥८९१॥
वैश्वदेवान्तरे तत्र दद्यादाहुतिपञ्चकम्।
मूलेन होमयेत्तत्र जपेच्चाष्टोत्तरं शतम् ॥८९२॥
वैदिकी काकबल्यन्ता पूजा चोच्छिष्टभोजनम्।
ततः सम्प्रार्थयेद्देवं सायं सन्ध्यां समाचरेत् ॥८९३॥

देवागारे दीप्यमाने प्रोक्तः संक्षेप आह्निकः ।

प्रातःकाल उठकर गुरु आदि का सम्यक् रूप से स्मरण करके वैदिक एवं तान्त्रिक विधि से स्नान, सन्ध्या एवं तर्पण करना चाहिये। इसके बाद घर आकर तीन प्राणायाम के साथ-साथ छन्द, ऋषि, देवतासहित मातृकान्यास करना चाहिये। देवता के मन्त्र से करन्यास एवं अङ्गन्यास करके मन्त्र-स्नान करने के पश्चात् पञ्चोपचार से देवता का पूजन कर बलिवैश्वदेव करने के बाद पाँच आहुति प्रदान करते हुये मूल मन्त्र से हवन एवं मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। वैदिकी काकबलि प्रदान करने के बाद पूजा के उच्छिष्ट का भोजन करके देवता की प्रार्थना करके सायं सन्ध्या करनी चाहिये। इस प्रकार संक्षेप में देवालय के प्रातःकालीन आह्निक कर्म का कथन किया गया।।८८९-८९३।।

अथापराह्णिकं वक्ष्ये तत्स्थानदशके भवेत् ।।८९४।।
मार्गे प्रवासे दुर्गे च रोगप्राप्तौ महाभये ।
कारागृहेऽशुभे स्थाने सर्पव्याघ्रादिजे भये ।।८९५।।
परचक्रागमे कुर्यात्कराद्यन्तु यथा तथा ।
तत्र स्नानादिकं चिन्त्यं कृत्वा मानसपूजनम् ।।८९६।।
मनसा हृदये तच्च ध्यात्वा योगाख्यपीठकम् ।
तत्रैव पृथिवीमध्ये पूजां देवस्य चाचरेत् ।।८९७।।
यथा पुष्पादिभिः पूजा बहिर्देशे विधीयते ।
तथा हृद्यपि कर्त्तव्या सर्वाशाप्रतिपत्तये ।।८९८।।
मनसा च चरेद्धोममेतद्विपदि चाह्निकम् ।

अब दिन के दूसरे प्रहर में किये जाने वाले कृत्य का वर्णन करता हूँ, जिसके दस स्थान होते हैं। मार्ग में, प्रवास में, किले में, रोगावस्था में, महाभय में, कारागृह में, अशुभ स्थान में, साँप-व्याघ्र आदि के भय में, अपने देश पर अन्य देशीय सेना के आगमन में जिस किसी प्रकार से हाथ-पाँव धो ले। उक्त परिस्थितियों में स्नान एवं पूजा—दोनों मानसिक करना चाहिये। मानसिक रूप से हृदय में योगपीठ की कल्पना करके वहीं पर पृथ्वी के मध्य में देवार्चन करे। जिस प्रकार बाहरी देश में यथोपलब्ध पुष्पादि से पूजन होता है, उसी प्रकार हृदय में भी सभी उपचारों से पूजन करे एवं मन से ही हवन भी करे। यह विपत्तिकाल के आचार का वर्णन किया गया।

अथातश्चाह्निकं वक्ष्ये नित्यं स्वास्थ्याधिकस्य तत् ।।८९९।।
यदि लङ्घनपर्यन्ते व्याधिरात्मनि दृश्यते ।
तदा पूजा न कर्तव्या स्थण्डिले प्रतिमासु च ।।९००।।

न स्नानं दन्तकाष्ठं वा कुर्याद्धोममथापि वा।
रविमण्डलमालोक्य प्रतिमामथ वा पुनः ॥९०१॥
मूलमन्त्रं सकृज्जप्त्वा पुष्पं साक्षतमुत्सृजेत्।
क्रान्तो व्याधिभिरत्युग्रैर्जरया चेन्द्रियैस्तथा।
निजसामयिकैर्वापि स्वकर्त्तव्यं समापयेत् ॥९०२॥
रुग्निवृत्तस्ततः स्नात्वा पूजयित्वाग्निदेवताः।
गुरून् विप्रांस्तदग्रे च वाक्यमेतदुदीरयेत् ॥९०३॥
एतावत्कालविच्छिन्ना पूजा युष्मत्प्रसादतः।
न दोषोऽस्त्विति सम्प्रार्थ्य पुनः पूर्ववदाचरेत् ॥९०४॥
यस्तु रोगवशाद्दोषो यतस्तत्क्षालनं चरेत्।
जपेन चाथ ध्यानेन होमेन दानतोऽपि वा ॥९०५॥

अब शरीर के अस्वस्थ रहने पर की जाने वाली दिनचर्या का वर्णन करता हूँ। यदि लङ्घनपर्यन्त शरीर अस्वस्थ दिखायी पड़े तो स्थण्डिल और प्रतिमा में पूजन नहीं करनी चाहिये। स्नान, दतुवन और हवन भी नहीं करना चाहिये। दूसरे दिन सूर्यमण्डल के दिखाई देने पर अथवा प्रतिमा के सामने मूल मन्त्र का जप करके अक्षत और फूल उत्सर्जित करना चाहिये। अति उग्र ज्वर की व्याधि से आक्रान्त होने पर या वृद्धावस्था में इन्द्रियों के व्याधिग्रस्त होने पर अपने नित्य कर्त्तव्यों का त्याग कर देना चाहिये। रोग की निवृत्ति होने पर स्नान करके अग्निदेवता का पूजन करके गुरु और विप्र के सामने इस प्रकार कहना चाहिये—'इतने समय तक पूजा बाधित रही, अतः आप लोगों की कृपा से मुझे कोई दोष न लगे।' इस प्रकार की प्रार्थना करके पुनः पूर्ववत् आचरण करना चाहिये। रोग के कारण जो दोष हुआ हो, उसकी समाप्ति मन्त्रजप, ध्यान, हवन अथवा दान से करना चाहिये।।८९९-९०५।।

अथ सूतकिनां नित्यं वैदिकन्तु श्रुतीरितम्।
कृत्वा तान्त्रिकपूजादि मनसैव समाचरेत् ॥९०६॥
कामनार्थप्रयोगश्चेत्तदा पूर्ववदाचरेत्।
मृतगेहं परित्यज्य वामाचारे न सूतकम् ॥९०७॥
स्पृहां हित्वा ज्ञानपूर्वं कुलतो धर्ममार्गतः।
यथा लभेद्ध्यानधर्मं भक्त्या वामे करोति यः।
शास्त्रतत्त्वं देवतत्त्वं नो वेत्ति स तु गुह्यकः ॥९०८॥
ज्ञानं वामेन भजते सुखार्थी तत्र जायते।
क्षुत्तृड्भ्यामर्दितः प्रेतः तस्माद्धर्मं विचारयेत् ॥९०९॥

पूजोदकेन कर्तव्या तद्यन्त्रं नैव विद्यते।
तदा सम्पूजयेद्देवं भावनाकुसुमादिभिः ॥९१०॥
भक्तिः श्रद्धा भावना च पूजानां जीव उच्यते।
जडानामाह्निकं वक्ष्ये तथा संक्षेपकर्मणि ॥९११॥
रत्नमण्डपधर्मादिचतुष्कमरुणाम्बुजम् ।
मूलमूर्त्तिषडङ्गानि तेषां पूजाभिधीयते ॥९१२॥
सर्वेषामपि वस्तूनामलाभे भावनैव हि।
निर्मलेनोदकेनैव पूजयेत् स्थिरमानसः ॥९१३॥

सूतकावस्था में भी वैदिक आह्निक कृत्य करना श्रुतिसम्मत है; लेकिन तान्त्रिक पूजा आदि मानसिक ही करना चाहिये। काम्य प्रयोगों में भी पूर्ववत् आचरण करना चाहिये। वामाचार में मृतक के घर के बाहर सूतक नहीं लगता। वाम मार्ग में स्पृहा का परित्याग करके ज्ञानपूर्वक कुल के अनुसार धर्ममार्ग से भक्तिपूर्वक यथाप्राप्त ध्यान-धर्म जो करता है, वह शास्त्रतत्त्व एवं देवतत्त्व को नहीं जानता; वह तो गुह्यक होता है। वाममार्ग ज्ञानी यदि सुख के लिये भजन करता है तो वह भूख-प्यास से पीड़ित प्रेत होता है; इसलिये धर्म का विचार अवश्य करना चाहिये।

जहाँ यन्त्र विद्यमान न हो, वहाँ केवल जल से पूजन करना चाहिये। देवता का पूजन भावनात्मक पुष्पादि से करना चाहिये। जीव को पूजा में भक्ति, श्रद्धा एवं भावना होनी चाहिये।

अब मूर्खों के लिये दिनचर्या और संक्षिप्त कर्म का वर्णन करता हूँ। जड़ बुद्धि वालों के लिये रत्नमण्डप, धर्मादि चार, लाल कमल एवं मूल मूर्ति में षडङ्ग पूजन का विधान है। सभी पूजन सामग्रियों के अभाव में भावना ही उपलब्ध रहती है; अतः शुद्ध जल से ही स्थिर मन से पूजन करना चाहिये।।९०६-९१३।।

सामान्यतः पूजात्रैविध्यम्

सामान्यतस्त्रिधा पूजा चोत्तमाधममध्यतः।
अधिकारिनिमित्ताभ्यां भिद्यते शतधा पुनः ॥९१४॥
या सोपकरणा पूजा क्रियमाणोत्तमा मता।
यथालब्धैर्विनिष्पाद्या द्रव्यैः पूजा तु मध्यमा ॥९१५॥
पत्रपुष्पाम्बुनिष्पाद्या पूजा साधमसञ्ज्ञिका।
विहिताखिलवेदोक्तैर्ब्रह्मर्षिभिरकल्मषैः ॥९१६॥
क्रियमाणा तु या पूजा सात्त्विकी सा विमुक्तिदा।
राजर्षिभिस्तपोनिष्ठैर्भगवत्तत्त्ववेदिभिः ॥९१७॥

या पूजा क्रियते सम्यग्राजसी सा सुखप्रदा।
स्त्रीबालवृद्धमुख्याद्यैर्भक्तैरक्षुण्णमानसैः ॥९१८॥
या पूजा क्रियते नित्यं तामसी सा प्रकीर्तिता।
वेदे कर्तुं तु नो शक्तास्तन्त्राणि तु युगे युगे ॥९१९॥
कल्यंशसम्भवैर्विप्रैर्वैर्नाम्ना कीर्त्तितानि तु।
कलिना प्रेरिता विप्रास्तत्तन्त्रपथगामिनः ॥९२०॥
कामलोभादिभिर्ग्रस्ता ब्राह्मण्यरहिता नराः।
म्लेच्छास्ते तु भविष्यन्ति क्षीणपुण्याश्च रौरवे ।९२१॥
पतिष्यन्तीति विज्ञाय न वै वैदिकमुत्सृजेत्।
उल्लासै रहितं गोपं पटलैर्विष्णुगोपनम् ॥९२२॥
अध्यायैर्ये कृता ग्रन्थाः स्वाध्यायास्ते द्विजन्मनाम्।
यमुद्दिश्य कृतं तन्त्रं तस्य तत्र प्रधानता ॥९२३॥
मेरुतन्त्रे तु यत्प्रोक्तं तत्स्थिरं नान्यथा भवेत्।
इति देवाः समाख्यातो युष्मत्प्रश्नविनिर्णयः ॥९२४॥
यद्विचार्य कृतं कर्म न दुःखाय प्रवर्तते।
अतो वेदोदितं कर्म कार्यं निःश्रेयसाय वै ॥९२५॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीत
आह्निकप्रकाशः पञ्चमः ।।५।।

पूजा के तीन प्रकार—सामान्यतः पूजा उत्तम, मध्यम और अधम के भेद से तीन प्रकार की होती है। वही पूजा अधिकारी एवं निमित्त के भेद से फिर सौ प्रकार की हो जाती है। सभी उपकरणों से जो पूजा होती है, वह उत्तम पूजा कहलाती है। यथाप्राप्त उपचारों से किया गया पूजन मध्यम होता है। पत्र, पुष्प और जल से जो पूजा होती है, वह अधम मानी जाती है।

सभी वेदोक्त विधानों से निष्पाप ब्रह्मर्षियों द्वारा जो पूजा की जाती है, उसे सात्त्विक पूजा कहते हैं; यह मोक्ष देने वाली होती है। तपोनिष्ठ एवं भगवत्तत्त्व को जानने वाले राजर्षियों द्वारा सम्यक् प्रकार से जो पूजा की जाती है, उसे राजसी पूजा कहते हैं; यह सुखप्रद होती है। स्त्री, बाल, वृद्ध आदि भक्तों के द्वारा एकाग्रतापूर्वक जो पूजा की जाती है, उसे तामसी पूजा कहते हैं। जो वैदिक पूजा करने में अशक्त होते हैं, वे प्रत्येक युग में तान्त्रिक पूजन करते हैं। कलि के अंश से उत्पन्न जो नाम के विप्र हैं, वे कलि से प्रेरित होकर तान्त्रिक मार्ग का अनुसरण करते हैं। काम, लोभ आदि से

ग्रस्त एवं ब्राह्मणत्व से रहित मनुष्य म्लेच्छ होंगे और पुण्य के क्षीण होने पर वे रौरव नरक में गिरेंगे—यह जानकर भी वैदिक कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। उल्लास, पटल, अध्याय द्वारा जो ग्रन्थ बनाये गये हैं, वे ही द्विजों के स्वाध्याय होते हैं। जिसके उद्देश्य से तन्त्र की रचना होती है, उसमें उसी की प्रधानता होती है। मेरुतन्त्र में जो वर्णन किया गया है, वह स्थिर है; कभी भी अन्यथा नहीं हो सकता। हे देवताओं! आपके प्रश्नों के उत्तर में इस प्रकार का वर्णन किया गया। जो विचार कर कार्य करते हैं, उन्हें दुःख नहीं होता। अतः कल्याण की प्राप्ति के लिये वेद-विहित कार्य का ही सम्पादन करना चाहिये।।९१४-९२५।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत
'आह्निक' नामक पञ्चम प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ

अथ षष्ठः प्रकाशः

(पुरश्चर्याप्रकाशः)

पुरश्चरणव्याख्या

श्रीदेव्युवाच

पुरश्चरणशब्दस्य ब्रूह्यर्थं च विधिं प्रभो।
वैदिकाद्याः सर्वमन्त्रा न सिद्ध्यन्ति च यं विना ॥१॥

'पुरश्चरण' पद का अर्थ—श्री देवी ने कहा कि हे प्रभो! पुरश्चरण शब्द का अर्थ और उसकी विधि का वर्णन कीजिये, जिसके विना वैदिक आदि कोई मन्त्र सिद्ध नहीं होते।।१।।

ईश्वर उवाच

रहस्यं सर्वमन्त्राणां कथयामि तवाग्रतः।
कल्यर्थं सर्वतन्त्रेषु यः सारः स तु गोपितः ॥२॥

ईश्वर ने कहा—सभी मन्त्रों के रहस्यों का तुम्हारे समक्ष वर्णन करता हूँ। कलियुगी में उत्पन्न भोग एवं मोक्षरूप प्रयोजन वाले मनुष्यों के लिये सभी तन्त्रों में सारतत्त्व गुप्त हैं।।२।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधको मन्त्र उच्यते।
तत्सिद्धये पुरा यच्च चर्य्यते तत्प्रकीर्त्तितम् ॥३॥
पुरश्चरणकर्माख्यं वेदादौ शाबरान्तके।
मन्त्रो यस्तु तथा स स्यात्तत्प्रकारं ब्रवीम्यहम् ॥४॥

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के साधक को 'मन्त्र' कहा जाता है। उस मन्त्र की सिद्धि के लिये पहले जो आचरण किया जाता है, वही 'पुरश्चरण' कहलाता है। वैदिक और शाबर मन्त्रों के लिये जिस प्रकार के पुरश्चरण कर्म अपेक्षित होते हैं, उन सबों के विधान का वर्णन मैं करता हूँ।।३-४।।

जपो होमस्तर्पणं च मार्जनं विप्रभोजनम्।
पञ्चाङ्गकस्वरूपं तदाहुः केचन तत्र तु ॥५॥
चतुरङ्गास्त्वथ त्र्यङ्गा द्व्यङ्गा एकाङ्गिनोऽपि च।
मन्त्रास्तिष्ठन्ति वेदेषु तथा तन्त्रे च शाबरे ॥६॥

केचित्षडङ्गा मन्त्राः स्युस्तदज्ञाज्ञापयामि वै।

पुरश्चरण के पाँच अङ्ग होते हैं—जप, हवन, तर्पण, मार्जन और विप्रभोजन। कतिपय विद्वानों के मत से चार अङ्ग वाले, कुछ के मत से तीन अङ्ग वाले, कुछ के मत से दो अङ्ग वाले और कुछ के मत से एक अङ्ग वाले भी वैदिक, तान्त्रिक और शाबर मन्त्र होते हैं। कतिपय छः अंग वाले मन्त्र भी होते हैं।।५-६।।

अघमर्षेण सूर्यार्घेण जप्येन प्रणामकैः ॥७॥
देवार्चया पञ्चभिश्च एवं पञ्चाङ्गकाः स्मृताः।
हुतिर्यागस्तथा चार्च्चा कर्मतश्चक्रपूजनात् ॥८॥
ध्वजलिङ्गसमायोगाज्जपाच्च बलिदानतः।
महाबलिप्रदानाच्च भवत्येकादशाङ्गकः ॥९॥

अघमर्षण, सूर्यार्घ्यदान, जप, प्रणाम एवं देवार्चन—इन पाँच से मन्त्र पञ्चाङ्गक कहे जाते हैं। हवनयाग, अर्चाकर्म से चक्रपूजन, योनि-लिङ्गसमायोग, जप, बलिदान और महाबलिदान के साथ पूर्ववर्णित पाँच अङ्गों को मिलाने से यह एकादश अङ्गों वाला भी होता है। ये वाममार्गियों के लिये हैं।।७-९।।

षोडशाङ्गे कौलिकानां गणानामधिकारिता।
सर्वपापक्षयं कुर्यादथवा सिद्धिबन्धकृत् ॥१०॥
यावत्पापं तस्य नाशं कृत्वा कुर्यात्पुरस्कृतिम्।
यथा प्रोक्तेन मार्गेण तस्य सिद्धिरदूरतः ॥११॥

कौलिकों के पुरश्चरण के सोलह अङ्ग होते हैं। इनके करने से ही चक्र-पूजा में सम्मिलित होने का अधिकार उन्हें मिलता है। इससे उनके सभी पापों का विनाश होता है और सिद्धि स्थिर हो जाती है। समस्त पापों का नाश करके विहित रीति से पुरश्चरण करने से अविलम्ब सिद्धि प्राप्त होती है।।१०-११।।

सर्वपापक्षयस्तत्र भवेद्वैदिकवर्त्मनाम्।
तान्त्रिकाणां कौलिकानां वामिनां नाधिकारिता ॥१२॥
तस्मिन् कर्मणि तेषान्तु नाधिकारोऽस्ति वैदिके।
ऋक्शाखाध्यायिभिः कार्यो गणको योऽथ तद्विधिः ॥१३॥

वैदिक मार्ग से ही सभी पापों का नाश होता है। इस मार्ग में तान्त्रिकों, वाममार्गियों एवं कौलिकों का अधिकार नहीं होता। इसी प्रकार वैदिकों को भी तान्त्रिकों, वाममार्गियों एवे कौलिको के कर्मों को करने का अधिकार नहीं होता। वैदिकों में ऋक्शाखाध्यायियों द्वारा जो गणक (?) किया जाता है, उसकी विधि इस प्रकार है।।१२-१३।।

पुरश्चरणपूर्वकृत्यम्

स्नातः कृतक्रियः पत्नीसहितो दर्भसंस्तरः ।
प्राणानायम्य सङ्कल्प्य पूजयित्वा गणेश्वरम् ॥१४॥
स्वगृह्योक्तविधानेन संस्थाप्याग्निं च संश्रयेत् ।
आज्यं विलिप्य तद्धव्यं द्विराद्योऽनयते ततः ॥१५॥
अग्ने नयेति सूक्तेन षडर्चेन हुनेत् पुनः ।
प्रतिमन्त्रं वदेत्यागेऽग्नये चेदं न वै मम ॥१६॥
इत्यथात्र ऋचो वक्ष्ये मा भूच्छाखाविपर्ययः ॥१७॥
ॐ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥१८॥
प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मनिं चाग्नये सुयुतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनुष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥१९॥
अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं पतिर्द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वं च हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥२०॥
अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्निं त्वा अभ्यमन्वकृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुवित्ताय देवा यक्षा विश्वेभिरमरेभिर्यजत्रा ॥२१॥
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरतिदुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शंयोः ॥२२॥
प्रकारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयथ देवयन्तः ।
दक्षिणावाड्वाजिनिप्राचोतिहविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥२३॥

स्नान करने के बाद नित्य कर्म सम्पन्न कर कुश की चटाई पर पत्नी सहित बैठकर प्राणायाम करके सङ्कल्प करे और गणेश का पूजन करे। तदनन्तर अपने गृह्यसूक्त में वर्णित विधान के अनुसार अग्नि को स्थापित करके आगे की क्रिया करे। हव्य सामग्री में गोघृत मिलाकर पहले दो बार ॐ से हवन करे। इसके बाद 'अग्ने नय' इत्यादि छः ऋचाओं से हवन करे। आहुति देते समय प्रत्येक मन्त्र के साथ 'स्वाहा इदं अग्नये न मम' बोलना चाहिये। शाखाविपर्यय न हो, इसलिये अब मैं उन छः ऋचाओं को कहता हूँ। ऋचायें मूल में स्पष्टतः उद्धृत हैं।।१४-२३।।

पुनरष्टादशर्चेन पौरुषेण ततो हुनेत् ।
जगद्बीजाय पुरुषाय न ममेति सन्त्यजेत् ॥२४॥
अवैष्णवो वैष्णवस्तु नारायणाय न मम ।
देवदेवीप्रियं सूक्तं तदिदानीं निगद्यते ॥२५॥

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥२६॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२७॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥२८॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥२९॥
तस्माद्विराडजायत विराजो अधिपूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥३०॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥३१॥
सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिःसप्तसमिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥३२॥
तं यज्ञं बर्हिषि प्रोक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥३३॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्यांश्च ये ॥३४॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥३५॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये केचोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥३६॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥३७॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥३८॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोस्सूर्य्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥३९॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकानकल्पयन् ॥४०॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसस्तु पारे।
सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरा नामानि कृत्वाभिवदन्यदास्ते ॥४१॥

धाता पुरस्ताद्यदुदाजहार शक्रः प्रविद्वान्प्रदिशश्चतस्रः ।
तमेवं विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ॥४२॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥४३॥

इसके बाद पुरुषसूक्त की अट्ठारह ऋचाओं से हवन करते समय प्रत्येक ऋचा के अन्त में 'स्वाहा' के बाद हवनकर्त्ता यदि वैष्णव न हो तो 'इदं जगद्बीजाय पुरुषाय न मम' कहकर आहुति प्रदान करना चाहिये एवं वैष्णव हो तो 'नारायणाय इदं न मम' कहकर आहुति देनी चाहिये। देवताओं एवं देवियों के लिये प्रिय उस पुरुषसूक्त को अब कहा जाता है। पुरुषसूक्त की अट्ठारह ऋचायें मूल में स्पष्टतः उद्धृत हैं।।२४-४३।।

अग्नेर्मन्वेति सूक्तेन द्वाविंशत्यृचकेन तु ।
हुनेत्तत्र ' त्रिषु त्यागस्त्वग्नये न ममेति च ॥४४॥
तुर्य्ये चेन्द्राय न मम त्यागः पञ्चमषष्ठयोः ।
मित्रावरुणाभ्यामिति सप्तमाष्टमयोस्तथा ॥४५॥
वायुसूर्य्याभ्यामिति नवमे दशमे तथा ।
अश्विभ्यां च मरुद्भ्यस्तु द्वादशैकादशे भवेत् ॥४६॥
विश्वेभ्यो देवेभ्य इति त्रयोदशचतुर्दशे ।
अनुमत्यै हव्यवाहाग्नये च तिथिसङ्ख्यके ॥४७॥
अनुमत्यै षोडशे स्यात्तु ततः सप्तदशे भवेत् ।
वैश्वानरायाग्नये च तथैवाष्टादशेऽपि च ॥४८॥
द्यावापृथिवीभ्यामिति विंशत्येकोनविंशयोः ।
शेषयोरग्नये चेति ऋचस्ताः शृणु साम्प्रतम् ॥४९॥
अग्नेर्मन्वेति प्रथमस्य प्रचेतसोऽयं पाञ्चजन्यं बहवः ।
समिन्धते विश्वस्यां विशि प्रवीविशि वास्समीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५०॥
यस्येदं प्राणनिमिषद्यदेजति यस्य जातं जनमानं च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५१॥
इन्द्रस्य मन्ये प्रथमस्य प्रचेतसो वृत्रघ्नः स्तोमा उपमामुपागुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमुपगन्ता स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५२॥
यः संग्रामं नयति संवशी युधे यः पुष्टानि संसृजति त्रयाणि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५३॥
मन्वेवां मित्रावरुणा तस्य वित्तं सत्यौजसादृंहणायन्नुदेते ।
त्याराजानं सरथे पाथम् उग्रतौ नो मुञ्चतमागसः ॥५४॥

यो वाँरथः सजूरश्विः सत्यधर्म्मा मिथश्चरत्वाँ समुपयातिदूवयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितौ जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमागसः ॥५५॥
वायोस्सवितुर्वितथानि मन्महे यावात्मन्वद्विभृतौ यौ च रक्षतः ।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवतुस्तौ नो मुञ्चतमागसः ॥५६॥
उपश्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धर्मे अस्थिरन् ।
स्तौमि वायुं सवितारं नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमागसः ॥५७॥
रथीतमौ रथीनामह्व ऊतये शुभङ्गमिष्ठौ सुयमेभिरश्वैः ।
ययोर्वान्देवौ देवेष्वनिशितमोजस्तौ नो मुञ्चतमागसः ॥५८॥
यदयातं वहतुं सूर्य्यायास्त्रिचक्रेण संसदमिच्छमानौ ।
स्तौमि विश्वान्देवान्नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमागसः ॥५९॥
मरुतां मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे ।
आसून्हवे सुयमानूतये ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥६०॥
तिग्मायुधन्रीडितं सहस्वद्दिव्यः सर्व्वः पृतनासु विष्णुः ।
स्तौमि देवान्मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥६१॥
देवानां मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे ।
आसून्हवे सुरामानूतये ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥६२॥
यदिदं माभिशोचति पौरुषेयेण दैव्येन स्तौमि ।
विश्वान्देवान्नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥६३॥
अनुनोद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मयः ॥६४॥
अन्विदनुमते त्वमन्यासैशं च नः कृधि ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्रण आयूंषि तारिषः ॥६५॥
वैश्वानरो न कृतं ये प्रयातु परावतः ।
अग्निर्नः सुष्टुतेतीरुप ॥६६॥
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्या पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिबा सरिषः पातु नक्तम् ॥६७॥
ये अप्रथेता अमितेभिरोजोभिर्ये प्रतिष्ठे अभवतां वसूनाम् ।
स्तौमि द्यावापृथिवीं नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥६८॥
उर्वीरोदसी वरिवः कृणोत्तं क्षेत्रस्य पत्नी अधिनो ब्रूयात्तं स्तौमि ।
द्यावापृथिवीं नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥६९॥
यत्ते वयं पुरुषत्रा यविष्ठा विद्वांसश्चकृमाकञ्चनागः ।
कृधास्वस्मानदितेरनागाव्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥७०॥

यथाहताद्वसवो गौर्य्यचित्पदिषिताममुञ्चतायजत्राः ।
एवोष्वस्मन्मुञ्चतामंहः प्रतार्य्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥७१॥

तदनन्तर 'अग्निर्मन्वेति' सूक्त की बाईस ऋचाओं से हवन करना चाहिये। इन बाईस ऋचाओं में से आरम्भ से तीसरी ऋचा तक हवन करते समय ऋचा के बाद 'अग्नये इदं न मम' लगाया जाता है। चौथी ऋचा के साथ 'इन्द्राय इदं न मम' लगाया जाता है। इसी प्रकार पाँचवीं एवं छठी ऋचा के साथ 'मित्रा-वरुणाभ्यामिदं न मम'; सातवीं, आठवीं ऋचा के साथ 'वायुसूर्याभ्यामिदं न मम'; नवीं, दसवीं ऋचा के साथ 'अश्विभ्यामिदं न मम'; ग्यारहवीं, बारहवीं ऋचा के साथ 'मरुद्भ्य इदं न मम'; तेरहवीं, चौदहवीं ऋचा के साथ 'विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं न मम'; पन्द्रहवीं ऋचा के साथ 'अनुमत्यै हव्यवाहाग्नये इदं न मम'; सोलहवीं ऋचा के साथ 'अनुमत्यै इदं न मम'; सत्रहवीं एवं अट्ठारहवीं ऋचा के साथ 'वैश्वानरायाग्नये इदं न मम'; उन्नीसवीं एवं बीसवीं ऋचा के साथ 'द्यावापृथिवीभ्यामिदं न मम' लगाया जाता है। शेष इक्कीसवीं एवं बाईसवीं ऋचा के साथ 'अग्नये इदं न मम' लगाया जाता है। अब इस समय उन ऋचाओं का श्रवण करो। सभी बाईस ऋचायें मूल में स्पष्ट रूप से क्रमशः उद्धृत की हुई हैं।।४४-७१।।

यावामिन्द्रावरुणेति चतुर्भिः सूक्तकैस्ततः ।
इन्द्रावरुणाभ्यामिति त्यागः सर्वत्र नान्यथा ॥७२॥
यावामिन्द्रावरुण' यतव्या तनूस्तये ममांहसो मुञ्चतम् ॥७३॥
यावामिन्द्रावरुणा सहस्या तनूस्तये ममांहसो मुञ्चतम् ॥७४॥
यावामिन्द्रावरुणा रक्षस्या तनूस्तये ममांहसो मुञ्चतम् ॥७५॥
यावामिन्द्रावरुणा तेजस्या तनूस्तये ममांहसो मुञ्चतम् ॥७६॥

इसके बाद सूक्त में कथित 'यावामिन्द्रावरुण' आदि चार ऋचाओं से हवन करना चाहिये। आहुति-त्याग करते समय प्रत्येक ऋचा के साथ 'इन्द्रावरुणाभ्यामिदं न मम' अवश्य लगाना चाहिये। चारो ऋचायें मूल में स्पष्टतः उल्लिखित हैं।।७२-७६।।

यो वामिन्द्रावरुणेति ततोऽष्टभिश्च होमयेत् ।
इन्द्रावरुणाभ्यामिति त्यागः सर्वत्र नान्यथा ॥७७॥
यो वामिन्द्रावरुणावग्नौ स्नामस्तं वामे तेनावयजे ॥७८॥
यो वामिन्द्रावरुणा द्विपात्सु पशुषु स्नामस्तं वामे तेनावयजे ॥७९॥
यो वामिन्द्रावरुणौषधीषु स्नामस्तं वामे तेनावयजे ॥८०॥
यो वामिन्द्रावरुणा वनस्पतिषु स्नामस्तं वामे तेनावयजे ।

इसके बाद 'यो वामिन्द्रावरुण' इत्यादि चार सूक्तों से हवन करना चाहिये। इन

मन्त्रों से आहुति प्रदान करते समय प्रत्येक मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' लगाने के बाद 'इन्द्रावरुणाभ्यामिदं न मम' अवश्य लगाना चाहिये; इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं लगाना चाहिये।।७७-८०।।

पावमानानुवाको यः ख्यातः सप्तदशर्चकः।
त्रिषष्टिवाक्यैस्तत्राद्यो ऋक्त्रिवाक्यात्र शाक्तकैः ॥८१॥
पावमानीभ्यो मम त्यागो वाच्यस्त्वशाक्तकैः ॥८२॥
पावमान्यै अथो शैवैः पावमानाय नान्यथा ॥८३॥
पवमानः सो अद्य पवित्रेण विचर्षणिः।
यः पोता स पुनातु मा ॥८४॥
द्वितीयापि त्रिवाक्यादेव जनेभ्यो मरुद्भ्यश्च।
विश्वेभ्यश्च तथा युङ्ग्यान्न मम त्याग ईरितः ॥८५॥
पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि माम् ॥८६॥
तृतीयापि चतुर्वाक्या अग्नये जातवेदसे।
इदं न मम इत्युक्त्वा त्यागः सोऽपि प्रकाश्यते ॥८७॥
जातवेदः पवित्रवत्पवित्रेण पुनीहि मा।
शुक्रेण देवदीव्यदग्ने क्रत्वाक्रतूँरनु ॥८८॥
चतुर्थी तु त्रिवाक्या अग्नये न ममेति च।
त्रिवाक्या पञ्चमी त्यागः सवित्रे च उभे यथा ॥८९॥
यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा।
ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥९०॥
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च।
मां पुनीहि विश्वतः ॥९१॥
ऋचा षष्ठी चतुर्वाक्या त्यागश्चास्या निरूप्यते।
वैश्वदेव्यै इति वदेन्न ममेति च सा यथा ॥९२॥
वैश्वदेवी पुनन्ती देव्यागाद्यस्यामि मा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः।
तया मदन्तः सधमादेषु वयँस्याम पतयो रयीणाम् ॥९३॥
वैश्वानराय वाताय इषिराय मयोभुवे।
द्यावापृथिवीभ्यां चेति सप्तम्यां त्याग इष्यते ॥९४॥
वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु वातः प्राणेनेषिरो मयोभूः।
द्यावापृथिवी पयसा पयोभिः शतावरी यज्ञिये मा पुनीताम् ॥९५॥

सप्तमी तु चतुर्वाक्या त्रिवाक्या चाष्टमी मता।
सवित्रेऽग्नये न मम त्यागोऽष्टम्यां च सा यथा ॥९६॥
बृहद्भिः सवितुस्त्रिभिर्वर्षिष्ठैर्देवमन्मभिः।
अग्ने दक्षैः पुनीहि मा ॥९७॥
अतः परं चतुर्वाक्या दिव्याय ब्रह्मणे त्यजेत्।
नवम्यां पावमानीभ्यो दशम्यादिषु ता यथा ॥९८॥
येन देवा अपुनन्त येनापो दिव्यङ्कशः।
तेन दिव्यं ब्रह्मणा इदं ब्रह्म पुनीहि मा ॥९९॥
यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतꣳरसम्।
सर्वं सपूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥१००॥
पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्प्पिर्मधूदकम् ॥१०१॥
पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि पयस्वतीः।
ऋषिभिः सम्भृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतꣳहितम् ॥१०२॥
पावमानीर्दिशन्तु न इमं लोकमथो अमुम्।
कामान्समर्द्धयन्तु नो देवैर्देवीः समाहिताः ॥१०३॥
पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः।
ऋषिभिः सम्भृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥१०४॥
येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु माम् ॥१०५॥

इसके बाद सत्रह आहुतियाँ पावमान अनुवाक की विख्यात सत्रह ऋचाओं से देनी चाहिये। इसके आरम्भ से तिरेसठ वाक्यों से वैदिकों को एवं शेष तीन वाक्यों से शाक्तों को होम करना चाहिये। वाक्य के उच्चारण के पश्चात् वैदिकों को 'स्वाहा—पावमानीभ्य इदं न मम' का उच्चारण कर आहुति प्रदान करनी चाहिये, शाक्तों को 'पावमानीभ्यः' के स्थान पर 'पावमान्यै' एवं शैवों को 'पावमानाय' का उच्चारण करना चाहिये। हवन के समय उच्चार्यमाण ऋचा का स्वरूप इस प्रकार होगा—ॐ पवमानः सो अद्य पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा स्वाहा, पावमानाय इदं न मम। दूसरी आहुति में 'जनेभ्यो मरुद्भ्यश्च विश्वेभ्यश्च' इन तीन वाक्यों से आहुति प्रदान करे; जैसे—ॐ पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि माम् स्वाहा जनेभ्यो मरुद्भ्यो विश्वेभ्यश्चेदं न मम। तीसरी आहुति में 'अग्नये जातवेदसे इदं न मम' इन चार वाक्यों का प्रयोग करे; जैसे—ॐ जातवेदः पवित्रवत्पवित्रेण पुनीहि मा। शुक्रेण देवदीव्यदग्ने क्रत्वाक्रतूँरनु स्वाहा अग्नये जातवेदसे

इदं न मम। चौथी आहुति में तीन वाक्य 'अग्नये न मम' और पाँचवी आहुति में तीन वाक्य 'सवित्रे च उभे' लगावे; जैसे —ॐ यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा, ब्रह्म तेन पुनीहि नः स्वाहा अग्नये इदं न मम। ॐ उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च, मां पुनीहि विश्वतः स्वाहा सवित्रे च उभे इदं न मम। छठी आहुति में स्वाहा के बाद 'इदं वैश्वदेव्यै इदं न मम' इन चार वाक्यों को लगावे; जैसे—वैश्वदेवी पुनन्ती देव्यागाद्यस्यामि मा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः, तया मदन्तः सधमादेषु वयँ स्याम पतयो रयीणाम् स्वाहा वैश्वदेव्यै इदं न मम। सातवीं आहुति में स्वाहा के बाद 'वैश्वानराय वाताय इषिराय मयोभुवे द्यावापृथिवीभ्यामिदं न मम' लगावे; जैसे—ॐ वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु वातः प्राणेनेषिरो मयोभूः, द्यावापृथिवी पयसा पयोभिः शतावरी यज्ञिये मा पुनीताम् स्वाहा वैश्वानराय वाताय इषिराय मयोभुवे द्यावापृथिवीभ्यामिदं न मम। फिर इस मन्त्र से हवन करे—वृहद्भिः सवितुस्त्रिभिर्वर्षिष्ठैर्देवमन्मभिः। अग्ने दक्षैः पुनीहि मा स्वाहा सवित्रेऽग्नये इदं न मम। इसके आगे के सभी मन्त्रों से इन वाक्यों को सुयुक्त कर हवन करे—दिव्याय ब्रह्मणे पावमानीभ्य इदं न मम। जैसे—ॐयेन देवा अपुनन्त येनापो दिव्यङ्कशः, तेन दिव्यं ब्रह्मणा इदं ब्रह्म पुनीहि मा स्वाहा दिव्याय ब्रह्मणे पावमानीभ्य इदं न मम; ॐ यः पावमानी-रध्येत्यृषिभिः सम्भृतꣳ रसम्, सर्वं सपूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना स्वाहा दिव्याय ब्रह्मणा पावनीभ्य इदं न मम; ॐ पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम्, तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् स्वाहा दिव्याय ब्रह्मणे पावनीभ्य इदं न मम; ॐ पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि पयस्वतीः, ऋषिभिः सम्भृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतꣳ हितम् स्वाहा दिव्याय ब्रह्मणे पावमानीभ्य इदं न मम; ॐपावमानीर्दिशन्तु न इमं लोकमथो अमुम्, कामान्समर्द्धयन्तु नो देवैर्देवीः समाहिताः स्वाहा दिव्याय ब्रह्मणे पावमानीभ्य इदं न मम; ॐ पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः, ऋषिभिः सम्भृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् स्वाहा दिव्याय ब्रह्मणे पावमानीभ्य इदं न मम, येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा, तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु माम् स्वाहा दिव्याय ब्रह्मणे पावमानीभ्य इदं न मम।।८१-१०५।।

प्राग्वत्त्यागस्तु षोडश्यां विशेषः श्रोत्रियस्य तु।
प्राजापत्याय पवित्राय चेति षोडशीं शृणु ॥१०६॥
प्राजापत्यं पवित्रं शतोद्यामं हिरण्मयम्।
तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमहे ॥१०७॥
सुनीत्या सहितेन्द्राय स्वस्त्या सहितसोमाय।
समीच्या सहितायेति वरुणाय ततो वदेत् ॥१०८॥
प्रमृणाभिः सहिताय यमाय राज्ञ ईरयेत्।
ऊर्ज्जयन्त्या सहिताय जातवेदस इत्यपि ॥१०९॥

न ममेति वदेत्सप्तदश्यास्त्यागेऽथ यैर्नरैः ।
मार्जनं कृतमेताभिस्तैः स्नातं जाह्नवीजले ॥११०॥
इन्द्रः सुनीत्या सह मा पुनातु सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या ।
यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा जातवेदा योर्ज्जयन्त्या पुनातु ॥१११॥
यद्देवा देवहेडनं विंशत्यर्चेन होमयेत् ।
त्यागः प्रथमके तत्र आदित्येभ्यश्च नान्यथा ।
यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् ।
आदित्यास्तस्मान्मा मुञ्चतर्तस्यर्तेन मामुतः ॥११२॥
अग्नये गार्हपत्याव न ममेति द्वितीयके ।
द्यावापृथिवीभ्यां सरस्वत्यै चेति यथा ऋचि ॥११३॥
देवा जीवनकाम्या यद्वाचानृतमूदिम ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु।
दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम् ॥११४॥
ऋतेन द्यावापृथिवी ऋतेन त्वꣳसरस्वति ।
कृतान्नः पाह्येनसो यत्किञ्चानृतमूदिम ॥११५॥
जातवेदसे न मम चतुर्थे त्वथ पञ्चमे ।
अग्नये गार्हपत्याय त्यागस्तद्वत्कृतो यथा ॥११६॥
सजातशꣳसादुतजामिशꣳसाज्ज्याय सः शꣳसादुत वा कनीयसः ।
अनाज्ञातं देवकृतं यदेनस्तस्मात्त्वमस्माञ्जात वेदो मुमुग्धि ॥११७॥
यद्वाचा यन्मनसा यद्वाहुभ्या
मूरूभ्यामष्ठीवद्भ्यां शिश्नैर्यदनृतञ्चकृम वयम् ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु
दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम् ॥११८॥
राष्ट्रभृतेभरसेभ्यः षष्ठे त्यागोऽष्टसप्तमे ।
अग्नये गार्हपत्याय नवमे चाग्नये वदेत् ॥११९॥
यद्धस्ताभ्यां चकर किल्बिषाण्यक्षाणां वसुमुपजिघ्रमानः ।
दूरे पश्या च राष्ट्रभृच्च तान्यभरसावनुदत्तामृणानि ॥१२०॥
अदीव्यन्नृणां यदहं चकार यद्वा दास्यन्सञ्जगाराजनेभ्यः ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु।
दुरिता यानि चकृम करोतु माननेनसम् ॥१२१॥
यन्मपि माता गर्भे सत्येनश्चकार यत्पिता ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु
दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम् ॥१२२॥

यदा पिपेष मातरं पितरं पुत्रः प्रमुदितो धयन्।
अहिंसितौ पितरौ मया तत्तदग्ने अनृणो भवामि ॥१२३॥
अग्नये गार्हपत्याय दशमैकादशे वदेत्।
द्वादशे त्वग्नयेऽथाग्नेऽग्नये गार्हपत्याय च ॥१२४॥
यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वाजिहिंसिम्।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु।
दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम् ॥१२५॥
यदा शप्ता निशप्ता यत्पराशप्ता यदेनश्चकृमा नूतनं यत्पुराणम्।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु।
दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम् ॥१२६॥
अतिक्रामामि दुरितं यदेनो जहामि रिप्रं परमे सधस्थे।
यत्र यन्ति सुकृतो नापि दुष्कृतस्तमारोहामि सुकृतान्तु लोकत्रिते ॥१२७॥
देवा असृजतैतदेनस्त्रित एतन्मनुष्येषु मामृजे।
ततो मा यदि किञ्चिदानशेऽग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः,
प्रमुञ्चतु दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम् ॥१२८॥
चतुर्दशे तिथौ त्वद्भ्यो वरुणाय ततो द्वयोः।
अष्टादशे चोनविंशे त्वग्नीवरुणाभ्यामिति ॥१२९॥
दिवि जाता अप्सु जाता या जाता औषधीभ्यः।
अथो या अग्निजा आपस्ता न शुधन्तु शुन्धनीः ॥१३०॥
यदापो नक्तं दुरितं चराम यद्वा दिवा नूतनं यत्पुराणम्।
हिरण्यवर्णास्तत उत्पुनीत नः ॥१३१॥
इमम्मे वरुण श्रुधीहवमद्याचमृलय। त्वामवस्युराचके ॥१३२॥
तत्त्वायामि ब्राह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणोहबोध्युरुशँसमा न आयुः प्रमोषीः ॥१३३॥
त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥१३४॥
स त्वन्नो अग्नेवमो भवोतीर्नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो व्रीहिमृडीकं सुहवो न एधि ॥१३५॥

सोलहवीं आहुति में पूर्ववत् आहुति डाले; किन्तु श्रोत्रियों को सोलहवीं आहुति में 'प्राजापत्याय पवित्राय' लगाना चाहिये; जैसे—ॐ प्राजापत्यं पवित्रं शतोद्यामं हिरण्मयम्, तेन ब्रह्मविदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमहे स्वाहा दिव्याय ब्रह्मणे पावमानीभ्यो प्राजापत्याय पवित्राय इदं न मम। सत्रहवीं आहुति इस मन्त्र से प्रदान करे—सुनीत्या

सहितेन्द्राय स्वस्त्या सहितसोमाय, समीच्या सहिताय वरुणाय प्रमृणाभिः सहिताय यमाय राज्ञ ऊर्जयन्त्या सहिताय जातवेदसे स्वाहा दिव्याय ब्रह्मणे पावमानीभ्य इदं न मम। इस प्रकार हवन करने के बाद गंगाजल से स्नान करके इन मन्त्रों से करे—इन्द्रः सुनीत्या सह मां पुनातु सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या, यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा जातवेदा मोर्ज्जयन्त्या पुनातु अर्थात् इन्द्र सुनीति के साथ, सोम स्वस्ति के साथ, वरुण समीची के साथ और यमराज प्रमृणा के साथ हमें पवित्र करें। इसके बाद बीस आहुतियाँ 'यद्देवा देवहेडनं' इन बीस ऋचाओं से प्रदान करे। पहले में 'स्वाहा' के बाद 'आदित्येभ्य इदं न मम' लगावे; जैसे—ॐ यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्, आदित्यास्तस्मान्मा मुञ्चतर्तस्यतेंन मामुतः स्वाहा आदित्येभ्य इदं न मम। दूसरी आहुति में इस प्रकार बोले—ॐ देवा जीवनकाम्या यद्वाचानृतमूदिम, अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेहसम् स्वाहा अग्नये गार्हपत्याय इदं न मम। तीसरी आहुति 'ॐ ऋतेन द्यावापृथिवी ऋतेन त्वं सरस्वति, कृतान्नः पाह्येनसो यत्किञ्चानृतमूदिम स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां सरस्वत्यै इदं न मम' मन्त्र से प्रदान करे। चौथी आहुति 'ॐ सजातशं सादुतजामिशं साज्ज्याय सःशंसादुत वा कनीयसः, अनाज्ञातं देवकृतं यदेनस्तस्मात्त्वमस्माञ्जातवेदो मुमुग्धि स्वाहा जातवेदसे इदं न मम' से एवं पाँचवीं आहुति 'ॐ यद्वाचा यन्मनसा यद्बाहुभ्यामूरुभ्यामष्ठीवद्भ्यां शिश्नैर्यदनृतञ्चकृम वयम्, अग्निर्मा तस्मादेनसोगार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम् स्वाहा अग्नये गार्हपत्याय इदं न मम' से प्रदान करना चाहिये। 'यद्धस्ताभ्यां चकर किल्विषाण्यक्षाणां वसुमुपजिघ्रमानः, दूरेपश्या च राष्ट्रभृच्च तान्यभरसावनुदत्ता-मृणानि' इस छठे मन्त्र के साथ 'स्वाहा राष्ट्रभृतेभरसेभ्य इदं न मम' लगाकर हवन करे। सातवें मन्त्र 'ॐ अदीव्यन्नृणां यदहं चकार यद्वा दास्यन्सञ्जगाराजनेभ्यः, अग्नि-र्मातस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरितायानिचकृम करोतु माननेहसम्' के साथ 'स्वाहा अग्नये गार्हपत्याय इदं न मम' लगाकर हवन करे। आठवें मन्त्र 'ॐ यन्मयि माता गर्भे सत्येनश्चकार यत्पिता, अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम्' के साथ 'स्वाहा अग्नये गार्हपत्याय इदं न मम' लगाकर एवं नवें मन्त्र 'ॐ यदापिपेष मातरं पितरं पुत्रः प्रमुदितो धयन्, अहिंसितौ पितरौ मया तत्तदग्ने अनृणो भवामि' के साथ 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' लगाकर हवन करना चाहिये। 'ॐ यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वाजिहिंसिम्, अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम्' इस दशवें मन्त्र के साथ 'स्वाहा अग्नये गार्हपत्याय इदं न मम', ग्यारहवें मन्त्र 'ॐ यदाशसा निशसा यत्परा-शसा यदेनश्चकृमा नूतनं यत्पुराणम्, अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम्' के साथ 'स्वाहा

अग्नये गार्हपत्याय इदं न मम' एवं बारहवें मन्त्र '३ॐ अतिक्रामामि दुरितं यदेनो जहामि रिप्रं परमे सधस्थे, यत्र यन्ति सुकृतो नापि दुष्कृतस्तमारोहामि सुकृतानु लोकत्रिते' के साथ 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' लगाकर आहुति प्रदान करना चाहिये। 'देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एतन्मनुष्येषु मामृजे। ततो मा यदि किञ्चिदानशेग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम्' इस तेरहवें मन्त्र के साथ 'स्वाहा अग्नये गार्हपत्याय इदं न मम' लगाकर, चौदहवें मन्त्र 'दिवि जाता अप्सु जाता या जाता ओषधीभ्यः, अथो या अग्निजा आपस्ता नः शुधन्तु शुन्धनीः' के साथ 'स्वाहा अद्भ्यो वरुणाय इदं न मम' लगाकर, पन्द्रहवें मन्त्र '३ॐ यदापो नक्तं दुरितं चराम यद्वा दिवा नूतनं यत्पुराणम्, हिरण्यवर्णास्तत उत्पुनीत नः' के साथ 'स्वाहा अद्भ्यो वरुणाय इदं न मम' लगाकर, सोलहवें मन्त्र '३ॐ इमम्मे वरुण श्रुधीहवमद्याचमृळय, त्वामवस्यु-राचके' के साथ 'स्वाहा अद्भ्यो वरुणाय इदं न मम' लगाकर, सत्रहवें मन्त्र '३ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः, अहेडमानो वरुणोहबोध्युरुशँसमा न आयुः प्रमोषीः' के साथ 'स्वाहा अद्भ्यो वरुणाय इदं न मम' लगाकर, अट्ठारहवें मन्त्र '३ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणाय विद्वान्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः, यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्' के साथ 'स्वाहा अग्नये वरुणाय इदं न मम' लगाकर तथा उन्नीसवें मन्त्र '३ॐ स त्वन्नो अग्नेवमो भवोतीनेंदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ, अवयक्ष्व नो वरुणँ रराणो वीहिमृडीकँसुहवो न एधि' के साथ 'स्वाहा अग्नये वरुणाय इदं न मम' लगाकर हवन करना चाहिये।।१०६-१३५।।

अग्नये चाथ विंशे तु सूक्तं वैश्वानरं ततः।
अग्नये वैश्वानरायाष्टर्चान्त्यागोऽयमीरितः ॥१३६॥
त्वमग्ने अयास्ययासन्मनसा हितः।
अयासन्हव्यमूहिषे या नो धेहि भेषजम् ॥१३७॥
वैश्वानरो न ऊतयेवयातुपरावतः। अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥१३८॥
ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं धर्ममीमहे ॥१३९॥
वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपश्यया कविः।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥१४०॥
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः समो नो दिवासरिपः पातु नक्तम् ॥१४१॥
जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशुं न गोपाइर्यः परिज्या।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्दगातुं यूयं यात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१४२॥
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आरोदसी अपृणा जायमानः।
त्वं देवानभिशस्तेरमुचो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥१४३॥

अस्माकमग्ने मघवत्सुधारयानामिक्षत्रमजरꣳसुवीर्यम् ।
वयञ्जयेम शतिनꣳ सहस्त्रिणं वैश्वानरवाजमग्ने तवोतिभिः ॥१४४॥
वैश्वानरस्य सुमनौस्यामनौस्यामराजाहिकं भुवनानामभिः श्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्याय ॥१४५॥

बीसवें मन्त्र 'ॐ त्वमग्ने अयास्ययासन्मनसा हितः, अयासन्हव्यमूहिषे या नो धेहि भेषजम्' के साथ 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' लगाकर हवन करने के बाद वैश्वानर सूक्त के आठ मन्त्रों में भी 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' लगाकर हवन करना चाहिये; जैसे—ॐ वैश्वानरो न ऊतयेव यातु परावतः, अग्निर्नः सुष्ठुतीरुप स्वाहा अग्नये इदं न मम; ॐ ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्, अजस्रं धर्ममीमहे स्वाहा अग्नये इदं न मम; ॐ वैश्वानरस्यदँसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपश्यया कविः, उभा पितरामहयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा, स्वाहा अग्नये इदं न मम; ॐ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधिराविवेश, वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः समो नो दिवासरिपः पातु नक्तम् स्वाहा अग्नये इदं न मम; ॐ जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशुं न गोपाइर्यः परिज्या, वैश्वानर ब्रह्मणे विन्दगातुं यूयं यात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा अग्नये इदं न मम; ॐ त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आरोदसी अपृणा जायमानः, त्वं देवानभिशस्तेरमुचो वैश्वानर जातवेदो महित्वा स्वाहा अग्नये इदं न मम; ॐ अस्माकमग्ने मघवत्सुधारयानामिक्षत्रमजरं सुवीर्यम्, वयञ्जयेम शतिनं सहस्त्रिणं वैश्वानरवाजमग्ने तवोतिभिः स्वाहा अग्नये इदं न मम; ॐ वैश्वानरस्य सुमनौस्यामनौस्यामराजाहिकं भुवनानामभिः श्रीः, इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्याय स्वाहा अग्नये इदं न मम।।१३६-१४५।।

ततः स्विष्टकृतं कृत्वा परिधीन्पर्य्यगृह्य च ।
पूर्णं कलशमादाय नैर्ऋत्यान्तु चतुष्पथे ॥१४६॥
पादप्रक्षालनं कृत्वाथाचम्य प्राङ्मुखस्तथा ।
पत्नीभिः सह वीक्षेतच्छायां तस्मिञ्च्छुभाशुभाम् ॥१४७॥
सिंहे मे मन्युरस्यां प्रेमेऽनुवाकं जपेत्ततः ।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्त्विति क्षिपेत् ॥१४८॥
भूम्यां किञ्चिज्जलं पश्चादुत्तिष्ठेत्कलशान्वितः ।
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु पृष्ठतः कलशं क्षिपेत् ॥१४९॥
यस्यामस्य दिशि द्वेष्यो भवेत्तत्रैव निःक्षिपेत् ।
पश्चादप उपस्पृश्य स्वगृहं प्रविशेत्ततः ॥१५०॥
त्रिसन्ध्यमेवं सप्ताहं कुर्य्यादूपं निरीक्षयेत् ।
यदा पश्येत्तोयमध्ये छायामच्छान्तदा भवेत् ॥१५१॥

यजमानः सुपूतोऽयमन्यथा पुनराचरेत्।
तत आशीर्वचो गृह्याद् ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥१५२॥
यावत्कर्म्म प्रकुर्वीत तावन्मौनं समाचरेत्।
सकृदेव समश्नीयाद्धविष्यं ब्रह्मचर्य्यभाक् ॥१५३॥
जितेन्द्रियो भूमिशायी पूर्वजन्मार्ज्जितादघात्।
मन्त्रसिद्धेर्विघ्नकर्तुर्मुक्तो भवति नान्यथा ॥१५४॥
अज्ञानाच्च प्रमादाद्वा जन्मन्यस्मिंश्च यत्कृतम्।
पातकं तस्य नाशार्थं कूष्माण्डीभिस्तु होमयेत् ॥१५५॥

इसके बाद स्विष्टकृत् हवन करके पूर्ण कलश को लेकर नैर्ऋत्य कोण में चौराहे पर जाकर पाँवों को धोकर पूर्व की तरफ मुँह करके आचमन कर पत्नी के साथ छाया का अवलोकन करे। इससे शुभाशुभ का ज्ञान प्राप्त होता है। तदनन्तर 'सिंहे मे मन्युः' इस मन्त्र का भक्तिपूर्वक जप करे। 'सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु' मन्त्र से कुछ जल पृथ्वी पर छींटने के बाद कलश लेकर खड़ा होकर 'दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः' बोलकर पीठ के पीछे कलश को फेंक दे। जिस दिशा में अपना द्वेषी हो, उसी दिशा में कलश को फेंकना चाहिये। इसके बाद जल का स्पर्श करके अपने गृह में प्रवेश करे। एक सप्ताह तक तीनों सन्ध्याओं में अपनी छाया का अवलोकन जल में करे। जल में जब स्वच्छ बिम्ब दिखायी पड़े तो शुभ समझना चाहिये। अगर स्वच्छ छाया न दिखाई दे तो उक्त क्रिया पुनः करे। इसके बाद ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त करके उन्हें भोजन कराये। जब तक पुरश्चरण कर्म किया जाय तब तक मौन रहना चाहिये। एक शाम हविष्यान्न का भोजन करके ब्रह्मचर्य का आचरण करे एवं जितेन्द्रिय रहकर भूमि पर शयन करे। इससे पूर्वजन्म के पापों से उत्पन्न विघ्न जो सिद्धि में बाधक होते हैं, उनका क्षय हो जाता है; अन्यथा मन्त्र सिद्ध नहीं होते। अज्ञान और प्रमादवश इस जन्म में जो पाप हो गये हों, उनके नाश के लिये कूष्माण्ड से हवन करना चाहिये।।१४६-१५५।।

वैदिके यस्य निस्नाताः पितरोऽज्ञानदोषतः।
पतित्वा कौलिके मार्गे दारिद्र्यादिभिरर्दितः ॥१५६॥
मनसा उपतप्तश्चेन्नित्यं सर्वसुखाप्तये।
लोकद्वयप्रतिष्ठार्थं सोऽपि गुप्तं समाचरेत् ॥१५७॥
स्वर्णचौर्य्ये सुरापाने गोवधे ब्रह्मघातने।
गुरुतल्पगमे वर्षं व्रतमेतत्समाचरेत् ॥१५८॥
चौर्य्ये च भ्रूणहत्यायामयोनौ वीर्य्यसेचने।
विश्वासघातने न्यासहरणे त्वयुतं चरेत् ॥१५९॥

इष्टाप्राप्तौ ग्रहे घोरे ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
जले शिवालये दानं गृहीत्वायुतमेककम् ॥१६०॥
कूटसाक्ष्ये वार्द्धुषिके वृत्तिहारे करग्रहे ।
देवविप्राधिकारे चापदन्ते लक्षमाचरेत् ॥१६१॥
संस्कारभोजने वेश्यागमने पशुघातने ।
देवाद्यर्थाशने लक्षं त्रिसन्ध्यालोपने त्वहः ॥१६२॥
केशश्मश्रून्वापयित्वा स्नात्वा पुण्ये जलाशये ।
आज्यभागानन्तरं च कूष्माण्डीभिस्तु होमयेत् ॥१६३॥
सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ।
ब्राह्मणो दुग्धपायी स्यात्क्षत्रियस्तु यवागुलेट् ॥१६४॥
आमिक्षां भक्षयेद्वैश्यो यदा शक्तो भवेत्तदा ।
ओदनं सक्तवो धाना घृतं वापि समाश्रयेत् ॥१६५॥
एतद्धिन्नं न भोक्तव्यं ब्रह्मचर्य्यादिपूर्ववत् ।
होमस्तु गोघृतेनैव तदभावे तु माहिषम् ॥१६६॥

वैदिक मार्ग में निस्नात पितरों के अज्ञानदोष के फलस्वरूप जो कौलिक मार्ग अपना कर दरिद्रता से दुःखी हो मानसिक रूप से उद्विग्न रहते हों, वे इस प्रकार से हवन करके सभी सुख प्राप्त कर सकते हैं। लोक और परलोक दोनों में प्रतिष्ठा-प्राप्ति हेतु इस आचार को गुप्त रूप से करना चाहिये।

सुवर्ण की चोरी करने पर, मद्यपान करने पर, गोहत्या करने पर, ब्राह्मण की हत्या करने पर, गुरु की शय्या पर गमन करने पर एक वर्ष-पर्यन्त इस व्रत का पालन करना चाहिये। चोरी करने पर, भ्रूणहत्या करने पर, अयोनि में वीर्यपात करने पर, विश्वासघात करने पर, न्यास अर्थात् धरोहर का हरण करने पर इस प्रकार का हवन दश हजार करना चाहिये। इष्ट की प्राप्ति न होने पर, ग्रहों के विपरीत होने पर, चन्द्र-सूर्यग्रहण में, जल में एवं शिवालय में दान प्राप्त करने पर प्रत्येक के लिये दश-दश हजार हवन करना चाहिये। झूठी गवाही देने वाले को, व्याज ग्रहण करने वाले को, किसी की वृत्ति का हरण करने वाले को, कर ग्रहण करने वाले को, देव और विप्रों का अधिकार छीनने वाले को एवं विपत्ति की स्थिति में एक लाख हवन करना चाहिये। श्राद्ध का अन्न खाने वाले, वेश्यागामी, पशु-हत्या करने वाले एवं देवार्थ सञ्चित द्रव्य का भोजन करने वाले को एक लाख हवन करना चाहिये। तीनों सन्ध्याओं का लोप होने पर बाल-दाढ़ी मुड़ाकर पवित्र जलाशय में स्नान करने के बाद घी से हवन करने के बाद कूष्माण्ड से हवन करना चाहिये; साथ ही यथाशक्ति व्याहृतियों के साथ

गायत्री-मन्त्र का एवं 'पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि माम्' इत्यादि पवित्र मन्त्रों का नित्य जप करना चाहिये। उस काल में यदि समर्थ हो तो ब्रह्मचर्य आदि का पालन करते हुये ब्राह्मण को केवल दुग्ध-पान करना चाहिये, क्षत्रिय को यवागू-भक्षण करना चाहिये एवं वैश्य को आमिक्षा (गर्म दूध में दधि मिलाकर) भक्षण करना चाहिये। यदि इससे काम न चले तब भात, धान्य, सत्तू और घी का भोजन करना चाहिये; इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार का भोजन नहीं करना चाहिये। हवन गाय के घी से ही करना चाहिये; गाय का घी यदि उपलब्ध न हो भैंस के घी से हवन करना चाहिये।।१५६-१६६।।

प्रथमा मन्त्रिका तत्र यद्देवा देवहेडनम्।
देवभ्य आदित्येभ्यश्च त्यागस्तत्र समीरितः ॥१६७॥
विश्वेभ्यो देवेभ्य इति द्वितीयायाश्च सोच्यते।
प्राग्वत्त्यागस्तृतीयाया ऋग्भिन्ना सा च कथ्यते ॥१६८॥
यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
आदित्यास्तस्मान्मा मुञ्चतर्तस्यर्त्तेन मामुतः ॥१६९॥
देवा जीवनकाम्या यद्वाचानृतमूदिम।
तस्मान्न इह मुञ्चत विश्वेदेवाः सजोषसः ॥१७०॥
ऋतेन द्यावापृथिवी ऋतेन त्वꣳसरस्वति।
कृतान्नः पाह्येनसो यत्किञ्चानृतमूदिम ॥१७१॥
इन्द्राग्निमित्रावरुणसोमधातृबृहस्पतिभ्यस्त्यागस्तु ।
चतुर्थी या अधुना सा ऋगुच्यते ॥१७२॥
इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ सोमो धाता बृहस्पतिः।
तेनो मुञ्चन्त्वेनसो यत्किञ्चानृतमूदिम ॥१७३॥
सजातसꣳसादिति पूर्वोक्ता पञ्चमी मता।
यद्वाचा यन्मनसा षष्ठी पूर्वमुदीरिता ॥१७४॥
ज्योतिषे न मम त्यागः सप्तम्यां सा च कथ्यते।
अग्नये न मम त्यागस्तथाष्टम्याथ सोच्यते ॥१७५॥
येन त्रितो अर्णवाभिर्बभूव येन सूर्यं तमसन्निर्मुमोच।
येनेन्द्रो विश्वा अजहादरातींस्तेनाहं ज्योतिषां ज्योतिरानशा न आक्षि ॥१७६॥
यत्कुसीदमप्रतीतं मयेह येन यमस्य निधिना चरामि।
एतत्तदग्ने अनृणो भवामि जीवन्नेव प्रति तत्ते दधामि ॥१७७॥
यन्मयि मातेति पूर्वोक्ता प्राग्वत्सा नवमाहुतिः।
यदाययेष मातरं प्राक्प्रोक्ता दशमाहुतिः ॥१७८॥

यदन्तरिक्षं पृथिवी प्राक्प्रोक्तैकादशाहुतिः ।
यदाशसानिशसाप्राक्प्रोक्तात्र द्वादशाहुतिः ॥१७९॥
तदग्ने तु ऋचस्तिस्र एवं पञ्चदशाहुतीः ।
यदापो नक्तमिति पूर्वोक्ता षोडशी भवेत् ॥१८०॥
अद्भ्यो हिरण्यवर्णाभ्यस्तस्यां त्यागोऽभिधीयते ।

हवन में प्रथम आहुति 'यद्देवा देवहेडनं' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा देवेभ्य आदित्येभ्यश्च इदं न मम' लगाकर प्रदान करनी चाहिये। दूसरी आहुति 'देवा जीवनकाम्या' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं न मम' लगाकर प्रदान करनी चाहिये। तृतीय आहुति 'ऋतेन द्यावापृथिवी' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां सरस्वत्यै चेदं न मम' लगाकर प्रदान करनी चाहिये। चौथी आहुति 'इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा इन्द्राग्निमित्रावरुण-सोमधातृवृहस्पतिभ्य इदं न मम' देनी चाहिये। पाँचवीं आहुति 'सजातसंसादत' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा जातवेदसे इदं न मम' लगाकर प्रदान करनी चाहिये। छठी आहुति 'यद्वाचा यन्मनसा' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा राष्ट्रभृतेभरसेभ्य इदं न मम' लगाकर देनी चाहिये। सातवीं आहुति 'येन त्रितो अर्णवाभिर्बभूव' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा ज्योतिषे इदं न मम' लगाकर, आठवीं आहुति 'यत्कुसीदमप्रतीतं' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' लगाकर, नवीं आहुति 'यन्मयि माता गर्भे' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' लगाकर, दशवीं आहुति 'यदा-यियेष मातरं' इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' लगाकर, ग्यारहवीं आहुति पूर्वोक्त 'यदन्तरिक्षं पृथिवी' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' लगाकर, बारहवीं आहुति पूर्वोक्त 'यदाशसानिशसा' मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' लगाकर प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर उसके आगे की तीन ऋचाओं से तेरहवीं, चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं आहुति प्रदान कर सोलहवीं आहुति पूर्वोक्त 'यदापो नक्तम्' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा अद्भ्यो हिरण्यवर्णाभ्य इदं न मम' लगाकर प्रदान करनी चाहिये।।१६७-१८०।।

इमम्मे वरुणेत्यादि पञ्चर्चः पूर्वमीरिताः ॥१८१॥
सत्यागास्तेनैकविंशदाहुतयः समीरिताः ।
इन्द्राग्निभ्यां च द्वाविंशे त्यागः सा ऋगथोच्यते ॥१८२॥
उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत्किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनुदत्तमेतत् ।
तेन ऋणानृणव इत्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुराय ॥१८३॥
अदीव्यं नृणं यदहमित्याद्याः षट् च पूर्ववत् ।
ततो द्वयोरिह त्यागो वरुणाय न वै मम ॥१८४॥

अवते हेलो वरुण नमो भिखयज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयं नस्मभ्यमसुरप्रचेतो राजन्नेताँ सिशिश्रथः कृतानि ॥१८५॥
उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदबाधमं विमध्यमं श्रथाय ।
अथावयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥१८६॥
एकत्रिंशे शंकुशुकौ विकुशुकौ च निर्ऋथेः
निःस्वनेभ्यस्त्याग उक्तः सा ऋचा प्रोच्यतेऽधुना ।
शंकुशुको विकुशुको निर्ऋथो यश्च निःस्वनः
ते येऽस्मद्यक्ष्ममनागसो दूराद्दूरमवीवतम् ॥१८७॥
ततो द्वयोरग्नये च त्वष्ट्रे त्यागस्तदग्रिमे ।
आयुष्मतेऽग्नये त्यागः पञ्चत्रिंशत्तमे मतः ॥१८८॥
निर्यक्ष्ममवीवते कृत्वा निर्ऋतिञ्च ।
तेन योऽस्मत्समृच्छाते तस्मै प्रसुवामसि ॥१८९॥
दुःशꣳ सानुशꣳ साभ्यां घणेनानुघणेन च ।
तेनात्योरस्मत्समृच्छाते तस्मै सुप्रसवामसि ॥१९०॥
संवर्च्चसा यशसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा शꣳशिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र विदधातु रायो नु मार्ष्टतन्वो यद्विलिष्टम् ॥१९१॥
आयुष्टे विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ।
पुनस्ते प्राण आयाति परा यक्ष्मꣳ सुवामि ते ॥१९२॥
आयुर्दायाग्नये त्यागः षट्त्रिंशेऽथ तदग्रिमे ॥१९३॥
अग्नये वरुणायादित्यै विश्वेभ्यो देवेभ्यश्च ॥१९४॥
आयुर्दा अग्नये हविषो युषाणो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि ।
घृतं पीत्वा मधु चारुगव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमम् ॥१९५॥
इमग्न आयुषे वर्च्चसे कृधि तिग्ममोजो वरुण सꣳशिशाधि ।
माते मातेवास्मा आदिते शर्म्म यच्छ विश्वेदेवा जरदष्टिर्यथासत् ॥१९६॥
अग्नये पवमानाय त्यागोऽष्टत्रिंशतस्त्रिषु ।
ततो द्वयोर्जातवेदसेऽग्नये त्याग उच्यते ॥१९७॥
अग्न आयूꣳषि यवस आसुवोर्ज्जामिषं च नः ।
आरे बाधस्वदुच्छनाम् ॥१९८॥
अग्ने पवस्व स्वया अस्मै वर्च्चः सुवीर्य्य ।
दधत्योषꣳ रयिं मयि ॥१९९॥
अग्न ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ॥२००॥

अग्ने जातान् प्रणुदानः सपत्नान्प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अस्मदीदिह सुमना अहेडं शर्म तेऽस्यामत्रिवरूथ उद्भौ ॥२०१॥
सुवीर्य्यसहसा जातान्प्रणुदानः सपत्नान्प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अधिनो ब्रूहि सुमनस्यामानो वयꣳ स्याम प्रणुदानः सपत्नान् ॥२०२॥
अग्नये वृत्रघ्नायेति त्रिचत्वारिंशके पुनः ।
अग्नये इति तस्मात्तु उषसे निमुचे भवेत् ॥२०३॥
अग्ने यो नोभितो जनो वृको वारा जिघाꣳसति ।
तां त्वं वृत्रहञ्जहि वस्वस्मभ्यमाभर ॥२०४॥
अग्ने यो नो भिदा समानो यश्च निष्ट्यः ।
तं वयं समिधं कृत्वा तुभ्यमग्ने पिदध्मसि ॥२०५॥
यो नः शपादशपतो यश्च न शपतः शपात् ।
उषाश्च तस्मै निम्रुक् च सर्वपापꣳसमूहताम् ॥२०६॥

तदनन्तर 'इमम्मे वरुण' इत्यादि पूर्वोक्त पाँच ऋचाओं से त्यागार्थक वाक्य का उच्चारण करते हुये पाँच आहुति प्रदान करनी चाहिये। इस प्रकार इक्कीस आहुति-दान के पश्चात् बाईसवीं आहुति 'उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत्' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा इन्द्राग्निभ्यामिदं न मम' लगाकर देनी चाहिये।

तदनन्तर पूर्वोक्त 'अदिव्यं नृणं यदिह' इत्यादि छः ऋचाओं से पूर्ववत् आहुति प्रदान करने के बाद आगे की दो आहुतियाँ मूलोक्त 'अवते हेलो वरुण' एवं उदुत्तमं वरुणपाशमस्मद' इत्यादि ऋचाओं के अन्त में 'स्वाहा वरुणायेदं न मम' लगाकर प्रदान करनी चाहिये। इकतीसवीं आहुति मूलोक्त मन्त्र 'शङ्कुशुकौ विकुशुकौ' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा शङ्कुशुकौ विकुशुकौ च निर्ऋथेः निःस्वनेभ्य इदं न मम' लगाकर प्रदान करके आगे की दो आहुतियाँ मूलोक्त 'निर्यक्ष्म मवीव' एवं 'दुःशं सानुशं' मन्त्रों अन्त में 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' से प्रदान कर चौंतीसवीं आहुति 'संवर्च्चसा यशसा' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा त्वष्ट्रे इदं न मम' से कुण्ड में निक्षिप्त करने के बाद पैंतीसवीं आहुति 'त्वष्टा नो अत्र विदधातु' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा आयुष्मते-ऽग्नये इदं न मम' से प्रदान करनी चाहिये।

छत्तीसवीं आहुति का त्याग 'आयुर्दा अग्नये हविषो' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा आयुर्दायाग्नये इदं न मम' लगाकर करके सैंतीसवीं आहुति मूलोक्त मन्त्र 'इमग्न आयुषे वर्च्चसे' इत्यादि के अन्त में 'स्वाहा अग्नये वरुणायादित्यै विश्वेभ्ये देवेभ्य इदं न मम' लगाकर प्रदान करने के पश्चात् आगे की तीन आहुतियाँ मूलोक्त 'अग्न आयूंषि यवस, अग्ने पवस्व स्वया, अग्न ऋषिः पवमानः' मन्त्र के अन्त में

'स्वाहा अग्नये पवमानाय इदं न मम' लगाकर प्रदान करके दो आहुतियाँ मूलोक्त 'अग्ने जातान् प्रणुदानः' एवं 'सुवीर्य्यसहसा जातान्' इत्यादि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा जातवेदसेऽग्नये इदं न मम' बोलकर निक्षिप्त करने के बाद तैंतालीसवीं आहुति मूलोक्त 'अग्नेयो नोभितो जनो' मन्त्र के साथ 'स्वाहा अग्नये वृत्रघ्नाय इदं न मम' लगाकर, चौवालीसवीं आहुति मूलोक्त 'अग्ने यो नो भिदा' मन्त्र के साथ 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' लगाकर एवं पैंतालीसवीं आहुति 'यो नः शपादशपतो' मन्त्र के साथ 'स्वाहा उषसे निमुचे इदं न मम' लगाकर प्रदान करनी चाहिये।।१८१-२०६।।

षट्चत्वारिंशके त्यागो देवेभ्यश्च तदग्निमे।
जातवेदसेऽग्नये च ततस्त्यागोऽग्नये भवेत् ॥२०७॥
यो नः सपत्नो यो रणोमर्तीभिदासति देवाः।
इध्मस्येव प्रक्षायतो मातस्योच्छेषि किञ्चन ॥२०८॥
यो मां द्वेष्टि जातवेदो यं चाहं द्वेष्मि यश्च माम्।
सर्वांस्तानग्ने सन्दह याꣳश्चाहं द्वेष्मि ये च माम् ॥२०९॥
यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः।
निन्दाद्यो अस्मान्दिशाश्च सर्वांस्तान्मय्यपाकुरु ॥२१०॥
श्रोत्रियाय ब्राह्मणे चाग्नये पञ्चाशके मतः।
तदग्निमेऽपि च तथान्तिमे वैश्वानराय च ॥२११॥
सꣳ शितं मे ब्रह्म सꣳ शितं वीर्य्यबलम्।
सꣳ शितं क्षत्रं मे जिष्णु यस्माहमस्मि पुरोहितः ॥२१२॥
उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्च्चो अथो बलम्।
क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वामहम् ॥२१३॥
पुनर्मनः पुनरायुर्म अगात्पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म अगात्पुनः।
प्राणः पुनराकूतं म अगात्पुनश्चित्तं पुनराधीतं म अगात् ॥२१४॥
वैश्वानरो मे दध्वस्तनूया अवबाधतां दुरितानि विश्वा ॥२१५॥
एवं हुत्वा ततस्तिष्ठेत्समित्पाणिरुदङ्मुखः।
अग्नेर्दक्षिणतो वह्निं स्तुवीत द्वादशर्चाभिः ॥२१६॥
वैश्वानराय प्रतिवेदयामो यदीनृणꣳसङ्गरो देवतासु।
स एतान्पाशान्प्रमुञ्चन्वेद स नो मुञ्चतु दुरितादवद्यात् ॥२१७॥
वैश्वानरः पवयान्नः पवित्रैर्यत्सङ्गरमभिधावाम्याशाम्।
अनाजानन्मनसा याचमानो यदत्रैनो अव तत्सुवामि ॥२१८॥
अमी ये सुभगे दिवि वृत्तौ नाम तारकी।
प्रेहामृतस्य यच्छतामेतद्बन्धकामोचनम् ॥२१९॥

विजिहीर्ष्व लोकान्कृधि बन्धान्मुञ्चासिबद्धकम्।
योनेरिव प्रच्युतो गर्भः सर्वान्यथो अनुष्व ॥२२०॥
स प्रजानन्प्रतिगृणीत विद्वान्प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य।
अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनुसञ्चरेत् ॥२२१॥
न तं तन्तुमन्वेके अनुसञ्चरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनवत्।
अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छद्दातुं चेच्छक्नवाꣳस स्वर्ग एषाम् ॥२२२॥
आरभेथामनुसꣳरभेथाꣳसमानं पन्थामवथो घृतेन।
यद्वां पूर्तं परिविष्टं यदग्नौ तस्मै गोत्रा येह जायापरीक्षꣳरभेथाः ॥२२३॥
यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वाव जिहिꣳसिम।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु,
दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेहसम् ॥२२४॥
भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्तरा नः।
द्यौर्नः पिता पितृयाच्छम्भवासि जामिति त्वा मा विविꣳसि लोकात् ॥२२५॥
यत्र सुहार्दः सुकृतो मदन्ते विहाय रोगं तन्वा स्वया।
अश्लोणाङ्गैरद्भुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरं च पुत्रम् ॥२२६॥
यदन्नमद्म्यनृते देवा दास्यन्नदास्यन्नु त वा करिष्यन्।
यद्देवानां चक्षुष्यागो अस्ति यदेव किञ्च,
प्रतिजग्राहमग्निर्मा तस्मादनृणं कृणोतु ॥२२७॥
यदन्नमपि बहुधा विरूपवासो हिरण्य-
मुत गामजामवियद्देवानां चक्षुष्यागो अस्ति।
यदेव किञ्च प्रतिजग्राहमग्निर्मा तस्मादनृणं कृणोतु ॥२२८॥
एवमग्निमुपस्थाय करस्थां समिधं हुनेत्।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण त्यागो वैश्वानराय च ॥२२९॥
यन्मया मनसा वाचा कृतमेनः कदाचन।
सर्वस्मात्तस्मान्मेलितो मोग्धि त्वꣳहि वेत्थ यथातथꣳस्वाहा ॥२३०॥
जपादिहोमं च ततः कुर्य्यादेतन्निरूपितम्।
इह जन्मकृताघानां प्रायश्चित्तं निवारणम् ॥२३१॥
इदमुक्तं द्विजातीनां शूद्राणामथ चोच्यते।

छियालीसवीं आहुति 'यो नः सपत्नो' इतदि मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा देवेभ्य इदं न मम' बोलकर प्रदान करके सैंतालीसवीं आहुति 'यो मां द्वेष्टि जातवेदो' मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा जातवेदसेऽग्नये इदं न मम' बोलकर प्रदान करके अड़तालीसवीं आहुति मूलोक्त यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च' मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' से प्रदान

कर उनतालीसवीं आहुति 'सं शितं मे ब्रह्म' मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा अग्नये इदं न मम' लगाकर प्रदान करनी चाहिये।

पचासवीं एवं इक्यावनवीं आहुति का त्याग मूलोक्त 'उदेषां बाहू अतिरमुद्वच्चों' एवं 'पुनर्मनः पुनरायुर्म' मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा श्रोत्रियाय ब्राह्मणे चाग्नये इदं न मम' लगाकर प्रदान करके अन्तिम आहुति मूलोक्त 'वैश्वानरो मे दध्वस्तनूया' मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा वैश्वानराय इदं न मम' लगाकर प्रदान करनी चाहिये।

इस प्रकार हवन करके हाथों में समिधा लेकर उत्तरमुख होकर अग्नि के दक्षिण भाग से मूलोक्त 'वैश्वानराय प्रतिवेदयामो' से 'तस्मादनृणं करोतु' तक की बारह ऋचाओं द्वारा अग्नि की स्तुति करने के बाद अग्नि का उपस्थान करके हाथ में ली हुई समिधा से 'यन्मया मनसा वाचा' मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा वैश्वानराय इदं न मम' लगाकर आहुति प्रदान करनी चाहिये। इसके बाद यहाँ निरूपित विधि के अनुसार इस जन्म में किये गये पापों के निवारण के लिये प्रायश्चित्त स्वरूप जप-हवन आदि का अनुष्ठान करना चाहिये। इस प्रकार द्विजों द्वारा की जाने वाली विधि का निरूपण किया गया। अब शूद्रों द्वारा की जाने वाली विधि को कहते हैं।।२०७-२३१।।

मार्गशीर्षे सिताष्टम्यां कृतनित्यक्रियः शुचिः ॥२३२॥
एकभक्तं हविष्येण नवम्यामेवमाचरेत्।
अयाचितं दशम्यां च एकादश्यामुपोषणम् ॥२३३॥
द्वादश्यां वपनं कृत्वा पूजयेद्विप्रदेवताः।
नमो नारायणायेति स्वेष्टबीजादिकं मनुम् ॥२३४॥
अष्टाक्षरं गुरुमुखाद्गृहीत्वा जपमाचरेत्।
अष्टलक्षं द्विजोच्छिष्टभोजी तत्सेवने रतः ॥२३५॥
आमध्याह्नं जपं कुर्य्याद्भूशायी ब्रह्मचर्य्यकृत्।
निष्पापो जायते पूर्णे जपे नो चेत्पुनश्चरेत् ॥२३६॥

शूद्र को मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को नित्य कर्म का सम्पादन करके शुद्ध होकर नवमी को एक बार हविष्यान्न का भोजन करके दशमी को विना माँगे जो मिल जाय, उसे खाकर एकादशी को उपवास करके द्वादशी को मुण्डन कराकर ब्राह्मण एवं देवता की पूजा करेके आरम्भ में अभीष्ट बीज-पूर्वक 'नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्र को गुरुमुख से प्राप्त करके उसका जप आरम्भ करना चाहिये। द्विजों की सेवा में रत रहकर उनके उच्छिष्ट का भोजन करते हुए आठ लाख जप करे। ब्रह्मचर्य-धारणपूर्वक मध्याह्न-पर्यन्त जप करने के उपरान्त भूमि पर शयन करना चाहिये। नियत संख्यक जप के पूर्ण होने पर वह जापक पूर्ण रूप से पापरहित

हो जाता है; यदि ऐसा न हो तो साधक को पूर्वोक्त रीति से ही पुनः आठ लाख जप करना चाहिये।।२३२-२३६।।

निष्पापचिह्नं वक्ष्येऽत्र तथा पूर्वोक्तहोमयोः।
होमाद्यारम्भदिवसे मृन्मयं निर्व्रणं दृढम्॥२३७॥
आनयेच्छुद्धकलशं स्थापयेन्निर्मले स्थले।
तस्मिंस्तीर्थादिजं तोयं निःक्षिपेत्कलशोन्मितम्॥२३८॥
शृङ्गलद्वीपगोमूत्रं काचपात्रे निधापयेत्।
पलमात्रं द्वयोश्चैव कुर्याद्धरिहरार्चनम्॥२३९॥
परीक्षादिवसे पूजां कृत्वा तत्प्रार्थयेज्जलम्।
आपो नारायणः साक्षादप्सु सर्वं प्रतिष्ठितम्॥२४०॥
तेन सत्येन मत्पापं ज्ञानं सत्यं ममास्तु ते।
इति तोयं सम्प्रार्थ्य दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः॥२४१॥
पश्येत्स्वस्य शरीरस्य छायां तोये तथा रसे।
यथा रसे तथा तोये दृष्टा चेत्पातकं गतम्॥२४२॥
म्लाना तोये यदा छाया तदा पापं गतं न हि।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्याद्यदि छायातिनिर्मला॥२४३॥
नष्टपापो भवेदेवं पुरश्चरणसिद्धिभाक्।
यः कश्चिद्वैदिको मन्त्रो जप्तश्चेदर्बुदाक्षरम्॥२४४॥
एकजन्मकृतं पापं नाशयेन्नाममन्त्रकः।
विष्णोर्मम गणेशस्य रवेस्तव तदर्धकम्॥२४५॥
हन्ति पापं तान्त्रिकस्तु तदर्धं प्राकृतो दलम्।
अपदंशस्तदर्धं चेत्येतत्सर्वत्र गोपितम्॥२४६॥

पूर्वोक्त होम एवं जप के फलस्वरूप निष्पाप होने के लक्षणों का वर्णन यहाँ करता हूँ। हवन आदि आरम्भ करने के दिन मजबूत एवं बिना छिद्र वाला मिट्टी का शुद्ध कलश लाकर शुद्ध स्थान पर स्थापित करके उसको तीर्थ आदि से प्राप्त जल से मुख तक पूर्ण करे। काँच के पात्र में शृङ्गलद्वीप एक पल और गोमूत्र एक पल रखकर उसमें शिव और विष्णु का अर्चन करे। परीक्षण के दिन पूजा करके उस जल की इस प्रकार प्रार्थना करे—

आपो नारायणः साक्षादप्सु सर्वं प्रतिष्ठितम्।
तेन सत्येन मत्पापं ज्ञानं सत्यं ममास्तु ते।।

इस प्रकार जल की प्रार्थना करके पुष्पाञ्जलि प्रदान करने के बाद अपने प्रतिबिम्ब

का कलश-जल में और काँचपात्र के रस में अवलोकन करे। रस एवं जल में यदि एक ही प्रकार का बिम्ब दिखाई दे तो समझना चाहिये कि पापों का नाश हो गया है। यदि जल में बिम्ब मलिन दिखाई दे तो समझना चाहिये कि पापों समाप्त नहीं हुआ है। तदनन्तर जब तक बिम्ब निर्मल न हो जाय तब तक प्रायश्चित्त करना चाहिये। इस प्रकार पापों के नष्ट होने पर ही पुरश्चरण सिद्ध होता है। यदि कोई किसी वैदिक मन्त्र के अक्षरों का एक अरब जप करता है तो उसके एक जन्म का पाप नष्ट होता है। विष्णु, मुझ शिव, गणेश, सूर्य के नाम-मन्त्र के प्रत्येक अक्षर पर पचास करोड़ जप करने से पापों का नाश होता है। तान्त्रिक मन्त्रों के जप प्रत्येक अक्षर पर पच्चीस करोड़ करने पर पापों का नाश होता है। प्राकृत मन्त्रों का जप प्रत्येक अक्षर पर साढ़े बारह करोड़ करने से पापों का विनाश होता है। इस रहस्य को सर्वत्र गुप्त रखा गया है।

जपस्थानानि

जपस्थानानि वक्ष्यामि कृत्रिमाकृत्रिमाणि च।
गुप्तानि सर्वतन्त्रेषु देवतानां पृथक्पृथक् ॥२४७॥
महागणपतिक्षेत्रं मापुरं नर्मदातटे।
महाश्मशानं मापूरं गणेशमनुसिद्धिदम् ॥२४८॥
प्रभासं च कुरुक्षेत्रं पुष्करं भृगुपर्वतम्।
यमुनायास्तटं काश्यां दिनेशमनुसिद्धिदम् ॥२४९॥
अयोध्या मथुरा माया काशी बदरिकाश्रमः।
गया च गण्डकीतीरं द्वारका विष्णुसिद्धिदा ॥२५०॥
केदारस्त्र्यम्बकं काशी काञ्च्यवन्त्यौ वनानि च।
गङ्गातीरं वैद्यनाथं रामेशः शिवसिद्धिकृत् ॥२५१॥
ज्वालामुखी प्रयागश्च कामिनी मालिकापदम्।
सरस्वत्यास्तथा तीरं शाक्तमन्त्रस्य सिद्धिकृत् ॥२५२॥
तीरञ्च कमलेश्वर्य्यामेकलो यक्षपर्वतः।
अङ्गवङ्गकलिङ्गाश्च क्षुद्रदैवतसिद्धिदाः ॥२५३॥
कामरूपञ्च तत्स्थानं हिंगुला विन्ध्यवासिनी।
जालन्धरं पूर्णगिरिर्वाममार्गस्य सिद्धिदाः ॥२५४॥
तीरं पद्माकराणां च कदलीक्ष्वर्कवाटिकाः।
विद्रुमाकुलितो देशो गणेशस्यातिवल्लभः ॥२५५॥
पद्माकरं तदारण्यं करवीरार्कवाटिकाः।
गोधूमदूर्वाक्षेत्राणि शिला भानुमतः प्रिया ॥२५६॥

तुलस्यश्वत्थधात्रीक्षुशालग्रामादिसन्निधौ ।
गाष्ठे श्रोत्रिययुग्रामे हरेर्मुद्वैदिकान्तिके ॥२५७॥
पश्चिमाभिमुखे लिङ्गे नन्दिवर्ज्जे शिवालये ।
शिवतीरे वटस्यारात्सङ्गमे विपिने ह्रदे ॥२५८॥
कदलीचूतसुमने सेवन्तीचर्च्चरीवने ।
ग्रन्थाख्यातनदीतीरे शक्तेः प्रीतिश्च निर्जने ॥२५९॥
पल्वलाग्रे निम्बकोलशाखोटमधुकाकुले ।
वल्मीके शुष्कनद्यां च मोदन्ते क्षुद्रदेवताः ॥२६०॥
पितृगृहे श्मशाने च त्रिपथे च चतुष्पथे ।
शून्यालये शवाकीर्णे स्थाने तुष्यन्ति वामकाः ॥२६१॥

जप-स्थान—अब तत्तत् देवताओं के मन्त्रों के जप-हेतु व्यक्ति द्वारा निर्मित एवं प्राकृतिक स्थानों का वर्णन करता हूँ; जिसे सभी तन्त्रों में गुप्त रखा गया है। महागणपति का क्षेत्र नर्मदा तट पर मायुर है। मायुर का महाश्मशान गणेश मन्त्र की सिद्धि प्रदान करने वाला है। सूर्यमन्त्र की सिद्धि प्रदान करने वाले स्थान हैं—प्रभास, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, भृगुपर्वत, यमुनातट और काशी। अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, बदरिकाश्रम, गया, गण्डकीतट और द्वारका विष्णुमन्त्र के सिद्धिप्रद स्थान हैं। शिव-मन्त्रों के सिद्धिप्रद स्थान केदार, त्र्यम्बकेश्वर, काशी, काञ्ची एवं अवन्ती के वन, गंगातट, वैद्यनाथ तथा रामेश्वर हैं। शाक्त मन्त्रों के सिद्धिप्रद स्थान हैं—ज्वालामुखी, प्रयाग, कामाख्या, मालिकापद और सरस्वती नदी का तट। कमलेश्वरी नदी-तट, मेकल, यक्षपर्वत, अङ्ग, बङ्ग एवं कलिङ्ग क्षुद्र देवताओं के मन्त्रों के सिद्धिप्रद स्थान हैं। विन्ध्यवासिनी-मन्त्रों के सिद्धिप्रदस्थान कामाख्या और हिंगलाज हैं। वाममार्गियों के लिये सिद्धिप्रद स्थान जालन्धर और पूर्णगिरि हैं।

कमलयुक्त ताल, झील, कदलीवन, मदारवन, ईख के खेत एवं मूँगे से पूर्ण स्थान गणेश को अतिशय प्रिय हैं। सूर्य के प्रिय स्थान कमलयुक्त जलाशय, उसके निकट का जंगल, कनैल और अकवन के बगीचे, गेहूँ और दूब वाले क्षेत्र तथा सूर्यशिला हैं। तुलसी, पीपल, आमला, ईख, शालग्राम आदि के निकट, गोशाला, श्रोत्रिय से समन्वित ग्राम एवं वैदिकों के सामीप्य वाले स्थान विष्णु को हर्ष प्रदान करने वाले होते हैं। शक्ति के प्रिय स्थान हैं—पश्चिमाभिमुख नन्दी से रहित शिवालय, लिङ्ग के निकट, वटवृक्ष के नीचे, नदियों के संगम, जंगल, जलाशय, केला-आम-फूल-सेवन्ती पर गुञ्जायमान भ्रमरों वाला वन, ग्रन्थों में प्रसिद्ध नदीतट एवं निर्जन स्थान। क्षुद्र देवताओं को आनन्द प्रदान करने वाले स्थान हैं—छोटे तालाब, निम्ब-कङ्कोल-

शाखोट एवं महुआ के वृक्षों का वन, दीमक वाला स्थान एवं सूखो नदियाँ। वाममार्गियों के लिये पितृगृह, श्मशान, तिराहा, चौराहा, जनशून्य गृह एवं शवों से पूर्ण स्थान सन्तोषप्रद होते हैं।।२४७-२६१।।

गृहे गोष्ठे तथोद्याने तथा पर्वतमस्तके।
नद्यां तत्सङ्गमे देवालये स्याद्वैदिकोऽधिकः ॥२६२॥
यस्मिन्देशे न गाहत्या नापि ब्रह्मवधो भवेत्।
न श्रावयन्ति शूद्राश्च सिद्धिस्तत्र तु वैदिकी ॥२६३॥
म्लेच्छाः पाखण्डिनो धूर्त्ता राजानः सचिवादयः।
युवत्यश्च न वर्तन्ते तत्र सिद्धिरदूरतः ॥२६४॥
जीर्णदेवालयोद्यानगृहवृक्षनदीषु च।
नदीकूलाद्रिकूलेषु भूच्छिद्रादिषु नो वसेत् ॥२६५॥

वैदिक मन्त्रों की सिद्धि के लिये अपना घर, गोशाला, बगीचा, पर्वत-शिखर, नदीतट, नदियों का संगम, देवालय, जहाँ अधिक वैदिक हों, जहाँ गोहत्या और ब्रह्महत्या न होती हो, जहाँ शूद्र वेद का वाचन न करते हों—ऐसे स्थान श्रेष्ठ होते हैं। जहाँ म्लेच्छ, पाखण्डी, धूर्त्त, राजा, सचिव एवं युवतियाँ न हों, वह स्थान सिद्धिप्रद नहीं होता। टूटा-फूटा देवालय, पुराना बगीचा, वृद्ध वृक्ष, जीर्ण भवन, सूखी नदी, नदी की तलहटी, पहाड़ की तलहटी, भूमिविवर में वास नहीं करना चाहिये।।२६२-२६५।।

एवमाचर्य्य मतिमान् कुर्याद्भूमिपरिग्रहम्।
पृथ्वीं वराहं सम्पूज्य भूसुतस्य बलेन च ॥२६६॥
ब्रूयादमुकमन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये।
मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रोऽयं सिद्ध्यतामिति ॥२६७॥
न्यग्रोधदुग्धसस्यस्थवृक्षान्यतरवृक्षजान् ।
वितस्तिप्रमितान् वृत्तान् गृह्णीयात्कीलकान् दश ॥२६८॥
अष्टौ निखातयेदष्टदिशास्वीशानपूर्वयोः।
मध्ये निखन्यो नवम ऊर्ध्वबुद्ध्या तथाप्यधः।
पश्चान्नैर्ऋत्ययोर्मध्ये यन्त्रमस्त्रेण कीलयेत् ॥२६९॥
पूजा तथास्त्रमन्त्रेण तेष्वस्त्रं च प्रपूजयेत्।
क्षेत्रे च कीलिते मन्त्री न विघ्नैः परिभूयते ॥२७०॥
दिक्पालेभ्यो माषभक्तबलिं दिक्षु प्रकल्पयेत्।
क्षेत्रमध्ये क्षेत्रपालं पूजयेच्च गणेश्वरम् ॥२७१॥

तृतीयं वास्तुपुरुषं तेभ्यो दद्याद्बलित्रयम्।
क्षेत्रमध्ये समाश्रित्य कूर्मचक्रं विचारयेत् ॥२७२॥
कूर्म्मचक्रानभिज्ञस्य महाविघ्नोऽभिजायते।
परदेशग्रामगृहभेदात् कूर्मश्चतुर्विधः ॥२७३॥
वृत्तद्वयं प्रकुर्वीत नवकोष्ठकभेदितम्।
कवर्गाद्याः सप्त लेख्याः पूर्वाशादिषु लक्षकौ ॥२७४॥
ऐशान्यां विलिखेन्मध्यवृत्ते कोष्ठे द्वयं द्वयम्।
स्वराश्च पूर्वतो लेख्याः श्रीबीजं मध्यकोष्ठके ॥२७५॥
प्राङ्मुखः परकूर्म्मस्तु सर्वदैव प्रजायते।
देशानामग्रिमो वर्णो यस्यां दिशि व्यवस्थितः ॥२७६॥
देशकूर्म्ममुखं तस्यां दिशि स्याद्ग्रामकूर्म्मके।
मुखद्वयं तु विज्ञेयं स्वराद्व्यञ्जनतस्तथा ॥२७७॥
गृहकूर्मस्य वदनं यद्दिग्द्वारं गृहं भवेत्।
मुख्यस्य पार्श्वयोः पाणी कुक्षी पादौ ततस्ततः ॥२७८॥
पुच्छमेकमथो मध्ये पृष्ठमेकं षडङ्गवान्।
महारित्वे जीवनाशो वैरे स्याद्धननाशनम् ॥२७९॥
किञ्चिद्वैरे सुखाल्पत्वं तदिदानीं निगद्यते।
अगौ ऋच्छौ लृपौ जाहौ पषौ एनौ इरौ उलौ ॥२८०॥
फधौ भरौ यसौ चेति महारी परिकीर्तितौ।
जछौ ओटू यडौ गादौ जटौ राखौ बुधौ रलौ ॥२८१॥
वैरन्तु पञ्चमे वर्गे त्किञ्चित्करयोर्भवेत्।
चटयोः पचयोश्चापि तरयो रलयोरपि ॥२८२॥
एकवर्गे परा प्रीतिः स्वे वर्गे द्विगुणं कुरु।
स्थानवर्गयुतं तष्टमष्टभिश्चापि उच्यते ॥२८३॥
स्थानवर्गो द्विगुणितः स्ववर्गाढ्योऽष्टशेषितः।
स्थानाय उभयोः कार्यमधिकं यस्य शेषकम् ॥२८४॥
यावत्स्थितं सोऽर्थदः स्यात्साधकोऽर्थप्रदो न सत्।
मुखे सर्वार्थसिद्धिः स्यात्करयोरल्पसिद्धयः।
कटौ न किञ्चिद्दासत्वं पादयोः पुच्छतो मृतिः ॥२८५॥

इस प्रकार बुद्धिमान् आचार्य को भूमि का ग्रहण करना चाहिये। तदनन्तर पृथ्वी एवं वराह का पूजन करके ब्राह्मण बल से अपने मन्त्र की सिद्धि के लिये

पुरश्चरणसिद्धि के लिये संकल्प में 'अमुकमन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये मयेयं भूमिर्गृह्यते मन्त्रोऽयं सिद्ध्यताम्' इस प्रकार बोलना चाहिये।

वटवृक्ष जैसे दूधवाले वृक्षों पर उगे अन्य वृक्ष के बीत्ते भर के दश गोलाकार कीलों को लाकर उनमें से आठ कीलों को ईशान, पूर्व, अग्नि, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य एवं उत्तर में गाड़कर मध्य में एक ऊपर की भावना से एवं एक नीच की भावना से गाड़े। इसके बाद नैर्ऋत्य और पश्चिम के मध्य यन्त्र को अस्त्र-मन्त्र से कीलित करके अस्त्र-मन्त्र से ही पूजा करे और उसमें अस्त्रों का भी पूजन करे। इस प्रकार से क्षेत्र-कीलन करने से साधक विघ्नों से प्रभावित नहीं होता। तदनन्तर दशो दिशाओं में दिक्पालों को भात और उड़द की बलि प्रदान करके क्षेत्र के मध्य में क्षेत्रपाल, गणेश एवं वास्तुपुरुष का पूजन करके तीनों के लिये भात एवं उड़द की तीन बलि प्रदान करे। तत्पश्चात् क्षेत्रमध्य में कूर्मचक्र का विचार करे।

कूर्मचक्र से अनभिज्ञ साधक को महान् विघ्नों का सामना करना पड़ता है। पर, देश, ग्राम एवं गृह के भेद से कूर्म चार प्रकार का होता है।

२७४ से लेकर २८२ तक के नव श्लोकों में कूर्मचक्र-निर्माण और विचार का वर्णन है। इन श्लोकों के अनुसार कूर्मचक्र का निर्माण निम्न प्रकार से होता है—

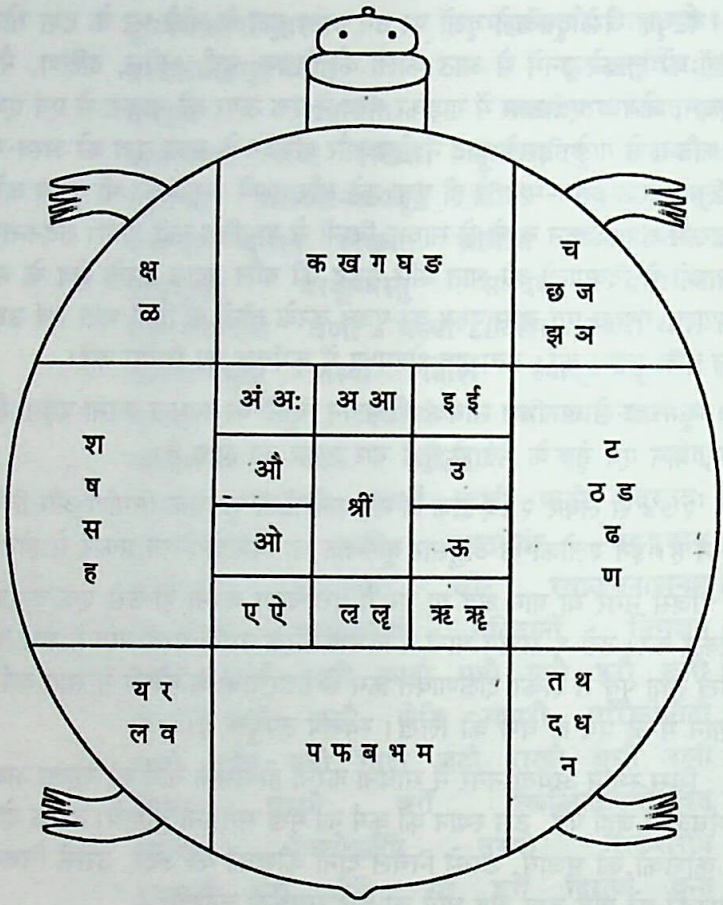
जिस नगर या ग्राम क्षेत्र या घर में पुरश्चरण करना हो उसे एक कूर्मचक्र का आकार करे। उसे ९ समान भागों में विभक्त करके उसके मध्य भाग में स्वर वर्णों को लिखे तथा पूर्व से लेकर दक्षिणावर्त्त क्रम से उत्तर तक के कोष्ठों में सात वर्ग लिखे, ईशान में ळ एवं क्ष वर्ण को लिखे। स्वरूप उपर्युक्त है।

जिस स्थान अथवा नगर में साधना करनी हो उसके नाम का पहला अक्षर उक्त कूर्मचक्र में जहाँ पड़े, उस स्थान को कूर्म का मुख समझना चाहिये। उसके दोनों ओर के कोष्ठकों को भुजायें, उससे निचले दोनों कोष्ठकों को उदर, उससे निचले दोनों कोष्ठकों को पाँव तथा शेष भाग को पूँछ समझना चाहिये।

साधक मुख वाले भाग में बैठकर मन्त्र-साधना करे। कूर्मचक्र का मुख वाला स्थान दीपस्थान होता है। इस दीपस्थान पर बैठकर साधना करने से सिद्धि का लाभ होता है। भुजास्थान में बैठकर साधना करने से अल्पायु, कुक्षिस्थान में करने से असफलता, पादस्थान में साधना करने से कष्ट तथा पुच्छस्थान में साधना करने से मृत्यु होती है।

पर कूर्मचक्र का मुख सदैव पूरब में ही माना जाता है। देश, ग्राम और नगर के नाम का प्रथम वर्ण जहाँ होता है, उसी को मुख माना जाता है। देश ग्राम का मुख

समान होता है। कूर्म के दो मुख माने जाते हैं—एक स्वर वर्ण और दूसरा व्यञ्जन वर्ण। गृहकूर्म का मुख द्वार दिशा में होता है।



अपने नाम और नगर के नाम के प्रथमाक्षरों में मित्रारि विचार करना चाहिये। महादुश्मन होने से जीवनाश, वैर होने से धननाश एवं अल्प वैर होने पर सुख में कमी होती है। अ-ग, ऋ-घ, ऌ-प, ज-ह, प-ष, ए-न, इ-र, उ-ल, फ-ध, भ-र, य-स में परस्पर महान् वैर होता है अर्थात् अ का महावैरी ग,.....य का महावैरी स होता है। ज-छ, ओ-ट्, य-ड, गा-द, ज-ट, रा-ख, बु-ध एवं र-ल में परस्पर वैर होता है। पाँचवें वर्ग से च-ट, प-च, त-र, र-ल का अल्प वैर होता है। साधक और नगर के प्रथमाक्षर के एक वर्ग के होने पर प्रीति होती है।

साधक के लिये स्थान उपयुक्त है या नहीं, इसकी जानकारी की विधि इस प्रकार

है। साधक और स्थान के वर्ग को अलग-अलग २ से गुणा करे। साधक की वर्गसंख्या में स्थान की वर्गसंख्या जोड़े और स्थान की वर्गसंख्या में साधक की वर्गसंख्या जोड़े। दोनों में अलग-अलग ८ से भाग दे। जिसका शेष अधिक हो, उसे ऋणी और जिसका शेष कम हो, उसे धनी समझे। अधिक अङ्क वाला कम अङ्क वाले को सिद्धि देता है। उदाहरणार्थ मान लें कि देवदत्त पटना में साधना करना चाहता है तो पटना उसको सिद्धिप्रद होगा या नहीं, इसे उपर्युक्त विधि से जाँचते हैं—देवदत्त की वर्गसंख्या ५ है एवं पटना की वर्गसंख्या ६ है।

देवदत्त	पटना
५×२=१०	६×२=१२
१०+६=१६ (पटना की वर्गसंख्या)।	१२+५=१७ (देवदत्त की वर्गसंख्या)
१६÷८=० शेष बचा।	१७÷८=१ शेष बचा।

इस प्रकार ज्ञात हुआ कि शून्य से १ अधिक है। इसलिये देवदत्त को पटना में साधना से सिद्धि प्राप्त होगी।।२६६-२८५।।

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।
महाकाले च काश्यां च कूर्म्मस्थानं न चिन्तयेत्॥२८६॥
क्षेत्रसाधकमन्त्राणामेकमेवाद्यमक्षरम्।
यदि स्यात्स ध्रुवं मन्त्रः सर्वसिद्धिफलप्रदः॥२८७॥
अमृतो वृषभः शैलराजो वासुकिरेव च।
अर्थकृच्छक्तिकृत्पूर्वकाष्ठादौ बलिनार्च्चयेत्॥२८८॥
पद्मयोनिं महाशङ्खं छायाख्यं चापि मध्यमे।
कूर्म्मपृष्ठे गृहं कृत्वा गृहस्थो जपमाचरेत्॥२८९॥

कुरुक्षेत्र, प्रयाग, गंगासागर संगम, उज्जैन और काशी में कूर्मचक्र का विचार नहीं करना चाहिये। क्षेत्र और साधक के नामों का प्रथमाक्षर यदि एक ही हो तो मन्त्र निश्चित ही सर्वसिद्धिफलप्रद होता है। अमृत, नन्दी, हिमालय, वासुकी की अर्थ एवं शक्तिप्राप्ति के लिये पूर्वोक्त काष्ठ आदि पर बलि से पूजा करनी चाहिये। ब्रह्मा, महाशङ्ख और छाया को मध्य में बलि प्रदान करके कूर्मपृष्ठ पर घर बनाकर गृहस्थ को जप करना चाहिये।।२८६-२८९।।

जपार्हमालाविचारः

अथ मालां प्रवक्ष्यामि द्विविधा सा स्थिरा चरा।
स्थिरा तु स्थिरचित्तानां चञ्चला चलचेतसाम्॥२९०॥

जपमाला-विचार—जप-हेतु माला दो प्रकार की होती है—स्थिर एवं चर अर्थात् चलायमान। उसमें से स्थिर चित्तवालों के लिये स्थिर माला एवं चंचल चित्त वालों के लिये चंचला माला होती है।

अकारादिक्षकारान्तैर्बिन्दुवन्मातृकाक्षरैः ।
अनुलोमविलोमस्थैः क्लृप्तया वर्णमालया ।
प्रत्येकमन्त्रयुग्मन्त्रा जप्तव्याः सर्वसिद्धिदाः ॥२९१॥
ऋगाद्या अपि किञ्चान्यैः प्रोक्ता च स्थिरमालिका ।
अकारादिक्षकारान्ता प्रोक्ता चाक्षरमालिका ।
जपे चाष्टोत्तरशतं पुनर्वर्णस्य योजनम् ॥२९२॥

वर्णमाला—'अ' से 'क्ष' तक के ५१ वर्णों पर बिन्दु देकर मातृका वर्णों को अनुलोम-विलोम करने से 'क्ष' को सुमेरु मानने से १०० मनका होता है। वर्गाद्य वर्णों अ, क, च, ट, त, प, य, श आठ को जोड़ने से १०८ दानों की वर्णमाला होती है। प्रत्येक वर्ण के साथ मन्त्रजप करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। मातृका-सम्पुटित मन्त्र-जप और शीघ्र सिद्धिप्रद होता है। उदाहरणार्थ 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र का जप इस प्रकार होगा—अं ॐ नमः शिवाय अं, आं ॐ नमः शिवाय आं, इं ॐ नमः शिवाय इं, ईं ॐ नमः शिवाय ईं, उं ॐ नमः शिवाय उं, ऊं ॐ नमः शिवाय ऊं, ऋं ॐ नमः शिवाय ऋं, ॠं ॐ नमः शिवाय ॠं, ऌं ॐ नमः शिवाय ऌं, ॡं ॐ नमः शिवाय ॡं, एं ॐ नमः शिवाय एं, ऐं ॐ नमः शिवाय ऐं, ओं ॐ नमः शिवाय ओं, औं ॐ नमः शिवाय औं, अं ॐ नमः शिवाय अं, अः ॐ नमः शिवाय अः, कं ॐ नमः शिवाय कं, खं ॐ नमः शिवाय खं, गं ॐ नमः शिवाय गं, घं ॐ नमः शिवाय घं, ङं ॐ नमः शिवाय ङं, चं ॐ नमः शिवाय चं, छं ॐ नमः शिवाय छं, जं ॐ नमः शिवाय जं, झं ॐ नमः शिवाय झं, ञं ॐ नमः शिवाय ञं, टं ॐ नमः शिवाय टं, ठं ॐ नमः शिवाय ठं, डं ॐ नमः शिवाय डं, ढं ॐ नमः शिवाय ढं, णं ॐ नमः शिवाय णं, तं ॐ नमः शिवाय तं, थं ॐ नमः शिवाय थं, दं ॐ नमः शिवाय दं, धं ॐ नमः शिवाय धं, नं ॐ नमः शिवाय नं, पं ॐ नमः शिवाय पं, फं ॐ नमः शिवाय फं, बं ॐ नमः शिवाय बं, भं ॐ नमः शिवाय भं, मं ॐ नमः शिवाय मं, यं ॐ नमः शिवाय यं, रं ॐ नमः शिवाय रं, लं ॐ नमः शिवाय लं, वं ॐ नमः शिवाय वं, शं ॐ नमः शिवाय शं, षं ॐ नमः शिवाय षं, सं ॐ नमः शिवाय सं, हं ॐ नमः शिवाय हं, ळं ॐ नमः शिवाय ळं, ळं ॐ नमः शिवाय ळं, हं ॐ नमः शिवाय हं, सं ॐ नमः शिवाय सं, षं ॐ नमः शिवाय षं, शं ॐ नमः शिवाय शं, वं ॐ नमः शिवाय वं, लं ॐ नमः शिवाय

लं, रं ॐ नमः शिवाय रं, यं ॐ नमः शिवाय यं, मं ॐ नमः शिवाय मं, भं ॐ नमः शिवाय भं, बं ॐ नमः शिवाय बं, फं ॐ नमः शिवाय फं, पं ॐ नमः शिवाय पं, नं ॐ नमः शिवाय नं, धं ॐ नमः शिवाय धं, दं ॐ नमः शिवाय दं, थं ॐ नमः शिवाय थं, तं ॐ नमः शिवाय तं, णं ॐ नमः शिवाय णं, ढं ॐ नमः शिवाय ढं, डं ॐ नमः शिवाय डं, ठं ॐ नमः शिवाय ठं, टं ॐ नमः शिवाय टं, ञं ॐ नमः शिवाय ञं, झं ॐ नमः शिवाय झं, जं ॐ नमः शिवाय जं, छं ॐ नमः शिवाय छं, चं ॐ नमः शिवाय चं, ङं ॐ नमः शिवाय ङं, घं ॐ नमः शिवाय घं, गं ॐ नमः शिवाय गं, खं ॐ नमः शिवाय खं, कं ॐ नमः शिवाय कं, अः ॐ नमः शिवाय अः, अं ॐ नमः शिवाय अं, औं ॐ नमः शिवाय औं, ओं ॐ नमः शिवाय ओं, ऐं ॐ नमः शिवाय ऐं, एं ॐ नमः शिवाय एं, ऌं ॐ नमः शिवाय ऌं, ऌं ॐ नमः शिवाय ऌं, ॠं ॐ नमः शिवाय ॠं, ॠं ॐ नमः शिवाय ॠं, ऋं ॐ नमः शिवाय ऋं, ऊं ॐ नमः शिवाय ऊं, उं ॐ नमः शिवाय उं, ईं ॐ नमः शिवाय ईं, इं ॐ नमः शिवाय इं, आं ॐ नमः शिवाय आं, अं ॐ नमः शिवाय अं, अः ॐ नमः शिवाय अः, कं ॐ नमः शिवाय कं, चं ॐ नमः शिवाय चं, टं ॐ नमः शिवाय टं, तं ॐ नमः शिवाय तं, पं ॐ नमः शिवाय पं, यं ॐ नमः शिवाय यं, शं ॐ नमः शिवाय शं। 'क्ष' सुमेरु होता है।

कुछ विद्वानों के मत से ऋगाद्या वर्णमाला स्थिरा माला होती है। 'अ' से 'क्ष' तक वर्णों की माला को अक्षरमालिका कहते हैं।।२९१-२९२।।

चराथ कथ्यते मालाभिचारे तिथिसङ्ख्यकैः।
मुक्त्यर्थं पञ्चविंशत्या भसङ्ख्यैः सर्वदा जपेत्॥२९३॥
त्रिंशद्भिर्धर्मवृद्धिः स्याच्चतुष्पञ्चाशतेप्सितम्।
शतात्साम्यं तथाष्टाधिशतात् सकलसिद्धयः॥२९४॥

मालास्थितरुद्राक्षादीनां फलम्

समस्तसिद्धयै रुद्राक्षा मणयो धनदा मताः।
गतस्वाप्तिकरः शङ्खो भोगकृत्स्फटिको मतः॥२९५॥
पुत्रप्रदाः पुत्रजीवाः पद्माक्षाः पुष्टिवर्द्धनाः।
विद्रुमोत्था वश्यकरा मौक्तिका मुक्तिदा मताः॥२९६॥
पापापहाः कुशमयास्स्वर्णजाः कामदायकाः।
कामवृद्धिस्तारजातैरिन्द्राक्षैः स्वागतम्पदम्॥२९७॥
स्त्रीवश्यार्थं च हारिद्रा दार्व्या पुरुषवश्यकृत्।
ज्वरहन्त्री तु लाक्षायाः शङ्खस्य पितृतृप्तिकृत्॥२९८॥

अर्कजोच्चाटने कार्या श्रीफलैर्ज्ञानसाधने।
पद्मकाष्ठोद्भवा तुष्टौ देवदारूद्भवा निरुक् ॥२९९॥
कृष्णकाष्ठसमद्भूतैस्तामसं कर्म सिद्ध्यति।
गजदन्तस्य सर्वार्थं मोहने ताम्रजा मता ॥३००॥
मारणे चायसी प्रोक्ता धनार्थं श्वेतपद्मजा।
विषान्तरे चन्दनोत्था शक्तिकृच्छ्वेतकाष्ठजा ॥३०१॥
रक्तचन्दनबीजोत्था यक्षिण्यादिकसाधने ॥३०२॥
भूतस्तम्भे निम्बजाता जनस्तम्भे शमीभवा।
महानिम्बेन डाकिन्याः भूनिम्बैः स्तम्भनं रुजाम् ॥३०३॥
इन्द्रवृक्षादृणस्तम्भोऽभिचारो वानरास्थितः।
ऋक्षास्थितो वन्यसिद्धिः शार्दूलात्तस्य देवताः ॥३०४॥
नरास्थ्ना राक्षसा वश्या वीरा वश्या हयास्थिभिः।
रासभास्थ्ना क्षुद्रसिद्धिर्मान्यता तु गजास्थिभिः ॥३०५॥
मृत्तिकाभृष्टमणिजा माला शाबरसिद्धिकृत्।

पन्द्रह मणियों की माला को चर माला कहते हैं। यह अभिचार में प्रयुक्त होती है। मोक्ष के लिये पच्चीस मणियों की माला होती है। सत्ताईस मणियों की माला से सदा जप करना चाहिये। तीस मणियों की माला से धर्म की वृद्धि होती है। चौवन मनकों की माला अभीष्ट-सिद्धि होती है। सौ मनकों की माला से साम्यता प्राप्त होती है एवं एक सो आठ मनकों की माला से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

रुद्राक्ष की माला से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। रत्न-मणियों की माला से धन प्राप्त होता है। शङ्ख की माला से गया हुआ धन वापस मिलता है। स्फटिक की माला से भोग प्राप्त होते हैं। पुत्रजीवा की माला से पुत्र प्राप्त होता है। कमलगट्टे की माला पुष्टिवर्धक होती है। मूँगे की माला से वशीकरण होता है। मोती का माला मोक्षप्रद होती है। कुश की माला से पापों का विनाश होता है। सोने की माला से मनोरथ सिद्ध होते हैं। चाँदी की माला से काम की वृद्धि होती हैं। इन्द्राक्ष की माला से प्रतिष्ठा एवं पदप्राप्ति होती है। स्त्री के वशीकरण के लिये हल्दी की माला और पुरुष के वशीकरण के लिये काष्ठ की माला अच्छी होती है। लाह की माला से बुखार का नाश होता है। शङ्ख की माला से पितरों को तृप्ति मिलती है। अकवन की माला से उच्चाटन होता है। विल्वकाष्ठ की माला से ज्ञान-साधन होता है। पद्मकाष्ठ से निर्मित माला तुष्टिप्रद होती है। देवदारु की माला से आरोग्य-लाभ होता है। काली लकड़ी की माला से तामसिक कर्म में सफलता मिलती है। हाथीदाँत की माला से सर्वार्थसिद्धि होती

है। मोहन कर्म में ताँम्बे की माला श्रेष्ठ होती है। मारण कर्म मं चायसी (?) माला और धनप्राप्ति के लिये श्वेत कमल की माला होती है। विष-निवारण के लिये चन्दन की माला एवं शक्ति-प्राप्ति के लिये श्वेत काष्ठ की माला उत्तम होती है।

यक्षिणी आदि की साधना में रक्तचन्दन के बीज की माला उपयुक्त होती है। भूतों के स्तम्भन के लिये निम्ब की माला एवं जनस्तम्भन के लिये शमी की माला श्रेष्ठ होती है। बकाइन की माला से डाकिनियों का और भूनिम्ब (तिक्तक) की माला से रोगों का स्तम्भन होता है।

इन्द्रवृक्ष की माला से ऋण का स्तम्भन होता है एवं बन्दर के हड्डी की माला से अभिचार कर्म किये जाते हैं। रीछ के हड्डी की माला से वन्य-सिन्दि और बाघ की हड्डी की माला से वनदेवी की सिद्धि होती है।

मानव-हड्डी की माला से राक्षस वशीभूत होते हैं एवं घोड़े की हड्डी की माला से वीर वशीभूत होते हैं। गदहे की हड्डी की माला से क्षुद्र कार्यों की सिद्धि होती है एवं हाथी की हड्डी की माला से मान्यता प्राप्त होती है। पकी हुई मिट्टी के मनकों से बनी माला शाबर मन्त्रों के लिय सिद्धिप्रद होती है।।२९३-३०५।।

कुशग्रन्थ्या जपेद्विप्रः सुवर्णमणिभिर्नृपः ॥३०६॥
पत्रजीवैर्जपेद्वैश्यः पद्माक्षैः सर्व एव हि।
रुद्राक्षस्फटिकेन्द्राक्षमध्ये किञ्चित्र दापयेत् ॥३०७॥
मध्ये दत्त्वा जपं कुर्वन्काममोक्षौ विनाशयेत्।

कुशग्रन्थी को माला से विप्रों को एवं सोने की माला से राजाओं को जप करना चाहिये। पुत्रजीवा माला से वैश्य को एवं कमलगट्टे की माला से सभी को जप करना चाहिये। रुद्राक्ष, स्फटिक और इन्द्राक्ष की मणियों के मध्य में अन्य किसी मनके को नहीं मिलाना चाहिये। रुद्राक्षादि के मध्य में दूसरी मणियों को देकर जप करने से काम और मोक्ष दोनों का विनाश होता है।।३०६-३०७।।

चतुर्थ्यां प्रोतयेन्मालां गणनाथस्य मन्त्रकैः ॥३०८॥
मध्याह्नेऽर्कस्य सप्तम्यां रवौ वा तरय मन्त्रकैः।
द्वादश्यां वैष्णवी माला प्रोतव्या विष्णुमन्त्रतः ॥३०९॥
त्रयोदश्यां तु सन्ध्यायां तन्मन्त्रैः शिवमालिका।
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां नवम्यां भूमिनन्दने ॥३१०॥
शक्तीनामपि कर्त्तव्या शुक्लरात्रौ यथाविधि।
ग्रन्थिता पट्टसूत्रेण देव्याः प्रीत्यै तु मालिका ॥३११॥

कार्या सा वैष्णवी माला पट्टसूत्रैरथापि वा।
ऊर्णाभिर्वा वाल्कलैवा शैवी कार्पाससूत्रकैः ॥३१२॥

गणेश की माला उनके मन्त्रों से चतुर्थी तिथि को बनानी चाहिये। सप्तमी तिथि के मध्याह्न में अथवा रविवार को सूर्य के मन्त्र से सूर्य की माला बनानी चाहिये। वैष्णवी माला द्वादशी को विष्णु के मन्त्र से बनानी चाहिये। शिवमाला त्रयोदशी की सन्ध्या वेला में शिवमन्त्र से बनानी चाहिये। अष्टमी, नवमी या चतुर्दशी को मंगल की माला बनानी चाहिये। शक्तियों की माला शुक्लपक्ष की रात्रि में यथाविधि बनानी चाहिये। रेशमी धागे में गूँथी हुई माला देवी को प्रीतिप्रद होती है। वैष्णवी माला को भी रेशम, ऊन अथवा वल्कल के धागे से बनानी चाहिये। शिव की माला कपास से बने धागे में गूँथनी चाहिये।।३०८-३१२।।

प्रायशः सर्वदेवानां सूत्रोत्पत्तिविधिं शृणु।
सूत्रं द्विजेन्द्रपुण्यस्त्रीनिर्मितं ग्रन्थिवर्ज्जितम् ॥३१३॥
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ग्राह्यं प्रक्षाल्य यत्नतः ॥३१४॥
एकवक्त्रैर्द्विवक्त्रैश्च चतुर्वक्त्रैश्च पञ्चभिः।
षड्वक्त्रैर्वाऽपि कर्तव्या मिथो मिश्रांस्तु वर्जयेत् ॥३१५॥
मुखं मुखेन संयोज्य पृष्ठं पृष्ठेन योजयेत्।
रुद्राक्षस्योन्नतं प्रोक्तं मुखं पृष्ठं तु निम्नकम् ॥३१६॥
धात्रीफलसमः श्रेष्ठो मध्यो बदरसन्निभः।
अधमश्चणकाभः स्यात्ततो हीनो विपत्तिकृत् ॥३१७॥
एको मेरुस्तत्र देयः सर्वत्रस्थोऽल्पयुक् च यः।
आद्यं स्थूलं ततस्तस्मान्यूनं न्यूनतरं ततः ॥३१८॥
सर्पाकारं प्रकुर्वीत ब्रह्मग्रन्थिमणिं प्रति।
अथवा ग्रन्थिरहितां दृढचक्रसमन्विताम् ॥३१९॥
त्रिरावृत्त्याथ मध्येन चार्धावृत्त्या तु देशतः।
ग्रन्थिः प्रदक्षिणावर्त्तः स ब्रह्मग्रन्थिरुच्यते ॥३२०॥
एकभक्तं विधायादौ साधको ग्रन्थयेत्स्वयम्।
क्रितनित्यक्रियः शुद्ध उक्तेष्वक्षेष्वतन्द्रितः ॥३२१॥

प्राय: सभी देवों की माला बनाने के लिये सूतों को बनाने की विधि सुनो। श्रेष्ठ ब्राह्मण की पवित्र स्त्री के द्वारा काते हुये गाँठ-वर्जित त्रिगुण सूत्र को उसके द्वारा पुन: त्रिगुणित करने के बाद लेकर उसे यत्नपूर्वक साफ कर देना चाहिये। रुद्राक्ष माला में दाने एकमुखी, दोमुखी, तीनमुखी, चारमुखी, पाँचमुखी या छ: मुखी होने चाहिये।

इन्हें परस्पर मिश्रित नहीं करना चाहिये अर्थात् एकमुखी के साथ एकमुखी दाना ही होना चाहिये, उसके साथ दो-तीन आदि मुखी दाना नहीं मिलाना चाहिये। रुद्राक्ष के दानों को पिरोते हुए दानों के मुख से मुख को एवं पूँछ से पूँछ को परस्पर मिलाना चाहिये। रुद्राक्ष के छिद्र के समीप जो भाग उठा हुआ होता है, उसे मुख कहते हैं और जो भाग कुछ पिचका हुआ होता है, उसे पूँछ कहते हैं। आँवले के फल जितना बड़ा रुद्राक्षदाना श्रेष्ठ, बेर के बराबर दाना मध्यम और चने के बराबर दाना अधम होता है। इससे छोटे दाने की माला विपत्तिप्रद होती है। माले में एक सुमेरु होना चाहिये। यह सभी मालाओं में होना चाहिये। सर्पाकार माला बनाने में पहले बड़ा दाना लगाने के बाद क्रमशः छोटा दाना लगाना चाहिये। प्रत्येक दाने के बाद ब्रह्मगाँठ लगना चाहिये अथवा गाँठरहित माला दृढ़ चक्र से युक्त होनी चाहिये। ब्रह्मग्रन्थि में धागे से साढ़े तीन फेरा लगता है। यह फेरा प्रदक्षिणावर्त्त होता है। यह प्रत्येक दो दानों के बीच में होता है। पहले दिन एक ही शाम भोजन करके दूसरे दिन नित्य कृत्य करके शुद्ध होकर पूर्ववर्णित विधि से आलस्यरहित होकर माला स्वयं गूँथनी चाहिये।।३१३-३२१।।

श्वेता रक्ता सुवर्णाभा कृष्णा चैव द्विजादितः।
एतेषु ब्राह्मणश्रेष्ठो जपमालाकृते भृशम्॥३२२॥
अलाभे तु द्विजातीनामपि वा स्वस्वजातयः।
कलौ तु दुर्लभो विप्रो यथा विप्राः स्वधर्म्मगाः॥३२३॥
अतिस्थूलोऽतिसूक्ष्मश्च स्फुटितो भङ्गुरो लघुः।
भिन्नः पुराधृतो जीर्णो रुद्राक्षो न शुभः स्मृतः॥३२४॥
अन्योऽन्यघर्षणादेव जपहानिर्भवेद् ध्रुवम्।
मध्यतो ग्रन्थयः कार्या नात्र मुक्तादि विन्यसेत्॥३२५॥

रुद्राक्ष श्वेत, लाल, पीले और काले होते हैं। श्वेत वर्ण का रुद्राक्ष ब्राह्मणों के लिये, लाल वर्ण का रुद्राक्ष क्षत्रियों के लिये, पीले वर्ण का रुद्राक्ष वैश्यों के लिये और काले वर्ण का रुद्राक्ष शूद्रों के लिये होता है। चारो वर्णों के रुद्राक्ष की माला ब्राह्मण के लिये श्रेष्ठ होती है। चारो वर्ण के रुद्राक्ष उपलब्ध न होने पर द्विजातियों को अपनी-अपनी जाति के रुद्राक्ष से माला बनानी चाहिये। कलियुग में स्वधर्म के पालन करने वाले विप्र दुर्लभ हैं; इसलिये अपने धर्मानुसार माला बनानी चाहिये। बहुत बड़े, बहुत छोटे, टूटे-फूटे, भंगुर अर्थात् टूटने लायक, छोटे, विभक्त, दूसरे के पहने हुए एवं जीर्ण रुद्राक्ष शुभ नहीं होते। माला के दानों में परस्पर घर्षण होने से निश्चय ही जप की हानि होती है; इसलिये सभी दानों के मध्य में गाँठ लगानी चाहिये, मोती आदि नहीं लगाना चाहिये।।३२२-३२५।।

रुद्राक्षमहिमा

एकवक्त्रः शिवस्तस्य माला तु जपतो हरेत्।
ब्रह्महत्यादिपापानि तथा भक्तादिकेष्टदः ॥३२६॥
उमाशङ्करनाम्माख्यो द्विमुखोऽयं व्यपोहति।
गोहत्यादिकपापानि गृहस्थाश्रमसौख्यदः ॥३२७॥
त्रिमुखस्त्वग्निरूपः स्यात् स्त्रीहत्यादिकपापहा।
धर्मार्थकामाः सिद्ध्यन्ति धारणात्तज्जपादपि ॥३२८॥
चतुर्मुखो भवेद् ब्रह्मा गुरुहत्यादिनाशकः।
स्फुरन्ति सकला विद्या वाक्सिद्धिश्चापि जायते ॥३२९॥
पञ्चवक्त्रः शिवः साक्षात् सर्वपापापहारकः।
शैवगाणेशशाक्तानां हुतसिद्धिस्तु तज्जपात् ॥३३०॥
कार्त्तिकेयस्तु षड्वक्त्रः स्खलितव्रतपापहा।
विधितो दक्षिणे बाहौ धारणात्समरे जयः ॥३३१॥
सप्तवक्त्रो महानागोऽनन्तो नामाथ तज्जपात्।
अनन्ताः सिद्धयः सर्पविषमृत्युर्न जायते ॥३३२॥
अष्टवक्त्रो गणेशः स्यात्सर्वविघ्ननिवारकः।
नश्यन्ति तज्जपात्सर्वे कामक्रोधादिशत्रवः ॥३३३॥
नववक्त्रो भैरवः स्याद्वाममार्गस्थदेवताः।
जपादेव प्रसीदन्ति वामबाहौ स्थितोऽघहा ॥३३४॥
जनार्दनो दशमुखो जपान्नश्यन्ति धारणात्।
पिशाचग्रहवेतालब्रह्मराक्षसपन्नगाः ॥३३५॥
एकादशमुखः साक्षाद्रुद्र एवास्य धारणात्।
जपाच्च हयमेधादियज्ञानां फलभाग्भवेत् ॥३३६॥
द्वादशास्यो भास्करः स्याद्धारणात्तज्जपादपि।
तेजस्वी च प्रतापी च गोमेधफलभाग्भवेत् ॥३३७॥
त्रयोदशमुखः साक्षाद्विश्वदेवात्मकः स्मृतः।
श्राद्धकाले धृतो दद्यात्पितृणामक्षयाङ्गतिम् ॥३३८॥
चतुर्दशमुखैर्जप्तं तदानन्त्याय जायते।
पूज्यते देवमनुजैरक्षयां लभते गतिम् ॥३३९॥

एकमुखी रुद्राक्ष शिवस्वरूप होता है। इसकी माला से जप करने पर ब्रह्महत्यादि पापों का विनाश होता है तथा साधक को अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त होती है। दो-मुखी रुद्राक्ष गौरीशंकर-स्वरूप होता है। दो-मुखी रुद्राक्ष की माला से जप करने पर गोहत्या आदि

पापों का नाश होता है एवं गृहस्थ को सभी सुख प्राप्त होते हैं। तीनमुखी रुद्राक्ष अग्निस्वरूप होता है, यह स्त्रीहत्या आदि पापों का विनाश करने वाला होता है। इसे धारण करने से या इससे जप करने से धर्म, अर्थ एवं काम प्राप्त होते हैं। चारमुखी रुद्राक्ष ब्रह्मा-स्वरूप होता है। यह गुरुहत्या के पाप का विनाशक होता है। इसे धारण करने से या इसकी माला से जप करने से सभी विद्याओं का स्फुरण होता है एवं वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। पाँचमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिवस्वरूप होता है; यह सभी पापों का विनाशक होता है। इसकी माला से जप करने से शैव, गाणपत्य और शाक्त तीनों सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। छः मुखी रुद्राक्ष कार्तिकेयस्वरूप होता है। व्रतभङ्गस्वरूप होने वाले पाप का यह विनाश करने वाला होता है। इसे विधिपूर्वक दाहिनी भुजा में धारण करने से युद्ध में विजय होती है। सातमुखी रुद्राक्ष अनन्त नामक महानाग-स्वरूप होता है। इससे जप करने पर अनन्त सिद्धियाँ मिलती हैं एवं सर्पविष से मृत्यु नहीं होती। आठमुखी रुद्राक्ष गणेशस्वरूप होता है। यह सभी विघ्नों का निवारण करता है। इसकी माला से जप करने पर काम-क्रोधादि समस्त शत्रुओं का विनाश होता है। नवमुखी रुद्राक्ष भैरव-स्वरूप होता है; इससे जप करने मात्र से ही वाममार्ग के देवता प्रसन्न हो जाते हैं। बाँयी भुजा में धारण करने से यह पापों का विनाश करता है। दशमुखी रुद्राक्ष जनार्दन-स्वरूप होता है। इसकी माला से जप करने से या इसे धारण करने से पिशाच, ग्रह, वेताल, ब्रह्मराक्षस और साँप साधक के पास नहीं फटकते; अपितु उससे दूर भाग जाते हैं। ग्यारहमुखी रुद्राक्ष साक्षात् रुद्रस्वरूप होता है। इसे धारण करने से या इसकी माला से जप करने से अश्वमेधादि यज्ञों का फल प्राप्त होता है। बारहमुखी रुद्राक्ष सूर्यस्वरूप होता है। इसके धारण और इससे जप करने पर साधक तेजस्वी एवं प्रतापी होता है तथा गोमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। तेरहमुखी रुद्राक्ष साक्षात् विश्वेदेवस्वरूप होता है। श्राद्धकाल में इसे धारण करने से पितरों को अक्षय गति प्राप्त होती है। चौदहमुखी रुद्राक्ष की माला से जप करने पर अनन्तगुणा फल प्राप्त होता है। वह साधक देवताओं एवं मनुष्यों द्वारा पूज्य होता है तथा उसे अक्षय गति प्राप्त होती है।।३२६-३३९।।

मालासंस्कारः

अथ मालाकृतिं वक्ष्ये क्षालयेत्पञ्चगव्यकैः ।
दुग्धं काञ्चनवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ॥३४०॥
गोमूत्रं ताम्रवर्णाया नीलायाश्च भवेद्दधि ।
घृतन्तु कृष्णवर्णाया एवं पञ्चामृतेऽपि च ॥३४१॥
गवां वर्णास्तु सुलभाः सन्ति देशेषु कुत्र च ।
तत्र वर्णविभागेन पञ्चगव्यानि चाहरेत् ॥३४२॥

वर्णालाभे न दोषोऽस्ति मात्राहीनन्तु वर्ज्जयेत्।
गोशकृद्द्विगुणं मूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम् ॥३४३॥
क्षीरमष्टगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्यं तथा दधि।
गायत्र्यादाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ॥३४४॥
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधि क्राव्णेति वै दधि।
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ॥३४५॥
क्षालयेत् पञ्चगव्याद्यैः सद्योजातादिमन्त्रतः।
चन्दनागुरुगन्धाद्यैर्वामदेवेन घर्षयेत् ॥३४६॥
धूपयेदप्यघोरेण चासितागुरुगुग्गुलैः।
तत्पुरुषाख्यमन्त्रेण लेपयेच्चन्दनादिभिः ॥३४७॥
ईशानः सर्वमिति च प्रत्येकं मन्त्रयेच्छतम्।
तेनैव मन्त्रयेन्मेरुमघोरेण च मन्त्रयेत् ॥३४८॥

रुद्राक्ष-माला का संस्कार—अब माला-शोधन कृत्य का वर्णन करता हूँ। पहले माला को पञ्चगव्य से प्रक्षालित करना चाहिये। पञ्चगव्य में पीले वर्ण की गाय का दूध, उजली गाय का गोबर, ताम्र वर्ण की गाय का मूत्र, नीली गाय का दही एवं काली वर्ण की गाय का घी मिलाना चाहिये अथवा पञ्चामृत से माला को प्रक्षालित करना चाहिये। इन पाँच वर्णों की गायें सभी देशों में सभी जगह पायी जाती हैं; अतः वर्ण-विभाग के अनुसार ही पञ्चगव्य एकत्र करना चाहिये। वर्णानुसार पञ्चगव्य न मिलने पर भी कोई दोष नहीं होता; लेकिन मात्राहीनता नहीं होनी चाहिये। पञ्चगव्य में पाँचो पदार्थों की मात्रा इस प्रकार होती है—गोबर एक भाग, मूत्र दो भाग, गोघृत चार भाग तथा दूध और दही आठ-आठ भाग। गायत्री मन्त्र 'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' से गोमूत्र, 'ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्' मन्त्र से गोबर, 'ॐ आप्यायस्व समेतु ते विश्वतःसोमवृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे' मन्त्र से दुग्ध, 'ॐ दधिक्राव्णो अकारिषञ्जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखाकरत्प्रण आयूँषि तारिषत्' मन्त्र से दधि एवं 'तेजोसि शुक्रमस्यमृतमस्यायुर्मे पाहि' मन्त्र से घृत, 'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम्। आविनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसाया-भिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि' मन्त्र से कुशोदक का ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार पञ्चगव्य बनाकर 'सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्य मां भवोद्भवाय नमः' मन्त्र द्वारा माला को प्रक्षालित करना चाहिये। चन्दन, अगुरु, गन्ध आदि से 'ॐ वामदेवाय नमः ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः

कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमः मनोन्मनाय नमः' मन्त्र द्वारा माला का घर्षण करना चाहिये। ॐ अघोरभ्योथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः' इस अघोर मन्त्र के द्वारा काला अगुरु और गुग्गुल का धूप दिखाना चाहिये। 'तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्' इस तत्पुरुष मन्त्र से चन्दन आदि का लेप करना चाहिये। 'ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्' मन्त्र से माला के प्रत्येक दाने को अभिमन्त्रित करना चाहिये; साथ ही इसी मन्त्र के साथ-साथ अघोर मन्त्र से भी मेरु को अभिमन्त्रित करना चाहिये।।३४०-३४८।।

अथान्यमालासंस्कारं वक्ष्येऽश्वत्थस्य पत्रकैः।
पद्माकारेण नवभिः स्थापिते तत्र विन्यसेत्॥३४९॥
मणीन्सूत्रं च गन्धादैः क्षालयित्वाथ मन्त्रयेत्।
ॐ ह्रींपूर्वैर्मातृकार्णैः क्रमादेकैकशो मणिम्॥३५०॥

मालासंस्कार का प्रकारान्तर—अब मालाओं के संस्कार की अन्य विधि का वर्णन करता हूँ। पीपल के नव पत्तों में से एक बीच में रखकर आठ पत्तों को गोलाकार इस प्रकार रखे कि वे अष्टदल कमल-जैसे दिखाई दें। उस. पर माला और धागे को रखकर माला के मनकों और सूत को गन्धोदक से प्रक्षालित करे। ॐ ह्रीं-सहित मातृकावर्णों से एक-एक मणियों को इस प्रकार अभिमन्त्रित करे—ॐ ह्रीं अं नमः, ॐ ह्रीं आं नमः, ॐ ह्रीं इं नमः, ॐ ह्रीं ईं नमः, ॐ ह्रीं उं नमः, ॐ ह्रीं ऊं नमः, ॐ ह्रीं ऋं नमः, ॐ ह्रीं ॠं नमः, ॐ ह्रीं ऌं नमः, ॐ ह्रीं ॡं नमः, ॐ ह्रीं एं नमः, ॐ ह्रीं ऐं नमः, ॐ ह्रीं ओं नमः, ॐ ह्रीं औं नमः, ॐ ह्रीं अं नमः, ॐ ह्रीं अः नमः, ॐ ह्रीं कं नमः, ॐ ह्रीं खं नमः, ॐ ह्रीं गं नमः, ॐ ह्रीं घं नमः, ॐ ह्रीं ङं नमः, ॐ ह्रीं चं नमः, ॐ ह्रीं छं नमः, ॐ ह्रीं जं नमः, ॐ ह्रीं झं नमः, ॐ ह्रीं ञं नमः, ॐ ह्रीं टं नमः, ॐ ह्रीं ठं नमः, ॐ ह्रीं डं नमः, ॐ ह्रीं ढं नमः, ॐ ह्रीं णं नमः, ॐ ह्रीं तं नमः, ॐ ह्रीं थं नमः, ॐ ह्रीं दं नमः, ॐ ह्रीं धं नमः, ॐ ह्रीं नं नमः, ॐ ह्रीं पं नमः, ॐ ह्रीं फं नमः, ॐ ह्रीं बं नमः, ॐ ह्रीं भं नमः, ॐ ह्रीं मं नमः, ॐ ह्रीं यं नमः, ॐ ह्रीं रं नमः, ॐ ह्रीं लं नमः, ॐ ह्रीं वं नमः, ॐ ह्रीं शं नमः, ॐ ह्रीं षं नमः, ॐ ह्रीं सं नमः, ॐ ह्रीं हं नमः, ॐ ह्रीं ळं नमः, ॐ ह्रीं ळं नमः, ॐ ह्रीं हं नमः, ॐ ह्रीं सं नमः, ॐ ह्रीं षं नमः, ॐ ह्रीं शं नमः, ॐ ह्रीं वं नमः, ॐ ह्रीं लं नमः, ॐ ह्रीं रं नमः, ॐ ह्रीं यं नमः, ॐ ह्रीं मं नमः, ॐ ह्रीं भं नमः, ॐ ह्रीं बं नमः, ॐ ह्रीं फं नमः, ॐ ह्रीं पं नमः,

ॐ ह्रीं नं नमः, ॐ ह्रीं धं नमः, ॐ ह्रीं दं नमः, ॐ ह्रीं थं नमः, ॐ ह्रीं तं नमः, ॐ ह्रीं णं नमः, ॐ ह्रीं ढं नमः, ॐ ह्रीं डं नमः, ॐ ह्रीं ठं नमः, ॐ ह्रीं टं नमः, ॐ ह्रीं ञं नमः, ॐ ह्रीं झं नमः, ॐ ह्रीं जं नमः, ॐ ह्रीं छं नमः, ॐ ह्रीं च नमः, ॐ ह्रीं ङं नमः, ॐ ह्रीं घं नमः, ॐ ह्रीं गं नमः, ॐ ह्रीं खं नमः, ॐ ह्रीं कं नमः, ॐ ह्रीं अः नमः, ॐ ह्रीं अं नमः, ॐ ह्रीं औं नमः, ॐ ह्रीं ओं नमः, ॐ ह्रीं ऐं नमः, ॐ ह्रीं एं नमः, ॐ ह्रीं ॡं नमः, ॐ ह्रीं ऌं नमः, ॐ ह्रीं ॠं नमः, ॐ ह्रीं ऋं नमः, ॐ ह्रीं ऊं नमः, ॐ ह्रीं उं नमः, ॐ ह्रीं ईं नमः, ॐ ह्रीं इं नमः, ॐ ह्रीं आं नमः, ॐ ह्रीं अं नमः, ॐ ह्रीं कं नमः, ॐ ह्रीं चं नमः, ॐ ह्रीं टं नमः, ॐ ह्रीं तं नमः, ॐ ह्रीं पं नम., ॐ ह्रीं यं नमः, ॐ ह्रीं शं नमः। सुमेरु को ॐ ह्रीं क्षं नमः से अभिमन्त्रित करे।

मणियों और धागों को पीपल के कमलाकार पत्तों पर रखे, उनका पूजन करे। हवन करे। हवन तिल आदि से या केवल गोघृत से करे। हवन सद्योजातादि पाँच मन्त्रों से अलग-अलग एक सौ आठ-आठ बार करे। इन मन्त्रों का वर्णन ३४३ से ३४८ तक के श्लोकों में पहले किया जा चुका है। हवन न कर सके तो पाँचों मन्त्रों को एक सौ आठ बार अलग-अलग जपे। जप के बाद माला गूँथे।।३४९-३५०।।

सूत्रं च तत्र विन्यस्य पूजयित्वा हुनेत्ततः।
तिलाद्यैः केवलाज्यैर्वा सद्योजातादिभिः पृथक् ॥३५१॥
पञ्चमन्त्रैः शतं चाष्टावष्टाविंशतिमेव वा।
होमाभावे जपः प्रोक्तः प्रोतयेन्मालिकां ततः ॥३५२॥
गोपुच्छसदृशी कार्य्या एकाग्रा वा समेरुका।
आवाहनादिमुद्राणामष्टकं दर्शयेत्ततः।
सद्योजातादिभिर्मन्त्रैः पूर्ववत्क्षालनादिकम् ॥३५३॥
कौलिकादौ विशेषोऽयं सुरया मणितर्प्पणम्।

इस प्रकार प्रत्येक मणि को अभिमन्त्रित करने के पश्चात् उन मणियों में सूत्र विन्यस्त करके माला का पूजन करने के बाद तिल आदि से अथवा केवल घृत से ही सद्योजातादि पाँच मन्त्रों द्वारा अलग-अलग एक सौ आठ बार अथवा अट्ठाईस बार हवन करना चाहिये। होम करने में असमर्थ हो तो जप करने के उपरान्त माला का ग्रथन करना चाहिये। माला को गाय के पूँछ की आकृति का बनाना चाहिये। उसमें एक सुमेरु लगाने के बाद आवाहनादि आठ मुद्राओं को दिखाना चाहिये। इसके बाद पूर्ववत् सद्योजातादि मन्त्रों द्वारा माला को गन्धोदक से प्रक्षालित करना चाहिये। कौलिकों को मालामणियों का प्रक्षालन, तर्पण मदिरा से करना चाहिये।।३५१-३५३।।

मालाभेदाः

शिरोमाला तु षट्त्रिंशद् द्वात्रिंशत्कण्ठमालिका ॥३५४॥
कूर्परि षोडश प्रोक्ता द्वात्रिंशन्मणिबन्धयोः ।
अष्टोत्तरशतैर्युक्तमुपवीतं विधीयते ॥३५५॥
तदर्धमुरसो माला शिखायामेक उच्यते ।
कर्ण्योश्चापि षट्सङ्ख्या धारणक्रम ईरितः ॥३५६॥
सङ्ख्याहीनं न कर्त्तव्यमधिकं नैव दुष्यति ।
रुद्राक्षं धारयन्नेवं देहान्ते स शिवो भवेत् ॥३५७॥
बहुलं लभते पुण्यं भाग्यवानिह जायते ।
स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ॥३५८॥
प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः ।
रुद्राक्षधारी भूत्वा च यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम् ॥३५९॥
यो विप्रः सततं कुर्यात्तत्कर्म सफलं भवेत् ।
कण्ठे शिरसि हस्ते च कर्णयोरुपवीतके ॥३६०॥
रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो भवति मानवः ।
खादन्मांसं पिबन्मद्यं सङ्गच्छन्नन्त्यजादिषु ॥३६१॥
सद्यो भवति पूतात्मा रुद्राक्षं मूर्ध्नि धारयन् ।
देवान्पुष्णन्ति ये देवाः पशवस्तेऽत्र वैदिकाः ॥३६२॥
तान्घातयन्ति ये कौले तेषां शास्तास्त्ययं यमः ।
तेषां संरक्षणार्थाय नान्यो रुद्राक्षतो भुवि ॥३६३॥
रुद्राक्षाः सर्वदेवानां मन्त्रसिद्धिविधायकाः ।
रुद्राक्षं कण्ठमाश्रित्य शूकरो म्रियते यदि ॥३६४॥
सोऽपि रुद्रमवाप्नोति किं पुनर्मानुषादयः ।
उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नरो रुद्राक्षधारणात् ॥३६५॥
रुद्राक्षमालिकां कण्ठे धारयेद्भक्तिवर्ज्जितः ।
पापकर्मापि यो नित्यं रुद्रलोके महीयते ॥३६६॥
अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम् ।
कुर्याद्विप्रोऽपि यः मौढ्यान्नासावाप्नोति तत्फलम् ॥३६७॥

शिरोमाला ३६ रुद्राक्षों से, कण्ठमाला ३२ रुद्राक्षों से, केहुनी में पहनन के लिये १६ रुद्राक्षों से और मणिबन्ध में पहनने के लिये ३२ दानों से और जनेऊ के स्थान पर पहनने के लिये १०८ दानों से माला बनानी चाहिये। हृदय पर धारण करने के

लिये ५४ रुद्राक्षों की माला बनानी चाहिये। शिखा में रुद्राक्ष का एक दाना धारण करना चाहिये। कानों में छः-छः दानों की माला धारण करनी चाहिये। निश्चित संख्या मे कम दानों से माला बनाना दोषपूर्ण होता है; दानों के अधिक रहने पर कोई दोष नहीं होता। इस प्रकार से रुद्राक्ष को धारण करने पर मरणोपरान्त धारक साक्षात् शिव के समान हो जाता है एवं इहलोक में अतिशय पुण्य प्राप्त कर भाग्यवान होता है। जो विप्र स्नान, दान, जप, हवन, वैश्वदेव, देवार्चन, प्रायश्चित्त, श्राद्ध तथा दीक्षा के समय रुद्राक्ष धारण करके जो भी वैदिक कर्म करता है, वह कर्म सफल होता है। कण्ठ, शिर, दोनों हाथ एवं दोनों कान में तथा यज्ञोपवीत के रूप में रुद्राक्ष धारण करने वाला मनुष्य रुद्रतुल्य हो जाता है। मांस खाने, मदिरा पीने एवं अन्त्यजों के साथ गमन करने वाला भी मूर्धा में रुद्राक्ष धारण करके तत्काल पवित्र हो जाता है। देवताओं को जो पुष्टि प्रदान करते हैं, वे वैदिक ही यहाँ पशु कहे गये हैं, उन पशुओं का कौलमार्ग में जो हनन करते हैं, उनको शासित करने वाले यमराज से उनकी रक्षा करने वाला इस पृथ्वी पर रुद्राक्ष के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। रुद्राक्ष सभी देवताओं के मन्त्रों की सिद्धि प्रदान करने वाला है। सूअर भी यदि कण्ठ में रुद्राक्ष धारण कर मृत्यु को प्राप्त करता है, तो उसे भी रुद्रत्व प्राप्त हो जाता है; फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या है। जो उच्छिष्ट हो, कुकर्मी हो अथवा सभी पापों से युक्त हो, ऐसे मनुष्य भी रुद्राक्ष धारण करके सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। जो मनुष्य भक्ति से रहित हो अथवा नित्य पापकर्म में रत रहता हो, वह भी यदि गले में रुद्राक्ष की माला धारण करता है तो उसे भी रुद्रलोक प्राप्त होता है। बिना रुद्राक्ष धारण किये कोई विप्र भी यदि किसी प्रकार का वैदिक कर्म करता है, तो उसकी मूढ़ता से सभी कर्म-फल नष्ट हो जाते हैं।।३५४-३६७।।

शूद्राणां स्त्रीणाञ्च कृते मालासंस्कारः

शूद्रार्थं योषितामर्थे मालासंस्कार उच्यते।
गणेशसूर्यविष्ण्वीशदुर्गाः सम्पूज्य भक्तितः ॥३६८॥
मालां तामथ तां मालां क्रोम्बीजेनाभिमन्त्रिताम्।
अष्टोत्तरशतं पञ्चगव्ये तां स्थापयेत्यहम् ॥३६९॥
चतुर्थे तु समुद्धृत्य क्षालयेदस्त्रमन्त्रतः।
हन्मन्त्रेण ग्रन्थयित्वा स्थण्डिले तां निधापयेत् ॥३७०॥
तत्र प्रक्षालितां मालां स्थापयेद्धेमपात्रके।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य शीतलेन जलेन च ॥३७१॥
चन्दनेन सुगन्धेन कस्तूरीकुङ्कुमादिभिः।
अभिषेकं ततः कुर्याद्धसौंमन्त्रेण साधकः ॥३७२॥

नवग्रहान्पूजयित्वा दिक्पालाँश्चापि पूजयेत् ॥३७३॥
तिलेन घृतयुक्तेन शक्तितो होमयेत्ततः ।
स्वर्णन्तु दक्षिणां दद्याद् गुरवे मणिसङ्ख्यकम् ॥३७४॥
तन्मन्त्रजापिनो विप्रान् भोजयेद्वापि वैदिकान् ।
अभावे स्वर्णपत्रस्य ग्राह्यमश्वत्थपत्रकम् ॥३७५॥
मालासंस्कार इत्युक्तो जपः स्यात्सिद्धिदायकः ।

शूद्र और स्त्रियों के लिये माला-संस्कार—अब शूद्रों और स्त्रियों के लिये माला-संस्कार का वर्णन करता हूँ। पहले इन्हें भक्तिपूर्वक गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और दुर्गा का पूजन करने के बाद माला को 'क्रों' बीज के १०८ जप से अभिमन्त्रित करने के बाद तीन दिनों तक पञ्चगव्य में रखने के बाद चौथे दिन पञ्चगव्य से निकाल कर अस्त्र-मन्त्र 'फट्' से प्रक्षालित करके 'ह्रीं' मन्त्र से गूँथने के पश्चात् धोकर सोने के पात्र में स्थण्डिल पर स्थापित करके पञ्चामृत एवं शुद्ध जल से स्नान कराकर 'हसौं' मन्त्र से चन्दन, सुगन्ध, कस्तूरी, कुमकुम आदि मिश्रित जल से अभिषेक करे। तदनन्तर नवग्रहों का पूजन करने के बाद दिक्पालों का भी पूजन करके तिल-घी से यथाशक्ति हवन करने के पश्चात् गुरु को दक्षिणा में माला के मनकों की संख्या के बराबर सुवर्ण प्रदान करे। तदनन्तर मन्त्र जप करने वाले विप्रों अथवा वैदिक ब्राह्मणों को भोजन करावे: स्वर्णपात्र के अभाव में माला का संस्कार पीपल के पत्तों पर करना चाहिये। इस प्रकार संस्कृत की गई माला से किया गया जप सिद्धि प्रदान करने वाला होता है।३६८-३७५।।

मलभेदाः

कीकसादिकमालानां कौलिकानाञ्च वामिनाम् ॥३७६॥
सिद्ध्यै वक्ष्यामि संस्कारं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
शिल्पिनं पूजयेदादौ वस्त्रगन्धानुलेपनैः ॥३७७॥
संहृष्टः कारयेन्मालां मन्त्रपूतं पिबेन्मधु ।
पञ्चाशन्मणिभिः कार्या ऋतुमत्या भगे क्षिपेत् ॥३७८॥
निशामेकां समुद्धृत्य तन्मणीन् क्षालयेत्ततः ।
शुद्धोदैर्मूलमन्त्रेणाभिषिञ्चेद्द्विजयारसैः ॥३७९॥
प्रक्षाल्य धूपयेत्पश्चात् प्रोतयेदिष्टसूत्रकैः ।
मूत्रं स्वेष्टजपे नीलं कृष्णं मारणकर्मणि ॥३८०॥
मोहने हरितं स्तम्भे धूमाभं द्विषि तालभम् ।
शान्तौ पुष्टौ सितं द्वेषे रक्तमुच्चाटने भवेत् ।
वश्ये पीतं कषायन्तु विक्षेपकरणे मतम् ॥३८१॥

कौलिकों और वाममार्गियों के लिये सिद्धिप्रद हड्डी की माला का सभी तन्त्रों में गुप्त संस्कार का वर्णन करता हूँ। सर्वप्रथम वस्त्र, गन्ध, अनुलेप से शिल्पी का पूजन करे। मन्त्रपूत मधु पिलाकर उसे तुष्ट करे। तब शिल्पी हड्डियों से पचास मनका बनावे। तब साधक उन मनकों को रजस्वला स्त्री के भग में रखे। रजस्वला स्त्री की योनि में मनकों को रात भर रहने दे। प्रातः उन्हें निकाल कर प्रक्षालित करने के बाद मूल मन्त्र द्वारा शुद्ध जल में भांग का रस मिलाकर उनका अभिषेक करे। तत्पश्चात् उन्हें धोकर धूप प्रदान करके अभीष्ट सूत्र से माला बनावे। इष्टमन्त्र के जप के लिये नीले धागे से, मारण कर्म के लिये काले धागे से, सम्मोहन के लिये हरे रंग के धागे से, स्तम्भन कर्म के लिये धुँयें-जैसे वर्ण के धागे से, विद्वेषण कर्म-हेतु ताड़पत्र के वर्ण वाले धागे से, शान्ति एवं पुष्टि कर्म में श्वेत वर्ण के धागे से, उच्चाटन मे लाल रंग के धागे से, वशीकरण में पीले रंग के धागे से एवं विक्षेपकरण में गेरुये रंग के धागे से माला गूँथनी चाहिये।।३७६-३८१।।

चक्रपूजां ततः दृत्वा त्वष्टोत्तरसहस्रकम्।
हुनेन्मद्यपलाभ्यां च मूलमन्त्रेण साधकः ॥३८२॥
ततो बलिं यथान्यायं महिषादेः प्रदापयेत्।
शिल्पिनः साधकाँश्चापि भोजयेन् मणिसङ्ख्यकान् ॥३८३॥
एवं सम्मार्जितां मालां गुरवै तां प्रदर्शयेत्।
येन मन्त्रेण या माला कृता तन्तु जपेत्तया ॥३८४॥
अन्यमन्त्रजपाच्छापो देवतायाः प्रजायते
दृढं सूत्रं नियुञ्जीत जपेत्तु स्थगितो यथा ॥३८५॥
जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रन्थयित्वा शतं जपेत्।
तर्जन्या न स्पृशेत्सूत्रं कम्पयेन्नैव धूनयेत् ॥३८६॥
न स्पृशेद्वामहस्तेन करस्तस्तन्न कारयेत्॥
अक्षाणां चालनेऽङ्गुष्ठश्चान्यमक्षं न संस्पृशेत् ॥३८७॥
जपकाले तदा विद्वान् मन्त्रं नैव विलङ्घयेत्।
परिवर्त्तनकाले तु सङ्घट्टं नैव कारयेत् ॥३८८॥
कलिः खटखटाशब्दे दोलने च चलन् मृतिः।
चलिते चैव विद्वेषः स्फुटिते व्याधिसम्भवः ॥३८९॥
हस्तच्युते महाविघ्नः सूत्रच्छेदे विनाशनम्।

इसके बाद चक्र-पूजा करके अपने मूल मन्त्र से मद्य-मांस से एक हजार आठ हवन करे। इसके बाद समुचित रूप से महिष आदि की बलि प्रदान करके मनकों की

संख्या के बराबर शिल्पियों और साधकों को भोजन करावे। इस प्रकार की सम्मार्जित माला को अपने गुरु को दिखावे। जिस मन्त्र से माला बनायी गयी हो, उस माला से उसी मन्त्र का जप करना चाहिये; दूसरे मन्त्र का जप करने से देवता का शाप प्राप्त होता है। माला को मजबूत धागे में गूँथकर स्थिरचित्त से मन्त्रजप करना चाहिये। माला के सूत्र के जीर्ण हो जाने पर उसे पुनः नये सूत्र से गूँथकर मन्त्र का एक सौ बार जप करना चाहिये। जप करते समय मालासूत्र को तर्जनी अंगुली से स्पर्श नहीं करना चाहिये, कँपाना नहीं चाहिये, नचाना नहीं चाहिये, बाँयें हाथ से स्पर्श नहीं करना चाहिये और न ही बाँयें हाथ में माला को रखना चाहिये। अगूँठे से माला के मनकों को फेरते समय दूसरे मनके का स्पर्श नहीं करना चाहिये। जप-काल में विद्वान् को मन्त्र का लङ्घन नहीं करना चाहिये अर्थात् एक मनके को एक ही मन्त्र से खिसकाना चाहिये। सुमेरु के पास परिवर्तन के समय संघट्टन अर्थात् घर्षण नहीं करना चाहिये। कलियुग में जप के समय माला से खटखट शब्द होने से अथवा उसे हिलाने से अथवा माला को चलायमान करने से मृत्यु होती है। चलते हुये जप करने से विद्वेष होता है। फूटे मनकों की माला से जप करने पर रोग होता है। जप के समय माला का हाथ से छूट कर गिरना महाविघ्नकारक होता है। जप के समय माला के धागे के टूटने से विनाश होता है।।३८२-३९।।

करमाला

अथ वाङ्गुलिमालाभिर्जपं कुर्यात्तदुच्यते ॥३९०॥
अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठानुक्रमेण तु।
मध्यमामूलपर्य्यन्ता करमाला प्रकीर्तिता ॥३९१॥
मध्यमानामिकामध्यपर्वयुग्मं प्रकल्पयेत्।
मेरुं चानामिकामूलात् कनिष्ठानुक्रमेण च ॥३९२॥
तर्ज्जन्यग्रादितो मध्यामूलान्तं दशसङ्ख्यकाः।
अथ वा कल्पयेन्मेरुं मध्यानामादिपर्वकम् ॥३९३॥
अनामामध्यमे तत्र तर्ज्जनीमूलकावपि।
जपसङ्ख्याजपः प्रोक्तस्तथाऽयन्त्रिविधो मतः ॥३९४॥
तत्रादौ त्रिविधः प्रोक्तः पूर्वोक्तोऽयं जपो मया।
अङ्गुल्याख्यो जपः प्रोक्तो मतोऽन्यो न ममैव च ॥३९५॥
अङ्गुलीगतलेखाभिर्जपो लेखाजपो भवेत्।
अङ्गुलीं न वियुञ्जीत जपकाले कदाचन ॥३९६॥
अङ्गुलीनां वियोगेन च्छिद्रेषु स्रवते जपः।
नोल्लङ्घयेच्च गुणवान् किञ्चित् सङ्कोचयेत्तल्म् ॥३९७॥

न दर्शयेत्करं नो चेत्फलं गृह्णन्ति राक्षसाः।

करमाला—अब अंगुलिमाला से जप-विधि का वर्णन किया जाता है। अनामिका के मध्य से प्रारम्भ करके कनिष्ठा के अनुक्रम से मध्यमा के मूल पर्व तक करमाला होती है; इसकी संख्या ९ होती है। मध्यमा एवं अनामिका के मध्य पर्वों की एक साथ गणना करनी चाहिये। अनामिका के मूल पर्व को मेरु मानना चाहिये। तर्जनी के अग्र पर्व से मध्यमा के मूल पर्व तक १० संख्या होती है।

दूसरे प्रकार की करमाला में अनामिका के मूल पूर्व, कनिष्ठा के तीन पर्व, अनामिका का अग्र पर्व, मध्यमा के तीन पर्व, तर्जनी के मूल और मध्य पर्व से दस संख्या होती हैं। इसमें अनामिका का मध्य पर्व मेरु माना जाता है।

तीसरे प्रकार की करमाला में अनामिका के मध्य एवं मूल पर्व, कनिष्ठा के तीनों पर्व, अनामिका का अग्र पर्व, मध्यमा का तीनों पर्व और तर्जनी का मूल पर्व पर गिनने से दस की संख्या होती है। इसमें तर्जनी के मध्य और अग्र पर्व मेरु होते हैं। इस प्रकार तीन तरह की करमाला होती है। शिवजी कहते हैं कि इन तीनों प्रकार की मालाओं में से पहली करमाला में मेरे मन्त्रों का जप करना चाहिये। दूसरी एवं तीसरी करमाला से किया गया जप मुझे अभीष्ट नहीं है।

अङ्गुलिगत रेखाओं द्वारा किया गया जप 'लेखाजप' कहलाता है। जप-काल में अङ्गुलियों को कभी भी अलग नहीं करना चाहिये। अङ्गुलियों के अलग होने पर किया गया जप उनके छेदों से बह जाता है। विद्वान् को करतल का उलट-पलट भी नहीं करना चाहिये। हस्ततल को थोड़ा संकुचित रखना चाहिये। जपकाल में करतल नहीं दिखाना चाहिये; करतल दिखाने पर जप का फल राक्षस ले लेते हैं।।३९०-३९७।।

जपकाले त्याज्यकर्माणि

त्यजेद्विंशद्विकर्माणि सिद्धिविघ्नकराणि च ॥३९८॥
कुर्याद्विंशतिकर्माणि जपसिद्धिकराणि च।
लोभं क्रोधं च मात्सर्यं कामं द्वेषञ्च ताडनम् ॥३९९॥
दम्भमुच्चाटनाभ्यङ्गौ प्रियं मिथ्यावचस्तथा।
गीतं वाद्यं मधु च्छायां विभीतककरञ्जयोः ॥४००॥
मांसं प्रातग्रहं माल्यं ताम्बूलं पापिभाषणम्।
एतानि वर्जयेद्विद्वान् कर्तव्यान्यथ मे शृणु ॥४०१॥
मन्त्रो निरोधो मन्त्रार्थचिन्तनं नित्यकर्म च।
नैमित्तिकं श्रौतमौने परसङ्गस्य वर्जनम् ॥४०२॥

भूमिशय्या त्रिषवणस्नानं प्रात्यहिकार्चनम्।
नित्यदानं गुरोः पादपूजाहारनिमन्त्रणे ॥४०३॥
स्नानञ्च पञ्चगव्येन पवित्रकरधारणम्।
त्रिसन्ध्यं वन्दनं पञ्चयज्ञास्तर्पणमेव च ॥४०४॥
यथोक्तवस्त्रधरणं प्रायश्चित्तमथोच्यते।
सकृदुच्चरिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत् ॥४०५॥
प्रोक्ते पामरशब्देऽपि प्राणायामं सकृच्चरेत्।
बहुप्रलापे चावश्यं न्यस्याङ्गानि ततो जपेत् ॥४०६॥
क्षुतेऽप्येवं तथास्पृश्यस्थानानां स्पर्शनेऽपि च।
मौनत्यागे जपेन्मन्त्रं वैष्णवं वा स्मरेद्धरिम् ॥४०७॥
पतितान्त्यजसन्दर्शे तेजोवन्तं निरीक्षयेत्।
सूर्योऽग्निश्चन्द्रमाः खेटा मुनयो भानि तारकाः ॥४०८॥
विद्वांसो ब्राह्मणाश्चेति तेजोहीनास्ततः परे।

जपकाल में सिद्धि में विघ्न उत्पन्न करने वाले बीस विकर्मों का त्याग करना चाहिये एवं सिद्धि प्रदान करने वाले बीस कर्मों को करना चाहिये। सिद्धि में विघ्नकारक बीस विकर्म इस प्रकार हैं—लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, काम, द्वेष, ताड़न, दम्भ, उच्चाटन, अभ्यङ्ग, झूठे प्रिय वचन, गीत, वाद्य, मधु, लिसोड़ा एवं करञ्ज की छाया, मांस, प्रतिग्रह, माला, पान एवं पापी के साथ वार्त्तालाप। विद्वान् को इनका त्याग करना चाहिये। जप-सिद्धिप्रद बीस प्रकार के कर्म हैं—मन्त्रनिरोध, मन्त्रार्थ-चिन्तन, नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म, श्रौत कर्म, मौन-धारण, दूसरों की संगति का त्याग, भूमिशयन, तीनों संध्याओं में स्नान, प्रतिदिन अर्चना, नित्य दान, गुरुपाद-पूजा, गुरु को भोजन-हेतु निमन्त्रण, पञ्चगव्य से स्नान, पवित्रीधारण, तीनों सन्ध्या, देववन्दन, पञ्चयज्ञ, तर्पण एवं यथोक्त वस्त्र-धारण।

अब प्रायश्चित्त का वर्णन करता हूँ। मुँह से अचानक शब्द निकल जाय तो 'ॐ' का उच्चारण करना चाहिये। अपवित्र शब्द बोलने पर तुरन्त प्राणायाम करना चाहिये। बहुत प्रलाप करने के बाद अङ्गन्यास करके जप करना चाहिये। अस्पृश्य स्थान के छू जाने पर या उसके स्पर्श करने पर मौन का त्याग कर बोल-बोल कर वैष्णव मन्त्र का जप अथवा हरि का स्मरण करना चाहिये। पतित और अन्त्यजों के दर्शन होने पर तेजःसम्पन्न का दर्शन करना चाहिये। सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह, मुनि, नक्षत्र, तारा एवं विद्वान् ब्राह्मण तेजःसम्पन्न होते हैं; इनके अतिरिक्त सभी तेजरहित होते हैं।

क्षुतेऽधोवायुगमने पतितादिकभाषणे ॥४०९॥

त्यक्त्वा जपं तथाचम्य प्राणायामं षडङ्गकम्।
कृत्वा पश्चाज्जपेन्मन्त्रमम्भोऽलाभे हरिं स्मरेत् ॥४१०॥
मार्जारं कुक्कुटं क्रौञ्चं श्वानं गृध्रं खगं कपिम्।
दृष्ट्वाचम्य चरेत्कर्म स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ॥४११॥
दैन्यादसत्यभाषी चेत्स रौद्रं पौरुषं जपेत्।

छींक आने पर, अधोवायु निकलने पर या पतितों के साथ वार्त्तालाप करने पर जप का त्याग करके आचमन करने के बाद षडङ्ग प्राणायाम करने के पश्चात् मन्त्रजप करना चाहिये। जल के अनुपलब्धता की स्थिति में हरि का स्मरण करना चाहिये। जप के समय बिलार, मुर्गा, क्रौंच, कुत्ता, गीध, चिड़िया, बन्दर यदि दिखाई दें तो आचमन करके जप करना चाहियें; लेकिन इनका यदि स्पर्श हो जाय तो स्नान करने के पश्चात् जप करना चाहिये। संयोगवश यदि असत्य भाषण हो जाय तो रुद्रसूक्त एवं पुरुषसूक्त का पाठ करने के पश्चात् जप करना चाहिये।।४०९-४११।।

बहुवस्त्रैकवस्त्रो वा मुक्तकेशो गलावृतः ॥४१२॥
उष्णीषी कञ्चुकी नग्नः शिरसि प्रावृतोऽपि वा।
चिन्ताद्याकुलचित्तो वा क्रुद्धो वान्तः क्षुधान्वितः ॥४१३॥
जङ्घानिगूढपादो वा यानशय्यागतस्तथा।
शयानो वा धौतपादः पश्चाद्वा दक्षिणामुखः ॥४१४॥
म्लानवस्त्रोऽर्धवस्त्रश्च तथा द्विगुणवस्त्रकः।
च्युतवस्त्रो रक्तवस्त्रः स्निग्धवस्त्रो द्विकच्छकः ॥४१५॥
बहिष्कच्छोऽनुत्तरीयो विकच्छश्चैककच्छकः।
कौपीनी प्रौढपादश्च तथैव स्यूतवस्त्रवान् ॥४१६॥
जपेऽशक्तः प्रमादाच्च राक्षसैर्गृह्यते फलम्।
तत्कारणं परित्यज्य तज्जपं पुनराचरेत् ॥४१७॥
स्वभार्यायां प्रमादेन स्खलितश्चेत्तदोषसि।
स्नात्वार्द्रवासा मौनेन दशकुम्भमितैर्जलैः ॥४१८॥
श्रोत्रियस्य गृहे दद्यात् परनार्य्यां सहस्रकम्।

प्रमादवश बहुत वस्त्र धारण कर अथवा एक वस्त्र धारण कर, केश खोलकर, गले को ढक कर, पगड़ी बाँधकर, कंचुकी पहनकर, नग्न होकर, शिर ढ़ककर, चिन्तातुर होकर, क्रुद्ध होकर, वमन करते हुये, भूख से पीड़ित होकर, जाँघ पर पैर रखकर, सवारी पर, शय्या पर, शयन करते हुये, पाँवों को धोकर, पश्चिम या दक्षिण तरफ मुख करके, गन्दे कपड़े पहनकर, आधा वस्त्र पहनकर, दुगुने वस्त्र पहनकर,

गिरे हुए कपड़े पहनकर, लाल वस्त्र पहनकर, तेल-घी लगे हुए वस्त्र पहनकर, द्विकच्छ अथवा बहिष्कच्छ होकर, विना उत्तरीय (गमछा) के, विकच्छ होकर अथवा एककच्छ होकर, कौपीन पहन कर, पाँव खड़ा करके, स्यूत (सिले हुये) वस्त्र पहनकर यदि कोई जप करता है तो उस जप का फल राक्षस ग्रहण कर लेते हैं। इसलिये उपर्युक्त सभी अकरणीय कर्मों का परित्याग करके उस जप को पुनः करना चाहिये।

जपकाल में प्रमादवश यदि अपनी पत्नी के साथ गमन कर लेता है तो प्रातःकाल स्नान करने के पश्चात् गीले वस्त्र में ही रहते हुये मौन होकर ब्राह्मण के घर दश घड़ा जल पहुँचाना चाहिये एवं यदि दूसरी स्त्री के साथ गमन किया हो तो एक हजार घड़ा जल पहुँचाना चाहिये।।४१२-४१८।।

जपस्वरूपं तद्भेदांश्च

जपः स्यादक्षरावृत्तिः स त्रेधा परिकीर्त्तितः ॥४१९॥
हीनो वाग्जः कायिकस्तु मध्यः श्रेष्ठस्तु मानसः।
य उच्चनीचैः स्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ॥४२०॥
मन्त्र उच्चार्यते हीनोऽसौ जपो वाचिकः स्मृतः।
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ प्रचारयेत् ॥४२१॥
कस्यचिच्छ्रवणायोग्यः कायिकः स तु मध्यमः।
बुद्ध्या यदाक्षरश्रेणीं यथास्थानेषु चोच्चरेत् ॥४२२॥
अर्थस्मरणपूर्वन्तु स श्रेष्ठो मानसो जपः।
षट्कर्मकृद्वाचिकः स्यात्कायिकः सर्वसिद्धिकृत् ॥४२३॥
मानसः साधयेन्मोक्षं ततोऽन्यः क्षुद्रकर्मकृत्।
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ॥४२४॥
जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिरदूरतः।
यथा धनेन सन्तुष्टो जायते क्षुल्लको नरः ॥४२५॥
तथैव बलिदानेन पूजया क्षुद्रदेवताः।
यथा महागुणैर्वश्यो जायते गुणवान् प्रभुः ॥४२६॥
तथाहं त्वं च विष्णवर्कौ जपादेव फलप्रदाः।

जप—मन्त्र के अक्षरों की आवृत्ति करना ही जप कहलाता है। वह जप तीन प्रकार का होता है—वाचिक, कायिक तथा मानसिक। इनमें से वाचिक जप अधम, कायिक जप मध्यम एवं मानसिक जप उत्तम होता है। जिसमें पद के प्रत्येक अक्षरों का तथा उच्च-नीच-स्वरित् शब्दों का स्पष्ट उच्चारण करते हुये जप किया जाता है, वह वाचिक जप कहलाता है, जो कि अधम होता है। कुछ-कुछ ओष्ठों को हिलाते

हुये सुनाई न देने लायक धीरे-धीरे मन्त्र का उच्चारण कर किया जाने वाला जप कायिक कहलाता है; यह मध्यम होता है। बुद्धि द्वारा अर्थस्मरण-पूर्वक यथास्थान अक्षरमालिका का उच्चारण जिस जप में किया जाता है, वह मानसिक जप कहलाता है; यह जप उत्तम होता है। षट्कर्म के अनुष्ठान में किया जाने वाला जप वाचिक होता है। कायिक जप समस्त सिद्धियाँ प्रदान करने वाला होता है एवं मानसिक जप से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इन तीन से अतिरिक्त प्रकार से किये जाने वाले जप से क्षुद्र कर्मों का साधन किया जाता है। नित्य जप द्वारा स्तुति करने से देवता प्रसन्न होते हैं। जप के द्वारा शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। जिस प्रकार धन से सन्तुष्ट मनुष्य निर्धन हो जाता है, वैसे ही बलिदानरूपी पूजा से क्षुद्र देवता भी अल्प बल वाले होते हैं। जिस प्रकार सर्वश्रेष्ठ गुणों के द्वारा गुणवान स्वामी को वशीभूत किया जाता है, उसी प्रकार मैं (शिव), तुम (देवी), गणेश, विष्णु एवं सूर्य जपमात्र से ही फल प्रदान करने वाले होते हैं।।४१९-४२६।।

आसनानि

आसनन्तु द्विधा प्रोक्तं नित्यकामिकभेदतः ॥४२७॥
कुशाजिनोत्तरैर्युक्तं चतुरङ्गुलमूर्ध्वतः ।
चतुरस्रं द्विहस्तञ्च सुन्दरं मृदु निर्मलम् ॥४२८॥
इदं सुखासनं नित्यं जपसिद्धिविधायकम् ।
अथ काम्यानि वक्ष्यन्ते ज्ञानसिद्ध्यादिहानिजम् ॥४२९॥
सर्वसिद्ध्यै व्याघ्रचर्म त्वाविकं रोगनाशनम् ।
कौशेयं पौष्टिकं प्रोक्तं वेत्रजं श्रीविवर्द्धनम् ॥४३०॥
श्वेते तु कम्बले धर्मासेद्धिरुक्तेऽर्थसिद्धयः ।
पीते कामो द्विजान्येषां मोक्षदः कृष्णकम्बलः ॥४३१॥
दुःखमुक्त्यै रञ्जितस्तु नीलरङ्गो न शोभनः ।
त्यजेन्निषिद्धं मतिमांस्त्वनिषिद्धेषु संविशेत् ॥४३२॥

आसन—नित्य एवं काम्य के भेद से आसन दो प्रकार के होते हैं। दो हाथ लम्बा-चौड़ा, चतुरस्र, चार अङ्गुल मोटा कुश एवं काले मृगचर्म से युक्त सुन्दर, निर्मल, कोमल एवं सुखप्रद आसन नित्य जप में सिद्धप्रद होता है। अब कामना के अनुसार आसन का वर्णन करता हूँ। काले मृगचर्म का आसन ज्ञानसिद्धि देता है। व्याघ्र-चर्म के आसन से सर्वार्थ-सिद्धि प्राप्त होती है। भेड़ के रोम के आसन से रोगों का विनाश होता है। कुशासन पुष्टिप्रदायक होता है। बेंत का आसन श्रीवर्द्धक होता है। उजले कम्बल का आसन धर्म और सिद्धि देता है। पीले कम्बल का आसन ब्राह्मण,

क्षत्रिय एवं वैश्यों के लिये मोक्ष प्रदान करने वाला होता है तथा कृष्ण कम्बल का आसन शूद्रों के लिये मोक्ष-प्रदायक होता है। रंगीन आसन से दुःखों का नाश होता है; किन्तु नीला रंग अच्छा नहीं होता। विद्वानों को निषिद्ध आसन पर नहीं; अपितु विहित आसन पर ही बैठना चाहिये।।४२७-४३२।।

निषिद्धासनानि

निषिद्धान्यथ वक्ष्यन्ते शोकः स्याद्दारुकासने।
वंशासने दरिद्रः स्याद्वस्त्रे स्थानविनाशनम् ॥४३३॥
पाषाणे च तथोच्चाटो ज्वरः स्यान्मृण्मयासने ॥४३४॥
क्षित्यासने भवेत्पीडा पल्लवे चित्तविभ्रमः।
तृणासने भवेत्पीडा निषिद्धं त्विष्टकासनम् ॥४३५॥
चित्तक्षोभो गृहस्थस्य कृष्णसाराजिने भवेत्।
ब्रह्मचर्यनस्थः संन्यासी स्नातकः सिद्धिमाप्नुयात् ॥४३६॥

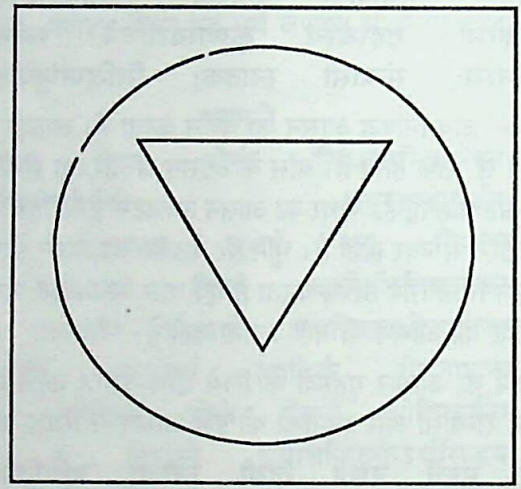
निषिद्धासन—अब निषिद्ध आसन का वर्णन करता हूँ। लकड़ी के आसन पर बैठकर जप करने से शोक होता है। बाँस के आसन से दरिद्रता होती है। कपड़े के आसन से स्थान-भ्रष्टता होती है। पत्थर का आसन उच्चाटन करता है। मिट्टी के आसन पर बैठकर जप करने से ज्वर होता है। भूमि पर बैठकर जप करने से पीड़ा होती है। पल्लवों का आसन चित्तविभ्रम उत्पन्न करता है एवं घास का आसन पीड़ा प्रदान करने वाला होता है। ईंट का आसन भी नहीं बनाना चाहिये।

काले मृगचर्म का आसन गृहस्थों के लिये क्षोभ उत्पन्न करने वाला होता है; लेकिन ब्रह्मचारी, संन्यासी और स्नातकों को इस आसन से सिद्धि प्राप्त होती है।

शुभे मुहूर्त्ते नक्षत्रे तिथौ स्नात्वा यथाविधि।
विप्रान् सन्तर्प्य यत्नेन भोजनाच्छादनादिभिः ॥४३७॥
भूवित्तवस्त्रभूषाद्यैः सन्तोष्य गुरुमात्मनः।
आरभेच्च जपं पश्चात्तदनुज्ञापुरस्सरम् ॥४३८॥
जपस्थाने ततः कुर्यात्त्रिकोणं वर्तुलं बहिः।
तद्बहिश्चतुरस्रं च तत्र क्षेत्रे समर्चयेत् ॥४३९॥
इहागच्छेत्यादिवाक्यैस्त्रिकोणादग्नतः पुनः।
अन्नोदकादिसम्पूर्णं बलिपात्रं निधापयेत् ॥४४०॥
वाग्भिर्महिषो देयः कौलिकैर्बर्करस्तथा।
अविः सिद्धान्तिभिस्तत्र निवेद्यो मनुना सुराः ॥४४१॥
एह्येहि विद्रषीत्युक्त्वा पुरुषं जययुग्मकम्।
नर्त्तयद्वितयं पश्चाद्विघ्नविघ्न महेति च ॥४४२॥

भैरवपदपूर्वन्तु क्षेत्रेशमिति चोच्चरेत्।
क्षेत्रपालबलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहेति वै वदेत्॥४४३॥
त्रिचत्वारिंशदर्णोऽयं क्षेत्रपालबलेर्मनुः।
तस्मै सपरिवाराय बलिं दद्यान्न भक्षयेत्॥४४४॥

शुभ मुहूर्त्त, तिथि, नक्षत्र में विधिवत् स्नान करके यत्नपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन-वस्त्रादि से तृप्त करके गुरु को भूमि, वस्त्र, आभूषण, धन से सन्तुष्ट करके उनकी आज्ञा प्राप्त करने के पश्चात् जप का आरम्भ करना चाहिये। तदनन्तर जप-स्थान पर पहले त्रिकोण, उसके बाहर वृत्त और वृत्त के बाहर चतुरस्र बनाना चाहिये, जिसका स्वरूप इस प्रकार होता है—



इस प्रकार यन्त्र बनाकर उस पर पूजन करना चाहिये। 'इहागच्छ' आदि वाक्य बोलकर त्रिकोण के अग्रभाग में अन्न-जल आदि से पूर्ण बलिपात्र स्थापित करके वाममार्गियों द्वारा भैंसे की, कौलिकों द्वारा बकरे की एवं सिद्धान्तियों द्वारा भेड़ की बलि देवताओं को मन्त्रपूर्वक प्रदान करनी चाहिये। तैंतालीस अक्षरों का क्षेत्रपाल को बलि प्रदान करने का मन्त्र इस प्रकार है—एह्येहि विद्रषीपुरुष जय जय नर्तय नर्तय विघ्नविघ्न महाभैरव क्षेत्रेश क्षेत्रपालबलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा। इस मन्त्र से परिवार-सहित देवता को बलि प्रदान करना चाहिये। उसका स्वयं भक्षा नहीं करना चाहिये।

प्रारभेत पुरश्चर्य्यां दीक्षोक्तदिवसे शुभे।
प्रणम्यादौ गुरून् विप्रान् गणेशं परिपूज्य च॥४४५॥

पुण्याहवाचनं कृत्वा कुशहस्तो वदेदिति।
सूर्यः सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षपा ॥४४६॥
पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खेचरःमराः।
ब्रह्मशासनमास्थाय कल्पध्वंमिह सन्निधिम् ॥४४७॥
पठित्वेदं ताम्रपात्रे कृत्वा कुशतिलाक्षतान्।
उदङ्मुखस्तु सङ्कल्पं कुर्यात्संवत्सरादिकान् ॥४४८॥
कामनान्तानुच्चरंच्च तत्र विंशतिसङ्ख्यकान्।
संवत्सरमृतुं मासं पक्षं पञ्चाङ्गमेव च ॥४४९॥
नवग्रहस्थितिं घस्रभागमुहूर्त्तके त्विति।
स्वदेशभेदानुच्चार्य्य कामनासहितान् वदेत् ॥४५०॥
द्वीपेऽमुकेऽमुके खण्डे गोत्रं प्रवरमुच्चरेत्।
स्वनाम जातिनामान्तं पुनः शर्म च वर्म्म च ॥४५१॥
गुप्तो दासोऽथामुकस्य मन्त्रस्य सिद्धिकामुकः।
करिष्येऽहं पुरश्चर्य्यामेतत्सङ्ख्यजपात्मिकाम् ॥४५२॥
अथवेयद्दिनैरेतैरसति प्रतिबाधके।
करिष्य इति सङ्कल्पं मनसैव प्रकल्पयेत् ॥४५३॥
वदेद्वाचाभिलाषं च कर्मणा चोपपादयन्।
गुरुं गणपतिं दुर्गां मह्यं नत्वा च पूजनम् ॥४५४॥
कृत्वा स्वमूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं चरेत्।

तदनन्तर दीक्षा के लिये कथित शुभ दिन में प्रथमतः गुरुओं एवं ब्राह्मणों को प्रणाम करके तथा गणेश का पूजन करके पुरश्चरण का प्रारम्भ करना चाहिये। सर्वप्रथम पुण्याहवाचन करके हाथों में कुश लेकर इस मन्त्र का उच्चारण करे—

सूर्यो सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षपा।
पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खेचरामराः।
ब्रह्मशासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्।।

उपर्युक्त मन्त्र को पढ़कर ताम्रपात्र में कुश, तिल, अक्षत रखकर उत्तरमुख होकर इस प्रकार संवत्सरादि का सङ्कल्प करे—ॐ विष्णुः विष्णुः विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अस्य श्रीब्रह्मणोह्नि द्वितीयपरार्द्धे विष्णुपदे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भूर्लोके जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे अमुकनामसंवत्सरे (विक्रम शक) श्रीसूर्ये अमुकायने अमुक ऋतौ महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे मासे अमुक-मासे

अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथाराशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्मा/वर्मा/गुप्तः अहं अमुकमन्त्रस्य सिद्धिकामः पुरश्चर्यामेतत्संख्यजपात्मिकामथवेयद्दिनैरेतैरसति प्रतिबाधके करिष्ये। इस प्रकार मन ही मन संकल्प करके अपनी अभिलाषा एवं कर्म का स्पष्टतः उपपादन करते हुये गुरु, गणपति, दुर्गा एवं मुझे (शिव) को प्रणाम कर अपने मूलमन्त्र से पूजन करके तीन प्राणायाम करे।

कृत्वा ऋष्यादिविन्यासमङ्गन्यासं तथैव च ॥४५५॥
ध्यायेच्च हृदये देवं पात्रे संस्थाप्य मालिकाम्।
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य ततस्तां प्रार्थयेदिति ॥४५६॥
ॐ माले माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥४५७॥
पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद्दक्षिणे करे।
बीजं गणपतेः पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम् ॥४५८॥
अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णीयात्तदनन्तरम्।
हस्तेऽथ दक्षिणे पश्चाच्चिन्तयेन्मनसा शिवम् ।४५९॥
चिन्तयेच्च गुरुं मूर्ध्नि यथावर्णादिकं भवेत्।
मन्त्रं ध्यायेत्कण्ठमध्ये पीतवर्णं हिरण्मयम् ॥४६०॥
महामायां च हृदये स्वात्मानं गुरुपादयोः।
आज्ञाचक्रे ततः पश्चाद्गुरोर्मन्त्रस्य चात्मनः ॥४६१॥
देव्याश्चाप्येकतां नीत्वा सुषुम्णावर्त्मना ततः।
गुरुस्वरूपमेकं तं षट्चक्रं प्रति लङ्घयेत् ॥४६२॥
षट्चक्रेऽपि महामायां क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः।
लम्बयेन्मूलमन्त्रेण चादिषोडशचक्रकम् ॥४६३॥
आदिषोडशचक्रे तां साधकानन्ददायिनीम्।
चिन्तयेत्साधको देवीं जातकर्म समारभेत् ॥४६४॥

तदनन्तर ऋष्यादि न्यास, करन्यास एवं षडङ्गन्यास करके हृदय में देवता का ध्यान करके माला को पात्र में स्थापित कर अर्घ्योदक से प्रोक्षण करके इस प्रकार उसकी प्रार्थना करे—

ॐ माले माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।।

इसके बाद माला का पूजन करके दाहिने हाथ से ग्रहण कर 'गं' इस गणेशबीज का उच्चारण करते हुये 'अविघ्नं कुरु माले त्वं' बोलकर दाहिने हाथ में माला लेकर मानसिक रूप से शिव का एवं मूर्धा में गुरु का चिन्तन करे। सभी वर्णों-सहित सुवर्णसदृश पीतवर्ण मन्त्र का चिन्तन कण्ठमध्य में करे। हृदय में महामाया और आत्मा में गुरुचरणों का चिन्तन करे। इसके बाद आज्ञा चक्र में गुरु, मन्त्र, स्वयं एवं देवी के एकाकार कर सुषुम्णा मार्ग से सबको गुरुस्वरूप मानकर षट्चक्रों का भेदन करे। षट्चक्र में भी यत्नपूर्वक क्षणमात्र महामाया का ध्यान करके उसे मूलमन्त्र से आदि षोडश चक्र विशुद्धिचक्र में ले आवे। वहाँ पर उस देवी का आनन्ददायिनी रूप में साधक चिन्तन करे और जातकर्म प्रारम्भ करे।।४५५-४६४।।

भ्रुवोरुपरि नाडीनां तिसृणां प्रान्त उच्यते।
तत्प्रान्तं त्रिपथस्थानं षट्कोणं चतुरङ्गुलम्।।४६५।।
चक्रं च कुलयोगज्ञैराज्ञाचक्रमितीरितम्।
कण्ठे त्रयाणां नाडीनां वेष्टनं विद्यते नृणाम्।।४६६।।
सुषुम्णेडापिङ्गलानां षट्कोणं तत्षडङ्गुलम्।
तत्त्वचक्रमिति प्रोक्तं शुक्लं कण्ठस्य मध्यगम्।।४६७।।
त्रयाणामपि देवानां हृदये चैकता भवेत्।
तत्स्थाने षोडशारं स्यात्सप्ताङ्गुलप्रमाणतः।।४६८।।
तत्पूर्वमुक्तयोगानामादिषोडशचक्रगम्।
ध्येयानामथ मन्त्राणां चिन्तितस्य जपस्य च।।४६९।।
यस्मादाद्यं तु हृदयं तस्मादादिर्निगद्यते।
तत्र प्रणव उत्पन्नः पूर्वमादिसुतस्य तु।।४७०।।
निस्सेतुकं यथा तोयं क्षणान्निम्नं प्रसर्पति।
मन्त्रस्तथैव निस्सेतुः क्षणात्क्षरति यज्वनाम्।।४७१।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेषु चतुर्वर्णादिजातयः।
पार्श्वयोः सेतुमादाय जपकर्म समारभन्।।४७२।।
मन्त्राणां प्रणवः सेतुर्द्विजानां परिकीर्तितः।
चतुर्दशस्वरोऽन्येषां चन्द्रानुस्वारसंयुतः।।४७३।।

तीनों नाड़ियों का सर्वोच्च स्थान भौंहों के ऊपर कहलाता है। यहाँ इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा के सङ्गम पर चार अङ्गुल का षट्कोण चक्र है। कुलयोग के ज्ञाता लोग इसे आज्ञाचक्र कहते हैं। कण्ठ तीनों नाड़ियों से वेष्टित है। सुषुम्णा, इड़ा, पिङ्गला से जो षट्कोण निर्मित है, उसका मान छः अङ्गुल है। कण्ठमध्य में स्थित शुक्ल वर्ण

के इस चक्र को तत्त्वचक्र कहा जाता है। हृदय में तीनों देवताओं का सङ्गम है, वहाँ पर सोलह कोणात्मक चक्र है, जिसका प्रमाण सात अङ्गुल है। यह आदि षोडश दल चक्र मन्त्र एवं चिन्तित जप से समन्वित है। यतः हृदस सबसे पहला होता है, इसीलिये उसे 'आदि' कहा जाता है। वहीं पर प्रणव उत्पन्न होता है, जो महामाया का प्रथम पुत्र माना जाता है। बिना सेतु के जिस प्रकार जल क्षणमात्र में ही नीचे चला जाता है, उसी प्रकार विना सेतु के मन्त्र भी पूजक का त्याग कर भाग जाते हैं। इसलिये ब्राह्मणादि चारो वर्णों को यत्नपूर्वक अगल-बगल सेतु बनाकर जपकर्म का प्रारम्भ करना चाहिये। द्विजों के लिये प्रणव अर्थात् 'ॐ' को मन्त्र का सेतु कहा गया है एवं अन्य के लिये चन्द्रबिन्दु से युक्त चौदह स्वरों को सेतु कहा गया है।।४६५-४७३।।

एवं विचिन्त्य मध्याया मध्ये भागे तु मालिकाम्।
अस्पृशंस्तर्जनीं मालामङ्गुष्ठाग्रेण चालयेत् ।।४७४।।
पूर्वं मन्त्रं जपन्यस्तु संस्पृशेदपरं मणिम्।
अङ्गुष्ठेन भवेत्तस्य स जपो निष्फलः सदा ।।४७५।।
मालां स्वहृदयासन्नां धृत्वा दक्षिणपाणिना।
मालामन्त्रस्तु ह्रीं सिद्ध्यै नमः सम्प्रार्थयेदिति ।।४७६।।
त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव।
शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च वर्धय ।।४७७।।
इह प्रार्थनपूजायां प्रोक्तोऽयं मालिकामनुः।
पञ्चाक्षरस्ततो देवं स्वेष्टं सम्प्रार्थयेदिति ।।४७८।।
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ।।४७९।।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य देवहस्ते निवेदयेत्।
तं जपं चार्घ्यतोयेन मध्याह्नसमये त्विदम् ।।४८०।।
तदर्थं पूर्ववत्स्नात्वा विशेषेण विधानवित्।
न्यासावसानमखिलं कर्म कुर्यात् पुरोदितम् ।।४८१।।
पूजाग्निहोमपर्य्यन्तं ततश्च जपमारभेत्।
यावद्दिनावसानं तु भूयः स्नात्वा ततो द्विजः ।।४८२।।
उपास्य पूर्ववत्सन्ध्यां देवं सम्पूजयेत्पुनः।
विसृज्य भोजनं कुर्यात्सततं तारकोदये ।।४८३।।

इस प्रकार चिन्तन करके मध्यमा अंगुलि के मध्य पर्व में मालिका को रखकर तर्जनी द्वारा स्पर्श किये विना अंगूठे के अग्रभाग से माला का चालन करना चाहिये।

एक मनका पर एक मन्त्र जपे। एक मन्त्र पूरा होने के पूर्व यदि दूसरे मनके का स्पर्श अंगूठे से हो जाता है, तब वह जप निष्फल होता है। माला को हृदय के निकट दाहिने हाथ में रखकर माला की प्रार्थना 'ह्रीं सिद्ध्यै नमः' मन्त्र से करे। इसके बाद निम्न मन्त्र से प्रार्थना करे—

त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव।
शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्य्यं च वर्धय।।

प्रार्थना और पूजा के लिये माला का यही मन्त्र कहा गया है। इसके बाद षड्ाक्षर मन्त्र का जप करके इष्टदेवता की इस प्रकार प्रार्थना करे—

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादाज्जगत्पते।।

इसके बाद मूल मन्त्र का उच्चारण करके अर्घ्यजल से देवता के दाँयें हाथ में जप का समर्पण कर देना चाहिये।

मध्याह्न कालीन जप के लिये पूर्ववत् स्नान करके समस्त न्यासों को करने के उपरान्त पूजा-हवन आदि पूर्वोक्त समस्त कर्म करने के पश्चात् जप का आरम्भ करना चाहिये।

जब दिन की समाप्ति हो जाय तब पुनः स्नान करके पूर्ववत् सन्ध्या का अनुष्ठान कर देव का पूजन करने के उपरान्त उनका विसर्जन करके ताराओं के उदय होने पर नित्य भोजन करना चाहिये।।४७४-४८३।।

पुरश्चरणकर्तृणां कृते भोजनम्

सत्कन्दफलमूलाशी सद्भिक्षाशी हविष्यभुक्।
पयोव्रती भवेच्छ्रेष्ठस्तेषां लक्षणमुच्यते ।।४८४।।
आयुष्करं पद्ममूलं पिण्डारककसेरुकम्।
रक्तहस्तीशङ्खमधुशालुकं श्रेष्ठमुच्यते ।।४८५।।
द्राक्षाम्रजम्बूपनसं कपित्थं खर्ज्जूरिकादाडिमनारिकेरम्।
परुषकं क्षीरिणिकाकदल्योः फलन्तु धात्र्याश्च भवेत्पवित्रम् ।।४८६।।
पत्रमूलं त्वचामूलं विमूलं पञ्चमी जटी।
अकवाकुः कुवाकुश्च मूले पावित्र्यकारकम् ।।४८७।।
वैदिकाचारयुक्तानां शुचीनां श्रीमतां सताम्।
सत्कुलस्थानजातानां भिक्षाशी चाग्रजन्मनाम् ।।४८८।।
चरुमूलफलक्षीरदधिभिक्षान्नसक्तवः ।
एतत्सप्तविधं भिक्षालब्धं भक्ष्यं व्रतस्थितैः ।।४८९।।

हविष्याणि तु पञ्चाशच्छ्वेताः स्विन्ना हिमोद्भवाः।
तण्डुलाः षष्ठिनीवारशालिजास्त्रिविधा मताः ॥४९०॥
मुद्गा यवास्तिलाः कृष्णाः कुलत्थाश्चास्त्रिपुटा अपि।
कङ्गवश्च मकुष्ठाश्च यावन्नालकणशिका ॥४९१॥
कालकंशोववास्तूक करम्बुर्हिलमोचिका।
चक्रवती चक्रमर्दः पलङ्कः शतपुष्पिका ॥४९२॥
मूलं हेमन्तजं श्वेतं राजिकां माषजं तिलम्।
मृणालमुसली घोण्टा शतमूली विदारिका ॥४९३॥
सर्वे पिण्डालवश्चैव पद्मो वारवुषा तथा।
आयुष्करः कञ्च्युकश्च शृङ्गाटककसेरुकौ ॥४९४॥
सामुद्रं सैन्धवं चैव दध्याज्यं गोजमाहिषम्।
दुग्धं ससारं मधुः पयोऽन्यत्त्वल्पबीजकम् ॥४९५॥
पनसाम्रामलं चिञ्चा त्रिफाणितगुडक्षवम्।
हविष्यं भेषजं सर्वं हित्वा मीनान् सुरां पलम् ॥४९६॥
श्रेष्ठं गवां दुग्धमुक्तं मध्यमं सुरभीभवम्।
अधमं माहिषं चान्यद् व्रतस्थानां निषिध्यते ॥४९७॥

भोजन—कन्द-मूल-फल का भोजन करने वाला, भिक्षा में प्राप्त अन्न का भोजन करने वाला, हविष्यान्न का भोजन करने वाला अथवा केवल दूध का ही आहाररूप में सेवन करने वाला श्रेष्ठ होता है। अब उनके लक्षणों को कहता हूँ। कमलमूल, पिण्डारक, कसेरु, रक्तहस्ती, शंख, मधु एवं शालुक श्रेष्ठ आयुवर्द्धक कहे गये हैं। दाख, आम, जामुन, कटहल, खैर, खजूर, अनार, नारियल, परूषक, क्षीरिणिका, केला एवं आँवला के फल पवित्र होते हैं। पत्रमूल, त्वचामूल, विमूल, पंचमी, जटी, अकवाकु, कुवाकुमूल पवित्रकारक माने जाते हैं। वैदिक आचार से युक्त पवित्र श्रीमान् सदाचारी सत्कुलोत्पन्न लोगों को भिक्षाशी होना चाहिये। व्रताचरण में इन्हें भिक्षा में प्राप्त चरु, मूल, फल, दूध, दही, अन्न एवं सत्तू—इन सात का ही भोजनरूप में ग्रहण करना चाहिये।

हविष्यान्न पचास प्रकार के होते हैं—श्वेत, स्विन्न, हिमोद्भव, साठी-नीवार-शालि—ये तीन प्रकार के चावल, मूँग, यव, काला तिल, कुल्थी, तीन प्रकार के उड़द, कङ्गु, मकुष्ठ, यावनाल, कणशिका, कालकंश, ववास्तूक, करम्बु, हिलमोचिका, चक्रवती, चक्रमर्द, पालक, शतपुष्पिका, हेमन्तज मूल, उजली राई, माष से उत्पन्न तिल, मृणाल, मुसली, घोण्टा, शतमूली, विदारिका, सभी पिण्डालव,

कमल, वारवुषा, आयुष्कर, कंच्युक, शृङ्गाटक, कसेरूक, समुद्र से उत्पन्न नमक, सैन्धव नमक, दही, गोघृत, भैंस का घी, सारयुक्त मधुर दूध, अल्प बीज वाले अन्य फल, कटहल, आम, आमला, इमली, विफाणित ईख का गुड़ आदि सभी भेषजों की गणना हविष्य में होती है। मछली, मांस एवं मद्य की गणना हविष्य में नहीं होती। गाय का दूध उत्तम, सुरभी का दूध मध्यम और भैंस का दूध अधम होता है। इनके अतिरिक्त किसी प्रकार के दूध का व्रतियों को सेवन नहीं करना चाहिये।।४८४-४९७।।

त्यजन्निषिद्धमन्नाद्यं मध्योऽसौ शास्त्रतश्च यः।
निषिद्धं देशकुलतः प्रशस्तं सोऽधमः स्मृतः ॥४९८॥
निषिद्धान्यथ कथ्यन्ते सप्तविंशमितानि तु।
श्वेतमुद्गा मसूराश्च कोद्रवाश्चणकास्त्रिधा ॥४९९॥
माषाश्च भूमिलवणं यत्र जातं रसान्तरम्।
क्षौद्रं क्षारं पलाण्डुश्च गृञ्जनं काचभोजनम् ॥५००॥
मांसं च स्विन्नलवणं रामठं चैव नालकम्।
अन्नं पर्य्युषितं तैलं ताम्बूलं क्षुद्रधान्यकम् ॥५०१॥
पटोलं चापि वृन्ताकं मूलकं च कलिञ्जकम्।
दग्धान्नं च द्विपक्वं च गुडान्नं तालजं फलम् ॥५०२॥

शास्त्र के अनुसार जो अन्न निषिद्ध हैं, वे मध्यम श्रेणी के होते हैं तथा देश-कुल के अनुसार जो निषिद्ध हैं, वे अधम कहे गये हैं; इनका भी त्याग कर देना चाहिये। अन्य प्रकार के जो खाद्य निषिद्ध हैं, उनकी संख्या सत्ताईस है, वे हैं—श्वेत मूँग, मसूर, कोदो, तीन प्रकार के चना, उड़द, भूमि पर होने वाला नमक, मधु, क्षार, पलाण्डु, गृंजन, शीशे के पात्र में भोजन, मांस, स्विन्न लवण, हींग, नालक, बासी अन्न, तेल, ताम्बूल, क्षुद्रधान्य, परवल, बैगन, मूली, कलिंजक, दग्धान्न, दो बार का पका हुआ, गुडान्न, ताड़ का फल। ये सभी त्याज्य हैं।।४९८-५०२।।

देवा विशेषं शृण्वन्तु वर्णाश्रमविभेदतः।
तिलतैलं मन्त्रपूतं पावनं देवदुर्लभम् ॥५०३॥
मर्दयित्वा गृहस्थेन स्नानं कार्यं तु सर्वदा।
द्विजैस्तु भोजनं कार्यमुपस्तीर्य्याविधार्य्य च ॥५०४॥
पावयेद्वैदिकैर्मन्त्रैः प्रोक्षणादिककर्मणा।
पुनर्मूलेन सम्मन्त्र्य भुञ्जीयाद्धृदयाणुना ॥५०५॥
मूलाभिमन्त्रितं तोयं भोजने तृषि सम्पिबेत्।
पलाशपत्रे भुञ्जीत त्वन्यत्पत्रं विवर्जितम् ॥५०६॥

तदभावे कदल्यां वा मधूके सर्ज्जकेपि च।
भुक्त्वा शयीत शयने सुशुद्धे वसुधातले ॥५०७॥
अहतास्तरणास्तीर्णे सन्दर्भेणायने शुचौ।
मन्त्रिते मूलमन्त्रेण जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥५०८॥
अभीष्टदेवतां ध्यायन् प्राक्शिरस्को निशि स्वपेत्।
अर्धरात्रे समुत्थाय पादशौचं विधाय च ॥५०९॥
आचम्य देवं सम्पूज्य शीघ्रं संस्पृश्य पूर्ववत्।
जपं कुर्याद्यथाशक्ति त्वर्पयेच्च तथेश्वरे ॥५१०॥
स्वपेत्ततस्तु यो दृष्टः स्वप्नं तं गुरवे वदेत्।
जपश्चायं वनस्थानां प्रोक्तो वै ब्रह्मवादिनाम् ॥५११॥
देशाद्युपद्रवत्रासात्स्वैरं यावत्समापनम्।
कर्त्तव्यं चेदयं कालः प्रोक्तोऽत्यावश्यकेऽपि च ॥५१२॥
आमध्याह्नं जपः श्रेष्ठो मध्यमप्रहरत्रयम्।
सार्धयामत्रयं हीनोऽवश्यके प्रोक्तलक्षणः ॥५१३॥

हे देवताओं! अब वर्णाश्रम-भेद से विशेष वर्णन सुनिये: अतिशय पवित्र एवं देवताओं को भी दुर्लभ तिलतैल को अभिमन्त्रित करने के उपरान्त शरीर पर मर्दन करके गृहस्थों को नित्य स्नान करना चाहिये। द्विजों को तिल के तेल को वैदिक मन्त्र से प्रोक्षण आदि कर्म करके मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करके भोजन में प्रयोग करना चाहिये। भोजन के समय प्यास लगने पर मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीना चाहिये। पलाश के पत्ते पर भोजन करना चाहिये; अन्य पत्रों पर नहीं। पलाशपत्र के अभाव में केले के पत्ते, महुआ के पत्ते, साल के पत्ते पर भोजन करके साफ पवित्र स्थान पर शुद्ध, छिद्रादि से रहित मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित पावत्र कुश के बिछावन पर क्रोधरहित एवं जितेन्द्रिय होकर अभीष्ट देवता का ध्यान करके पूरब तरफ शिर करके रात में शयन करना चाहिये। आधी रात में उठकर पाँव धोकर आचमन करके देवता का शीघ्रतापूर्वक पूजन कर स्पर्श करके यथाशक्ति जप करना चाहिये एवं उस जप को देवता को अर्पित करना चाहिये। तदनन्तर शयन करने पर जो स्वप्न दिखाई दे, उसे गुरु को बतलाना चाहिये। इस प्रकार का जप वानप्रस्थ ब्रह्मवादियों के लिये विहित है। देश में उपद्रव अथवा भय की स्थिति उपस्थित होने पर उसके समापन तक आवश्यकता पड़ने पर जप करना चाहिये। मध्याह्न तक जप श्रेष्ठ होता है। मध्याह्न से तीसरे प्रहर तक का जप मध्यम होता है एवं रात्रि के साढ़े तीन प्रहर तक का जप अधम माना जाता है।।५०३-५१३।।

जपकालः

पञ्चधा तु विधिः प्रोक्तो जपसम्पूर्णकारकः ।
आद्यः कल्पः प्रतिदिनमामध्याह्नं जपं चरेत् ॥५१४॥
तद्दशांशेन कल्पोक्तद्रव्यैर्होमं प्रकल्पयेत् ।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा तथा ब्राह्मणभोजनम् ॥५१५॥
तस्य दशांशतश्चायं प्रथमः कल्प ईरितः ।
अयं द्वितीयः कल्पस्तु लक्षमेकं जपं चरेत् ॥५१६॥
होमादिकं तस्य कृत्वाऽग्रिमलक्षं समारभेत् ।
अयं तृतीयः कल्पस्तु सम्पूर्णं जपमाचरेत् ॥५१७॥
पूर्णे होमे तर्पणादि पूर्वमेवाचरेदिति ।
चतुर्थस्तु तथा कल्पो दरिद्रैर्द्विगुणो जपः ॥५१८॥
होमाद्यभावे कर्त्तव्यस्त्र्यादिनिघ्नो नृपादिकैः ।
पञ्चमस्तु तथा कल्पो यस्य देवस्य यत्प्रियम् ॥५१९॥
तदेव द्विगुणं कार्यं शीघ्रं दैवततुष्टये ।

जप-काल—पाँच प्रकार का जप सम्पूर्णता-प्रदायक माना जाता है। पहला कल्प है कि दोपहर तक जप करे। जप का दशांश कल्पोक्त द्रव्यों से हवन करे। तदनन्तर हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन और मार्जन का दशांश ब्राह्मण-भोजन का विधान है। इस प्रकार जप का प्रथम कल्प कहा गया है। द्वितीय कल्प के अनुसार एक लाख जप करे। उसका दशांश हवन, तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मण-भोजन करावे। इसके बाद अग्रिम लक्ष जप प्रारम्भ करे। तृतीय कल्प के अनुसार पूरा जप करे। इसके बाद दशांश हवन, तर्पण, मार्जनादि करे। चौथे कल्प के अनुसार स्त्री आदि के वशीभूत राजाओं अथवा दरिद्रों को दुगुना जप करना चाहिये; क्योंकि वे हवनादि सामग्री नहीं जुटा सकते। पाँचवें कल्प के अनुसार अपने देवता के प्रीतिकर कर्म करना उचित है। निश्चित संख्या से दुगुने जप से देवता शीघ्र तुष्ट हो जाते हैं।

जपप्रियाः सर्वदेव्यो वाममार्गे बलिप्रियाः ॥५२०॥
होमप्रियो महादेवो भास्करस्तर्पणप्रियः ।
मार्ज्जनं तु गणेशस्य विष्णोर्ब्राह्मणभोजनम् ॥५२१॥

सभी देवियों को जप प्रिय है एवं वाममार्ग में सभी देवियों को बलि प्रिय है। महादेव को हवन प्रिय है, सूर्य को तर्पण प्रिय है, गणेश को मार्जन प्रिय है एवं विष्णु को ब्राह्मण-भोजन प्रिय है।।५२०-५२१।।

प्रायश्चित्तं तु न कृतं तदा शुद्धो भवेद् द्विजः।
पुरश्चर्य्याचतुष्केण त्रिद्व्याद्यैः क्षत्रियादयः ॥५२२॥

प्रायश्चित्त नहीं करने पर भी चार पुरश्चरण करने पर ब्राह्मण शुद्ध होता है। इसी प्रकार तीन पुरश्चरण से क्षत्रिय, दो पुरश्चरण से वैश्य एव एक पुरश्चरण से शूद्र शुद्ध होता जाता है।।५२२।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते।
ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः ॥५२३॥
नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रे जले स्थितः।
स्पर्शादिमुक्तिपर्य्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥५२४॥
तावत्कालं जपेदित्थं ततो होमादिकं चरेत्।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् पुरश्चर्य्यासमं त्विदम् ॥५२५॥

अथवा अन्य प्रकार के पुरश्चरण का वर्णन करता हूँ। सूर्य और चन्द्र-ग्रहण के पूर्व पवित्रतापूर्वक उपवास रहकर समुद्र-गामिनी नदी में नाभि तक जल में खड़े होकर एकाग्र चित्त से ग्रहण के स्पर्श से मोक्ष तक जप करे। इसके बाद हवनादि सम्पन्न करने के पश्चात् ब्राह्मण-भोजन करावे। यह पुरश्चरण के समान होता है।।५२३-५२५।।

प्रायश्चित्तं प्रयोगस्य प्रत्यवायस्य नाशनम्।
येषां जपे च होमे च सङ्ख्या तन्त्रेषु नोदिता ॥५२६॥
तत्र चेयं पुरश्चर्य्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता।

प्रायश्चित्त करने से प्रयोग के प्रत्यवाय का नाश होता है। जिस जप एवं हवन के लिये तन्त्रों में निश्चित संख्या नहीं कही गई है, वहाँ इस पुरश्चरण को गुप्त रखा गया है।।५२६।।

वाममार्गाय मन्त्राणामेवमेवान्यदुच्यते ॥५२७॥
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णचतुर्दशी।
देवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमयुतानां चतुष्टयम् ॥५२८॥
दशांशं होमयेत्पश्चात्तर्पयेदभिषेचयेत्।

वाममार्ग में मन्त्रपुरश्चरण के दूसरे ही प्रकार का वर्णन है। उसके अनुसार कृष्ण पक्ष की अष्टमी से कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तक देवता का ध्यान करके चार अयुत अर्थात् चालीस हजार जप करे। इसके बाद इसका दशांश हवन, तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मणभोजन करावे।।५२७-५२८।।

असिद्धत्वाद् गुरोर्देवाः शिष्यसिद्धिर्न जायते ॥५२९॥

तदोपायं प्रकुर्याद्यत्तद् गोप्यमधुनोच्यते ।
अनुलोमविलोमेन बिन्दुमन्मातृकाक्षरैः ॥५३०॥
जपेत्सम्पुटितं मन्त्रं प्रत्यहं शतसङ्ख्यया ।
एकमासं ततो होमादिकात्सिद्धो भवेन्मनुः ॥५३१॥
पुरश्चर्योक्तमखिलमाह्निकं च समाचरेत् ।

गुरु एवं देवता के असिद्ध होने पर शिष्य को भी सिद्धि नहीं प्राप्त होती। उसके लिये जो उपाय गुप्त रखे गये हैं, मैं आज उनको प्रकट करता हूँ। बिन्दुयुक्त मातृकाओं द्वारा अनुलोम-विलोम से मन्त्र को सम्पुटित करके प्रतिदिन एक महीने तक एक सौ बार जप करे। इसके बाद हवनादि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस अनुष्ठान में पुरश्चरण-हेतु विहित समस्त आह्निक क्रियाओं का पालन अवश्य करना चाहिये।

एवं वैदिकमन्त्रस्य सिद्ध्येऽत्र च सस्वराः ॥५३२॥
वर्णा देया बिन्दुयुक्ताः क्रमतश्चोत्क्रमेण च ।
ह्रस्वदीर्घप्लुतैर्भेदैरइउऋ त्रिधा मताः ॥५३३॥
ह्रस्वः प्लुतो लृद्विविध ए चापि द्विविधो मतः ।
दीर्घप्लुतविभेदेन ह्यनुस्वारविसर्गकैः ॥५३४॥
चतुर्विंशतिराख्याताः स्वरा एवं ञमैः स ह ।
चत्वारः कादिका वर्णा जिह्वामूलीययुक्च कः ॥५३५॥
एवं कवर्गो दशधा चाद्याः पञ्चदश स्मृताः ।
उपध्मानीयसंयुक्तः पकारस्तेन तत्र षट् ॥५३६॥
याद्यष्टावपि सम्प्रोक्ता यज्ञे वेदे तु मातृकाः ।
लृक्षौ द्वावधिकौ ऋक्षु क्षोऽधिकोऽथर्वणि स्मृतः ॥५३७॥

इसी प्रकार वैदिक मन्त्र सस्वर पाठ से सिद्ध होते हैं। बिन्दुयुक्त मन्त्र के वर्णों को क्रम-उत्क्रम से ह्रस्व, दीर्घ, प्लुतभेद से 'अ इ उ ऋ' तीन प्रकार के होते हैं। ह्रस्व और प्लुत के भेद से 'ऌ' दो प्रकार का होता है। 'ए, ओ, ऐ, औ' भी दीर्घ और प्लुत के भेद से दो प्रकार का होता है। अनुस्वार एवं विसर्ग-सहित स्वर चौबीस प्रकार के कहे गये हैं। ञ, म, स, ह, कवर्ग एवं जिह्वामूल-युक्त क—इस तरह दश प्रकार के कवर्ग होते हैं। इन सभी का उच्चारण जिह्वामूल से होता है। उपध्मानीय से संयुक्त पकार छः होते हैं। य से ह तक के आठ वर्ण भी यज्ञ एवं वेदों में मातृका माने जाते हैं। ऋग्वेद में 'ऌ' एवं 'क्ष'—ये दो अधिक माने जाते हैं। अथर्व में 'क्ष' को भी मातृका माना जाता है।।५३२-५३७।।

जपश्चाष्टोत्तरशतं प्रत्यहं मासमात्रकम्।
अनध्यायान् वर्जयित्वा चत्वारिंशद्दिनं तथा ॥५३८॥
होमादिसकलं प्राप्य नित्यमेव प्रकल्पयेत्।
क्षुद्रदैवतमन्त्रं तु भूतलिप्या पुटीकुरु ॥५३९॥
क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्तिं कुर्यात्सिद्धिस्तु मासतः।

एक महीने तक प्रतिदिन मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। अथवा अनध्याय के दिनों को छोड़कर चालीस दिनों तक जप करना चाहिये। प्रतिदिन हवन आदि सभी कर्म भी करना चाहिये। क्षुद्र देवताओं के मन्त्र को भूतलिपि से पुटित करके क्रम-उत्क्रम से सौ बार जप करने से एक महीने में सिद्धि मिल जाती है।

अचो हयवरला आद्यन्तिमद्विचतुर्थकम् ॥५४०॥
तृतीयं च क्रमेणैव वर्गाणामक्षरं पठेत्।
ऊष्मत्रयं ततश्चैवं द्विचत्वारिंशदक्षरैः ॥५४१॥
इत्युग्रदैवते जाप्यस्त्वष्टोत्तरसहस्रकः।
त्रिकालं गन्धपुष्पाद्यैर्निशीथे परतः पुनः ॥५४२॥
षण्मासं कौलिकाद्यैश्चेदर्चिता सुप्रसीदति।
अयोग्यैर्गुरुतो लब्धाचार्यादिस्थानमाश्रितैः ॥५४३॥
उद्दशाद्वा पुरश्चर्य्या कर्त्तव्येत्युच्यते न हि।

अवर्ग, ह य व र ल, वर्ग का पहला, अन्तिम, दूसरा, चौथा और तीसरा वर्ण, तीनों ऊष्म श ष स—इस प्रकार कुल बयालीस अक्षर; जैसे—अं इं उं ऋं लृं एं ऐं ओं औं हं यं वं रं लं कं ङं खं घं गं चं ञं छं झं जं टं णं ठं ढं डं तं नं थं धं दं पं मं फं भं बं शं षं सं—इस प्रकार उग्र देवता के मन्त्र का जप एक हजार आठ बार करना चाहिये। प्रातः, दोपहर, शाम एवं रात्रि में गन्ध-पुष्पादि से छः महीने तक पूजन कौलिकादिकों को करना चाहिये। इससे देवता प्रसन्न होते हैं। अयोग्य गुरु से प्राप्त अथवा आचार्यादि के स्थान पर प्राप्त मन्त्र के पुरश्चरण का कोई विधान नहीं है।

राज्ञां भाग्यवतो वापि सुकुमारस्य वा यथा ॥५४४॥
सिद्धिर्भवेत्तथा वक्ष्ये वर्णौषधिपुरस्क्रियाम्।
सप्तधा सा परिज्ञेया वर्णमासैस्तु सिद्धिदा ॥५४५॥

राजा, भाग्यशाली, सुकुमार लोगों को जिस प्रकार सिद्धि मिलती है; उसके लिये वर्णौषधि पुरश्चरण विधि का वर्णन करता हूँ। वह सात प्रकार का होता है। मन्त्र में जितने वर्ण होते हैं, उतने महीने में सिद्धि मिलती है।।५४४-५४५।।

मन्त्रवर्णौषधीकाष्ठैरचयेद् गुटिकाः शुभाः ।
वर्णक्रमेण ताः प्रोक्ता अनुलोमविलोमतः ॥५४६॥
मूलादिभ्यश्च ऋहुशः कर्त्तव्या मणयो यथा ।
सर्पद्वयाकृतिर्माला भवेन्नित्यं ततो जपेत् ॥५४७॥
मालाया मणिसङ्ख्याकः प्रथमोऽयं जपः स्मृतः ।

वर्णौषधि का प्रयोग—मन्त्रवर्णों की औषधिकाष्ठ से शुभ गुटिका वर्णक्रम से अनुलोम-विलोम प्रकार से बनानी चाहिये। अनुलोमक्रम में अ से क्ष तक के वर्णों की गुटिका को क्रमशः छोटी बनानी चाहिये। विलोमक्रम में ल की बड़ी गुटिका होगी और वह अ तक क्रमशः छोटी होती जायेगी। इससे माला की आकृति दो सर्पों के आकार की हो जायगी। दोनों का मुख सुमेरु के पास होगा और पूँछ मध्य में होगा। इस दो सर्पों की आकृति वाली माला से उसकी मणियों की संख्या के बराबर नित्य जप करना चाहिये। यह जप का प्रथम प्रकार कहा गया है।।५४६-५४७।।

सर्वे समाना मणयः प्रोतव्याः सार्णसूत्रकैः ॥५४८॥
कण्ठे धार्य्या कण्ठमाला नित्यमेष द्वितीयकः ।
तथैव राजते सूत्रे ये होताः परिपूजयेत् ॥५४९॥
तद्देवकल्पमार्गेण प्रक्रमोऽयं तृतीयकः ।
वर्णौषधीनां क्वाथेन नित्यं स्नानं चतुर्थकः ॥५५०॥
वर्णौषधिजलादिभ्यो गोघृतेन तु पञ्चमः ।
तच्चूर्णोद्वर्त्तनं कुर्यादेष षष्ठः प्रकीर्तितः ॥५५१॥
तद्भस्मधारणं नित्यं कुर्यादिति तु सप्तमः ।

दूसरे प्रकार की माला में सभी मणियाँ बराबर होती हैं। मणियों को मातृका जप के साथ सूत्र में पिरोना चाहिये। इस माला को नित्य गले में धारण करना चाहिये। तीसरे प्रकार की माला भी दूसरी तरह की माला के समान ही बनानी चाहिये। इसका पूजन देवता के कल्प मार्ग से करना चाहिये। चौथे प्रकार के पुरश्चरण कर्म में वर्णौषधि क्वाथ से स्नान करना चाहिये। वर्णौषधि के पाँचवें प्रकार में वर्णौषधि जल में घी मिलाकर स्नान करना चाहिये। छठे प्रयोग में वर्णौषधि चूर्ण का उबटन लगाना चाहिये। वर्णौषधि के सातवें प्रयोग में उसके भस्म को नित्य धारण करना चाहिये।

मन्त्रसिद्धेरुपायाः

ब्रह्मद्वेषाद् गुरोर्द्वेषात् स्त्रीद्वेषाच्चेन्न जायते ॥५५२॥
शापतो वा कीलितत्वात्तत्रोपायाष्टकं भवेत् ।
सन्तर्पाप्यायनं द्रावो बोधनं च वशीकृतिः ॥५५३॥

पीडनं पोषशोषौ च दहनं तत्क्रियोच्यते।

मन्त्र-सिद्धि के उपाय—ब्रह्मद्वेष, गुरुद्वेष अथवा स्त्रीद्वेष होने के कारण यदि मन्त्रसिद्धि नहीं हो रही हो अथवा मन्त्र के शापित किंवा कीलित होने के कारण यदि उनकी सिद्धि न होती हो तो उसके निराकरण के लिये आठ उपाय कहे गये हैं—सन्तापाप्यायन, द्रावण, बोधन, वशीकरण, ताड़न, पोषण, शोषण एवं दीपन। अब इनकी क्रियाओं को कहा जा रहा है।।५५२-५५३।।

भूर्जपत्रं समानीय पद्ममष्टदलं लिखेत्।।५५४।।
अष्टगन्धेन देवस्य रोचनाचन्दनेन वा।
साधकस्य तु नामार्णैर्मन्त्रं सन्दर्भितं लिखेत्।।५५५।।
यावद् द्वयोः समाप्तिः स्यात्तस्य चाद्यन्तयोर्लिखेत्।
तारादिकं साधकस्य नामाथाष्टदलेषु च।।५५६।।
द्वौ द्वौ लेख्यौ स्वरौ तत्र सम्यग्ध्यायन् सुधात्मकम्।
तत्संवेष्ट्य मृदा सम्यग्वेष्टयेद् ब्राह्मणादिकः।।५५७।।
शुक्लादिवर्णया पश्चात्सद्वस्त्रेण च वेष्टयेत्।
क्षिपेत्त्रिमधुरे तत्तु मृण्मये लघुभाजने।।५५८।।
क्षीरपूर्णे नवे कुम्भे तत्क्षिपेल्लघुभाजनम्।
अग्निसंस्थापनं कृत्वा सन्निधौ तस्य तं घटम्।।५५९।।
संस्थापयेत्त्रिमधुरैर्मूलमन्त्रेण होमयेत्।
अष्टाधिकसहस्रं तु सम्यक्तं कलशं क्षिपेत्।।५६०।।
होमं समाप्य तं कुम्भं निःक्षिप्य च जलाशये।
स्वगुरुं ब्राह्मणांश्चान्नैस्तोषयेद्दक्षिणादिभिः।।५६१।।
सन्तापाप्यायनं चैतदुक्तं सिद्धिर्न चेद्भवेत्।
द्रावणं तु तदा कुर्यात्तत्प्रकार इहोच्यते।।५६२।।

सन्तापाप्यायन—भोजपत्र लाकर उस पर अष्टगन्ध, गोरोचन अथवा चन्दन से अष्टदल कमल बनाकर उस कमल के आठ दलों पर साधक के नाम के वर्ण के साथ-साथ मन्त्रवर्ण को भी आरम्भ से अन्त तक लिखे। वर्णों के पहले ॐ लगावे। आठ दलों पर दो-दो स्वरों को वं बीज का चिन्तन करते हुये लिखे। इसके बाद उसे लपेट करके ऊपर से ब्राह्मणादि की शुक्ल आदि मिट्टी से सम्यक् रूप से वेष्टित करे। इसके बाद उस पर स्वच्छ वस्त्र लपेटकर छोटे मिट्टी के पात्र में शक्कर, शहद एवं घी डालकर उसमें उसे छिपा दे। इसके बाद नये बड़े मिट्टी के बर्तन में दूध भरकर उसमें उसे छिपा दे। तब उस घट के समीप अग्नि-स्थापन करके दूसरे पात्र में शक्कर, शहद

एवं घी रखकर उससे एक हजार आठ की संख्या में मूल मन्त्र से हवन करे। हवन-समापन के बाद उस घट को जलाशय में छिपा दे। इसके बाद अपने गुरु और ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे। इसे ही 'सन्तापाप्यायन' कहते हैं। इससे भी यदि सिद्धि न मिले तब द्रावण करना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है।

वंबीजेन ग्रन्थयित्वा भूर्जपत्रे लिखेन्मनुम्।
उशीररोचनाभ्याञ्च शिलाकर्पूरकुङ्कुमैः ॥५६३॥
क्षीराज्यमधुतोयानां मध्ये तं लिखितं क्षिपेत्।
पूजनाच्च जगाद्धोमाद्रावितः फलदो भवेत् ॥५६४॥

द्रावण—मन्त्रवर्णों को 'वं' बीज से ग्रथित करके भोजपत्र पर खश, गोरोचन, शिलाजीत, कपूर, कुमकुम के मिश्रण से लिखे। उस भोजपत्र को दूध, घी, मधु और जल से पूर्ण पात्र में छिपा दे। तदनन्तर पूजन करके जप करने के पश्चात् हवन करे। इस द्रावण क्रिया से मन्त्र फलवान होता जाता है।।५६३-५६४।।

द्रावितोऽपि न सिद्धश्चेद्बोधनं तस्य कारयेत्।
वाग्भवेन च बीजेन सम्पुटीकृत्य तं जपेत् ॥५६५॥
एवं बुद्धो भवेत्सिद्धो नो चेत्कुर्याद्वशीकृतिम्।

बोधन—यदि द्रावण से भी मन्त्र सिद्ध न हो तब बोधन करना चाहिये। इसकी विधि यह है कि मन्त्र को 'ऐं' बीज से सम्पुटित करके उसका जप करे। ऐसा करने से प्रबुद्ध होकर वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। यदि बोधन से भी मन्त्र सिद्ध न हो, तब वशीकरण करना चाहिये।।५६५।।

कुचन्दनं महादारु हरिद्रा च मनःशिला ॥५६६॥
एतैस्तु लिखितो मन्त्रो भूर्जपत्रे सुशोभने।
कण्ठे धृतो भवेद्वश्यो नो चेत्कुर्यात्प्रपीडनम् ॥५६७॥

वशीकरण—वशीकरण की विधि यह है कि एक सुन्दर भोजपत्र पर लाल चन्दन, महादारु, हरिद्रा एवं मैनसिल से मन्त्र को लिखकर कण्ठ में धारण करना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र साधक के वश में हो जाता है। इस प्रक्रिया के करने पर भी यदि मन्त्र सिद्ध न हो तो उसका पीड़न करना चाहिये।।५६६-५६७।।

अनुदात्तस्वरेणाद्यमुदात्तेन द्वितीयकम्।
तृतीयमनुदात्तेन पठेत्तुर्य्यमुदात्ततः ॥५६८॥
एवं पदानि सर्वाणि पठेन्मन्त्रस्य साधकः।
अनुदात्तपदोच्चारे देवं ध्यायेदधः स्थितम् ॥५६९॥

ऊर्ध्वस्थितमुदात्तस्योच्चारेऽष्टाधिकसहस्रकम् ।
जपेन्मन्त्रं ततो भूर्जे भानुदुग्धेन लेखयेत् ॥५७०॥
मन्त्रं तमाक्रमेद्वामपादेनाथ च होमयेत् ।
अष्टोत्तरशतं मन्त्रः पीडितः स प्रसीदति ॥५७१॥
न सिद्धश्चेत्तदा पोष्यः प्रोच्यते तत्क्रियाधुना ।

पीड़न—मन्त्र के चार अक्षरों के पद में से पहले का अनुदात्त स्वर में, दूसरे का उदात्त स्वर में, तीसरे का अनुदात्त स्वर में और चौथे का उदात्त स्वर में पाठ करे। इसी प्रकार साधक मन्त्र के समस्त पदों का पाठ करे। अनुदात्त उच्चारण के समय देवता का ध्यान अपने से नीचे करे। उदात्त स्वर के पाठ में देवता का ध्यान अपने से ऊपर करे। इसी प्रकार एक हजार आठ बार मन्त्र का जप करे। इसके बाद मन्त्र को भोजपत्र पर अकवन के दूध से लिखकर उसे वाम पाद से दबाकर मन्त्र से एक सौ आठ बार हवन करे। ऐसा करने से मन्त्र पीड़ित होकर प्रसन्न होता है। इससे भी यदि मन्त्र सिद्ध न हो तो उसका पोषण करना चाहिये। पोषण की क्रिया इस प्रकार है।

सोम्बीजपुटितं मन्त्रं लिखेद्भूर्जस्य पत्रके ॥५७२॥
रोचनाकुङ्कुमाभ्याञ्च धारयेद्दधिदुग्धयोः ।
इदं पोषणमित्युक्तमथ शोषणमुच्यते ॥५७३॥

पोषण—गोरोचन एवं कुमकुम की स्याही से भोजपत्र पर 'सों' बीज से पुटित करके मन्त्र को लिखकर उसे दही-दूध में रख दे। इसी ही पोषण कहते हैं। अब शोषण का वर्णन करता हूँ।।५७२-५७३।।

यज्ञस्य भस्मनालेख्य वायुबीजविदर्भितम् ।
भूर्जपत्रे स्वेष्टमन्त्रं तत्कण्ठे धारयेदिति ॥५७४॥
एतच्छोषणमित्युक्तं दहनं प्रोच्यतेऽधुना ।

शोषण—यज्ञ-भस्म की स्याही से भोजपत्र पर वायुबीज से विदर्भित करके इष्ट मन्त्र को लिखकर उसे कण्ठ में धारण करे। इसे ही शोषण कहते हैं। अब दहन का वर्णन किया जा रहा है।।५७४।।

पृथक्पृथक्च मन्त्राणां चतुर्दिक्षु रःभावृतान् ॥५७५॥
रंबीजेन पलाशस्य बीजतैलेन संलिखेत् ।
भूर्जपत्रेऽथ तद्धार्य्यं कण्ठे दाहक्रिया त्वियम् ॥५७६॥

दहन—पलाशबीज के तेल से भोजपत्र पर चारो दिशाओं में 'रं' बीज से समावृत मन्त्र को अलग-अलग लिखे। इसे कण्ठ में धारण करे। इसे ही दहन क्रिया कहते हैं।।५७५-५७६।।

शाबरमन्त्राणां पुरश्चरणविधिः

अथ शाबरमन्त्राणां पुरश्चरणमुच्यते।
कामरूपाख्यदेशे तु कामाक्षा यत्र देवता ॥५७७॥
कामशैलोऽस्ति यत्रासौ कामपीठः स उच्यते।
तत्र संलेख्य मन्त्रं हि वंशोपरि यथाक्रमम् ॥५७८॥
गुरुणा वाचनीयः स स्वयं पश्चात्पठेन्मनुम्।
गुरोरभावे तस्यैव मूले शैलस्य पर्वणि ॥५७९॥
लिखित्वा प्रपठेन्मन्त्रं कामपीठं गुरुर्मतः।

शाबर-मन्त्र पुरश्चरण-विधि—अब शाबर मन्त्रों के पुरश्चरण का वर्णन किया जाता है। कामरूप देश में कामाख्या देवता हैं। वहाँ कामपर्वत पर कामपीठ है। वहाँ जाकर कर बाँस पर यथाक्रम मन्त्र-लेखन करे। उस लिखित मन्त्र का वाचन पहले गुरु करे। इसके बाद स्वयं पढ़े। गुरु के अभाव में उस पर्वत के मूल में पर्वदिन में मन्त्र को पत्तों पर लिखकर उस मन्त्र को गुरुमत से कामपीठ पर पढ़े।।५७७-५७९।।

अथवा योगिनीशैले दक्षिणस्यां दिशि ध्रुवम् ॥५८०॥
योगाम्बा यत्र देवी सा लिखित्वात्र पठेन्मनुम्।
ज्वालामुखीसमीपे वा हिङ्गुलाजसमीपतः ॥५८१॥
लिखित्वा प्रपठेन्मन्त्रं नान्यथैव प्रसिद्ध्यति।

अथवा दक्षिण दिशा में स्थित योगिनी पर्वत पर योगाम्बा देवी के समीप अथवा ज्वालामुखी के समीप या हिंगुलाज के समीप मन्त्र को लिखकर वाचन करे। इसी प्रकार से शाबर मन्त्र सिद्ध होते हैं; दूसरे प्रकार से सिद्ध नहीं होते।।५८०-५८१।।

मुख्यतः स्त्रीसमीपे तु कामपीठे मनोर्ग्रहः ॥५८२॥
अथवा सर्वदेशेषु मन्त्रग्रहणमुच्यते।
तालपत्रे लिखेन्मन्त्रं पूर्णकुम्भे निधापयेत् ॥५८३॥
भास्करन्तु गुरुं ध्यात्वा वाचयेत्त्रिर्गुरू रविः।

मुख्यतः कामपीठ पर स्त्री के समीप मन्त्र-ग्रहण करना चाहिये। अथवा सभी स्थानों पर मन्त्र-ग्रहण की विधि कहता हूँ। मन्त्र को ताड़पत्र पर लिखकर जलपूर्ण घड़े में रखे। सूर्य का ध्यान गुरुरूप में करके तीन बार बोले—'गुरुः रविः' सूर्य ही गुरु हैं।

तान्त्रिकमन्त्रदीक्षाग्रहणविधिः

अथ तान्त्रिकमन्त्राणां दीक्षां शृणु गुरुं विना ॥५८४॥
शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां चन्द्रताराबलान्विते।
गत्वा च दक्षिणामूर्त्तेः सन्निधौ पूजयेच्च तम् ॥५८५॥

कलशस्थापनं कृत्वा तदग्रे तु परिक्षिपेत्।
तालपत्रे लिखित्वाथ मन्त्रं देवं च पूजयेत् ॥५८६॥
देवो गुरुरिति ध्यात्वा मन्त्रं व्यक्तं तु वाचयेत्।
अष्टोत्तरशतं चैव मन्त्रग्रहणमुच्यते ॥५८७॥

गुरु के विना तान्त्रिक मन्त्र-दीक्षा-विधि—अब गुरु के विना तान्त्रिक मन्त्रों के ग्रहण का विधान सुनिये। शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि में चन्द्रबल और ताराबल देखकर दक्षिणामूर्ति के समीप जाकर उनकी पूजा करे। उनके आगे कलश स्थापित करके ताड़पत्र पर मन्त्र लिखकर कलश में डाल दे और देवता का पूजन करे। देवता को ही गुरु मानकर स्पष्ट रूप से मन्त्र का वाचन करे। इस प्रकार एक सौ आठ बार मन्त्र का उच्चारण करने से मन्त्र-ग्रहण हो जाता है।।५८४-५८७।।

जपस्यैव सिद्धिमोक्षसाधकत्वम्

एतत्तत्त्वं समाख्यातं गोप्यं मातरि जारवत्।
गुरौ लोभादयो दोषास्तस्मादुद्विजते जनः।
अतः शास्त्रं गुरुं कृत्वा दक्षिणामूर्तितो मनुः ॥५८८॥
एवं सिद्धे मनौ देवि मोक्षमार्गनिबन्धकाः।
तपःक्षयकराश्चैव जायन्ते नैकसिद्धयः ॥५८९॥

जप ही सिद्धि और मोक्ष का साधक—उपर्युक्त तत्त्वों को माता के जार अर्थात् प्रेमी के समान गुप्त रखना चाहिये। गुरु में लोभादिक दोष होने के कारण लोगों में भ्रम उत्पन्न होता है। अतः शास्त्र को ही गुरु मानकर जो लोग दक्षिणामूर्ति से मन्त्र-ग्रहण करते हैं, वे मन्त्र सिद्ध होने पर भी मोक्षमार्ग के निबन्धक अर्थात् बाधक होते हैं। ये सिद्ध मन्त्र तप को क्षीण करने वाले होते हैं एवं इनसे किसी भी प्रकार की सिद्धि नहीं मिलती।।५८८-५८९।।

स्वल्पसिद्धौ निमग्नश्चेन्न जायन्तेऽणिमादयः।
अणिमादिषु मग्नश्चेन्मोक्षवार्तातिदुर्लभा ॥५९०॥
अल्पं तपः क्षणान्नश्येन्मध्यमं चापि गर्वतः।

मनुष्य यदि स्वल्प सिद्धि में ही निमग्न हो जाय तो उसे अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त नहीं होतीं एवं यदि अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति में ही जो मग्न हो जाता है, उसके लिये मोक्ष तो अत्यन्त ही दुर्लभ होता है। थोड़ा तप तत्काल ही नष्ट हो जाता है, मध्यम तप गर्व से नष्ट हो जाता है।।५९०।।

सिद्धिद्वारमिदं तस्य मया लक्षणमुच्यते ॥५९१॥

स्वप्ने वाक्षिसमक्षं वा आश्चर्यमतिहर्षदम्।
अकस्माद्यदि जायेत न ख्यातव्यं गुरुं विना ॥५९२॥
प्रकाशनीयं न क्वापि ऐहिकीं सिद्धिमिच्छता।
प्रकाशयति यो मोहादौत्सुक्यान्मन्त्रजं सुखम्।
निकटस्थाश्च तास्तस्य सिद्धयो यान्ति दूरतः ॥५९३॥
आभवन्ति च दुःखानि शोकाश्च विविधा अपि।

अब सिद्धिद्वार का लक्षण कहता हूँ। स्वप्न में या प्रत्यक्ष अति हर्षप्रद आश्चर्य अकस्मात् यदि दिखाई पड़े तो ऐहिकी सिद्धि की इच्छा रखने वाले को उसके बारे में गुरु के अतिरिक्त किसी को भी नहीं बतलाना चाहिये। कोई साधक यदि मोहवश अथवा उत्सुकतावश मन्त्रज सुख को किसी अन्य के समक्ष प्रकट करता है तो उसके निकट आयी हुई सिद्धि भी उससे दूर भाग जाती है। साथ ही नाना प्रकार के दुःख एवं शोक उसे आक्रान्त कर लेते हैं।।५९१-५९३।।

अल्पाशनं स्वल्पनिद्रा सदा चित्तप्रसन्नता ॥५९४॥
प्रकाशयुक्शरीरं च वाक्यं सत्यं प्रजायते।
मन्त्राराधनशक्तस्य प्रथमं वत्सरत्रयम् ॥५९५॥
जायन्ते बहवो विघ्ना नियमत्यागहेतवः।
नोद्वेगं साधको याति कर्मणा मनसा यदि ॥५९६॥
ततो वर्षत्रयादूर्ध्वं राजानश्च महीभृतः।
प्रार्थयन्तेऽनुरोधेन गर्विता अपि मानिनः ॥५९७॥
प्रसादः क्रियतां नाथ ममोद्धरणकारणम्।
प्रज्वलन्तं प्रपश्यन्ति तेजसा विभवेन च ॥५९८॥
अतस्ते मुनिशार्दूलं विस्तरं वक्तुमक्षमाः।
नवमाद्वत्सरादूर्ध्वं स्वयं सिद्ध्यति मन्त्रराट् ॥५९९॥
वाङ्मनोरथसंसिद्धो दाता भोक्ता ह्ययाचकः।

स्वल्प भोजन, स्वल्प निद्रा, सदा चित्त की प्रसन्नता, शरीर का प्रकाशयुक्त होना एवं वाणी की सत्यता सिद्धि-प्राप्ति को बताने वाले शुभ लक्षण होते हैं। मन्त्राराधन में लीन साधक के व्रत को भङ्ग करने हेतु पहले तीन वर्षों में अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं। उन बहुविध विघ्नों के उपस्थित होने पर भी मन से अथवा कर्म से साधक यदि उद्विग्न नहीं होता तो तीन वर्षों के उपरान्त अतिशय अहंकारी अथवा मानी चक्रवर्ती राजा लोग भी अनुरोधपूर्वक उससे प्रार्थना करते हैं कि हे नाथ! प्रसन्न होइये और मेरे उद्धार का उपाय बतलाइये। वे उसे तेज के वैभव से प्रज्वलित देखते हैं; अतः वे उस श्रेष्ठ मुनि से विस्तार-पूर्वक कुछ भी कहने में असमर्थ होते हैं।

नवें वर्ष के बाद उस साधक को मन्त्रराज स्वयं सिद्ध हो जाता है, जिसके प्रभाव से उस साधक के वचन एवं मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। वह दाता, भोक्ता और अयाचक हो जाता है।।५९४-५९९।।

अथ वक्ष्ये दरिद्रस्य मन्त्रसिद्धिर्यथा भवेत् ॥६००॥
होमकर्मण्यशक्तस्य विप्रस्य द्विगुणो जपः।
इतरेषान्तु वर्णानां त्रिगुणादिर्विधीयते ॥६०१॥
होमद्विगुणजाप्येन सम्पूर्णं तर्पणं भवेत्।
अकृते मार्ज्जने प्रोक्तस्तर्पणाद् द्विगुणो जपः ॥६०२॥
प्रत्याम्नायो ब्रह्मभोज्ये न कुत्रापि श्रुतौ श्रुतः।
सर्वथा भोजयेद्विप्रान् कृतसाङ्गत्वसिद्धये ॥६०३॥
विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं प्रजायते।
यानि यानि तु कर्माणि हीयन्ते द्विजभोजनैः।
निरर्थकानि तानि स्युर्बीजान्यूषरगानि च ॥६०४॥

अब जिस प्रकार दरिद्रों को मन्त्र सिद्ध होता है, उसका वर्णन करता हूँ। हवन करने में असमर्थ ब्राह्मणों को मन्त्र की निश्चित जपसंख्या का दुगुना जप करना चाहिये। क्षत्रिय-वैश्य आदि को तिगुना-चौगुना जप करना चाहिये। हवन के अभाव में किये गये दुगुने जप से तर्पण पूरा करना चाहिये। मार्जन न करने पर दुगुना जप करना चाहिये।

प्रत्याम्नाय में ब्राह्मण-भोजन का जिक्र किसी श्रुति में नहीं पाया जाता। किये गये जप के साङ्गत्व-सिद्धि के लिये ब्राह्मण-भोजन अवश्य कराना चाहिये। विप्राराधन-मात्र से ही विना अङ्ग का पुरश्चरण भी साङ्गता को प्राप्त हो जाता है। जिस-जिस कार्य में ब्राह्मण-भोजन नहीं कराया जाता, वह वैसे ही निरर्थक हो जाता है, जैसे ऊसर जमीन में बीजवपन निरर्थक होता है।।६००-६०४।'

गुरुं सन्तोषयेत् पश्चाद् गोहिरण्याम्बरादिभिः।
गुरौ तुष्टे हि सन्तुष्टो मन्त्रः सिद्ध्यति मन्त्रिणः ॥६०५॥
यदृच्छया श्रुतो मन्त्रश्छद्मनापि बलेन वा।
परेरितो वा गाथा वा तज्जपो नैव चार्थकृत् ॥६०६॥
पुस्तकं लिखितान् मन्त्रानालोक्य प्रजपन्ति ये।
ब्रह्महत्यासमं तेषां पातकं परिकीर्तितम् ॥६०७॥

ब्राह्मण-भोजन कराने के पश्चात् गुरु को गाय, सोना, वस्त्र आदि से सन्तुष्ट करना चाहिये। गुरु के सन्तुष्ट होने पर ही साधक को मन्त्र भी मन्त्र होता है। इच्छानुसार सुन

कर, कपट से, बलपूर्वक, दूसरे के द्वारा बताये गये मन्त्र का जप अथवा गायन रूप में किया गया मन्त्रजप फलवान नहीं होता। पुस्तक में लिखित मन्त्र को देखकर जो जप करते हैं, वे ब्रह्महत्या के समान पाप के भागी होते हैं।।६०५-६०७।।

अनेककोटिं मन्त्राणां चिन्तयन्नाकुलः कविः।
मन्त्रो गुरुमुखात्प्राप्त एकः स्यात्सर्वसिद्धिदः ॥६०८॥

अनेक कोटि मन्त्रों के चिन्तन में व्याकुल विद्वान् यदि एक मन्त्र को भी गुरुमुख से प्राप्त कर लेता है तो वह एक ही मन्त्र उसके लिये समस्त सिद्धियों को देने वाला हो जाता है।।६०८।।

कुलप्राप्तः कुलाचारो मानितः सर्वसाधकैः।
सिद्धिलक्षणसम्पूर्णः प्राणिमात्रस्य यः समः ॥६०९॥

कुलप्राप्त कुलाचार को सभी साधकों को मानना चाहिये। ये कुलाचार प्राणीमात्र के लिये सम्पूर्ण सिद्धि के लक्षण-समान होते हैं।।६०९।।

मित्रं न शत्रवो यस्य सर्वमार्गप्रदर्शकः।
स एव तु गुरुः कार्यो नान्यो वामे कदाचन ॥६१०॥
इह लोके परत्रापि कौलः पतति चान्यथा।
सिद्धेरभावे दक्षे तु पापहानिः प्रजायते ॥६११॥
सेवनान्मचतुष्कस्य वामे तु निरयः पुरः।
इत्थं प्रोक्ता पुरश्चर्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥६१२॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
पुरश्चर्याप्रकाशः षष्ठः ।।६।।

जिसका न कोई मित्र हो और न ही शत्रु हो, जो सबको मार्ग दिखलाने वाला हो, वही वाममार्ग में गुरु बनाने के योग्य होता है; दूसरा नहीं। इसके अन्यथा करने से इस लोक एवं परलोक में कौल पतित होता है तथा दक्षिणमार्ग में भी साधक को सिद्धि के अभाव में पाप एवं हानि होती है। वाममार्ग में मनमाना मांस, मछली, मदिरा एवं मैथुन के सेवन से साधक नरकगामी होता है। इस प्रकार पुरश्चरण का वर्णन किया गया। अब आगे क्या सुनना चाहते हैं।।६१०-६१२।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत
'पुरश्चर्या' नामक षष्ठ प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ

अथ सप्तमः प्रकाशः

(सिद्धिस्थिरीकरणप्रकाशः)

श्रीदेव्युवाच

अस्मिन् घोरे कलियुगे स्वल्पसिद्ध्यातिदर्पिताः ।
भविष्यन्ति जनास्तेषां स्थिरा सिद्धिः कथं भवेत् ॥१॥
अग्रे वंशादिवृद्धिश्च वंशे देवकृपा तथा ।
मोक्षः कथं साधकस्य तथा वद कृपानिधे ॥२॥

श्रीदेवी ने कहा—इस घोर कलियुग में छोटी-मोटी सिद्धियाँ प्राप्त करके लोग मतवाले हो जाते हैं, ऐसी स्थिति में स्थिर सिद्धि किस प्रकार प्राप्त होगी? हे कृपानिधे! साधक के बाद उसके वंश की वृद्धि, उसके कुल पर देवता की कृपा एवं उसे मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी? इन सबको कहें।।१-२।।

ईश्वर उवाच

अहङ्कारपरित्यागात् काम्यकर्मविवर्जनात् ।
स्वधर्माचरणात् सर्वमनायासेन जायते ॥३॥
एतत्कर्त्तुमशक्तश्चेन्निषिद्धं तु परित्यजेत् ।
विहितं कर्म कुर्वीत सिद्धिः स्यात्पुत्रपौत्रिकी ॥४॥

श्रीमहादेव ने कहा—अहंकार के पूर्णतः त्याग से, काम्य कर्म न करने से एवं अपने धर्मानुसार आचरण करने से अनायास ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। यदि साधक ऐसा करने में असमर्थ हो तो उसे निषिद्ध कर्मों का परित्याग कर देना चाहिये। विहित कर्म करने से पुत्र-पौत्र प्राप्त कराने वाली सिद्धि होती है।।३-४।।

निषिद्धाचारकथनम्

तत्रादौ कथयिष्यामि निषिद्धानि शृणु प्रिये ।
देवस्थाने गुरुस्थाने श्मशाने च चतुष्पथे ।
पादुकासनविण्मूत्रमैथुनादि विवर्ज्जयेत् ॥५॥
प्रमत्तामन्त्यजां कन्यां पुष्पितां पतितस्तनीम् ।
विरूपां मुक्तकेशीं च कामार्त्तां च न निन्दयेत् ॥६॥
कन्यायोनिं पशुक्रीडां दिग्वस्त्रां प्रकटस्तनीम् ।
नालोकयेत्परद्रव्यं परदारांश्च वर्ज्जयेत् ॥७॥

धान्यगोगुरुदेवाग्निकोशपुस्तकसम्मुखम् ।
नैव प्रसारयेत्पादौ न चैतानि विलङ्घयेत् ॥८॥
आलस्यमदसम्मोहशापपैशुन्यविग्रहान् ।
असूयामात्मसम्मानं परनिन्दां च वर्ज्जयेत् ॥९॥
लिङ्गिनं व्रतिनं विप्रं वेदवेदाङ्गसंहिताः ।
पुराणागमशास्त्राणि मनसापि न दूषयेत् ॥१०॥

निषिद्धाचार—हे प्रिये! उसमें पहले मैं निषिद्धाचार का वर्णन करता हूँ, श्रवण करो। देवस्थान, गुरुस्थान, श्मशान, चौराहा, पादुका एवं आसन पर मल-मूत्र का त्याग तथा मैथुन नहीं करना चाहिये। प्रमत्ता एवं अन्त्यजा कन्या, रजस्वला, वृद्धा, कुरूपा, खुले बालों वाली एवं कामार्त्ता स्त्री की निन्दा नहीं करनी चाहिये। कन्या की योनि, पशुओं की मैथुन-क्रीड़ा, नग्न स्त्री एवं खुले स्तनों वाली स्त्री को नहीं देखना चाहिये। दूसरों का धन एवं दूसरे की स्त्री का त्याग कर देना चाहिये। धान्य, गाय, गुरु, देवता, अग्नि, कुशनिर्मित वस्तु और पुस्तक के सामने न तो पैर फैलाना चाहिये, न ही इनका लङ्घन करना चाहिये। आलस्य, मद, मोह, शाप, चुगलखोरी, विग्रह, ईर्ष्या, अपनी बड़ाई एवं दूसरे की निन्दा नहीं करनी चाहिये। लिङ्गोपासक, व्रतधारी, विप्र, वेद, वेदाङ्ग, संहिता, पुराण, आगम और शास्त्रों को मन से भी दूषित नहीं करना चाहिये।।५-१०।।

युगं मुसलमश्मानं दाम चुल्लीमुलूखलम्।
शूर्पं सम्मार्जनीं दण्डं ध्वजं वै तुर्य्यमायुधम् ॥११॥
कलशं चामरं छत्रं दर्पणं भूषणं तथा।
भोगयोग्यानि चान्यानि यागद्रव्याणि यानि च ॥१२॥
महास्थानेषु वस्तूनि यानि वा देवतालये।
दिव्योक्तानि च वस्तूनि भूताविष्टानि यानि वै।
लङ्घयेज्जातु नैतानि न चैतानि पदा स्पृशेत् ॥१३॥

जुआठ, मुसल, शिलवट, लोढ़ा, रस्सी, चूल्हा, ऊखल, सूप, झाड़ू, दण्ड, झण्डा, तुरही, आयुध, कलश, चामर, छत्र, आइना आभूषण, भोगयोग्य अन्य वस्तुयें, यज्ञसामग्रियाँ, महान् स्थानों की वस्तुयें, देवालय की वस्तुयें, दिव्य वस्तुयें, भूतों से आक्रान्त वस्तुयें—इनका न तो कभी भी लंघन करना चाहिये और न ही इन्हें पैरों से स्पर्श करना चाहिये।।११-१३।।

या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी।
परहिंसात्मिका या च न तामवतरेत् क्वचित् ॥१४॥

प्रतिग्रहान्न गृह्णीयादात्मभोगविधित्सया ।
देवतातिथिपूजार्थं दानतोऽप्यर्जयेद्धनम् ॥१५॥

लोगों में विद्वेष फैलाने वाली, स्वेच्छाचार करने वाली अथवा दसरों की हिंसा करने वाली गोष्ठी में कभी भी भाग नहीं लेना चाहिये। स्वयं के उपभोग की इच्छा से दान नहीं ग्रहण करना चाहिये। देवता एवं अतिथि की पूजा के लिये दान प्राप्त करके भी धनोपार्जन करना चाहिये।।१४-१५।।

बिभ्रीतककरञ्जार्कस्नुहीछायां न संश्रयेत् ।
स्तम्भदीपमनुष्याणामन्येषां प्राणिनां तथा ॥१६॥
नखाग्रकेशनिर्धूतस्नानवस्त्रपटोदकम् ।
एतत्स्पर्शं त्यजेद् दूरं खरश्वाजरजस्तथा ॥१७॥
लिङ्गस्थानं च निर्माल्यं नद्यां नैव च लङ्घयेत् ।
नद्यां प्रवाहयेत्सर्वं दद्याद्वा शिवदीक्षिते ॥१८॥

बहेड़ा, करञ्ज, अकवन और स्नुही के पेड़ की छाया में नहीं बैठना चाहिये। स्तम्भ एवं दीपक के साथ-साथ मनुष्य और अन्य प्राणियों के कटे हुये नख, बाल, स्नान किये गये वस्त्र एवं कपड़े से चूते जल का स्पर्श कभी नहीं करना चाहिये। गदहे, घोड़े एवं भैंस के द्वारा उड़ायी गई धूलि, लिङ्गस्थान, निर्माल्य एवं नदी को कभी भी लाँघना नहीं चाहिये। निर्माल्य आदि को या तो नदी में प्रवाहित कर देना चाहिये अथवा शिवदीक्षित को दे देना चाहिये।।१६-१८।।

न लङ्घयेद् गुरोराज्ञामुत्तरं न वदेत्तथा ।
अप्रियं च तथा काले कामं क्रोधं विशेषतः ॥१९॥
नाप्रच्छन्नमुखो ब्रूयाद् गुरोरग्रे कदाचन ।
अद्वैतं देवपूजां च गुरोरग्रे परित्यजेत् ॥२०॥
पादुकायोगपट्टादिगुरुचिह्नानि साधकः ।
न लङ्घयेत्स्पृशेन्नैव तत्समक्षं न धारयेत् ॥२१॥
पर्यङ्कशयनं तद्वत्तथा पादप्रसर्पणम् ।
अङ्गभङ्गं च लीलां च न कुर्याद् गुरुसन्निधौ ॥२२॥
छायां न लङ्घयेत्तस्य गच्छेन्न पुरतो गुरोः ।
न कुर्वीत गुरोरग्रे प्रभावं स्वस्य शिष्यकः ॥२३॥
अहङ्कारं न कुर्वीत नोल्बणं धारयेद्वपुः ।
प्रगुरोः सन्निधौ नैव स्वगुरुं प्रणमेद् बुधः ॥२४॥
नमस्काराय चोद्युक्तं गुरुर्दृष्ट्वा निवारयेत् ।
न नियोगं गुरार्दद्यात्त्वमित्यादि न वा वदेत् ॥२५॥

श्रीनाथदेवस्वामीति बोधने भाषणे वदेत्।
जातायामापदि क्वापि शपथं गुरुसञ्ज्ञितम् ॥२६॥
न कुर्याच्छिवसञ्ज्ञं वा प्रसादेन क्रियेत चेत्।
तदर्थं निर्वहेद्यत्नादन्ते पूजाजपाहुतीः ॥२७॥
अनिर्वहंस्तु कार्यं तद्यदर्थं शपथः कृतः।
प्रायश्चित्तं मनोः कुर्यान्मूलस्यैव सहस्रकम् ॥२८॥

गुरु की आज्ञा का कभी भी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये, न ही गुरु को अप्रिय उत्तर देना चाहिये; विशेष करके काम-क्रोध की स्थिति में अप्रिय वचन कभी नहीं बोलना चाहिये। गुरु के आगे अपने मुख को ढक कर कभी नहीं बोलना चाहिये, न ही गुरु के समक्ष अद्वैत देवपूजा करनी चाहिये। साधक को गुरु के खड़ाऊँ, योगपट्ट, एवं गुरुचिह्न का कभी भी लंघन नहीं करना चाहिये, न उनका स्पर्श करना चाहिये और न ही उन्हें धारण करना चाहिये। गुरु के सामने पलङ्ग पर शयन नहीं करना चाहिये, पैरों को उनकी ओर फैलाना नहीं चाहिये। गुरु के समीप अङ्ग-भङ्ग और लीला भी नहीं करनी चाहिये। गुरु की छाया को लाँघना नहीं चाहिये, न ही गुरु के आगे चलना चाहिये। शिष्य को गुरु के आगे अपना प्रभाव नहीं दिखलाना चाहिये। गुरु के समक्ष अहंकार नहीं करना चाहिये और न ही शरीर पर रक्त धारण करना चाहिये। परम गुरु के समक्ष अपने गुरु को प्रणाम नहीं करना चाहिये; बल्कि गुरु की दृष्टि बचाकर मन ही मन प्रणाम करना चहिये। गुरु को आदेश नहीं देना चाहिये, न ही गुरु को 'तुम' इत्यादि से बोलना चाहिये। सम्बोधन अथवा वार्त्तालाप के क्रम में गुरु को 'श्रीनाथ, देव, स्वामी' इस प्रकार बोलना चाहिये। आपत्ति की स्थिति में भी गुरु के नाम का शपथ नहीं लेना चाहिये; अपितु उसके बदले 'शिवकृपा, शिवप्रसाद' आदि द्वारा बोलना चाहिये और बाद में इसके लिये पूजा, जप और हवन करना चाहिये। गुरु-शपथ के विना यदि काम न चले तब शपथ लेने के प्रायश्चित्तस्वरूप मूल मन्त्र का एक हजार जप करना चाहिये।।१९-२८।।

लोकोद्वेगकरी या च या च मर्मनिकृन्तिनी।
स्थित्युद्वेगकरी या च ता गिरं नैव भाषयेत् ॥२९॥
अरण्यमुज्ज्वलमपि मनसापि समीप्सितम्।
लोकविद्वेषणं वेषं न गृह्णीयात् कदाचन ॥३०॥

लोगों को उद्विग्न करने वाली, मर्म को भेदन करने वाली अथवा उद्वेग की स्थिति उत्पन्न करने वाली वाणी नहीं बोलनी चाहिये। अभीष्ट होने पर भी जंगल में उज्ज्वल वेष धारण नहीं करना चाहिये और न ही कभी भी लोक में विद्वेष उत्पन्न करने वाला वेष धारण करना चाहिये।।२९-३०।।

अवश्यकर्त्तव्यानि

तन्त्रोक्तान्यसमाचारानैहिकामुष्मिकाँश्च तान्।
आचरन्नादराच्छान्तिं दीक्षितः सोऽधिगच्छति ॥३१॥
सामान्यसिद्धौ रक्षार्थं परेषां न कदाचन।
प्रयोक्तव्यः स्वस्य मन्त्रो महापद्यपि साधकैः ॥३२॥
गुरोरुद्धूतवाक्येन भयात्स्वार्थेन वा पुनः।
कृपया परया कुर्यादनाथेषु दयां सदा ॥३३॥
यत्र यत्र पुरीष्वेव मात्सर्य्यं श्रूयते गुरोः।
तत्र तत्र न वस्तव्यं प्रयायात् संस्मरन् हृदि ॥३४॥

आवश्यक कृत्य—दीक्षित को तन्त्रोक्त ऐहिक और आमुष्मिक के अतिरिक्त अन्य कर्म नहीं करना चाहिये। ऐसा आचरण करने से न तो उसे आदर मिलता है और न ही शान्ति मिलती है। सामान्य सिद्धि में अपनी रक्षा के लिये दूसरे देवता के मन्त्र का कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिये; अपितु महान् विपत्ति की स्थिति में भी साधक को अपने मन्त्र का ही प्रयोग करना चाहिये। गुरु के आदेश से अथवा भय से अथवा स्वार्थ से अपने लिये, दूसरों के लिये अथवा अनाथों के लिये सदा दयालु होकर कार्य करना चाहिये। जिस-जिस पुरी में गुरु की निन्दा सुनाई दे, उस-उस पुरी से गुरु का हृदय में स्मरण करते हुये प्रयाण कर जाना चाहिये।।३१-३४।।

विष्णोः शिवस्य शास्त्रस्य वेदस्यार्कगणेशयोः।
भवान्या यत्र निन्दा तु तस्मिन् स्थाने न वै वसेत् ॥३५॥
कर्मणां मनसा वाचा न हीच्छेत्परदारकान्।
वक्तव्यं च वचः सत्यं सौशील्यं समतां धृतिम् ॥३६॥
शक्तिं दयामवस्थां च दिव्यां शक्तिं च सर्वदा।
गमनागमेन कुर्यात्प्रणम्य गुरुपादुके ॥३७॥
पश्चात्पादेन निर्गच्छेत्प्रणम्य च गुरोर्गृहात्।
मलयक्तादिरहितः केशश्मश्रुविलुञ्चनात् ॥३८॥
सोमसूर्योत्तरस्थां च गवाश्वत्थादिमध्यगाम्।
भावयेद्देवतां विष्णुं गुरुविप्रशरीरगाम् ॥३९॥
सेवेत मातापितरौ विष्णुं तद्वत्प्रियातिथिम्।
ज्ञेयो विश्वाश्रयो विष्णुरात्मा ज्ञेयश्च विष्णुवत् ॥४०॥
स्वानुष्ठाने तु यत्कर्म सर्वं सर्वस्य गोपयेत्।
मन्त्रगुप्तिश्च कर्त्तव्या सततं मन्त्रसिद्धये ॥४१॥

विष्णु, शिव, शास्त्र, वेद, सूर्य, गणेश, दुर्गा की जहाँ निन्दा होती हो, उस स्थान पर निवास नहीं करना चाहिये। मन से, कर्म से अथवा वचन से भी दूसरे की स्त्री की कामना नहीं करनी चाहिये। सत्य, शील, समता एवं धृति से युक्त वचन बोलना चाहिये। किसी पर दयावश अपनी शक्ति या दिव्य शक्ति का प्रयोग सदा गुरुपादुका का स्मरण करके करना चाहिये एवं कहीं भी आने-जाने के पूर्व गुरुपादुका को प्रणाम करना चाहिये। गुरु को प्रणाम करके गुरु की ओर मुख किये हुये ही पीछे से चलकर गुरुगृह से बाहर जाना चाहिये। केश और दाढ़ी का मुण्डन कराकर निर्मल बन कर रहना चाहिये। चन्द्र, सूर्य के उत्तर में अथवा गौ, पीपल आदि के मध्य में कभी रहना पड़े तो विप्र और गुरु के शरीर को ही विष्णु और देवतारूप समझना चाहिये। विष्णु के समान ही माता-पिता एवं प्रिय अतिथि की सेवा करनी चाहिये। समस्त संसार को विश्व का आश्रय समझना चाहिये एवं स्वयं को विष्णु के समान जानना चाहिये। अपने अनुष्ठान में किये जाने वाले समस्त कर्म गुप्त रखना चाहिये। मन्त्र-सिद्धि के लिये मन्त्र को सदैव गुप्त रखना चाहिये।।३५-४१।।

गुरोर्नाम न गृह्णीयाद्वदेदावश्यके त्विति।
ॐश्रीपूर्वं गुरोर्नाम देवनाम तदुत्तरम् ॥४२॥
पादशब्दसमेतं तु कृत्वा मूर्ध्न्यञ्जलिं पुनः।
नमोऽन्तं च वदेन्नाम तिथ्यर्णं च हरेर्मम ॥४३॥

गुरु के नाम का कभी भी उच्चारण नहीं करना चाहिये; बहुत आवश्यक होने पर 'ॐ श्री' का उच्चारण करने के पश्चात् गुरु का नाम बोलकर तब देवता का नाम बोलकर पाद शब्दसमेत मस्तक पर अञ्जलि बाँधकर अन्त में नमः लगाकर तिथि संख्या के सहित हरि और शिव के नाम के सहित गुरु का नाम बोलना चाहिये।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं सापेक्षं पूर्वपूर्वतः।
अन्यथा भजनं देवि करोत्यापत्परम्पराम् ॥४४॥
प्रत्यहं क्रियते पूजा सा तु नित्या प्रकीर्त्तिता।
नैमित्तिकापि तत्सङ्ख्या पञ्चतुल्या परे दिने ॥४५॥
अभावेऽपि कदाचित् स्यान्नित्ये नैमित्तिका त्वियम्।
शुद्धा नैमित्तिका पूजा प्रोक्ता विंशतिभेदिका ॥४६॥
पर्वाणि च महायोगा व्यतीपातः सवैधृतिः।
मन्वादयो युगाद्याश्च यदङ्गं देवताभवम् ॥४७॥
पुष्यश्च रविवारश्च त्रिगुरूणां स्वकीयकम्।
जन्माहश्चापि दीक्षाया दिवसं नवरात्रकम् ॥४८॥

गण्डान्तान्यथ पूजाया आवश्यकदिनं शृणु।
विशेषेण कृता पूजा यस्मिन् भवति निष्फला ॥४९॥
देशिकागमने चैव वीरस्वजनदर्शने।
चन्द्रसूर्योपरागे च लाभे होमे महोत्सवे ॥५०॥
पीठे पीठगमे पुण्ये तीर्थदैवतदर्शने।
रोगेष्वापत्सु दोषेषु दुस्सङ्गे दुर्निमित्तके ॥५१॥
यथा कालो यथा श्रद्धा यथा द्रव्यं यथोचितम्।
यथा बलं यथा देशस्तथा पूजां समाचरेत् ॥५२॥
नैमित्तिकार्चने कालाः प्रातर्मध्याह्नसम्भवाः।
प्रदोषे चापि विघ्नेशरविविष्ण्वीशशक्तयः ॥५३॥

पहले नित्य कर्ग करने के पश्चात् नैमित्तिक कर्म का सम्पादन करके ही काम्य कर्म का अनुष्ठान करना चाहिये; इसके विपरीत करने से विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। प्रतिदिन की जाने वाली पूजा ही नित्य कर्म कहलाता है। नित्य पूजन के बाद ही नैमित्तिक कर्म करना चाहिये। विशेष परिस्थिति में नित्य कर्म के अभाव में भी नैमित्तिक कर्म किया जा सकता है। शुद्ध नैमित्तिक पूजा बीस प्रकार की कही गई है। पर्व, महायोग, व्यतीपात, वैधृति, देवोत्पत्ति के अंगभूत मन्वादि युगों के आरम्भ, पुष्य, रविवार, परमेष्ठिगुरु, परमगुरु, स्वगुरु, अपना एवं अपनी दीक्षा का दिन एवं नवरात्र एवं गण्डान्त में नित्य पूजा के विना भी नैमित्तिक पूजा की जा सकती है। देशिक के आने पर, वीर एवं स्वजन के दिखाई देने पर, चन्द्र-सूर्य ग्रहण में, महोत्सव के हवन में, सिद्धपीठ के पावन पीठ में, तीर्थ-देवता के दर्शन में, रुग्णावस्था में, विपत्तियों में, दुष्कर्मियों की संगति में, दुर्निमित्त कर्म में की गई पूजा निष्फल होती है। जिस प्रकार का समय हो, जैसी श्रद्धा हो, जैसा सामर्थ्य हो, जो उचित हो, जैसी शारीरिक क्षमता हो एवं जैसा देश हो, उसी प्रकार की पूजा करनी चाहिये। नैमित्तिक अर्चन प्रातः, मध्याह्न एवं प्रदोष काल में करना चाहिये। इनमें गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और शक्ति की पूजा की जा सकती है।।४४-५३।।

दमनकोत्सवपूजादि

दमनेन च यो देवं वर्षमध्ये न पूजयेत्।
तस्य वर्षकृता पूजाफलं गृह्णाति कामराट् ॥५४॥

दमनकोत्सव पूजादि—वर्ष के मध्य में दमन के द्वारा जो देवपूजन नहीं करता है, उसकी पूजा का फल कामदेव हरण कर लेते हैं।।५४।।

चैत्रादयस्त्रयो मासाः प्रशस्ताः पूर्वपूर्वतः।
अष्टमी नवमी पौर्णमास्यमा च चतुर्दशी ॥५५॥

दमन-पूजन के लिये चैत्रमास सबसे उत्तम, वैशाख मास मध्यम एवं ज्येष्ठ मास अधम कहा गया है। तिथियों में अष्टमी, नवमी, पूर्णिमा, अमावस्या एवं चतुर्दशी श्रेष्ठ कही गयी है।।५५।।

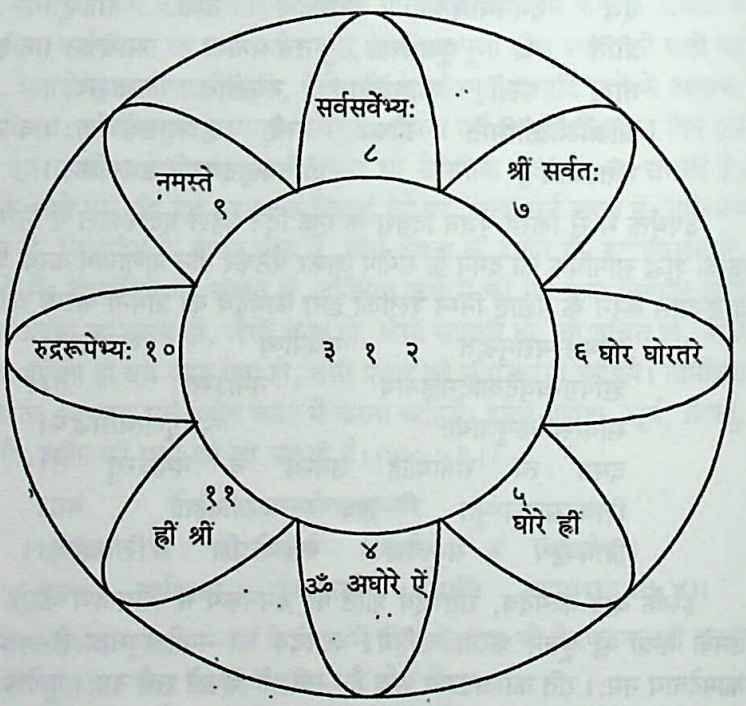
एतन्मध्ये तु कस्मिंश्चित्प्राग्दिने तु प्रदोषके।
कृतनित्यक्रियश्शुद्धो युक्तः सामयिकैर्जनैः ॥५६॥
दमनस्य समीपन्तु गत्वासन उपाविशेत्।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादीन् विन्यसेत्ततः ॥५७॥
कामभस्मसमुद्भूत रविपोष्य जलोद्भव।
ऋषिगन्धर्वदेवादिमोहनाय नमोऽस्तु ते ॥५८॥
सांवत्सरिकपूजायाः परिपूर्णत्वसिद्धये।
दमन त्वं समायाहि क्षमस्व च नमोऽस्तु ते ॥५९॥
शिवप्रसादसम्भूत ह्यत्र सन्निहितो भव।
शिवकार्ये समुत्थेद्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया ॥६०॥
एवं दमनमामन्त्र्य कामदेवं तथा रतिम्।
प्रीतिं च पूजयेत्तत्र तत्तन्मन्त्रेण साधकः ॥६१॥
तारः क्लीं कामदेवाय नमश्चेति नवाक्षरः।
श्रींश्रींश्रींक्रोमिति प्रोच्य रत्यै हृच्चाष्टवर्णकः ॥६२॥
रतिस्थाने प्रीतिपदादयमप्यष्टवर्णकः।

उपर्युक्त में से किसी पूजन दिवस के एक दिन पहले प्रदोषकाल में नित्य कृत्य करके शुद्ध सामयिक को दमन के समीप जाकर बैठकर तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि अङ्गन्यास करने के पश्चात् निम्न श्लोकों द्वारा कामदेव की प्रार्थना करनी चाहिये—

कामभस्मसमुद्भूत रविपोष्य जलोद्भव।
ऋषिगन्धर्वदेवादिमोहनाय नमोऽस्तु ते।।
सांवत्सरिकपूजायाः परिपूर्णत्वसिद्धये।
दमन त्वं समायाहि क्षमस्व च नमोऽस्तु ते।।
शिवप्रसादसम्भूत ह्यत्र सन्निहितो भव।
शिवकार्ये समुत्थेद्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया।।

इसके बाद कामदेव, रति एवं प्रीति का दमनरूप में आमन्त्रण करके क्रमशः उनके मन्त्रों से पूजन करना चाहिये। कामदेव का नवाक्षर मन्त्र है—ॐ क्लीं कामदेवाय नमः। रति का अष्टाक्षर मन्त्र है—श्रीं श्रीं श्रीं क्रों रत्यै नमः। पूर्वोक्त रतिमन्त्र में 'रति' के स्थान पर 'प्रीति' रख देने से प्रीति का अष्टाक्षर मन्त्र इस प्रकार होता है—श्रीं श्रीं श्रीं क्रों प्रीत्यै नमः।।५६-६२।।

ततः स्वगृहमागच्छेद् द्वितीये दिवसे पुनः ॥६३॥
कृतनित्यक्रियः स्वेष्टैर्युक्तो दमनमाव्रजेत् ।
उत्पाटयेच्छेदयेद्वा स्वमूलेनास्त्रमन्त्रतः ॥६४॥
गृहमानीय तोयेन मन्त्रेणानेन सेचयेत् ।
ॐ अघोरे ऐं च ॐ च घोरे ह्रीमिति कीर्त्तयेत् ॥६५॥
घोरघोरतरे श्रीं च सर्वतः सर्वसर्वेभ्यः ।
नमस्ते रुद्ररूपेभ्यो ह्रींश्रीमिति मनुः स्मृतः ॥६६॥
चतुस्त्रिंशदक्षरात्मा दमने तं निधापयेत् ।
पूजास्थाने च पीठादौ नवांशांस्तस्य कारयेत् ॥६७॥
कृत्वा चाष्टदलं पद्मं तत्र भागान् प्रविन्यसेत् ।
चन्दनागुरुकर्पूरचन्दनैर्लेपयेच्च तान् ॥६८॥
आनन्देशीबीजवर्णैर्बिन्दुमद्भिर्नमोऽन्तकैः ।
पृथक्पूज्यं तु तद्बीजं जपन्निह क्षमापयेत् ॥६९॥



इसके बाद अपने घर आकर दूसरे दिन पुनः नित्य कृत्य करके अष्टाक्षर मन्त्र का जप करते हुए दमन के पास आकर अपने मन्त्र के साथ अस्त्रमन्त्र 'फट्' का उच्चारण

करते हुये उसे उखाड़कर अथवा काटकर अपने घर लाकर जल से 'ॐ अघोरे ऐं ॐ घोरे ह्रीं घोरघोरतरे श्रीं सर्वतः सर्वसर्वेभ्यः नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः ह्रीं श्रीं'—इस चौंतीस अक्षरों के मन्त्र का उच्चारण करते हुये धोकर उसे पूजास्थान पर स्थापित करके मन्त्र को नव भागों में विभक्त करे। इसके बाद अष्टदल कमल बनाकर उक्त नव भागों का उसमें न्यास करे एवं उनमें चन्दन, अगर, कपूर के चूर्ण का लेप करे एवं क्रमाङ्कानुसार पञ्चोपचार से पूजन करे।

इसके बाद निम्नलिखित आनन्देशी मन्त्र से प्रार्थना करे—

अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशनः।
शोकार्तिहर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे।।

तदनन्तर 'ॐ वलीं कामदेवाय नमः' से कामदेव का, 'ॐ श्रीं श्रीं श्रीं क्रों रत्यै नमः' से रति का, 'ॐ श्रीं श्रीं श्रीं क्रों प्रीत्यै नमः' से प्रीति का, 'ॐ अघोरे ऐं अघोराय नमः, ॐ घोरे ह्रीं अघोराय नमः, ॐ घोरघोरतरे अघोराय नमः, ॐ श्रीं सर्वतः अघोराय नमः, ॐ सर्वसर्वेभ्य अघोराय नमः, ॐ नमस्ते अघोराय नमः, ॐ रुद्ररूपेभ्यः अघोराय नमः, ॐ ह्रीं श्रीं अघोराय नमः' मन्त्रों से अघोर का पूजन करके क्षमाप्रार्थना करते हुये पूजा का समापन करे।।६३-६९।।

पूजास्थाने प्रकुर्वीत सर्वतोभद्रमण्डलम्।
तस्याष्टदिक्षु संस्थाप्या घटाः स्वर्णादिनिर्मिताः ।।७०।।
मध्ये वा कुम्भमेवैकमशक्तः स्थापयेत्ततः।
तत्र स्वासनपूजादियोगपीठान्तमर्चयेत् ।।७१।।
तस्य दक्षिणदिग्भागे सिन्दूरेणाष्टपत्रकम्।
पद्मं कुर्याद्वृत्तयुग्मवोष्टितं भूपुरेण च ।।७२।।
पञ्चवर्णरजोभिश्च कर्णिकायामशोककम्।
लिखित्वा प्रार्थयित्वा तं पूजयेच्चन्दनादिभिः ।।७३।।
अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशक।
शोकार्त्तिं हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे ।।७४।।
तस्य दक्षिणतस्तादृङ्मण्डले पूजयेत्ततः।
वरखड्गधरं कालं पञ्चरङ्गैर्विचित्रितम् ।।७५।।
त्रुट्यादिप्रलयान्तो यः कालरूपो महाबलः।
कलयत्यपि विश्वं यस्तस्मै कालात्मने नमः ।।७६।।
अशोकस्य ततोऽधस्तात्त्रिकोणे मण्डले शुभे।
मण्डूकादिज्ञानात्मान्तां पीठपूजां समाचरेत् ।।७७।।

तद्बाह्येऽष्टदले प्रोक्तं शक्त्यष्टकसमर्चनम्।
सौभाग्यां च तथा हृद्यां वृषां चापि धृतिं रतिम्॥७८॥
प्रीतिं वासन्तिकीं निर्वाणाख्यां मध्ये तु कामुकाम्।
आवाह्य कामदेवं च तद्गायत्र्या तदुत्तरम्॥७९॥
कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि।
तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्॥८०॥

पूजा स्थान में सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर उसकी आठो दिशाओं में स्वर्णादि निर्मित कलशों को स्थापित करे। यदि आठ कुम्भ स्थापित करने में असमर्थ हो तो मध्य में एक ही कलश स्थापित करे। इसके बाद अपने आसन-पूजन से लेकर योगपीठ तक की पूजा करे। उसकी दक्षिण दिशा के भाग में सिन्दूर से अष्टदल कमल बनाकर उस कमल के बाहर दो भूपुर बनाये। पाँच रंग के चूर्णों से उसे पूरे। कर्णिका में 'अशोक' लिखकर मूलोक्त 'अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशक। शोकार्ति हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे' मन्त्र से प्रार्थना करके चन्दनादि से उसका पूजन करे। अशोक के दाँयें भाग में उसी प्रकार का मण्डल बनाकर काल का पूजन करे। काल का ध्यान इस प्रकार करे—

वरखड्गधरं कालं पञ्चरङ्गैर्विचित्रितम्।
त्रुट्यादिप्रलयान्तो यः कालरूपो महाबलः।
कलयत्यपि विश्वं यस्तस्मै कालात्मने नमः।।

अशोक के नीचे शुभ त्रिकोण मण्डल बनाकर उसपर मण्डूक से लेकर परतत्त्व तक पीठदेवों का पूजन करे। त्रिकोण के बाहर अष्टदल में आठ शक्तियों का एवं मध्य में कामुका का पूजन करे। आठ शक्तियाँ हैं—सौभाग्या, हृद्या, वृषा, धृति, रति, प्रीति, वासन्तिकी एवं निर्वाणा। इसके बाद उसके उत्तर में कामगायत्री से कामदेव का आवाहन करे। काम गायत्री इस प्रकार है—कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्।।७०-८०।।

कृत्वा प्राणप्रतिष्ठान्तं ततो मुद्राः प्रदर्शयेत्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणाभिधा ध्यायेत्ततः परम्॥८१॥
रक्ताम्बरं रक्तवर्णं रक्तगन्धानुलेपनम्।
रक्तमाल्यं च तरुणं वामदक्षिणयोर्युतम्॥८२॥
रत्या प्रीत्येक्षुकोदण्डपुष्पबाणमधः करे।
ऊर्ध्वं पाशस्ततः पूज्यं पूर्वोक्तमनुभिस्त्रयम्॥८३॥
रक्तवस्त्रपरीधानां सर्वाभरणभूषिताम्।
पद्मद्वयकरां गौरवर्णां ध्यायेद्रतिं शुभाम्॥८४॥

श्यामवर्णां रक्तवस्त्रां सर्वाभरणभूषिताम्।
ताम्बूलास्यां भजेत्प्रीतिं घटपुष्पलसत्कराम् ॥८५॥
अग्रे तु कामदेवस्य वसन्तं परिपूजयेत्।
सुधाकुम्भं वामहस्ते दक्षिणे कुसुमाकरम् ॥८६॥
कदम्बवनमध्यस्थं रक्तमाल्यांशुकावृतम्।
ध्यायेद्वसन्तं गौराङ्गं सुरूपं लोकमोहनम् ॥८७॥
वं वसन्ताय हृदयं तस्य सप्ताक्षरो मनुः।
पूजाद्यर्थं ततोऽग्नीशरक्षोवायव्यमध्यतः ॥८८॥
चतुर्दिक्षु वषड्दीर्घयुगनङ्गस्य बीजकम्।
पठित्वा हृदयादीनि षडङ्गानि प्रपूजयेत् ॥८९॥
तदग्राष्टदले देवमुखतस्तु प्रदक्षिणम्।
कामं भस्मशरीरं चानङ्गं मन्मथमेव च ॥९०॥
वसन्तस्य सखायं च स्मरामीक्षुधनुर्धरम्।
पुष्पबाणं तदग्रे तु लोकपालायुधानि च ॥९१॥

प्राणप्रतिष्ठा करने के उपरान्त पाश, अंकुश, धनुष एवं बाणमुद्रा का प्रदर्शन करके रक्त वस्त्र, रक्त गन्ध एवं अनुलेप तथा रक्त माला धारण किये हुये, वाम भाग में रति एवं दाहिने भाग में प्रीति से समन्वित, नीचे के दोनों हाथों में ईख का धनुष एवं पुष्पबाण तथा ऊपर के दोनों हाथों पें पाश एवं अंकुश धारण करने वाले तरुण कामदेव का ध्यान करने के बाद पूर्वोक्त तीनों मन्त्रों से उनका पूजन करने के उपरान्त रक्त वस्त्र धारण की हुई, समस्त आभूषणों से भूषित, दोनों हाथों में कमल धारण की हुई गौरवर्ण वाली रति का एवं रक्त वस्त्र-धारिणी, समस्त आभरणों से भूषित, मुख में ताम्बूल तथा हाथों में घट एवं पुष्प से सुशोभित श्याम वर्ण वाली प्रीति का ध्यान करे। कामदेव के आगे बाँयें हाथ में अमृतकलश एवं दाहिने हाथ में पुष्पों के गुच्छ धारण करने वाले, कदम्बवन के मध्य में स्थित, रक्त माला एवं रक्त वस्त्र धारण किये, संसार को मोहित करने वाले, अतिशय रूपसम्पन्न गौर वर्ण वाले वसन्त का ध्यान करते हुये 'वं वसन्ताय नमः' इस सप्ताक्षर मन्त्र से वसन्त का पूजन करे। उसके बीज मन्त्र वं के षड्दीर्घ के साथ कामदेव बीज के षड्दीर्घ लगाकर षडङ्ग पूजन अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य, मध्य और चारो दिशाओं में करे। षडङ्ग-पूजन का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ वां क्लां हृदयाय नमः, ॐ वीं क्लीं शिरसे स्वाहा, ॐ वूं क्लूं शिखायै वषट्, ॐ वैं क्लैं कवचाय हुम्, ॐ वौं क्लौं नेत्राय वौषट्, ॐ वः क्लः अस्त्राय फट्।

इसके बाद उसके आगे अष्टदल में देवमुख से प्रदक्षिणक्रम से काम, भस्म शरीर, अनङ्ग, मन्मथ, वसन्तसखा, स्मर, इक्षुधनुर्धर एवं पुष्पबाण का पूजन करे। इसके बाद दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करे।।८१-९१।।

ततस्तु कामगायत्र्या यथासङ्ख्यं जपं चरेत्।
वसन्ते कामदेवं च श्लोकाभ्यां प्रार्थयेदिति ॥९२॥
वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताप्रिय।
सहस्रसुखसंवाह कामरूप नमोऽस्तु ते ॥९३॥
नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदानन्दकारिणे।
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय च ॥९४॥
कामदेवं प्रणम्याथ मूलन्यासं समाचरेत्।
आवाहयेन्मध्यकुम्भे देवं साङ्गं च पूजयेत् ॥९५॥
आवाहितोऽसि देवेश सद्यः काले मया विभो।
कर्त्तव्यं तु यथालाभं पूर्णं पर्व त्वदाज्ञया ॥९६॥
इति सावरणं देवं दमनैः पूजयेत्ततः।
धूपदीपादिकं कृत्वा नित्यहोमं समाचरेत् ॥९७॥
द्रव्यैस्तु देवकल्पोक्तैर्होमस्तु त्रिगुणो दापात्।
पूजाशेषं समाप्याथ प्रार्थयेद्देवतामिति ॥९८॥
सर्वरूप जगन्नाथ वाञ्छितार्थफलप्रद।
हृत्स्थान् पूरय मे देव कामान् कामेश्वरेश्वर ॥९९॥
एवं सम्प्रार्थ्य देवेशं विसृज्य च गुरुं ततः।
द्रव्याद्यैस्तोषयेद्विप्रान् भोजयेदिति तद्विधिः ॥१००॥

इसके बाद यथासंख्य कामगायत्री का जप करे। वसन्त और कामदेव की प्रार्थना इन दो श्लोकों से करे—

वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताप्रिय।
सहस्रसुखसंवाह कामरूप नमोऽस्तु ते।।
नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदानन्दकारिणे।
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय च।।

तदनन्तर कामदेव को प्णाम करके मूल मन्त्र का न्यास करने के बाद मध्य कलश में अङ्गदेवताओं सहित देवता का आवाहन करके पूजन करने के उपरान्त—

आवाहितोऽसि देवेश सद्यः काले मया विभो।
कर्त्तव्यं तु यथालाभं पूर्णं पर्व त्वदाज्ञया।।

इस मन्त्र से आवरणसहित देवता का दमन से पूजन करने के बाद धूप-दीपादि करके देवकल्प के अनुसार हवन-सामग्री से जप का तीन गुना नित्य होम करे। शेष पूजन करके देवता से इस प्रकार प्रार्थना करे—

सर्वरूप जगन्नाथ वाञ्छितार्थफलप्रद।
हृत्स्थान्पूरय मे देव कामान्कामेश्वरेश्वर।।

इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद देवता का विसर्जन करके बाद गुरु को द्रव्य-दक्षिणादि से सन्तुष्ट करने के उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। यही दमनकोत्सव पूजा की विधि कही गई है।।९२-१००।।

पवित्रारोपणम्

पवित्रनामनागाय वरो दत्तस्तु शम्भुना।
पवित्रारोपणं यैस्तु न कृतं तत्फलं तव ॥१०१॥
कुर्यान्मिथुनसंक्रान्तेस्तुलासंक्रमणावधि ।
आषाढ उत्तमो मासः श्रावणो मध्यमो भवेत् ॥१०२॥
हीनो भाद्रपदः पक्ष श्वेतः सन्मध्यमोऽसितः।
अष्टम्यां च चतुर्थ्यां च चतुर्दश्यां पवित्रकम् ॥१०३॥
नवम्यामपि कर्त्तव्यं कृतादिषु यथाक्रमम्।
सौवर्णं राजतं ताम्रं कलौ कार्पासकं शुभम् ॥१०४॥
पट्टजं तु गृहस्थानां वनस्थानां तु वाल्कलम्।
पद्मजातं सौगतानां शूद्राणां क्षौममिष्यते ॥१०५॥
बटूनां दर्भसञ्जातं वैश्यानां तु शणोद्भवम्।
मुञ्जजातं व्रतस्थानामाविकं समरैषिणाम् ॥१०६॥

पवित्रारोपण—'पवित्र' नामक नाग को भगवान् शिव ने वर दिया था कि जो पवित्रारोपण नहीं करेगा, उसकी पूजा के फल पर तुम्हारा अधिकार होगा। इसलिये पवित्रारोपण अवश्य करना चाहिये। इसके लिये मिथुनसंक्रान्ति से लेकर तुलासंक्रान्ति तक की अवधि में आषाढ़ मास उत्तम, श्रावण मध्यम और भादों मास निकृष्ट माना गया है। पक्षों में शुक्ल पक्ष उत्तम और कृष्ण पक्ष मध्यम होता है। तिथियों में चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशी तिथि श्रेष्ठ होती है। नवमी तिथि को भी पवित्रारोपण किया जा सकता है। अब कर्त्तव्य कर्म का वर्णन यथाक्रम किया जाता है। सोना, चाँदी या ताँबे का पवित्र बनवाना चाहिये। कलियुग में कपास का पवित्र बनवाना शुभ होता है। गृहस्थों के लिये वस्त्र, वानप्रस्थों के लिये वल्कल, बौद्धों के लिये पद्मजात, शूद्रों के लिये रेशम, ब्रह्मचारियों के लिये कुश, वैश्यों के लिए सन, व्रतधारियों के लिये मुंज, रणेच्छुकों के लिये ऊन का पवित्र श्रेष्ठ होता है।।१०१-१०६।।

सरस्तु नवसूत्राणां त्वष्टोत्तरशतैः सरैः ।
पवित्रं परमं प्रोक्तं तदर्धं मध्यमं स्मृतम् ॥१०७॥
कनिष्ठं सप्तविंशत्या तावदङ्गुलदीर्घकम् ।
पूजावरणदेवानां तुल्यानि रचयेद् बुधः ॥१०८॥
षट्त्रिंशाङ्गुलयः श्रेष्ठे चतुर्विंशच्च मध्यमे ।
द्वादशैव कनिष्ठे स्युरथान्यच्च पवित्रकम् ॥१०९॥
स्कन्धाच्च नाभिपर्य्यन्तं दशग्रन्थिसमन्वितम् ।
क्रमज्ञानाञ्च शिष्याणां पवित्रं तदुदाहृतम् ॥११०॥

नव सूत्रों की एक सौ आठ अंगुल लम्बी माला परम पवित्र मानी जाती है। उसका आधा चौवन अंगुल लम्बी माला मध्यम एवं सत्ताईस अंगुल लम्बी माला कनिष्ठ होती है। पूजावरण देवता की संख्या के बराबर अंगुलमान की माला बनानी चाहिये। अन्यमत से छत्तीस अंगुल लम्बी माला श्रेष्ठ, चौबीस अंगुल लम्बी माला मध्यम और बारह अंगुल लम्बी माला कनिष्ठ होती है। कन्धे से लेकर नाभि तक दश ग्रन्थियुक्त पवित्र क्रमज्ञों एवं शिष्यों के लिये पवित्र कही गई है।।१०७-११०।।

अन्येषां स्वेच्छया कुर्यात्तनुग्रन्थियुतानि च ।
ग्रन्थीनां वेष्टनं श्रेष्ठं षड्विंशद्भिश्च तन्तुभिः ॥१११॥
चतुर्विंशतिभिर्मध्यमधमं भानुभिः स्मृतम् ।
ग्रन्थयो वर्म्ममन्त्रेण कर्त्तव्याः प्राग्दिने ततः ॥११२॥
रात्रौ सामयिकैः सार्धं पवित्राणि समानयेत् ।
पूजास्थानेऽथ सिन्दूरकुङ्कुमारक्तचन्दनैः ॥११३॥
कस्तूरीविधुलाक्षाभिर्गैरिकाद्यैर्विचित्रयेत् ।
ग्रन्थिस्थानेषु संस्थाप्य पीठे तन्नवतन्तुषु ॥११४॥
देवतानवकं पूज्यमोङ्कारश्चन्द्रमास्तथा ।
वह्निर्ब्रह्मा नागगुरू रविश्चापि शिवाशिवौ ॥११५॥
सर्वे देवाश्चापि पूज्याः शिरोमन्त्रेण मन्त्रयेत् ।
अभ्युक्षयेच्च हृन्मन्त्रेणास्त्रमन्त्रेण रोधयेत् ॥११६॥
तेषां दशग्रन्थिषु च सम्पूज्या दशशक्तयः ।
क्रिया च पौरुषी वीरा गायत्री चापराजिता ॥११७॥
विजया च जया मुक्तिः सदाशिवमनोन्मनी ।
पवित्रेषु ततः पूज्यं मूलमन्त्रैः षडङ्गकम् ॥११८॥
घटे च विन्यसेदाद्यं पवित्रं च महत्तथा ।
कृत्वा न्यासादिकं तत्र प्राग्वत्पूजां प्रकल्पयेत् ॥११९॥

कुम्भे देवं समावाह्य यजेदावरणैः सह।
देवस्य मूलमन्त्रेण पवित्रस्य समर्पणम् ॥१२०॥
दैवतेभ्यः पवित्राणि दीनानाथांश्च तर्पयेत्।
दत्त्वा च भूयसीं पश्चात्स्वयम्भुञ्जीत वाग्यतः ॥१२१॥
अतिस्पष्टोऽत्र सम्प्रोक्तः पवित्रारोपणे विधिः।

अन्यों में इच्छानुसार ग्रन्थियुक्त पवित्रा होती है। छब्बीस तन्तुओं के वेष्टन से बनी माला श्रेष्ठ, चौबीस तन्तु के गाँठ वाली मध्यम और बारह सूत्रों के गाँठ वाली माला अधम कही गई है। इसे पूजनदिवस के एक दिन पूर्व कवचमन्त्र से बनाना चाहिये। आधी रात में परम्परा के साथ पवित्रों को पूजा-स्थान में लाकर उसकी ग्रन्थिग्गें को सिन्दूर, कुमकुम, लाल चन्दन, कस्तूरी, कपूर, लाह, गेरू आदि से रंगना चाहिये। तदनन्तर उसे पीठ पर स्थापित कर उसके नव तन्तुओं में ॐकार, चन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, नाग, गुरु, सूर्य, दुर्गा और शिव—इन नव देवताओं का पूजन करना चाहिये। सभी देवताओं को 'स्वाहा' से मन्त्रित, 'ह्रीं' से अभ्युक्षित एवं अस्त्र-मन्त्र से उनका रोधन करना चाहिये। उसके दश ग्रन्थियों में इन दश शक्तियों की पूजा करनी चाहिये—क्रिया, पौरुषी, वीरा, गायत्री, अपराजिता, विजया, जया, मुक्ति, सदाशिव, मनोन्मनी। तदनन्तर पवित्रों में मूल मन्त्र से षडङ्ग पूजन करके कलश में पवित्र को रखकर न्यासादि करके पूर्ववत् पूजन करे। कलश में आवरणसहित देवता का आवाहन करके पूजन करे। देवता के मूल मन्त्र से पवित्र को समर्पित करके देवता के लिये पवित्रों का एवं दीनानाथों का तर्पण करने के बाद प्रचुर दक्षिणा देकर भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करे। यहाँ बहुत स्पष्ट रूप में पवित्रारोपण की विधि का वर्णन किया गया है।

शान्त्यादिकाम्यकर्माणि

काम्यकर्माणि वक्ष्यामि तत्रादौ शान्तिरुच्यते ॥१२२॥
शान्तिर्नाम मनुष्याणां रोगकृत्यादिनाशनम्।
विभज्य षोढाहोरात्रं पञ्चमेंऽशे तु शान्तिकम् ॥१२३॥
हेमन्ते च प्रकर्त्तव्यं नासाधश्च यदा चलेत्।
वायुस्तदा त्वपस्तत्त्वं तस्मिञ्छान्तिकमाचरेत् ॥१२४॥
श्वेतवर्णेन निर्माय चतुरस्रं तु मण्डलम्।
पूजयेच्चन्दनाद्यैर्वंबीजेन शत्रुशान्तिके ॥१२५॥
उत्तराभिमुखो भूत्वा शान्तिकन्तु समाचरेत्।
शान्तिकादौ रतिः पूज्या पद्ममुद्रां च दर्शयेत् ॥१२६॥
बद्ध्वा पद्मासनं स्थेयं नमोऽन्तः शान्तिके मनुः।
शान्तौ कुशासनं ग्राह्यं होमयेन्मृगमुद्रया ॥१२७॥

मुक्त्वा कनिष्ठिकां यत्र हूयते सा मृगी भवेत्।
त्रिषूत्तराषु पूर्वासु शान्तिकं स्याद् द्विजन्मसु ॥१२८॥

शान्ति कर्म—अब काम्य कर्मों में पहले शान्तिकर्म का वर्णन करता हूँ। मनुष्यों के रोग, कृत्यादि दोष के विनाश के लिये शान्ति नामक कर्म किया जाता है। रात और दिन के चौबीस घण्टों को छः भाग में विभाजित करके पाँचवें भाग में शान्ति कर्म करना चाहिये। शान्ति कर्म हेमन्त ऋतु में तब करना चाहिये, जब नासाछिद्र से श्वास नीचे की ओर प्रवहमान हो। ऐसे समय में जलतत्त्व रहता है। इसी में शान्ति कर्म करना चाहिये। शत्रु को शान्त करने के लिये श्वेत वर्ण के चूर्ण से चतुरस्र मण्डल बनाकर 'वं' बीज से चन्दनादि से पूजन करना चाहिये। शान्ति कर्म में साधक को अपना मुख उत्तर की तरफ रखना चाहिये। शान्ति कर्म के प्रारम्भ में पद्मासन में बैठकर मन्त्र के अन्त में 'नमः' लगाकर रति का पूजन करके पद्म मुद्रा दिखानी चाहिये। शान्ति कर्म में कुश का आसन ग्राह्य होता है। हवन मृगी मुद्रा से किया जाता है। तीनों उत्तरा और तीनों पूर्वा नक्षत्रों में द्विजों को शान्ति कर्म करना चाहिये।।१२२-१२८।।

वशीकरणम्

अथ वश्यं प्रवक्ष्यामि स्वायत्तीकरणं तु तत्।
देवरक्षोराजलोकसर्पस्त्रीहयहस्तिनाम् ॥१२९॥
प्रथमेंऽशे वश्यकर्म वसन्ते च प्रसिद्ध्यति।
नासोर्ध्वं वहते वायुरग्नितत्त्वं वहेत्तदा ॥१३०॥
वश्यं कर्म त्रिकोणेन रंबीजेनाग्निपूजनम्।
रक्तवर्णेन निर्माय, वश्यं पूर्वमुखश्चरेत् ॥१३१॥
वाणीं सम्पूजयेद्वश्ये पाशमुद्रां प्रदर्शयेत्।
स्वस्तिकासनमारुह्य स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चरेत् ॥१३२॥
छागलं चर्म वश्ये स्याद्धोमयेन्मृगमुद्रया।
रक्तद्रव्यैरत्र होमो ध्यानमारक्तकं मतम् ॥१३३॥
मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षविशाखाकृत्तिकासु तु।

वशीकरण कर्म—अब वशीकरण कर्म का वर्णन करता हूँ, जिससे देवता, राक्षस, राजा, लोक, सर्प, स्त्री, घोड़ा, हाथी को वशीभूत किया जाता है। अहोरात्र के प्रथम अंश वसन्त ऋतु में वश्य कर्म करना चाहिये। जब नासाछिद्र में श्वास ऊपर की ओर चलता है, तब अग्नितत्त्व रहता है। इसी समय यह कर्म करना चाहिये। वश्य कर्म में 'रं' बीज से अग्नि का पूजन त्रिकोण में होता है। वशीकरण कर्म-हेतु त्रिकोण को लाल रंग के चूर्ण से बनाकर पूर्वमुख बैठकर साधक को सरस्वती का पूजन करके

पाश मुद्रा दिखानी चाहिये। स्वस्तिकासन में बैठकर मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' लगाकर उच्चारण करना चाहिये। वशीकरण कर्म में बकरे की खाल का आसन बनाना चाहिये एवं हवन मृगी मुद्रा से करना चाहिये। हवनसामग्री लाल रंग की होनी चाहिये एवं देवता का ध्यान भी लाल वर्ण का ही करना चाहिये। मृगसिरा के अन्त, चित्रा, विशाखा, कृतिका नक्षत्र में वंश्य कर्म करना चाहिये।।१२९-१३३।।

स्तम्भनम्

अथ स्तम्भं प्रवक्ष्यामि तदुद्योगनिवारणम् ॥१३४॥
शिशिरे स्तम्भनं प्रोक्तं षष्ठाङ्गे तु दिनस्य तत्।
अग्नेरपां च सैन्यस्य क्रुद्धस्य विषदंष्ट्रिणः ॥१३५॥
तर्पणार्थं मेषरक्तमिश्रितं तोयमावहेत्।
जानुभ्यामवनीं गत्वा स्तम्भनस्य क्रियां चरेत् ॥१३६॥
जारबौद्धरुजां स्तम्भो धर्मः प्रेतादिरक्षसाम्।
नासादण्डेन संलग्नो वायुश्चेद्भूदयो भवेत् ॥१३७॥
स्तम्भकर्म तदा कुर्याल्लंबीजेन वसुन्धराम्।
अष्टकोणयुते पीते मण्डले तां समर्चयेत् ॥१३८॥
प्राङ्मुखः स्तम्भनं कुर्याद्रमां तत्र प्रपूजयेत्।
विकटासनगो देव्यै गदामुद्रां प्रदर्शयेत् ॥१३९॥
स्तम्भने वषडन्तश्च होमे मन्त्रः प्रकीर्तितः।
गजचर्मासनं स्तम्भे गदामुद्राहुतौ तथा ॥१४०॥
पीतद्रव्यैश्चात्र होमः पीतवस्त्रादिधृक्स्वयम्।
स्तम्भने भरणी चित्रा रोहिणी चोत्तरात्रयम् ॥१४१॥

स्तम्भन कर्म—अब स्तम्भन कर्म का वर्णन करता हूँ, जिससे किसी के उद्योग को स्थगित किया जा सकता है। अहोरात्र के छठे भाग में शिशिर ऋतु में अग्नि और जलतत्त्व के काल में स्तम्भन कर्म करना चाहिये। सेना की गति, क्रोधी की गति और विषैले दाँत से काटने वालों को इससे स्तम्भित किया जाता है। इसमें भेड़ के रक्त को पानी में मिलाकर तर्पण करना चाहिये। स्तम्भन कार्य घुटने के बल बैठकर करना चाहिये। व्यभिचारी, बौद्ध, रोग, प्रेत, राक्षस आदि का स्तम्भन करना धर्म है। नासाछिद्र से डण्डे के समान सीधे जब श्वास चले तब वायु और पृथ्वीतत्त्व का प्रभाव रहता है; उसी काल में स्तम्भन कर्म करना चाहिये।

स्तम्भन कार्य में पहले पीले चूर्ण से अष्टकोण बनाकर 'लं' बीज से पृथ्वी का पूजन करना चाहिये। यह कार्य पूरब तरफ मुख करके करना चाहिये। इसमें रमा का

पूजन किया जाता है। देवी को विकटासन में विराजमान मान कर गदामुद्रा का प्रदर्शन किया जाता है। स्तम्भन कर्म के हवन में मन्त्र के अन्त में 'वषट्' लगता है। गजचर्म का आसन दसके लिये उपयुक्त होता है एवं गदा मुद्रा से आहुति दी जाती है। हवन-सामग्री पीले रंग की होती है एवं स्वयं साधक को भी पीला वस्त्र धारण करना चाहिये। स्तम्भन कर्म भरणी, चित्रा, रोहिणी और तीनों उत्तरा में करना चाहिये।।१३४-१४१।।

विद्वेषणम्

अथ विद्वेषणं वक्ष्ये प्रीतिनाशः स तु द्वयोः।
ग्रीष्मे विद्वेषणं घस्रस्यांशके तु द्वितीयके ॥१४२॥
नासायां मध्यगे वायौ खोदये द्वेषणं मतम्।
वर्त्तुले धूम्रवर्णे तु मण्डले खं समर्चयेत् ॥१४३॥
हंबीजेनाथ विद्वेषं नैर्ऋत्याभिमुखश्चरेत्।
पूज्या धूमावती द्वेषे मुद्रा तु मुसला भवेत् ॥१४४॥
होममन्त्रः फडन्तोऽत्र विशेत्कुक्कुटकासने।
विद्वेषे जाम्बुकञ्चर्म लोहासनमथापि वा ॥१४५॥
धूम्रवर्णैश्च होतव्यं तादृग्वस्त्रादि साधकैः।
आर्द्राचतुष्टयं मूलं ज्येष्ठा विद्वेषणे मता ॥१४६॥

विद्वेषण कर्म—अब किन्हीं दो लोगों के परस्पर प्रेम की समाप्ति करने वाले विद्वेषण का वर्णन किया जाता है। दिन के दूसरे अंश ग्रीष्म ऋतु में विद्वेषण कर्म करना चाहिये। नासा के मध्य में जब श्वास प्रवहमान हो, तब आकाशतत्त्व का उदय होता है, उसी समय विद्वेषण कर्म का अनुष्ठान करना चाहिये। इसके लिये धूम्र वर्ण के वृत्ताकार मण्डल में आकाश तत्त्व का पूजन 'हं' बीज से किया जाता है। पूजा के समय साधक का मुख नैर्ऋत्य दिशा की ओर रहता है। इसमें धूमावती देवी की पूजा होती है एवं मूसल मुद्रा दिखायी जाती है। हवन में मन्त्र के अन्त में फट् लगाया जाता है एवं हवन के समय साधक को शृगालचर्म अथवा लोहे के आसन पर कुक्कुटासन में विराजमान होना चाहिये। इसमें हवन-सामग्री धूम्र वर्ण की होती है एवं साधक का वस्त्र भी धुएँ के रंग का ही होना चाहिये। आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मूल और ज्येष्ठा नक्षत्र में विद्वेषण कर्म करना चाहिये।।१४२-१४६।।

उच्चाटनम्

उच्चाटनमथो वक्ष्ये तदरीणां प्रवासनम्।
प्रावृड्डुच्चाटने शस्ता तृतीयांशे दिनस्य तत् ॥१४७॥
तिर्य्यग्गते समीरे तु वायुर्वहति तत्र तु।
शत्रोरुच्चाटनं कुर्य्याद्यंबीजेन तमर्चयेत् ॥१४८॥

षट्कोणं मण्डलं वायोः कृष्णं षड्बिन्दुलाञ्छितम्।
मृगचर्मादिकं तत्र वायव्यस्य च कर्मणि ॥१४९॥
दुर्गां सम्पूजयेन्मुद्रामशनिन्तु प्रदर्शयेत्।
वज्रासनसमारूढः फडन्तश्चाहुतौ मनुः ॥१५०॥
धूम्रमुच्चाटने ध्यानं कृष्णद्रव्यैस्तथा हुनेत्।
उच्चाटनं तथा कर्म क्षिप्रभेषु प्रशस्यते ॥१५१॥

उच्चाटन कर्म—अब उच्चाटन का वर्णन करता हूँ, जिससे शत्रु अपना घर छोड़कर विदेश भाग जाते हैं। उच्चाटन कर्म दिन के तृतीय भाग वर्षा ऋतु में करना चाहिये। नासाछिद्र से श्वास की गति जब टेढ़ी हो तब वायुतत्त्व का प्रभाव रहता है; इसी समय शत्रु का उच्चाटन करना चाहिये। इसमें वायुबीज 'यं' से वायु का अर्चन करना चाहिये। वायु के पूजन का मण्डल छः विन्दु से समन्वित षट्कोण काले चूर्ण से बनाना चाहिये। उच्चाटन कर्म के लिये साधक का आसन मृगचर्म का होना चाहिये। इसमें दुर्गा का पूजन करके वज्रमुद्रा प्रदर्शित की जाती है। साधक को वज्रासन में बैठकर हवन करते समय मन्त्र के अन्त में 'फट्' लगाना चाहिये। उच्चाटन में देवता का ध्यान धूम्र वर्ण का करना चाहिये एवं कृष्ण वर्ण की हवन-सामग्री से हवन करना चाहिये। उच्चाटन कर्म हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित् नक्षत्र में करना चाहिये।

मारणम्

मारणं प्राणहरणं शत्रूणामीरितं तु तत्।
मारणे वर्जयेद्विप्रानन्यांश्चापि सुधार्मिकान् ॥१५२॥
स्त्रीबालव्यतिरिक्तेषु राजवैरिषु योजयेत्।
स्वरोषतो वा लोकानां रक्षार्थं तु तदा हरेत् ॥१५३॥
न तु लोभाद्भयान्मन्त्री कुर्याच्चैव तु मारणम्।
प्रायश्चित्तं च कर्तव्यं देवि तद्दोषशान्तये ॥१५४॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं जुहुयात्तावदेव हि।
सघृतैः पायसैः कृष्णतिलैर्वा घृतसंयुतैः ॥१५५॥
आत्मरक्षा प्रकर्तव्या कर्मकाले सदा बुधैः।
अह्नश्चतुर्थः षष्ठोंऽशः शरन्मारणकर्मणि ॥१५६॥
वश्यवन्मारणे कार्यं पूजाद्यं वह्निमण्डले।
दक्षिणाभिमुखः कुर्याद्भद्रकालीं समर्चयेत् ॥१५७॥
दर्शयेत्खड्गमुद्राञ्च विशेद्भद्रासने हुनेत्।
हुंकारान्तेन मन्त्रेण ग्गहिषं वाथ लोहजम् ॥१५८॥

आसनं शूकरीमुद्रा करसङ्कोचतो भवेत्।
ध्यानं कुर्यात्कृष्णवर्णं कृष्णद्रव्यैश्च पूजनम् ॥१५९॥
उग्रतीक्ष्णोडुषु स्वस्य चन्द्रताराबलादिके।
शत्रोश्चैव बलाभावे चैकपादोपरि स्थितः ॥१६०॥
उष्णोदकं समरिचं तर्पणार्थन्तु मारणे।
तिष्ठन्कुर्यान्मारणं वा भूमौ पादं निवेशयेत् ॥१६१॥
वामपादनिविष्टः स चरेत्तत्र तु तर्पणम्।

मारण कर्म—मारण कर्म के द्वारा शत्रु का प्राणहरण किया जाता है। ब्राह्मणों, धार्मिक व्यक्तियों, स्त्रियों एवं बालकों पर मारण का प्रयोग नहीं करना चाहिये। राज वैरियों पर अथवा कुद्ध होकर लोककल्याण के लिये मारण का प्रयोग करना चाहिये। मन्त्रज्ञ को लोभवश या भयवश मारण कर्म का प्रयोग नहीं करना चाहिये। मारण कर्म करने के बाद दोष की शान्ति के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। प्रायश्चित्तस्वरूप दश हजार मन्त्र का जप और इतना ही हवन घी और खीर से अथवा तिल में घी मिलाकर करना चाहिये। इस कर्म को करते समय विद्वान् साधक को हर समय आत्मरक्षा भी करनी चाहिये।

अहोरात्र के चौथे भाग शरद ऋतु या छठे भाग हेमन्त ऋतु में मारण कर्म का अनुष्ठान करना चाहिये। वश्य के समान ही मारण कर्म में पहले वह्नि मण्डल में पूजा करनी चाहिये। इस समय साधक को अपना मुख दक्षिण तरफ रखना चाहिये और भद्रकाली का पूजन करके खड्ग मुद्रा दिखानी चाहिये। साधक को भद्रासन में बैठकर हवन करना चाहिये। हवन के समय मन्त्र के अन्त में हुम्' लगाना चाहिये। आसन भैंस के चर्म या लोहे से निर्मित होना चाहिये। करसंकोच से शूकरी मुद्रा बनाकर हवन करना चाहिये। देवता का ध्यान काले रंग का करना चाहिये एवं काली सामग्री से ही पूजन करना चाहिये। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, जेष्ठा नक्षत्र में मारण कर्म करना चाहिये। अपना चन्द्र-तारा बल और शत्रु का चन्द्र-तारा बल देखकर शत्रु के बलवान होने की स्थिति में एक पैर पर खड़े होकर जप करना चाहिये। मारण में तर्पण गर्म जल में मरीच मिलाकर करना चाहिये। बैठ करके या बाँये पाँव को भूमि के अन्दर करके मारण कर्म में तर्पण करना चाहिये।

प्रकीर्णाभिचारकर्माणि

प्रकीर्णान्यथ वक्ष्यन्ते त्वभिचाराश्च तत्र च ॥१६२॥
दक्षिणाभिमुखः कुर्यान्मेषीचर्म्मणि संस्थितः।
लोहासनगतो वापि शूकर्य्या मुद्रया हुनेत् ॥१६३॥

प्रकीर्ण कर्म—अब कतिपय अभिचार कर्मों का वर्णन किया जाता है। अभिचार कर्म दक्षिण तरफ मुख करके किया जाता है। इसमें आसन भेड़ी का चर्म अथवा लोहे का बना होता है एवं शूकरी मुद्रा से हवन किया जाता है।।१६२-१६३।।

धनसिद्धिकरं कर्म पश्चिमाभिमुखश्चरेत्।
मृगान्त्यचित्रामैत्रेषु देवध्यानन्तु राजसम् ॥१६४॥

धनप्राप्ति के लिये पश्चिम तरफ मुख करके मृगसिरा, चित्रा, मैत्र नक्षत्रों में कर्म करना चाहिये एवं देवता का राजस ध्यान करना चाहिये।।१६४।।

गोचर्म्मणासनं मोहे स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चरेत्।
हरिद्रामिश्रितं तोयं तर्पणार्थं प्रयोजयेत् ॥१६५॥
स्वाती च रोहिणी तत्र श्रेष्ठा चापि सुखासनम्।

सम्मोहन में गोचर्म के आसन का उपयोग करना चाहिये। मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' लगाना चाहिये एवं जल में हल्दी मिलाकर तर्पण करना चाहिये। सम्मोहन कर्म के लिये स्वाती और रोहिणी नक्षत्र श्रेष्ठ होते हैं। सुखासन में बैठकर सम्मोहन कर्म करना चाहिये।।१६५।।

अथ सर्वाणि कर्माणि रौद्रभे तु प्रसाधयेत् ॥१६६॥
नानाविधेषु कार्येषु व्याघ्रचर्म समीरितम्।
सर्वरक्षमिभाकारं ध्यायेन्निश्चलमानसः ॥१६७॥
पीयूषवर्षसंयुक्तं पूर्णचन्द्रसमप्रभम्।
ध्यायेदेवंविधं वापि सर्वकार्येषु साधकः ॥१६८॥

रौद्र नक्षत्रों में समस्त कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये। नानाविध कर्मों में व्याघ्रचर्म का आसन श्रेष्ठ होता है। सबकी रक्षा के लिये निश्चल मन से गणेश का ध्यान करना चाहिये। अथवा समस्त कार्यों में अमृतवर्षा से संयुक्त पूर्ण चन्द्रमा के समान आभा वाले देवता का ध्यान करना चाहिये।।१६६-१६८।।

आयुष्करस्तु श्रवणे ध्यायेद्देवं च राजसम्।
अपमृत्युजये प्रोक्तं पूर्वा चैवोत्तरात्रयम् ॥१६९॥
वषडन्तो होममन्त्रो ध्यायेद्राजसदैवतम्।
आकर्षणं वह्निकोणसम्मुखस्तु समाचरेत् ॥१७०॥
वश्योक्तमखिलं ज्ञेयमाकर्षे कार्यसिद्धये।
सर्वज्ञानप्रसिद्ध्यर्थमीशानाभिमुखो भवेत् ॥१७१॥
सर्वविज्ञानकार्येषु श्वेतकम्बलमासनम्।
पुष्ट्यादिसाधने मन्त्रो वौषट्पल्लवसंयुतः ॥१७२॥

हंसी स्यात्तर्जनीमुक्ता मुद्रा होमस्तु पौष्टिके।
यथोक्तदेवताध्यानं कुर्यात्पौष्टिककर्मणि ॥१७३॥
सर्वत्र भयनाशाय वषडन्तो हुतौ मनुः।
महासुखसमायुक्तध्यानं वै निर्भयं भवेत् ॥१७४॥
मन्त्रभञ्जनकार्येषु वषडन्तो हुतौ मनुः।
खण्डने तु फडन्तः स्याद्धोमो ध्यानन्तु तामसम् ॥१७५॥
सौख्यायोदङ्मुखः कुर्याज्जपञ्च रुरुचर्मणि।
कल्पान्ताग्निसमं युद्धे ध्यायेद्देवं च तामसम् ॥१७६॥

आयुवर्द्धक कर्म श्रवण नक्षत्र में करना चाहिये। इसमें देवता का राजस ध्यान करना चाहिये। अपमृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिये कर्म तीनों पूर्वा और तीनों उत्तरा में करना चाहिये। इसके हवन में मन्त्र के अन्त में वषट् लगाना चाहिये एवं देवता का राजस ध्यान करना चाहिये।

आकर्षण कर्म अग्निदिशा में मुख करके करना चाहिये। वशीकरण में जिस प्रकार के कर्म होते हैं, वैसे ही कर्म आकर्षण की सिद्धि के लिये भी करना चाहिये।

ईशान कोण में मुख करके कर्म करने से सभी प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है। इसके लिये उजले कम्बल का आसन उत्तम होता है।

पुष्टि आदि के साधन में मन्त्र के साथ 'वौषट्' का पल्लव लगाया जाता है। पौष्टिक हवन में हंसी मुद्रा से आहुति प्रदान की जाती है एवं देवता का ध्यान पूर्वोक्त रूप से किया जाता है।

समस्त स्थानों पर भय के विनाश के लिये मन्त्र के अन्त में 'वषट्' लगाकर हवन करना चाहिये। महासुख से समायुक्त देवता के ध्यान से निर्भयता प्राप्त होती है।

मन्त्रभञ्जन कार्य में 'वषट्' लगाकर एवं खण्डन में 'फट्' लगाकर हवन करना चाहिये तथा देवता के तामस रूप का ध्यान करना चाहिये।

सुखप्राप्ति के लिये रुरु मृग के चर्म पर बैठकर उत्तरमुख होकर जप करना चाहिये। युद्ध में देवता का तामस ध्यान कल्पान्त अग्नि के समान करना चाहिये।

काम्यादौ पूज्या देवताः

अथ वक्ष्यामि काम्यादौ सम्पूज्या याश्च देवताः।
नित्यं समर्चयेद्विघ्नं वारेशांश्च तिथीश्वरम् ॥१७७॥
नक्षत्रेशास्ततः पूज्यास्तत्तत्कर्माधिदेवताः।
ततोऽर्चयेदिष्टदेवं ततो होमं समाचरेत् ॥१७८॥

काम्य कर्म के देवता—अब काम्य कर्मों में जिन देवताओं का पूजन किया जाता है, उनका मैं वर्णन करता हूँ। काम्य कर्म का अनुष्ठान करते समय प्रतिदिन गणेश, वारेश, तिथीश्वर, नक्षत्रेश एवं कर्म के अधिदेवता का अर्चन करने के बाद इष्टदेवता का पूजन करके हवन करना चाहिये।।१७७-१७८।।

क्रमाद्वारेश्वरौ सूर्यशिवौ सोमाम्बिके तथा।
गुहाङ्गारौ ज्ञविष्णू च चतुर्वक्त्रबृहस्पती ॥१७९॥
शुक्रेन्द्रौ शनिकालौ च सूर्यादौ पूज्यदेवताः।
प्रोक्ता वारेश्वरा देवि तिथीशांस्त्वमथो शृणु ॥१८०॥
ब्रह्मा विधाता विष्णुश्च यमः शीतकरो गुहः।
इन्द्रश्च वसवो नागा धर्मः शिवदिवाकरौ ॥१८१॥
कन्दर्पश्च कलिर्विश्वेदेवाश्च पितरस्तथा।
आश्विनेयौ यमो वह्निर्ब्रह्मा चन्द्रः शिवोऽदितिः ॥१८२॥
गुरुः सर्पाश्च पितरो भगोर्यमदिवाकरौ।
त्वष्टा वायुरथेन्द्राग्नी मित्रश्चैव सुरेश्वरः ॥१८३॥
निर्ऋतिश्च जलं विश्वेदेवाश्चापि विधिर्हरिः।
वसवो वरुणोऽजैकपादहिर्बुध्न्यपूषकौ ॥१८४॥
नक्षत्रेशा इमे साभिजित्का अष्टौ च विंशतिः।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्ता नमसा च समन्विताः ॥१८५॥
एतेषां नाममन्त्रास्तु ग्राह्याः पूजादिसाधने ॥१८६॥
सिद्धमन्त्रः प्रकुर्वीत काम्यकर्माणि नान्यथा।
कृतानि विपरीतानि कृत्वा निरयमाप्नुयात् ॥१८७॥

सप्ताह के सात दिनों के अलग-अलग देवता होते हैं, जिन्हें वारेश कहा जाता है। जैसे—रविवार के सूर्य, सोमवार के शिव, मंगलवार के कार्तिकेय, बुधवार के विष्णु, बृहस्पतिवार के ब्रह्मा, शुक्रवार के इन्द्र एवं शनिवार के काल देवता हैं। वारेश के रूप ये पूज्य हैं। इस प्रकार वारेश्वरों का वर्णन किया गया।

हे देवि! अब तिथीशों का वर्णन सुनो। प्रतिपदादि तिथियों के ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, यम, कार्तिकेय, इन्द्र, वसु, नाग, धर्म, शिव, सूर्य, कामदेव, काल, विश्वेदेव, चन्द्र एवं पितर क्रमशः देवता कहे गये हैं। उनकी तिथि में तिथीशों का पूजन करना चाहिये।

अभिजित् सहित अश्विनी आदि अट्ठाईस नक्षत्रों के यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्र, शिव, अदिति, गुरु, नाग, पितर, भग, अर्यमा, दिवाकर, त्वष्टा, वायु, इन्द्र, अग्नि,

मित्र, अश्विनीकुमार, इन्द्र, निर्ऋति, विश्वेदेव, ब्रह्मा, विष्णु, वसु, वरुण, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य एवं पूषा क्रमशः देवता कहे गये हैं। ये सभी अपने-अपने नक्षत्रों में पूज्य होते हैं। इनकी पूजा आदि में आदि में प्रणव के साथ चतुर्थ्यन्त नाम के बाद नमः लगाकर बनाये गये नाममन्त्र का ग्रहण करना चाहिये। मन्त्र के सिद्ध होने पर ही उसका प्रयोग काम्य कर्मों में करना चाहिये; अन्यथा नहीं। इसके विपरीत करने से नरकगामी होना पड़ता है।।१७९-१८७।।

गुरुभक्तः शुचिः स्नातः काम्यकर्मविधानवित्।
आत्मनश्च परस्यापि काम्यकर्माणि चाचरेत्।।१८८।।
षट्कर्माणि परार्थञ्च कुर्यान्मन्त्रविदुत्तमः।
एतेषामेव कुर्वीत नान्येषान्तु कदाचन।।१८९।।

गुरुभक्त, पवित्र, स्नान किये हुये काम्य कर्म के विधान को जानने वाले को ही अपने लिये अथवा दूसरों के लिये काम्य कर्म का अनुष्ठान करना चाहिये। उत्तम मन्त्रज्ञ को दूसरों के लिये ऊपर वर्णित षट्कर्मों को ही करना चाहिये। इनके अतिरिक्त दूसरे प्रकार का कर्म कदापि नहीं करना चाहिये।।१८८-१८९।।

राज्ञो वा राजपुत्रस्य धनाढ्यस्येतरस्य वा।
आस्तिकस्यापि भक्तस्य न्यायार्जितधनस्य च।।१९०।।
कृतज्ञस्य वदान्यस्य गुरुदेवार्चकस्य च।
सुशीलस्य सुभक्तस्य कार्यं कुर्याच्च देशिकः।।१९१।।
राजा कारयितान्यो वा प्रणिपत्य च साधकम्।
वृणुयात्कर्मकर्तारं दीक्षोक्तविधिना ततः।।१९२।।
साधकः प्रयतो भूयाद् द्विजः सन्तोषवाञ्छुचिः।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो मानक्षोभविवर्जितः।।१९३।।
नित्ये नैमित्तिके रक्तः कुर्यात्कामाननेकथा।
क्रूरकर्म यथोक्तन्तु कृत्वाभ्यङ्गं समाचरेत्।।१९४।।
स्नात्वा सावरणां साङ्गां पूजयेदिष्टदेवताम्।
अष्टोत्तरसहस्रञ्च रक्षार्थं प्रजपेन्मनुम्।।१९५।।
मां रक्षरक्षेत्युक्त्वा च नत्वा देवं समुत्सृजेत्।
अन्यैः सुहृद्भिः सुस्निग्धैरात्मरक्षां तु कारयेत्।।१९६।।
मृत्युञ्जयादिभिर्मन्त्रैः सूर्यसेवार्घ्यदानकैः।
जपहोमार्चनाद्यैश्च ब्राह्मणाराधनादिभिः।।१९७।।
प्रयोगकरणं सम्यग्गुरुतः शास्त्रतस्तथा।
ज्ञात्वा प्रयोगान् कुर्वीत ह्यन्यथा दुःखमाप्नुयात्।।१९८।।

राजा, राजकुमार, धनाढ्य, अन्य आस्तिक भक्त, न्यायपूर्वक अर्जित धन वाला, कृतज्ञ, उदार, गुरु-देवता का पूजक, सुशील, सुभक्त व्यक्तियों के लिये ही देशिक को काम्य कर्म का अनुष्ठान करना चाहिये। इसके लिये अनुष्ठान कराने वाला राजा अथवा अन्य किसी को भी साधक को प्रणाम करके दीक्षोक्त विधि के अनुसार कर्म करने के लिये उसका वरण करना चाहिये। तदनन्तर द्विज, पवित्र, सन्तोषी, जितेन्द्रिय, क्रोधविजेता, मान-अपमान को समान समझने वाले, नित्य-नैमित्तिक कर्मों में अनुरक्त, अनेक प्रकार के काम्य कर्मों को जानने वाले साधक को यथोक्त क्रूर कर्म करने के पश्चात् अभ्यङ्ग करना चाहिये। देवता को स्नान कराने के बाद अंग एवं आवरणसहित उनका पूजन करने के पश्चात् साधक को अपनी रक्षा-हेतु मन्त्र का एक हजार आठ जप करना चाहिये। तदनन्तर 'मा रक्ष-रक्ष' यह कहकर प्रणाम करके देवता का विसर्जन करना चाहिये। साथ ही साथ मृत्युञ्जयादि मन्त्रों से, सूर्य की आराधना एवं अर्घ्यदान से, जप-होम-अर्चन से एवं ब्राह्मणों की आराधना से अपने साथ-साथ अन्य सुहृदों एवं मित्रों की रक्षा का भी उपाय करना चाहिये। अनुष्ठेय कर्म के प्रयोग का गुरु एवं शास्त्र से सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही प्रयोग करना चाहिये; अन्यथा दुःख प्राप्त होता है।।१९०-१९८।।

सिद्धिस्थिरीकरणोद्यमः

ततः कारयिता राजा तोषयेत्साधकं धनैः।
प्रणिपत्य मुहुश्चापि यथा स्यात्तुष्टिमाँस्तथा ॥१९९॥
सिद्धमन्त्रस्य सिद्ध्यन्ति षट् कर्म्माणि न संशयः।
नैव सिद्ध्यन्त्यसिद्धस्य देवताशापमाप्नुयात् ॥२००॥
काम्यप्रयोगकाराणां परलोको न विद्यते।
प्रयोगसिद्धिरेवैषां फलमन्यन्न विद्यते ॥२०१॥

इसके बाद अनुष्ठान कराने वाले राजा को धनादि प्रदान करते हुये साधक की सन्तुष्टि के लिये उसे बार-बार प्रणाम करना चाहिये। सिद्ध मन्त्र से षट्कर्म सिद्ध होते हैं; इसमें कोई शंका नहीं है। असिद्ध मन्त्र से कर्म सिद्ध नहीं होते; अपितु देवता का शाप प्राप्त होता है। काम्य प्रयोग करने वालों का परलोक नहीं होता; अपितु प्रयोग की सिद्धि ही उनका फल होता है; अन्य कुछ नहीं।।१९९-२०१।।

होमतर्पणमन्त्राद्यैर्नानाध्यानविशेषकैः ।
आत्मनश्च परस्यापि षट् कर्म्माणि सुसाधयेत् ॥२०२॥
एकलक्षं जपेन्मन्त्री ध्यानविन्यासयोगतः।
प्रयोगदोषशान्त्यर्थमात्मरक्षार्थमेव च ॥२०३॥

न चेन्न फलमाप्नोति देवताशापमाप्नुयात्।

होम, तर्पण, मन्त्र एवं नाना प्रकार के ध्यान द्वारा अपने और दूसरों के लिये षट्कर्मों का विधिवत् साधन करना चाहिये। प्रयोग के कारण होने वाले दोष की शान्ति एवं अपनी रक्षा के लिये ध्यान-विन्यासपूर्वक मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। ऐसा न करने से प्रयोग का फल तो नहीं ही मिलता है; उलटे देवता का शाप भी प्राप्त होता है।।२०२-२०३।।

अग्निप्रभाधूमवर्णध्वनिगन्धशिखाकृति ।
दूतचेष्टादिकं सर्वं कथयेत शुभाशुभम् ॥२०४॥
मन्त्रयित्वानुसन्धानं देहावेशादिलक्षणम्।
गुरुभक्तिः सदा कार्या कर्मकाले विशेषतः ॥२०५॥
ऐहिकामुष्मिकानान्तु गुरुरेव परायणम्।

हवन में अग्नि की प्रभा, धूम्र का वर्ण, अग्निशिखा का आकृति, शब्द और गन्ध, दूत की चेष्ा आदि से शुभ और अशुभ का ज्ञान प्राप्त होता है। अभिमन्त्रित करके देहावेश आदि के लक्षणों का अनुसन्धान करना चाहिये। गुरु-भक्ति सदैव करनी चाहिये; किन्तु कर्मकाल में विशेष रूप से भक्ति करनी चाहिये। लौकिक एवं पारलौकिक कर्मों में गुरु ही दूसरा मार्ग होता है।।२०४-२०५।।

मारणोच्चाटनादीनि क्षुद्राणां वाममार्गिणाम् ॥२०६॥
क्षुद्रदेवाः साधयन्ति सुखं दातुं न ते क्षमाः।
परनिष्ठापराणां तु वामिनां परमा गतिः ॥२०७॥
यावद्दिष्टं तावदेव प्रतिष्ठा च धनादिकम्।

मारण, उच्चाटन आदि क्षुद्र कर्म वाममार्गी लोग करते हैं, इसके लिये वे क्षुद्र देवता की साधना करते हैं। उन देवताओं में सुख देने की क्षमता नहीं होती। जो वाममार्गी दूसरे के कल्याण के लिये कर्म करते हैं, उन्हें परम गति प्राप्त होती है। जैसे देवता होते हैं, उसी प्रकार की प्रतिष्ठा और धनादि प्राप्त होते हैं।।२०६-२०७।।

दाक्षिणात्या न कुर्वन्ति कदाचिदिह निन्दितम् ॥२०८॥
तेषां प्रभावसंसिद्धिः परलोकश्च शाश्वतः।
ये नराः कुलसंशुद्धाः कल्पोक्तेनैव संस्कृताः ॥२०९॥
ते चेन्निपतिता वामे पातकं किमतः परम्।
इयं प्रोक्तोत्तरा चर्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२१०॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
सिद्धिस्थिरीकरणप्रकाशः सप्तमः ।।७।।

दक्षिणमार्गी इस प्रकार के निन्दित कर्म कभी नहीं करते। मन्त्र के प्रभाव से ही उनको सम्यक् सिद्धि एवं शाश्वत परलोक प्राप्त होता है। जो मनुष्य कुलाचार से शुद्ध एवं कल्पोक्त रीति से संस्कृत होते हैं, वे भी यदि वामनार्ग से साधना करते हैं, तो पतित होते हैं; क्योंकि इससे बड़कर कोई पाप नहीं होता। इस प्रकार उत्तरा चर्या का वर्णन किया गया; अब अन्य क्या सुनने की इच्छा है।।२०८ २१०।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत 'सिद्धि-स्थिरीकरण' नामक सप्तम प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ

●

अथाष्टमः प्रकाशः

(मुद्रालक्षणप्रकाशः)

श्रीदेव्युताच

मुद्राणां लक्षणं ब्रूहि यास्तुल्या वामदक्षिणे।
सर्वदेवप्रिया याश्च पूजासाफल्यदायिकाः ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा—हे शिवजी! वाम एवं दक्षिणमार्ग में जो एक समान हैं, समस्त देवताओं को जो प्रिय हैं एवं पूजा में जो सफलता प्रदान करने वाले हैं, उन मुद्राओं के लक्षणों को आप कहें।।१।।

दैवतप्रीतिकरमुद्रालक्षणानि

श्रीशिव उवाच

वक्ष्येऽथ नाम पूर्वाणि मुद्राणां लक्षणानि तु।
नित्यं यः कुरुते सर्वा देवाः स्युस्तस्य सौख्यदाः ॥२॥

श्री शिवजी ने कहा—नामसहित मुद्राओं के लक्षणों को अब मैं कहता हूँ। जो साधक इन मुद्राओं का नित्य प्रयोग करता है, उसके लिये सभी देवता सुख प्रदान करने वाले होते हैं।।२।।

अङ्कुशमुद्रा

अङ्कुशाख्या भवेन्मुद्रा पृष्ठेऽनामा कनिष्ठया।
अङ्गुष्ठे तर्जनी वक्रा सरला चापि मध्यमा ॥३॥

अंकुश मुद्रा—अनामिका एवं कनिष्ठा को मोड़कर मध्यमा को सीधी रखकर अनामिका से अंगूठे को सटा दे; साथ ही तर्जनी को मध्यमा से सटा कर बीच से मोड़ दे तो यह अंकुश मुद्रा होती है।।३।।

कण्ठमुद्रा

सा कण्ठमुद्रा हस्ताभ्यां सर्वकण्ठो निबध्यते।
यत्रैकमुष्टिरङ्गुष्ठो दक्षो वामं समाश्रितः ॥४॥

कण्ठ मुद्रा—दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर अंगूठों को फैलाकर कण्ठ को ढँकने में कण्ठ मुद्रा होती है।।४।।

वह्निप्राकारमुद्रा

वह्निप्राकारमुद्रा तु त्रिशूलाग्रावुभौ करौ।
व्यत्यस्तावभितो वह्नेर्नयेदस्त्राह्वयापि च ॥५॥

वह्निप्राकार मुद्रा—दोनों हाथों की कनिष्ठा और अंगूठों को मोड़कर तर्जनी, मध्यमा, अनामिका को सीधी रखकर त्रिशूल के समान बनाकर हाथों को उलट-फेर करके रखने से अस्त्रमन्त्र से अग्नि को ले आने की भावना करने से वह्निप्राकार अर्थात् अग्निघेरा नामक मुद्रा होती है।।५।।

अङ्गुलिन्यासमुद्रा

अङ्गुलीन्यासमुद्रास्तु पञ्चाङ्गुल्यः स्पृशेत्क्रमात्।
अङ्गुष्ठेन चतस्रस्तु तर्ज्जन्याङ्गुष्ठमेव च ॥६॥

अंगुलिन्यास मुद्रा—करन्यास मुद्रा में अंगूठे से चारो अंगुलियों का बारी-बारी से स्पर्श किया जाता है एवं अंगूठे का स्पर्श तर्जनी से किया जाता है। ।६।।

हृदयमुद्रा

हृदयाख्या भवेन्मुद्राङ्गुष्ठवर्ज्याः प्रसारिताः।
चतस्रोऽङ्गुलयो व्यस्ता हृदये तस्य मन्त्रतः ॥७॥

हृदय मुद्रा—हृदय मुद्रा में अंगूठे के अतिरिक्त चारो अंगुलियों को फैलाकर हृदय का स्पर्श किया जाता है।।७।।

शिरोमुद्रा

शिरोमुद्रा तु सा ज्ञेया तलं पार्श्वे प्रसारितम्।
चतस्रोऽङ्गुलयश्चापि प्रसार्य्य शिरसा धृताः ॥८॥

शिरोमुद्रा—शिरोमुद्रा में हस्ततल-सहित प्रसरित अंगुलियों से शिर का स्पर्श किया जाता है।।८।।

शिखामुद्रा

शिखामुद्रा तु सा ज्ञेया मुष्टिं चाङ्गुष्ठपल्लवम्।
बद्ध्वा तेन शिखां स्पृष्ट्वा शिखामन्त्रेण साधकैः ॥९॥

शिखा मुद्रा—शिखा मुद्रा में मुट्ठियों को बाँधकर अंगूठे से शिखामन्त्र बोलते हुये शिखा का स्पर्श किया जाता है।।९।।

कवचमुद्रा

कवचाख्या त्वियं मुद्रा ह्यङ्गुल्यः कृतनालिकाः।
स्कन्धादानाभिपर्य्यन्तं पाण्योस्तु प्रक्रमो भवेत् ॥१०॥

कवच मुद्रा—कवच मुद्रा में बाँयें करतल से दक्ष स्कन्ध और दाँयें करतल से वाम स्कन्ध से नाभिपर्यन्त स्पर्श एक ही समय किया जाता है।।१०।।

त्रिनेत्रमुद्रा

त्रिनेत्रमुद्रा ख्यातेयं तर्ज्जनीदक्षनेत्रगा।
भाले मध्या त्वनामा तु वामे त्र्यक्षदिवौकसाम् ॥११॥

त्रिनेत्र मुद्रा—त्रिनेत्र मुद्रा में तर्जनी दक्ष नेत्र पर, मध्यमा भ्रूमध्य में और अनामिका वाम नेत्र पर नेत्रमन्त्र कहते हुए रखी जाती है।।११।।

द्विनेत्रमुद्रा

द्विनेत्रमुद्रा ख्यातेयं तर्ज्जनीदक्षनेत्रगा।
मध्यमावामनेत्रे च सूर्यविष्ण्वादिभेदयोः ॥१२॥

द्विनेत्र मुद्रा—द्विनेत्र मुद्रा से विष्णु और सूर्य का पूजन किया जाता है। इसमें तर्जनी दक्षनेत्र पर और मध्यमा वाम नेत्र पर मन्त्रसहित रखी जाती है।।१२।।

अष्टमुद्राः समाख्याताः सर्वारिष्टनिवारिणीः।
अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां हस्तयोरभिशब्दिताः ॥१३॥
नित्ये नैमित्तिके चैता अङ्गषट्कस्य मुद्रिकाः।
अथ काम्येषु वक्ष्यामि षण्मुद्राणान्तु लक्षणम् ॥१४॥

ऊपर जिन आठ मुद्राओं का वर्णन किया गया है, ये सर्वारिष्टनिवारिणी मानी जाती हैं। अङ्गुष्ठ, तर्जनी और हाथों के योग से ये मुद्रायें बनती हैं। नित्य-नैमित्तिक कर्मों में इनका प्रयोग होता है। अब काम्य कर्मों में प्रयुक्त होने वाली छः मुद्राओं का वर्णन करता हूँ।।१३-१४।।

ललितानमस्कारमुद्रा

अङ्गुष्ठयोः पार्श्वयोगस्तर्जन्यौ सरले युते।
मध्यमेऽन्योन्यकरयोः पृष्ठलग्ने परे तथा ॥१५॥
अन्योन्यान्तर्गते केचिदुच्चे च करपृष्ठतः।
एषा नमस्कारमुद्रा ललितायाः प्रकीर्तिता ॥१६॥

ललिता नमस्कार मुद्रा—दोनों अंगूठों को सीधी तर्जनी के बगल में सटाकर अनामिका-कनिष्ठा को मोड़कर, एक करपृष्ठ पर दूसरे करपृष्ठ को रखकर मध्यमाओं को परस्पर पकड़ने से यह मुद्रा बनती है।।१५-१६।।

क्षोभिणीमुद्रा

तर्ज्जन्यौ सरले कृत्वा शेषाङ्गुल्यो नखैर्युताः।
कनिष्ठामध्यपर्वस्थावङ्गुष्ठौ क्षोभिणी मता ॥१७॥

क्षोभिणी मुद्रा—दोनों तर्जनियों को सीधी करके शेष तीनों अंगुलियों को नख से नख मिलाने और अंगूठे को कनिष्ठा के मध्य में लगाने से क्षोभिणी मुद्रा बनती है।

द्राविणीमुद्रा

सरले तर्जनीमध्ये कनिष्ठानामिके युते।
अग्रयोश्च कनिष्ठास्थावङ्गुष्ठौ द्राविणी भवेत् ॥१८॥

द्राविणी मुद्रा—तर्जनी एवं मध्यमा को सीधी करके अनामिका-कनिष्ठा को मिलाकर उनसे अंगूठों को मिलाने पर द्रावणी मुद्रा बनती है।।१८।।

आकर्षिणीमुद्रा

कनिष्ठामध्यमाङ्गुष्ठौ तर्जन्यौ विनतेऽर्धतः।
मध्यमे सरले शेषा मुखयुक्तानुकर्षिणी ॥१९॥

आकर्षिणी मुद्रा—दोनों कनिष्ठाओं के मध्य में दोनों अंगूठों को लगावे। दोनों तर्जनियों को अधोमुख करे। मध्यमा को सीधी रखे एवं अनामिका को अनामिका से मिलावे। इस प्रकार आकर्षिणी मुद्रा बनती है।।१९।।

हृदयमुद्रा

हृन्मुद्रा स्यादियं काम्ये तथा शैवागमेषु च।
कृतमुष्टिपदौ हस्तौ कृत्वाङ्गुष्ठौ हृदि न्यसेत् ॥२०॥

हृदय मुद्रा—दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर अंगूठे को खड़ा करके मुट्ठियों को मिलाकर हृदय का स्पर्श करने से काम्य कर्म में हृदय मुद्रा बनती है। शैवागम में भी इसी प्रकार का वर्णन है।।२०।।

शिरोमुद्रा

शिरोमुद्रा ललाटाग्रे कृतौ मुष्टियुतौ करौ।
कुर्यादूर्ध्वप्रसक्ताग्रे तर्जन्यौ ज्येष्ठया युते ॥२१॥

शिरो मुद्रा—दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर हाथों को सटाकर तर्जनी और मध्यमा से ललाट का स्पर्श करे।।२१।।

शिखामुद्रा

शिखामुद्रा करौ मुक्तौ कृतमुष्टियुताकृती।
ज्येष्ठाङ्गुल्यौ प्रसक्ताग्रे कनिष्ठे तूर्ध्वतः स्थिते ॥२२॥

शिखा मुद्रा—दोनों हाथों की मुट्ठी बाँध कर मध्यमाओं को सीधी करके मुट्ठियों को आपस में सटाये। मध्यमाओं को भी सटाये एवं कनिष्ठाओं को ऊपर रखे।।२२।।

कवचमुद्रा

कवचाख्या प्रसक्ताख्यावङ्गुष्ठौ च त्रिकोणवत्।
तर्जन्यावानयेन्मूर्ध्नि मुखे पार्श्वे करे हृदि ॥२३॥

कवच मुद्रा—दोनों हाथों की कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा मोड़कर तर्जनी और अंगूठों को सीधी रखकर कोणवत् करके तर्जनी से मूर्धा, मुख, पार्श्व, हाथ और हृदय का स्पर्श करे।।२३।।

नेत्रमुद्रा

नेत्रमुद्रा तु सरला मध्या तर्जन्यनामिके।
धनुषाभे संयुताग्रे अङ्गुष्ठककनिष्ठिके ॥२४॥

नेत्र मुद्रा—दोनों हाथों की तर्जनी, मध्यमा, अनामिका अंगुलियों को सीधी रखकर कनिष्ठा और अंगूठों से धनुषाकार बनाकर नेत्रों का स्पर्श करे।।२४।।

अस्त्रमुद्रा

अस्त्रमुद्रा करद्वन्द्वस्फोटे चापि तदुत्तरम्।
तर्जन्या शब्दयेत्ताभ्यां ज्येष्ठाग्रवलिताग्रया ॥२५॥

अस्त्र मुद्रा—पहले हाथों से ताली बजावे। उसके बाद तर्जनी और मध्यमा मिलाकर ताली बजावे। दाँयें हाथ को शिर के चारो ओर घुमाकर बाँयें हाथ पर मध्यमा और तर्जनी से ताली बजावे।।२५।।

गालिनीमुद्रा

गालिनी तु कनिष्ठाङ्गुष्ठौ युतावितरेतरम्।
करयोस्तर्जनीमध्या नामयुक्ता न वक्रिताः ॥२६॥

गालिनी मुद्रा—दोनों हाथों की तर्जनी, मध्यमा, अनामिका मोड़कर अंगूठों और कनिष्ठाओं को परस्पर सटाने से गालिनी मुद्रा बनती है।।२६।।

धनुर्मुद्रा

धनुर्मुद्रा कनिष्ठानामिके चान्योन्यहस्तयोः।
तर्जनीमध्यमे चापि दक्षस्कन्धे प्रदर्शयेत् ॥२७॥

धनुर्मुद्रा—दोनों हाथों की कनिष्ठा, अनामिका या मध्यमा, तर्जनी से दाँयें कन्धे का स्पर्श करने से धनुर्मुद्रा बनती है।।२८।।

शङ्खमुद्रा

शङ्खमुद्रा तु वामाख्यमङ्गुष्ठं दक्षमुष्टिगम्।
वामाङ्गुल्यग्रदक्षाङ्गुष्ठस्य योगे प्रजायते ॥२८॥

शंख मुद्रा—बाँयें हाथ के अंगूठे को दाहिने हाथ की मुट्ठी में लेकर दाहिने हाथ के अंगूठे को बाँयीं अंगुलियों से सटाने से शंखमुद्रा बनती है।।२८।।

योनिमुद्रा

योनिमुद्रान्योऽन्यकरकनिष्ठातर्जनीयुतिः ।
व्यस्ते तले तु शेषाङ्गुल्यावङ्गुष्ठावनामिके ॥२९॥

योनिमुद्रा—अधोमुख वाम कर पर अधोमुख दक्ष कर रखकर अंगूठों को चलाने से मत्स्य मुद्रा बनती है।।२९।।

मत्स्यमुद्रा

मत्स्यमुद्राऽधोमुखन्तु वामहस्तं तदूर्ध्वतः ।
तादृशं दक्षिणं न्यस्याङ्गुष्ठकौ चालयेदिति ॥३०॥

मत्स्य मुद्रा—अधोमुख वाम कर पर अधोमुख दक्ष कर रखकर अंगूठों को चलाने से मत्स्य मुद्रा बनती है।।३०।।

आवाहनीमुद्रा

आवाहनी तु मुद्रा स्यात्कराभ्यामञ्जलिं चरेत् ।
अनामयोर्मूलपर्वण्यङ्गुष्ठौ निक्षिपेत्तदा ॥३१॥

आवाहनी मुद्रा—दोनों हाथों की अंजलियों को अपने सामने करके अनामिका-मूल में अंगुष्ठाग्रों को सटाने से आवाहनी मुद्रा बनती है।।३१।।

स्थापनीमुद्रा

स्थापनी सा तु मुद्रा स्यादेषावाहनमुद्रिका ।
अधोमुखीकृता सा चेत्सर्वसंस्थापने क्षमा ॥३२॥

स्थापनी मुद्रा—आवाहनी मुद्रा के विपरीत करतलों को अधोमुख करने से स्थापनी मुद्रा बनती है।।३२।।

सम्मुखीकरणीमुद्रा

सम्मुखीकरणी मुद्रा सा ज्ञेया मुष्टियुग्मकम् ।
देवानां स्थापने या स्यादङ्गुष्ठद्वयमुक्तकम् ॥३३॥

सम्मुखीकरणी मुद्रा—दोनों अंगूठों को दोनों हाथों की मुट्ठी के अन्दर करके अपने सामने करने से सम्मुखीकरणी मुद्रा बनती है।।३३।।

सकलीकरणीमुद्रा

सकलीकरणीमुद्रा सा प्रोक्ता यः षडङ्गके ।
देवानां क्रियते न्यासो ह्यङ्गानामङ्गिने सकृत् ॥३४॥

सकलीकरणी मुद्रा—सकलीकरणी मुद्रा में देवता के षडङ्ग मन्त्र से साधक द्वारा अपने अङ्गों में षडङ्ग न्यास किया जाता है।।३४।।

अवगुण्ठनमुद्रा

अवगुण्ठनमुद्रा तु दीर्घाधोमुखतर्जनी।
मुष्टिबद्धस्य हस्तस्य सव्यस्य भ्रामयेच्च ताम् ॥३५॥

अवगुण्ठन मुद्रा—दोनों हाथों की कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा को मोड़कर तर्जनियों को सीधी करके उन पर अंगूठों को रखकर मुट्ठियों को सटाने से अवगुण्ठन मुद्रा बनती है।।३५।।

महामुद्रा

महामुद्रा समुद्दिष्टा परमीकरणे तु या।
अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठप्रसारितकराङ्गुली ॥३६॥

महामुद्रा—इसका प्रयोग परमीकरण में होता है। अंगूठों को सीधा रखकर अंगुलियों को परस्पर ग्रथित करने से यह मुद्रा बनती है।।३६।।

सन्निधापनमुद्रा

सन्निधापनमुद्रा स्याद्योगो मुष्टिद्वयस्य तु।
सम्यक्कृतावुभौ जातौ त्वङ्गुष्ठावुच्छ्रितौ यदि ॥३७॥

सन्निधापन मुद्रा—दोनों हाथों की मुट्ठियों को सटाकर अंगूठों को खड़ा करने से सन्निधापन मुद्रा बनती है।।३७।।

संरोधिनीमुद्रा

संरोधिनी तु सा मुद्रा मुष्ट्योरन्तः प्रवेशितौ।
द्वावङ्गुष्ठौ मुष्टियोगो निश्छिद्रश्च भवेद्यदि ॥३८॥

संरोधिनी मुद्रा—दोनों मुट्ठियों के अन्दर अंगूठों को बाँधकर मुट्ठियों को मिलाने से संरोधिनी मुद्रा बनती है।।३८।।

दन्तमुद्रा

दन्तमुद्रा गणेशस्य वल्लभा दक्षहस्तजा।
उत्तानोर्ध्वमुखी मध्यसरलाबद्धमुष्टिका ॥३९॥

दन्त मुद्रा—यह मुद्रा गणेश जी को अतिप्रिय है। दाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर मध्यमा को सीधा करके खड़ा करने से यह मुद्रा बनती है।।३९।।

पाशमुद्रा

पाशाह्वया तु वामस्य तर्जन्यां दक्षतर्जनीम्।
क्षिप्त्वा बद्ध्वा मुष्टियुगं तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्युतिः ॥४०॥

पाशमुद्रा—दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर तर्जनियों को सीधी रखकर उनपर अंगूठों को सीधा रखने में पाश मुद्रा बनती है।।४०।।

वशकरीमुद्रा

अन्योन्यान्तर्गता लग्नाः कराङ्गुल्यस्त्वधोमुखाः।
अङ्गुष्ठौ चोत्थितौ लग्नौ मुद्रा वशकरी मता ॥४१॥

वशकरी मुद्रा—दोनों हाथों की अंगुलियों को मुट्ठी के सदृश परस्पर ग्रथित करके उस पर अंगूठों को रखने से वशकरी मुद्रा बनती है।।४१।।

उन्मादिनीमुद्रा

कनिष्ठाग्रे तु चान्योन्यं सम्प्रसारितहस्तयोः।
मध्यमाभ्यां दृढं बद्ध्वानामिकाग्रे तु योजयेत् ॥४२॥
तर्ज्जन्यौ नामिकाग्रे तु प्रापयेन्मध्यमोपरि।
अन्योन्याङ्गुष्ठकौ लग्नौ मुद्रा चोन्मादिनी मता ॥४३॥

उन्मादिनी मुद्रा—दोनों अनामिकाओं को सीधी करके दोनों कनिष्ठाओं को मध्यमाओं से पकड़कर तर्जनियों को सीधी करने, मध्यमाओं अंगुष्ठमूल में सटाने और तर्जनियों को अनामिकाओं के साथ सटाने पर यह मुद्रा बनती है।।४२-४३।।

महाङ्कुशामुद्रा

मध्यमाभ्यां दृढं बद्ध्वा कनिष्ठाङ्गुलयः पराः।
संयोज्यानामिकामुख्यौ सरलौ स्यान्महाङ्कुशा ॥४४॥

महांकुशा मुद्रा—कनिष्ठाओं को मध्यमाओं से पकड़कर अनामिकाओं को सीधी करके परस्पर सटाने से एवं तर्जनी को सीधी करके अंगूठों को खड़ा करने से महांकुशा मुद्रा बनती है।।४४।।

विघ्नमुद्रा

विघ्नमुद्रा दीर्घरूपा मध्यमाधोमुखी यदा।
तर्ज्जनी मध्यमासन्धिनिर्गताङ्गुष्ठमुष्टिका ॥४५॥

विघ्न मुद्रा—यदि मध्यमा अधोमुखी हो तो मध्यमा और तर्जनी की सन्धि में अंगूठे को करके मुट्ठी बाँधने से यह मुद्रा बनती है।।४५।।

परशुमुद्रा

परशोश्च भवेन्मुद्रा तिर्य्यक् संयोज्य चाङ्गुलीः।
प्रसृतासंयुता हस्ता तलं हस्ततलान्वितम् ॥४६॥

परशु मुद्रा–अंजलियों को मिलाकर मणिबन्ध से नीचे की ओर झुकाकर परशु मुद्रा बनायी जाती है।।४६।।

मोदकमुद्रा

लड्डुकाख्या भवेन्मुद्रा ऊर्ध्वास्यं दक्षिणं करम्।
अङ्गुल्यो विरला नम्रा निम्नं करतलं तथा ॥४७॥

मोदक मुद्रा—दाँयें करतल को ऊपर करके अंगुलियों को अलग-अलग करके कुछ टेढ़ी करने से मोदक मुद्रा बनती है।।४७।।

बीजपूरणीमुद्रा

बीजपूरणया वाममुष्टावुत्तानके सति।
दन्ताद्याः षड्गणेशस्याङ्कुशमुद्रा च सप्तमी ॥४८॥

बीजपूरणी मुद्रा—दोनों हाथों को मिलाकर अर्द्धचन्द्राकृति बनाये, तर्जनी एवं अंगूठों का सीधा करे, उसके नीचे कनिष्ठा को मध्यमा से पकड़े और सबके नीचे अनामिकाओं को टेढ़ी करके जोड़े तो बीजमुद्रा बनती है। यह मुद्रा समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली होती है।।४८।।

वरमुद्रा

वराख्या सा तु मुद्रा स्यादतिसन्निहिताङ्गुलिम्।
उत्तानं दक्षिणं हस्तं कृत्वाधो नामयेच्छनैः ॥४९॥

वर मुद्रा—दाहिनी अंजलि को उत्तान करके आगे थोड़ा झुका देने से यह मुद्रा बनती है।।४९।।

अभयमुद्रा

अभयस्य तु मुद्रैषा कथिता चाभयप्रदा।
पराङ्मुखं वामहस्तं बद्धाङ्गुष्ठकनिष्ठिकम् ॥५०॥

अभय मुद्रा—यह अभय प्रदान करती है। वाम अंजलि को पराङ्मुखी करने से यह मुद्रा बनती है।।५०।।

चर्ममुद्रा

दक्षहस्तस्य मध्या च तर्जनी प्रसृते युते।

चर्ममुद्रा वामहस्तं तिर्य्यक्च सम्प्रसार्य्य हि।
आकुञ्चितगतिं कुर्यादियं शक्तिप्रिया मता ॥५१॥

चर्ममुद्रा—दक्ष कर की मध्यमा और तर्जनी को पसार कर आपस में मिलाने से चर्ममुद्रा बनती है। यह देव मुद्रा होती है। शक्ति मुद्रा बाँये हाथ को तिरछे पसारकर थोड़ा आंकुचित करने से बनती है।।५१।।

धनुर्मुद्रा

धनुर्मुद्रा वाममध्याग्रं तर्ज्जन्यग्रयोजितम्।
वामस्कन्धे कनिष्ठाग्रे दक्षिणाङ्गुष्ठपीडितम् ॥५२॥

धनुष मुद्रा—वाम मध्यमाग्र को तर्जनी के अग्र से जोड़े और इसमें कनिष्ठा को जोड़कर बाँयें कन्धे पर रखे एवं दाँये कन्धे पर दाँये अंगूठे को रखे तो धनुष मुद्रा बनती है।।५२।।

मुसलमुद्रा

मुसलाख्या भवेन्मुद्रा वामस्योपरि दक्षिणम्।
हस्तयोर्मुष्टियुगलं कुर्याद्विघ्नविनाशनम् ॥५३॥

मुसल मुद्रा—बाँयीं मुट्ठी के ऊपर दाँयीं मुट्ठी रखने से मुसल मुद्रा बनती है। यह विघ्नों का विनाश करने वाली होती है।।५३।।

दुर्गामुद्रा

दुर्गामुद्रा तु करयोर्मुष्टिं कृत्वा नियोजयेत्।
वामस्योपरि दक्षञ्च शिरसि स्थापयेदिति ॥५४॥

दुर्गा मुद्रा—शिर पर बाँयीं मुट्ठी रखकर उस पर दाहिनी मुट्ठी स्थापित करने से दुर्गा मुद्रा बनती है।।५४।।

बाणमुद्रा

बाणमुद्रा दक्षमुष्टेस्तर्जन्या दीर्घया भवेत्।
अष्टौ वराद्याः पाशश्चाङ्कुशः शक्तेर्दश स्मृताः ॥५५॥

बाण मुद्रा—दाँयीं मुट्ठी में तर्जनी को सीधी करने से बाण मुद्रा बनती है। वर आदि आठ और पाश एवं अंकुश—इन दो को मिलाकर दश मुद्राओं को शक्तिमुद्रा कहा जाता है।।५५।।

चक्रमुद्रा

चक्रमुद्रा करतले विपरीते विधाय च।
अङ्गुष्ठौ वेशयेच्चैव कनिष्ठानामिकान्तरे ॥५६॥

चक्र मुद्रा—करतलों को मिलाकर अंगूठों को कनिष्ठा और अनामिका की सन्धि में मिलाने से चक्र मुद्रा बनती है।।५६।।

गदामुद्रा

गदा तु सरलौ हस्तावन्योन्यग्रथिताङ्गुली।
अङ्गुल्यौ मध्यमे भूयः सँल्लग्ने सुप्रसारिते ।।५७।।

गदा मुद्रा—अंगुलियों को परस्पर ग्रथित करके उन पर अंगूठों को रखने से गदा मुद्रा बनती है।।५७।।

पद्ममुद्रा

पद्ममुद्रा करतले त्वङ्गुष्ठौ मिलितौ यदा।
हस्तौ तु सम्मुखौ कुर्यात्संहता उन्नताङ्गुली ।।५८।।

पद्म मुद्रा—करतलों में अंगूठों को मिलाकर हाथों को खड़ा करके आपस में मिलाकर अंगुलियों को अलग-अलग रखने से पद्म मुद्रा बनती है।।५८।।

वेणुमुद्रा

वेणुमुद्रा वामदक्षकनिष्ठाङ्गुष्ठयोगतः।
वामाङ्गुष्ठोदरे शेषा वक्रा चोर्ध्वं कनिष्ठिका ।।५९।।

वेणु मुद्रा—वाम-दक्ष दोनों कनिष्ठाओं को अंगूठों से मिलाकर वामांगुष्ठोदर में शेष अंगुलियाँ टेढ़ी करके मिलाने से वेणु मुद्रा बनती है।।५९।।

श्रीवत्समुद्रा

श्रोवत्सं मध्यमानामेऽङ्गुष्ठबद्धौ करौ युतौ।
कनिष्ठयोर्मूलगते तर्जन्यौ भवतो यदि ।।६०।।

श्रीवत्स मुद्रा—मध्यमा अनामिका से अंगुष्ठों को मिलाकर तर्जनियों को कनिष्ठा मूल में मिलाने से बनती है।।६०।।

कौस्तुभमुद्रा

कौस्तुभा मध्यमानामाङ्गुष्ठाश्चोर्ध्वमुखा युताः।
कनिष्ठातर्ज्जनीग्रन्थिः स्थाप्यौ तिर्यङ्मुखौ करौ ।।६१।।

कौस्तुभ मुद्रा—मध्यमा, अनामिका एवं अंगूठों को मिलाकर खड़ा करने एवं कनिष्ठा-तर्जनी को मिलाकर हाथों को तिरछा करके मिलाने से कौस्तुभ मुद्रा होती है।

वनमालामुद्रा

वनमालाख्या मुद्रा तर्जन्यङ्गुष्ठमुष्टिका।
करद्वयेन मालावत् स्पृशेदाकण्ठपादकम् ।।६२।।

वनमाला मुद्रा—तर्जनी एवं अंगूठों को सीधा करके शेष तीन अंगुलियों से मुट्ठी बाँधकर माला-सदृश कण्ठ से पाँवों तक स्पर्श करने पर वनमाला मुद्रा होती है।

ज्ञानमुद्रा

ज्ञानमुद्रा हृदि न्यस्तौ तर्ज्जन्यङ्गुष्ठकौ युतौ।
वामहस्ताम्बुजं वा तु यदि मूर्द्धनि विन्यसेत् ॥६३॥

ज्ञान मुद्रा—तर्जनी एवं अंगूठों को मिलाकर बने इस ज्ञान मुद्रा से हृदय में न्यास करने से अथवा बाँयें हाथ को कमलाकार बनाकर मूर्धा में न्यास करने से ज्ञान मुद्रा बनती है।।६३।।

विश्वमुद्रा

विश्वाख्या दक्षिणाङ्गुष्ठवेष्टितं वाममुच्छ्रितम्।
अन्योन्यहस्ताङ्गुलयस्तन्निष्ठाः स्थापयेद्धृदि ॥६४॥

विश्व मुद्रा—इस मुद्रा से हृदय में न्यास करना चाहिये। दक्षिण अंगुष्ठ को वेष्टित और वाम अंगुष्ठ को सीधा करके दोनों हाथों से हृदय का स्पर्श करने पर विश्व मुद्रा बनती है।।६४।।

प्रकोष्ठमुद्रा

प्रकोष्ठं वेष्टयित्वा च मणिबन्धौ च कूर्परौ।
सम्यक्संयोज्य मध्ये च तर्ज्जनीभ्यां सुवेष्टयेत् ॥६५॥

प्रकोष्ठ मुद्रा—मणिबन्ध और कोहनी को सम्यक् रूप से वेष्टित करके मध्यमा को तर्जनी से वेष्टित करने से प्रकोष्ठ मुद्रा बनती हैं।।६५।।

खेचरीमुद्रा

योगं मध्यमयोः कृत्वा द्वावङ्गुष्ठौ पराङ्गुली।
अन्योन्यान्तर्गते दक्षकर्णान्ते खेचरी मता ॥६६॥

खेचरी मुद्रा—दोनों हाथों की मध्यमा और तर्जनी के साथ अंगूठों को मिलाकर अन्योन्यान्तर्गत करके दक्षिण कर्ण तक ले जाने से खेचरी मुद्रा बनती है।।६६।।

योनिमुद्रा

आद्यपर्वणि चान्योन्यं सम्यग्योज्य कनिष्ठिके।
अनामिके च तदधो मध्यपर्वणि योजयेत् ॥६७॥
तासामूर्ध्वमनामे च नखाग्रे सन्नियोजयेत्।
सान्तरौ करभौ कृत्वा तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोर्युतिः ॥६८॥
एषा तु वरयोन्याख्या मुद्रा बीजाह्वया मता।
बीजविद्यां विना सर्वं वृथा पूजाजपादिकम् ॥६९॥

योनि मुद्रा—दोनों हाथों की कनिष्ठाओं के आद्य पर्व को सटाकर उनके नीचे अनामिकाओं को करके तर्जनियों से पकड़ने एवं मध्यमाओं और कनिष्ठाओं को सीधा सटाकर कनिष्ठाओं के मूल को अंगूठों से दबाने से योनि मुद्रा बनती है। इसे बीज मुद्रा भी कहा जाता है। बीज विद्या के विना पूजा-जप आदि व्यर्थ होते हैं।।६७-६९।।

गरुड़मुद्रा

मुद्रा गरुडस्य हस्तकौ विपरीतौ ग्रथिते कनिष्ठिके।
तर्जन्यपि संयुता मिथः पदतुल्ये उभयाङ्गुली वरे ॥७०॥

गरुड़ मुद्रा—एक करपृष्ठ पर दूसरे करपृष्ठ को रखकर कनिष्ठा से कनिष्ठा और तर्जनी से तर्जनी को पकड़कर बीच की दोनों अंगुलियों को सटाकर पदतुल्य बनाने से गरुड़ मुद्रा बनती है।।७०।।

नृसिंहमुद्रा

नृसिंहमुद्रा चिबुकाधरौ तु जान्वोस्तु मध्येऽथ करौ कुलग्नौ।
चेत्कम्पते व्यात्तमुखस्य जिह्वा संलेलिहाना नयने तु भीमे ॥७१॥
मुद्रा नरहरेः सर्वा अङ्गुल्यश्चेदधोमुखाः।
अङ्गुष्ठाभ्यां च करयोराक्रमेत कनिष्ठिके ॥७२॥

नृसिंह मुद्रा—घुटनों पर चिबुक एवं अधर को रखकर हाथों को पाँवों मे घुसेड़कर, मुख फाड़कर, जीभ को बाहर कँपकँपाते हुए, आखों को भयंकर करके सभी अंगुलियों को अधोमुख करके अंगूठों से कनिष्ठाओं को दबाने से नृसिंह मुद्रा बनती है।।७१-७२।।

वाराहीमुद्रा

वाराही दक्षमुत्तानं न्युब्जं वामं तदूर्ध्वतः।
अङ्गुल्यग्राणि संयोज्याधस्तात्सन्नमयेदिति ॥७३॥

वाराही मुद्रा—दाँयें हाथ की अंगुलियों को सटाकर अधोमुख करके उस पर अधोमुख बाँयाँ हाथ रखे एवं अंगुलियों के अग्रभाग को सटाकर थोड़ा झुकाने से वाराही मुद्रा बनती है।।७३।।

हयग्रीवमुद्रा

हयग्रीवा वामहस्ते तुल्याङ्गुल्यस्त्वधोमुखाः।
रुद्ध्वा मध्यमया मध्यां नामयेदिति सा भवेत् ॥७४॥

हयग्रीव मुद्रा—बाँयें हाथ की अंगुलियों को सटाकर हाथ को अधोमुख करे एवं उसी के समान दाँयाँ हाथ करके अधोमुख बाँयें पर रखे तधा मध्यमा को मध्यमा से दबाकर थोड़ा झुकावे तो हयग्रीव मुद्रा बनती है।।७४।।

कामाख्यामुद्रा

कामाख्या सम्पुटौ हस्तौ मध्यमे पृष्ठगे यदा।
तर्जन्यौ मध्यमासंस्थमङ्गुष्ठयुगलं यदि ॥७५॥

कामाख्या मुद्रा—हाथों को मिलाकर अंगूठों को करपृष्ठों से लगाने एवं अंगूठों को तर्जनी के मध्य पर्व से लगाने से कामाख्या मुद्रा बनती है।।७५।।

त्रैलोक्यमोहिनीमुद्रा

त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा मूर्ध्नि साङ्गुष्ठमुष्टिकैः।
चक्राद्याश्च धनुर्बाणपर्य्यन्ताश्च हरेरिमाः ॥७६॥

त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा—दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर अंगूठों को खड़ा करके मुट्ठियों को मिलाकर मूर्धा को स्पर्श करने से त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा बनती है। चक्रमुद्रा से आरम्भ कर धनुष-बाण तक की मुद्रायें विष्णु की मुद्रा होती हैं।।७६।।

चन्द्रमुद्रा

विधुमुद्रा करौ पद्मनिभौ श्लिष्टे च मध्यमे।
अङ्गुल्यौ धारयेत्तस्मिंश्चन्द्राग्रे सम्प्रदर्शयेत् ॥७७॥

चन्द्रमुद्रा—हाथों को कमलाकार बनाकर मध्यमाओं को श्लिष्ट करके चन्द्रमा के आगे करने से चन्द्र मुद्रा बनती है।।७७।।

सौरमुद्रा

सौरमुद्रा वामहस्तमधश्चोत्तानमूर्द्ध्वतः।
कमलाकृतिमुद्रा स्यादुभे स्तो भास्करप्रिये ॥७८॥

सौर मुद्रा—उत्तान बाँयें हाथ पर कमलाकार दाँयाँ हाथ रखने से सौर मुद्रा बनती है; यह मुद्रा सूर्य को प्रिय होती है।।७८।।

लिङ्गमुद्रा

लिङ्गमुद्रा दक्षिणाख्यं वामाङ्गुष्ठेन वेष्टयेत्।
वामाङ्गुल्यौ दक्षिणाभिर्वेष्टयेत्सा शिवप्रिया ॥७९॥

लिङ्ग मुद्रा—दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर ग्रथित करके मुट्ठी के समान बनाकर दाँयें अंगूठे के पीछे बाँयाँ अंगूठा सटाकर खड़ा करने से यह मुद्रा बनती है। यह मुद्रा भगवान् शिव को बहुत प्रिय है।।७९।।

त्रिशूलमुद्रा

त्रिशूलाख्या भवेन्मुद्रा अङ्गुष्ठेन कनिष्ठिकाम्।
बद्ध्वा प्रसारयेच्छेषमङ्गुलीनां त्रयं तदा ॥८०॥

त्रिशूल मुद्रा—अंगूठे से कनिष्ठा को बद्ध करके शेष तीनों अंगुलियों को अलग-अलग करके खड़ा करने से यह मुद्रा बनती है।।८०।।

मालामुद्रा

मालामुद्राङ्गुष्ठतर्जन्यग्रं तु ग्रन्थयेद् दृढम्।
प्रसारयेदङ्गुलीनां त्रयं जपसुसिद्धये ॥८१॥

माला मुद्रा—अंगूठे और तर्जनी को दृढ़तापूर्वक बद्ध करके शेष तीनों अंगुलियों को पसारने से यह मुद्रा बनती है। इससे जप में सिद्धि मिलती है।।८१।।

मृगमुद्रा

मृगमुद्रा तर्जनी च कनिष्ठा चोच्छ्रिताग्रका।
अनामिकाङ्गुष्ठमध्याग्राणि तिर्य्यग्युतानि च ॥८२॥

मृगी मुद्रा—तर्जनी एवं कनिष्ठा को सीधी रखकर मध्यमा, अनामिका को थोड़ा झुकाकर अंगूठे से मिलाने पर मृगी मुद्रा बनती है।।८२।।

खट्वाङ्गमुद्रा

खट्वाङ्गमुद्रा षड्वक्त्रा शिवस्यातिप्रिया भवेत्।
पञ्चाङ्गुल्यो दक्षिणाश्चेन्मिलिता ऊर्ध्वमुच्छ्रिताः ॥८३॥

खट्वाङ्ग मुद्रा—शिव को अत्यन्त प्रिय यह मुद्रा सीधी पाँचों अंगुलियों को मिलाकर दाँयाँ हाथ खड़ा करने से बनती है।।८३।।

कपालिनीमुद्रा

कपालिनी भवेन्मुद्रा वामांसे वामहस्तकम्।
स्थापयित्वा पात्रवच्च कुर्यात्सा भैरवप्रिया ॥८४॥

कपालिनी मुद्रा—बाँयें हाथ की अंजली को पात्रवत् बनाकर हाथ को बाँयें कन्धे से सटाने पर बनती है। यह मुद्रा भैरव को प्रिय है।।८४।।

डमरुमुद्रा

डमरुः शिथिलां मुष्टिं कृत्वा मध्यां समुन्नताम्।
प्रचालयेत्कर्णपार्श्वे दशैताः शूलिना मताः ॥८५॥

डमरु मुद्रा—ढीली मुट्ठी बाँधकर मध्यमा अंगुली को सीधी करके कानों के चारो ओर दश बार घुमाने से डमरु मुद्रा बनती है।।८५।।

पद्मासनमुद्रा

आसनाख्या पद्ममुद्रा सूपविष्टः सुखासने।
स्वस्वजानुस्थितौ हस्तौ कलिकाभावधोमुखौ ॥८६॥

आसनाख्या पद्म मुद्रा—सुखासन में बैठकर हाथों को घुटने पर कलिका के समान अधोमुख रखने से पद्मासन मुद्रा बनती है।।८६।।

कुशलमुद्रा

कुशलाख्या भवेन्मुद्रा करावुन्नामितौ यदि।
आन्दोलितौ फणाकारौ स्वस्वदिग्भागसंस्थितौ ॥८७॥

कुशल मुद्रा—हाथों को नाग के फणाकार बनाकर अपने सम्मुख करने से यह मुद्रा बनती है।।८७।।

सौभाग्यदायिनीमुद्रा

वाममुष्टिं दृढं बद्ध्वा तर्जनीं सम्प्रसारयेत्।
आनयेद्वामकर्णे तां मुद्रा सौभाग्यदायिनी ॥८८॥

सौभाग्यदायिनी मुद्रा—बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी को सीधी करके बाँयें कान के पास लाने से सौभाग्यदायिनी मुद्रा बनती है।।८८।।

शत्रुनाशिनीमुद्रा

अङ्गुष्ठगुम्फितां मुष्टिं बध्नीयाद्दक्षपाणिना।
रिपुजिह्वाग्रहाख्येयं मुद्रिका शत्रुनाशिनी ॥८९॥

शत्रुनाशिनी मुद्रा—दाँयें हाथ की मुट्ठी के अन्दर से अंगूठे को बाहर निकालने से शत्रुजिह्वा के समान आकृति वाली शत्रुनाशिनी मुद्रा बनती है।।८९।।

स्वागतमुद्रा

स्वागताख्या भवेन्मुद्रा वितस्त्यन्तरगौ करौ।
उत्तानावूरुदेशस्यासन्नौ नम्रस्तथा पुमान् ॥९०॥

स्वागत मुद्रा—हाथों को जोड़कर छाती के समीप उत्तान रखकर शरीर को थोड़ा झुकाने से स्वागत मुद्रा बनती है।।९०।।

अर्घ्यमुद्रा

अर्घ्यमुद्रा तु सा ज्ञेया दृढो निश्छिद्र एव च।
अञ्जलिस्तु यदा बद्धौ मुष्टी कर्णवदाश्रितौ ॥९१॥

अर्घ्य मुद्रा—अंगुलियों को निच्छिद्र सटाकर कान के समान मुट्ठी बनाकर जल देने से यह मुद्रा बनती है।।९१।।

पाद्यमुद्रा

पाद्यमुद्रा त्वर्घ्यमुद्रासमायन्तु विशेषकः।
अङ्गुष्ठतर्ज्जनीयोगः कर्त्तव्यो हस्तयोर्द्वयोः ॥९२॥

पाद्य मुद्रा—इस मुद्रा में अर्घ्यमुद्रा के समान हाथों को करके विशेषत: अंगूठे और तर्जनी मिलाकर दोनों हाथों से जल दिया जाता है।।९२।।

आचमनमुद्रा

मुद्राचमनसञ्ज्ञा तु निम्ने करतले युताः।
हीनाः कनिष्ठजास्तिस्रोऽङ्गुष्ठाग्रं तर्ज्जनीयुतम् ॥९३॥

आचमन मुद्रा—कनिष्ठा अंगुली को छोड़कर शेष तीनों अंगुलियों से अंगूठे को मिलाकर आचमन दिया जाता है।।९३।।

मधुपर्कमुद्रा

मधुपर्कस्य मुद्रा स्यादियं चाधोमुखी यदि।
अनामिकाङ्गुष्ठयोश्चेदग्रयोगः प्रजायते ॥९४॥

मधुपर्क मुद्रा—अनामिका और अंगूठे के अग्र को मिलाकर अधोमुख करके मधुपर्क दिया जाता है।।९४।।

स्नानमुद्रा

स्नानमुद्रा दक्षहस्तमुष्टिः स्याच्चेदधोमुखी।
कनिष्ठयापि युक्ता सा स्नानेऽनन्तफलप्रदा ॥९५॥

स्नान मुद्रा—कनिष्ठायुक्त अधोमुखी दाँयीं मुट्ठी से बनाई गई स्नानमुद्रा से स्नान करने का अनन्त फल प्राप्त होता है।।९५।।

वस्त्रमुद्रा

वस्त्रमुद्रा दक्षहस्तं कृत्वोत्तानाञ्च मध्यमाम्।
अङ्गुष्ठेन स्पृशेदेषा दाने वस्त्रस्य धारणे ॥९६॥

वस्त्र मुद्रा—दाहिने हाथ की मध्यमा को सीधी करके शेष अंगुलियों और अंगूठे के योग से वस्त्रदान या धारण करना चाहिये।।९६।।

आभूषणमुद्रा

आभूषणस्य मुद्रा स्यादियं चाधोमुखी यदि।
अनामिकाङ्गुष्ठयोश्चेदग्रयोगः प्रजायते ॥९७॥

आभूषण मुद्रा—अंगूठे से अनामिका को मिलाकर अधोमुख करके आभूषण प्रदान किया जाता है।।९७।।

उपवीतमुद्रा

स्नानमुद्रा समाख्याता कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगतः।
उपवीतस्य करणादिके स्खलितधारणे ॥९८॥

उपवीत मुद्रा—कनिष्ठा एवं अंगुष्ठ के योग से स्नान मुद्रा कही गई है। इसी से यज्ञोपवीत को भी हटाया अथवा धारण किया जाता है।।९८।।

गन्धमुद्रा

गन्धस्य मुद्रा विज्ञेयाऽथोत्तानं हस्तमाचरेत्।
श्रेष्ठाग्रेण कनिष्ठाग्रे स्पृशेत् स्याद्गन्धधारणे ॥९९॥

गन्ध मुद्रा—अंगूठे और कनिष्ठा के योग से उत्तान हाथ करके गन्ध चढ़ाया जाता है।।९९।।

पुष्पमुद्रा

पुष्पाख्या च भवेन्मुद्रा हस्तं चाधोमुखं कुरु।
तर्ज्जन्यग्रे तथाङ्गुष्ठाग्रं संयोज्येति पूजने ॥१००॥

पुष्प मुद्रा—देवता की पूजा में अधोमुख तर्जनी और अंगूठे के योग से फूल चढ़ाया जाता है।।१००।।

धूपमुद्रा

धूपमुद्रा तु देवादिधूपने सम्प्रसारिता।
अङ्गुष्ठाग्रेण तर्ज्जन्याः स्पृशेदग्रं च पूर्ववत् ॥१०१॥

धूप मुद्रा—अधोमुख तर्जनी और अंगूठे के योग से देवता को धूप प्रदान किया जाता है।।१०१।।

दीपमुद्रा

दीपमुद्रा प्रोच्यतेऽथ दीपे सर्वप्रियङ्करा।
ज्येष्ठाग्रेण स्पृशेदग्रं मध्यमायाश्च पूर्ववत् ॥१०२॥

दीप मुद्रा—हाथ के अंगूठे और मध्यमा के योग से देवता को दीपक दिखाया जाता है।।१०२।।

नैवेद्यमुद्रा

नैवेद्यमुद्रा देवानां पूर्ववत् परिकीर्तिता।
विशेषोऽनामिकाग्रन्तु ज्येष्ठाग्रेण तु योजयेत् ॥१०३॥

नैवेद्य मुद्रा—हाथ के अंगूठे और अनामिका के योग से देवता को नैवेद्य समर्पित किया जाता है।।१०३।।

ग्रासमुद्रा

ग्रासमुद्रा सव्यहस्तं प्रफुल्लकमलाकृतिम्।
दर्शयेत् पञ्चवायूनामुच्यन्ते पञ्चमुद्रिकाः ॥१०४॥

ग्रास मुद्रा—बाँयें हाथ को प्रफुल्लित कमल के समान बनाकर दाहिने हाथ की अंगुलियों से पाँच मुद्रायें बनायी जाती हैं, जिन्हें पञ्चप्राण मुद्रा कहते हैं।।१०४।।

प्राणमुद्रा

प्राणमुद्रामथो वक्ष्ये भोजनादौ प्रदर्शयेत्।
कनिष्ठानामिके सम्यगङ्गुष्ठाग्रेण योजयेत् ॥१०५॥

प्राण मुद्रा—कनिष्ठा, अंगूठा और अनामिका के योग से प्राण मुद्रा बनती है। यह भोजन के प्रारम्भ में दिखायी जाती है।।१०५।।

अपानमुद्रा

मुद्रापानस्य विज्ञेया तर्ज्जनीमध्ययोर्युतौ।
एतद्दर्शनतो वायुरोधाद्योगी विमुच्यते ॥१०६॥

अपान मुद्रा—तर्जनी, मध्यमा एवं अंगुष्ठ योग से अपान मुद्रा बनती है। इसके दिखाने से योगी को वायुविकार नहीं होता।।१०६।।

व्यानमुद्रा

व्यानमुद्रा तु सा ज्ञेया मध्यमानामिके युते।
समस्तदेहगो वायुर्दृष्ट्वा तां सुप्रसीदति ॥१०७॥

व्यान मुद्रा—मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ के योग से व्यान मुद्रा बनती है। इसे देखकर सारे शरीर में व्याप्त वायु प्रसन्न होता है।।१०७।।

उदानमुद्रा

उदानवायोर्मुद्रा स्यादङ्गुष्ठेन समन्विता।
तर्जनीमध्यमानामाः सर्वरोगापनोदिनी ॥१०८॥

उदान मुद्रा—तर्जनी, मध्यमा एवं अंगुष्ठ के योग से उदान मुद्रा बनती है। यह समस्त रोगों को नष्ट करने वाली होती है।।१०८।।

समानमुद्रा

समानवायोर्मुद्रा स्याद्यदा पञ्चाङ्गुलीयुतिः।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्ता नमोऽन्तानाममन्त्रकाः ॥१०९॥

समान मुद्रा—पाँचों अंगुलियों के मेल से समान मुद्रा बनती है। ॐ के बाद चतुर्थ्यन्त नाम, तब नमः लगाने से पाँचो मुद्राओं के नाममन्त्र बनते हैं; जैसे—ॐ प्राणाय नमः, ॐ अपानाय नमः, ॐ व्यानाय नमः, ॐ उदानाय नमः, ॐ समानाय नमः।।१०९।।

महायोनिमुद्रा

कनिष्ठाङ्गुष्ठसंयोगे सरलं चाङ्गुलीत्रयम्।
महायोन्यभिधा मुद्रा सुन्दर्यानन्ददायिनी ॥११०॥

महायोनि मुद्रा—कनिष्ठा एवं अंगूठे को मिलाकर तीनों अंगुलियों को सीधी करने से महायोनि मुद्रा बनती है। यह त्रिपुरसुन्दरी को आनन्ददायिनी होती है।।११०।।

शक्त्युत्थापनमुद्रा

करौ संवलितौ कृत्वा चान्योन्यासक्तकाङ्गुली।
अन्तर्वलितमुत्थाप्य तर्जन्यौ सरले कृते ॥१११॥

कुर्य्यान्नमस्कृतिं पश्चाच्छक्त्युत्थापनमुद्रिका।
आनीता शक्तिरनया स्वस्थाने वरदा व्रजेत् ॥११२॥

शक्ति-उत्थापन मुद्रा—दोनों हाथों को मिलाकर अंगुलियों को ग्रथित करके तर्जनियों को सीधा करके देवी को प्रणाम करने से शक्ति को उत्थापित करने वाली मुद्रा होती है। इस मुद्रा से शक्ति को लाकर स्थापित करने से शक्ति वर प्रदान करके प्रस्थान करती है।।१११-११२।।

सप्तजिह्वामुद्रा

सप्तजिह्वाख्यमुद्रा तु प्रसृताङ्गुलिकौ करौ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयुगलं मणिबन्धौ च संयुतौ ॥११३॥

ज्वालिनी या सप्तजिह्वा मुद्रा—हाथों को मणिबन्ध से मिलाकर कनिष्ठाओं को अंगूठों से सटाकर दोनों हाथों को आपस में मिलाने एवं तीनों अंगुलियों को अलग-अलग करके हाथों को खड़ा करने से यह मुद्रा बनती है।।११३।।

भूतबलिमुद्रा

मुद्रा भूतबलेः प्रोक्ता सर्वाङ्गुलिसमागमः।
अन्तश्च शुषिरे हस्ते काकतुण्डनिभे मुखे ॥११४॥

भूतबलि मुद्रा—सभी अंगुलियों को मिलाकर कौए की चोंच के समान हाथ की आकृति बनाने से यह मुद्रा बनती है।।११४।।

नाराचमुद्रा

नाराचाग्रे वामहस्तं पृष्ठे दक्षं समानयेत्।
शनैः शनैश्च सरले तर्जन्यो मुद्रिता पराः ॥११५॥

नाराच मुद्रा—बाँयें हाथ को आगे करके वहाँ से दाँयें हाथ को धीरे-धीरे दाहिने कन्धे के पास तर्जनी को सीधी करके लाने से नाराच मुद्रा बनती है।।११५।।

संहारमुद्रा

संहाराख्याधोमुखो वामहस्तो दक्षस्योर्ध्वं ग्रन्थिताङ्गुल्य एवम्।
पर्यस्तौ बद्धौ करौ स्याद्विसर्गे बल्यादीनां देवता तुष्टिकर्त्री ॥११६॥

संहार मुद्रा—बाँयें हाथ को अधोमुख करके उस पर दाँयाँ हाथ ऊर्ध्वमुख रखकर अंगुलियों को परस्पर ग्रथित करके हाथों को ऊपर की ओर उठाने से संहार मुद्रा बनती है।। यह देवताओं के लिये बलि आदि विसर्जन करने की मुद्रा कही गई है। इससे देवता तुष्ट होते हैं।।११६।।

अशनिमुद्रा

अशनिर्नाम सा मुद्रा ऊर्ध्वास्या वामतर्जनी।
अधोवक्त्रा परा तत्र संयुक्तारिविनाशिनी ॥११७॥

अशनि अथवा **वज्र मुद्रा**—वाम तर्जनी को ऊपर उठाकर मध्यमा को अधोमुख करने से शत्रुओं का विनाश करने वाली वज्र मुद्रा बनती है।।११७।।

विधुमुद्रा

विधुमुद्राङ्गुलीभिश्चेन्मुद्रा बद्धा तु मुष्टिका।
तर्जन्यङ्गुष्ठसंयोगः पूर्णकर्मणि योजयेत् ॥११८॥

विधु मुद्रा—मुट्ठी बाँधकर तर्जनी एवं अंगूठे के योग से यह मुद्रा बनती है! पूर्णिमा के कर्मों में इसका प्रयोग होता है।।११८।।

कालकर्णीमुद्रा

कालकर्णी भवेन्मुष्ट्योरङ्गुष्ठावुन्नतौ यदा।
पार्श्वयोश्चापि संलग्नौ द्वावेवाभिमुखौ तदा ॥११९॥

कालकर्णी मुद्रा—अंगूठों को सीधा करके मुट्ठी बाँधकर उस मुट्ठी को अपने सामने रखकर पार्श्वों को मिलाने से कालकर्णी मुद्रा बनती है।।११९।।

विस्मयमुद्रा

मुद्रा विस्मयसञ्ज्ञा स्याद्विस्मयावेशकारिणी।
दक्षिणा निविडा मुष्टिर्नासिकार्पिततर्जनी ॥१२०॥

विस्मय मुद्रा—अंगुलियों को सटाकर मुट्ठी बाँधने और तर्जनी को नाक में सटाने से विस्मय एवं आवेश उत्पन्न करने वाली विस्मय मुद्रा बनती है।।१२०।।

नादमुद्रा

नादमुद्रा तु तर्जन्या मुष्टावङ्गुष्ठको यदि।
निबद्धो यमिनां सेव्या ब्रह्माभिव्यक्तिकारिणी ॥१२१॥

नाद मुद्रा—तर्जनी और अंगूठे को मुट्ठी में बन्द करने से नाद मुद्रा बनती है। संयमी इसकी साधना से अनहत नाद का श्रवण करते हैं। यह ब्रह्म को अभिव्यक्त करने वाली होती है।।१२१।।

प्रार्थनामुद्रा

प्रार्थनाख्या भवेन्मुद्रा हस्तौ कुर्याद्धृदि स्वके।
प्रसृताङ्गुलिकौ दृश्यौ मिथः श्लिष्टौ च सम्मुखौ ॥१२२॥

प्रार्थना मुद्रा—अंगुलियों को सीधे सटाकर हाथों को जोड़कर हृदय के पास लाने से प्रार्थना मुद्रा बनती है।।१२२।।

लक्ष्मीमुद्रा

लक्ष्मीमुद्रा परा ह्येषा सर्वसम्पत्प्रदायिनी।
हस्तौ तु संयुतौ कृत्वा प्रसृताङ्गुलिकौ तथा ॥१२३॥

लक्ष्मी मुद्रा—हाथों को सटाकर अंगुलियों को फैलाने से सभी सम्पत्तियों को देने वाली लक्ष्मी मुद्रा बनती है।।१२३।।

अन्नमुद्रा

अन्नाख्यमुद्रिका हस्तौ नाभिदेशे प्रसार्य च।
अधोमुखं स्पृशेत्तस्य तर्जनीभ्यां तदान्नदा ॥१२४॥

अन्न मुद्रा—नाभि के निकट हाथों को अधोमुख फैलाकर तर्जनी से नाभि को स्पर्श करने से अन्न प्रदान करने वाली मुद्रा बनती है।।१२४।।

दंष्ट्रामुद्रा

दंष्ट्रामुद्रा चक्रमुद्रामादौ कृत्वा प्रपीडयेत्।
मध्यमे तर्जनीभ्यान्तु सर्वपातकनाशिनी ॥१२५॥

दंष्ट्रा मुद्रा—चक्रमुद्रा बनाकर मध्यमा और तर्जनी से दबाने पर सभी पातकों का विनाश करने वाली दंष्ट्रा मुद्रा बनती है।।१२५।।

पृष्ठकमुद्रा

भवेत्पृष्ठकमुद्रा च दक्षहस्तः प्रसारितः।
नाभ्यग्रे चान्तरिक्षे च स्थापितश्च निरीक्षितः ॥१२६॥

पृष्ठक मुद्रा—दाँयें हाथ को फैलाकर नाक के आगे रखकर अन्तरिक्ष में अवलोकन करने से यह मुद्रा बनती है।।१२६।।

गजकर्णमुद्रा

गजकर्णाख्यमुद्रा तु हस्तयोः पृष्ठमेलनम्।
कृत्वा चोर्ध्वमुखौ हस्तौ ग्रन्थिरङ्गुष्ठयोर्भवेत् ॥१२७॥

गजकर्ण मुद्रा—करपृष्ठों को मिलाकर अंगूठे पे अंगूठे को पकड़कर हाथों को ऊपर उठाने से गजकर्ण मुद्रा बनती है।।१२७।।

वस्त्रस्फालनमुद्रा

वस्त्रस्फालनमुद्रा तु कनिष्ठा वामतर्जनी।
मध्यमानामयोरग्रे मूले पृष्ठे च तद्द्वयम् ॥१२८॥

वस्त्रस्फालन मुद्रा—बाँयीं कनिष्ठा और तर्जनी की पीठ को मध्यमा एवं अनामिकामूल में सटाने से वस्त्रस्फालन मुद्रा बनती है।।१२८।।

वापीमुद्रा

वापीमुद्रा दक्षहस्तानामार्धं वामजे ततः।
ज्येष्ठा कनिष्ठा दक्षा स्यात्तयोरूर्ध्वन्तु वामजे ॥१२९॥

वापी मुद्रा—बाँयें हाथ पर दाँयाँ आधा रखकर बाँयें अंगूठे से दाँयाँ अंगूठा और बाँयीं कनिष्ठा से दाँयीं कनिष्ठा को मिलाने से वापी मुद्रा बनती है।।१२९।।

शकटमुद्रा

शकटाख्या भवेन्मुद्रा तर्जनीभ्यामनामिके।
अन्योन्यमध्ययोः पृष्ठान्मध्योपरि निपीडिते ॥१३०॥

शकट मुद्रा—मध्यमा के पीठ पर तर्जनी को चढ़ाकर तर्जनी के पीठ पर अनामिका को चढ़ाने से शकट मुद्रा बनती है।।१३०।।

गायत्र्याश्चतुर्विंशतिमुद्राः

गायत्र्या अथ वक्ष्यन्ते चतुर्विंशतिमुद्रिकाः।
जपादौ दर्शयेत्तासां देवताश्च तथा फलम् ॥१३१॥

गायत्री की चौबीस मुद्रायें—अब गायत्री की चौबीस मुद्राओं का वर्णन करता हूँ, जिन्हें देवता को जप के पहले दिखाने से फल की प्राप्ति होती है।।१३१।।

सुमुखमुद्रा

सुमुखे संहतौ हस्तावुक्तावाकुञ्चिताङ्गुली।
प्रह्लादिनी तत्र शक्तिः सुमुखानन्ददायिनी ॥१३२॥

सुमुख मुद्रा—दोनों हाथों की अंगुलियो को मोड़कर परस्पर मिलाने से सुमुख

मुद्रा होती है। इसकी शक्ति आह्लादिनी है, जो लोगों को आनन्द प्रदान करने वाली है।

सम्पुटमुद्रा

सम्पुटं पद्मकोशाभौ करावन्योन्यसंहतौ।
तस्य शक्तिर्नित्यविश्वा विश्वस्यातिप्रियङ्करा ॥१३३॥

सम्पुट मुद्रा—दोनों हाथों को फुलाकर मिलाने से सम्पुट मुद्रा होती है। इसकी शक्ति नित्यविश्वा है, जो विश्व का अत्यन्त प्रिय करने वाली है।।१३३।।

विततमुद्रा

विततं संहतौ हस्तावुक्तं चानायताङ्गुली।
हृदया नाम तच्छक्तिः सर्वेषां हृदयङ्गमा ॥१३४॥

वितत मुद्रा—दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर सामने करने से वितत मुद्रा बनती है। इसकी शक्ति हृदया है, जो सबों के हृदय में रहती है।।१३४।।

विस्तृतमुद्रा

विस्तीर्णं संहतौ पाणी मिथो मुक्ताङ्गुलीद्वयम्।
शक्तिस्तु विमला तस्याः प्रभावादमलो भवेत् ॥१३५॥

विस्तृत मुद्रा—दोनों हाथों की अंगुलियों को खोलकर दोनों को कुछ अधिक अलग करने से विस्तृत मुद्रा बनती है। इसकी शक्ति विमला है। इसके प्रभाव से निर्मलता प्राप्त होती है।।१३५।।

द्विमुखमुद्रा

द्विमुखाख्या हस्तयोस्तु सम्मुखं सक्तयोर्द्वयोः।
कनिष्ठयोरेव योगः शक्तिस्तस्याः सदाभिधा ॥१३६॥

द्विमुख मुद्रा—दोनों हाथों की कनिष्ठा से कनिष्ठा और अनामिका से अनामिका को मिलाने से द्विमुखी मुद्रा बनती है। इसकी शक्ति अभिधा है, जो नित्य विद्यमान रहती है।।१३६।।

त्रिमुखमुद्रा

त्रिमुखाख्या हस्तयुग्मे सुसक्तेऽनामिकाद्वयम्।
संयुक्तं शेषमङ्गुल्यो भिन्नाः शक्तिः प्रभावती ॥१३७॥

त्रिमुख मुद्रा—दोनों हाथों की कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा अंगुलियों को परस्पर मिलाने एवं तर्जनी को सीधो रखने से त्रिमुखी मुद्रा बनती है। इसकी शक्ति प्रभावती है।।१३७।।

चतुर्मुखमुद्रा

चतुर्मुखं हस्तयुग्मं संसक्तं मध्यमायुतिः ।
शेषाङ्गुल्यस्तु सम्भिन्ना लीला शक्तिः प्रकीर्त्तिता ॥१३८॥

चतुर्मुख मुद्रा—दोनों हाथों को सटाकर मध्यमा अंगुलियों को मिलाकर शेष अंगुलियों को अलग-अलग रखने से चतुर्मुखी मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति लीला कही गई है।।१३८।।

पञ्चमुखमुद्रा

मुद्रा पञ्चमुखी तद्वत्तर्जन्योर्यत्र संयुतिः ।
अपराङ्गुलयो भिन्नाः शक्तिः शान्तिश्च शान्तिकृत् ॥१३९॥

पञ्चमुख मुद्रा—दोनों हाथों को सटाकर तर्जनी अंगुलियों को मिलाकर शेष अंगुलियों को अलग-अलग रखने से पञ्चमुखी मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति लोक में शान्ति प्रदान करने वाली शान्ति कही गई है।।१३९।।

षण्मुखमुद्रा

भवेत्षण्मुखमुद्रा सा सम्पूर्णाङ्गुलियोजनम् ।
कनिष्ठाद्वितयं हित्वा शक्तिर्दुर्गा प्रकीर्तिता ॥१४०॥

षण्मुख मुद्रा—दोनों हाथों की दशो अंगुलियों में आठ को मिलाकर दोनों कनिष्ठाओं को अलग रखने से षण्मुख मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति दुर्गा हैं।।१४०।।

अधोमुखमुद्रा

अधोमुखं नाम मुद्रा न्युब्जौ हस्तौ त्वधोमुखौ ।
आकुञ्चिताग्रौ संयुक्तौ शक्तिरस्याः सरस्वती ॥१४१॥

अधोमुख मुद्रा—उलटे हाथों की अंगुलियों को मोड़कर सबको मिलाकर नीचे की ओर करने से अधोमुख मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति सरस्वती हैं।।१४१।।

व्यापकाञ्जलिमुद्रा

व्यापकाञ्जलिकं नाम मुद्रा हस्तौ तु तादृशौ ।
विशेषोऽत्र तु चोत्तानौ विश्वरूपास्ति देवता ॥१४२॥

व्यापकाञ्जलि नुद्रा—सभी अंगुलियों को सीधी करके दोनों हाथों को उर्ध्वमुख करके अंजलि बनाने से व्यापकाञ्जलि मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति विश्वरूपा कही गई है।।१४२।।

शकटमुद्रा

शकटं नाम मुद्रा सा बद्धाग्राङ्गुलिकौ करौ ।
अधोमुखौ बद्धमुष्टी विंशाख्या शक्तिरत्र तु ॥१४३॥

शकट मुद्रा—दोनों हाथों को उलटा करके अंगूठे से अंगूठा मिलाकर तर्जनियों को सीधा रखते हुए मुट्ठी बाँधने से शकट मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति विशाखी कही गई है।।१४३।।

यमपाशमुद्रा

यमपाशं बद्धमुष्ट्योः करयोर्ग्रथिते यदा।
तर्जन्यौ तत्र संलग्नौ वामा लोपात्र देवता ॥१४४॥

यमपाश मुद्रा—तर्जनी से तर्जनी को बाँधकर दोनों हाथों की मुट्ठी बनाने से यमपाश मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति वामालोपा है।।१४४।।

ग्रथितमुद्रा

ग्रन्थिताख्यान्योन्यसन्थिलग्नाश्चाङ्गुलयो यदि।
उत्तानौ चोच्छ्रिताङ्गुष्ठौ वामा शक्तिः समीरिता ॥१४५॥

ग्रथित मुद्रा—दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर आबद्ध कर अंगूठों को उठाने से ग्रथित मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति वामा कही गई हैं।।१४५।।

सम्मुखोन्मुखमुद्रा

सम्मुखोन्मुखमुद्रा तु सम्बद्धाधोऽङ्गुलीकरौ।
दक्षिणोऽधोमुखो वाम ऊर्ध्वमाप्यायिनी भवेत् ॥१४६॥

सम्मुखोन्मुख मुद्रा—दोनों हाथों की दशो अंगुलियों को मिलाकर पहले बाँयें पर दाहिना फिर दाहिने पर बाँयाँ हाथ रखने से सम्मुखोन्मुख मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति आप्यायिनी होती है।।१४६।।

विलम्बमुद्रा

विलम्बं नाम मुद्रा सा चोत्तानोन्नतिकोटिकौ।
यस्यां करौ तु विमला तस्याः शक्तिः प्रकीर्तिता ॥१४७॥

विलम्ब मुद्रा—अंगुलियों को कुछ मोड़कर दोनों हाथों को उलटा कर नीचे की ओर करने से विलम्ब मुद्रा होती है; इसकी शक्ति विमला कही गई है।।१४७।।

मुष्टिमुद्रा

मुष्टिकं तु यदा मुष्टी भवतोऽन्योन्यसंयुते।
उत्तानौ तु करौ तत्र शक्तिः प्रोक्ता तमोमयी ॥१४८॥

मुष्टि मुद्रा—दोनों अंगूठों को ऊपर रखते हुए दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर मिलाने से मुष्टि मुद्रा होती है; इसकी शक्ति तमोमयी कही गई है।।१४८।।

मत्स्यमुद्रा

मत्स्यस्तु सम्मुखीभूते युक्तानामाकनिष्ठिके ।
अङ्गुल्यश्चोर्ध्वयुक्ताग्राः शेषाः शक्तिर्हिरण्मयी ॥१४९॥

मत्स्य मुद्रा—दाहिने हाथ की पीठ पर उलटा बाँयाँ हाथ रखकर अंगूठों को हिलाने से मत्स्य मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति हिरण्मयी है।।१४९।।

कूर्ममुद्रा

कूर्मस्त्वधोमुखो वामो ग्रस्तो दक्षेण पृष्ठके ।
समाक्रान्तस्तु तच्छक्तिः सूक्ष्मा सूक्ष्मार्थसाधिका ॥१५०॥

कूर्म मुद्रा—सीधे बाँये हाथ की मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा को मोड़कर उलटे दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका को उन तीनों अँगुलियों के नीचे रखकर तर्जनी पर दाहिनी कनिष्ठा बाँयें अंगूठे पर दाहिनी तर्जनी रखने से कूर्म मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति सूक्ष्म अर्थों का साधन करने वाली सूक्ष्मा है।।१५०।।

वाराहीमुद्रा

वाराही दक्षिणस्योर्ध्वं वाममुत्तानकङ्करम् ।
स्थापयित्वाधोमुखं तन्नामयेद्विश्वयोनिका ॥१५१॥

वाराही मुद्रा—दाहिनी तर्जनी को बाँयें अँगूठे से मिलाकर दोनों हाथों की अँगुलियों को परस्पर बाँधने से वाराही मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति विश्वयोनि कही गई है।।१५१।।

सिंहाक्रान्तमुद्रा

सिंहाक्रान्तं नाम मुद्रा त्वङ्गुल्यः पल्लवीकृताः ।
देव्यग्रे दर्शयेच्छक्तिर्गदारूपा प्रकीर्त्यते ॥१५२॥

सिंहाक्रान्त मुद्रा—दोनों हाथों को कानों के समीप करके देवी के समीप दिखाने से सिंहाक्रान्त मुद्रा बनती है; इसकी शक्ति गदारूपा कही गई है।।१५२।।

न जातु दर्शयेन्मुद्रां महाजनसमागमे ।
क्षुभ्यन्ति देवतास्तस्य विफलन्तु कृतं भवेत् ॥१५३॥

महाजनों के समागम के अवसर पर मुद्रा नहीं दिखानी चाहिये; अन्यथा देवता क्षुब्ध होते हैं और उसके समस्त कार्य विफल हो जाते हैं।।१५३।।

यथा बालस्याभिनयं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मातरः ।
तथा भक्तकृता मुद्रा दृष्ट्वा हृष्यन्ति देवताः ॥१५४॥

जैसे बाल-क्रीड़ा देखकर मातायें हर्षित होती हैं, उसी प्रकार भक्तों द्वारा प्रदर्शित मुद्राओं से देवता प्रसन्न होते हैं।।१५४।।

उत्तराम्नायसम्प्रोक्ता देवास्तुष्यन्ति पञ्चमैः ।
छिन्नः पदार्थ एकश्चेत्साधकं ते ` शपन्ति च ॥१५५॥

उत्तराम्नाय का कथन है कि देवता पाँचो मकारों से तुष्ट होते हैं। उसमें से यदि एक भी पदार्थ छिन्न हो तो वे साधकों को शाप देते हैं।।१५५।।

पश्चिमाम्नायदेवानां सुरापानं कृताकृतम् ।
मचतुष्टयमिच्छन्ति तं विना प्रशपन्ति च ॥१५६॥

पश्चिमाम्नाय के अनुसार देवता कृताकृत सुरापान के अतिरिक्त अन्य चारो पदार्थों की कामना करते हैं और उनके न मिलने पर शाप देते हैं।।१५६।।

पूर्वाम्नायोक्तदेवानां तन्मांसञ्च कृताकृतम् ।
आवश्यमन्त्रकं पञ्च तं विना प्रशपन्ति च ॥१५७॥

पूर्वाम्नाय के अनुसार देवता कृताकृत मांस के अतिरिक्त अन्य चारो को आवश्यक मानते हैं और उसके विना शाप देते हैं।।१५७।।

दक्षिणाम्नायदेवानां निषिद्धं मचतुष्टयम् ।
मेनैकेन विना तेऽपि प्रशपन्ति च साधकम् ॥१५८॥

दक्षिणाम्नाय के अनुसार चार मकार निषिद्ध हैं; केवल एक मत्स्य ही आवश्यक है और उसके न रहने पर वे साधक को शाप देते हैं।।१५८।।

तस्मान्मुद्राः शिक्षणीयाः सम्प्रदायानुसारतः ।
सर्वत्र मोक्षं लभते मुद्राविन्नात्र संशयः ॥१५९॥

अतः अपने-अपने सम्प्रदाय के अनुसार मुद्रा की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। मुद्रा के ज्ञाता को सर्वत्र मोक्ष प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं है।।१५९।।

इति ते सर्वमाख्यातं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
मुद्राणां परमं तत्त्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१६०॥

इति श्रीमहाम्यामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
मुद्रालक्षणप्रकाशोऽष्टमः ।।८।।

इस प्रकार सभी तन्त्रों में गुप्त सभी प्रसिद्ध मुद्राओं के परम तत्त्व का मैंने तुम्हारे समक्ष वर्णन किया; अब अन्य क्या सुनने की इच्छा है।।१६०।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत
'मुद्रालक्षण' नामक अष्टम प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ

मुद्रास्वरूप

(पुस्तक में वर्णित मुद्रा-लक्षणों से मुद्रा को बनाना अत्यन्त ही कठिन है; अत: इनकी विधि को मुद्राओं के ज्ञाता अथवा गुरु से सीखना चाहिये। पाठकों की सुविधा के लिये ऊपर वर्णित मुद्राओं में से प्रमुख मुद्राओं के चित्र यहाँ संलग्न किये जा रहे हैं।)



(श्लोक-३) अंकुश मुद्रा (१)



(श्लोक-३) अंकुश मुद्रा (२)



(श्लोक-७) हृदय मुद्रा



(श्लोक-८) शिरोमुद्रा



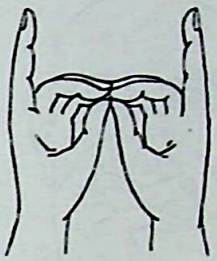
(श्लोक-९) शिखामुद्रा



(श्लोक-१०) कवचमुद्रा



(श्लोक-१२) नेत्रमुद्रा



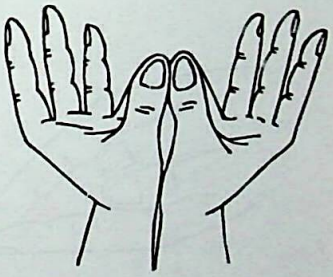
(श्लोक-१७) सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा



(श्लोक-१८) सर्वविद्राविणी मुद्रा



(श्लोक-१९) सर्वाकर्षिणी मुद्रा



(श्लोक-२६) ज्वालिनी (सप्तजिह्वा) मुद्रा



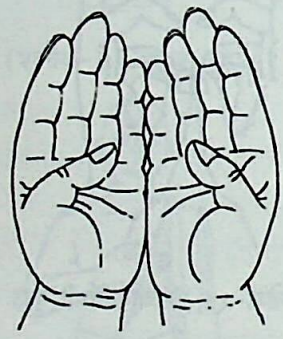
(श्लोक-२८) शङ्खमुद्रा



(श्लोक-२९) योनि मुद्रा



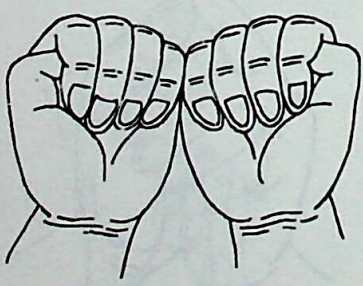
(श्लोक-३०) मत्स्य मुद्रां



(श्लोक-३१) आवाहनी मुद्रा



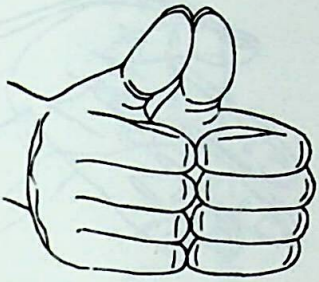
(श्लोक-३२) संस्थापनी मुद्रा



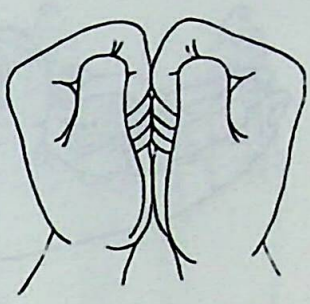
(श्लोक-३३) सम्मुखीकरणी मुद्रा



(श्लोक-३५) अवगुण्ठनी मुद्रा



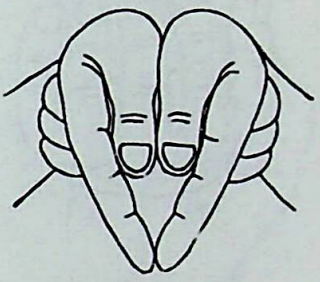
(श्लोक-३७) सन्निधापनी मुद्रा



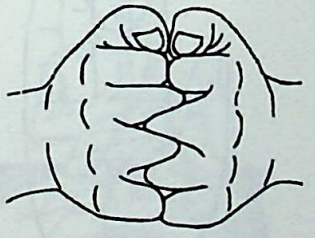
(श्लोक-३८) सन्निरोधिनी मुद्रा



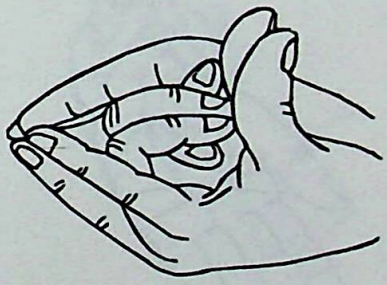
(श्लोक-३९) दन्त मुद्रा



(श्लोक-४०) पाश मुद्रा



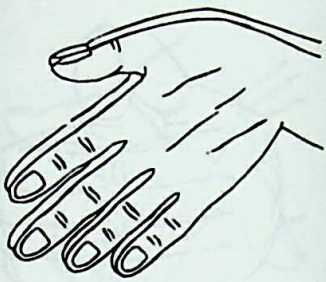
(श्लोक-४१) सर्ववशङ्करी मुद्रा



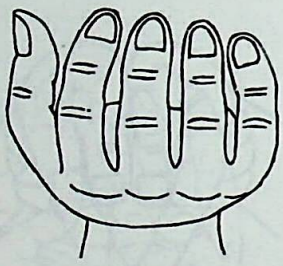
(श्लोक-४३) सर्वोन्मादिनी मुद्रा



(श्लोक-४४) सर्व-महाङ्कुशा मुद्रा



(श्लोक-४६) परशु मुद्रा



(श्लोक-४७) मोदक मुद्रा



(श्लोक-४८) बीज मुद्रा



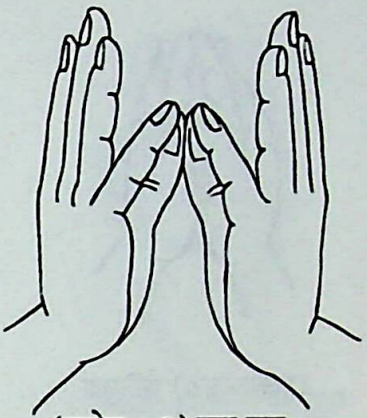
(श्लोक-४९) वर मुद्रा



(श्लोक-५०) अभय मुद्रा



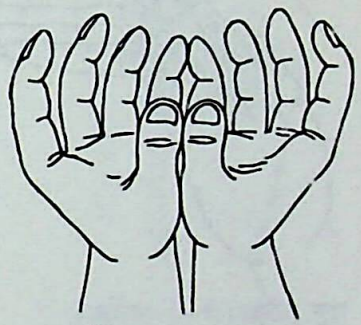
(श्लोक-५३) मुशल मुद्रा



(श्लोक-५६) चक्र मुद्रा



(श्लोक-५७) गदा मुद्रा



(श्लोक-५८) पद्म मुद्रा



(श्लोक-६३) ज्ञानमुद्रा



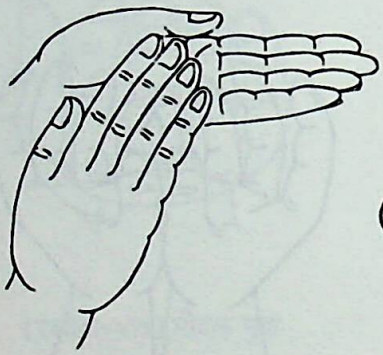
(श्लोक-६६) खेचरी मुद्रा



(श्लोक-६८) योनिमुद्रा



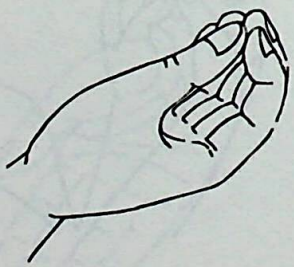
(श्लोक-७३) वराह मुद्रा



(श्लोक-७६) हयग्रीव मुद्रा



(श्लोक-८२) मृगी मुद्रा



(श्लोक-१०४) ग्रास मुद्रा



(श्लोक-१०६) प्राण मुद्रा



(श्लोक-१०६) अपान मुद्रा



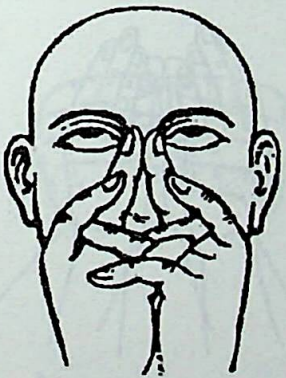
(श्लोक-१०७) व्यान मुद्रा



(श्लोक-१०८) उदान मुद्रा



(श्लोक-१०९) समान मुद्रा



(श्लोक-११०) योनि मुद्रा



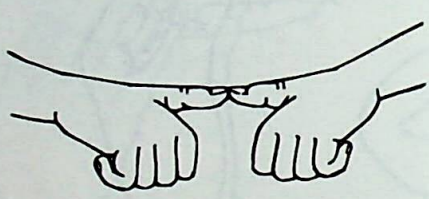
(श्लोक-११६) संहार मुद्रा (अ)



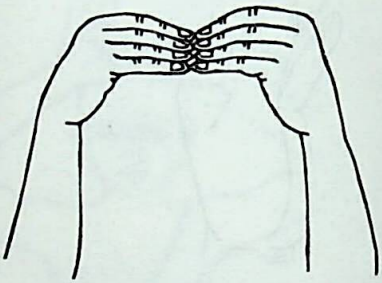
(श्लोक-११६) संहार मुद्रा (ब)



(श्लोक-१२२) प्रार्थना मुद्रा



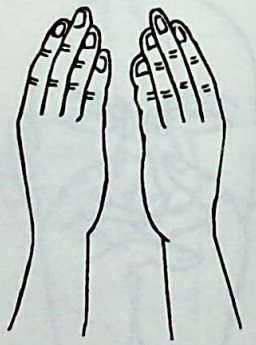
(श्लोक-११०) शकट मुद्रा



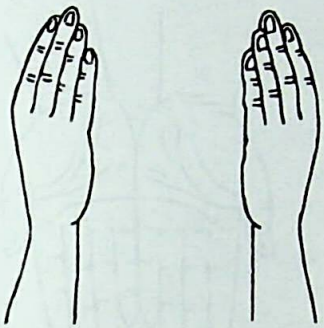
(श्लोक-१३२) सुमुखी मुद्रा



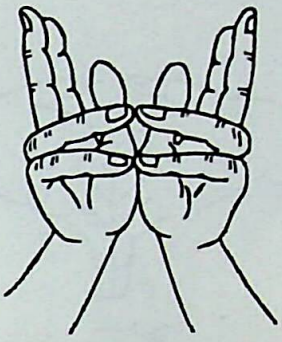
(श्लोक-१३३) सम्पुटी मुद्रा



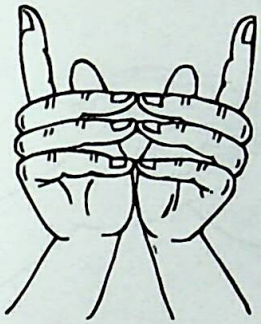
(श्लोक-१३४) विवत मुद्रा



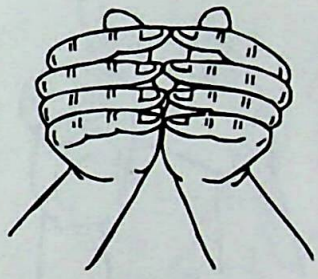
(श्लोक-१३५) विस्तृत मुद्रा



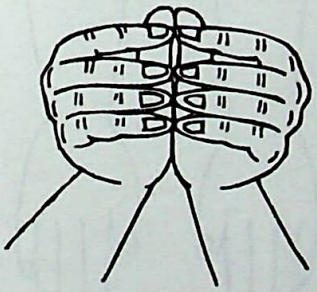
(श्लोक-१३६) द्विमुखी मुद्रा



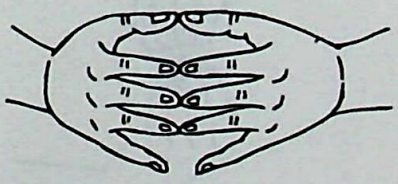
(श्लोक-१३७) त्रिमुखी मुद्रा



(श्लोक-१३८) चतुर्मुखी मुद्रा



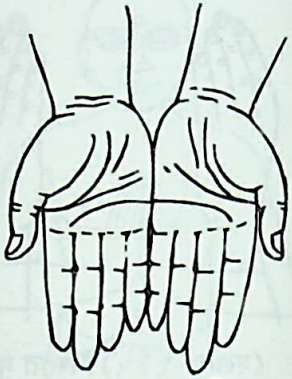
(श्लोक-१३९) पञ्चमुखी मुद्रा



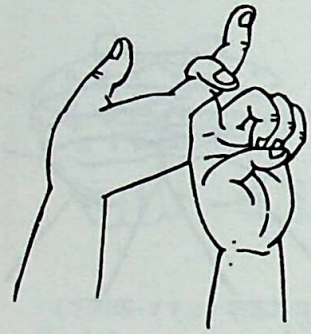
(श्लोक-१४०) षण्मुखी मुद्रा



(श्लोक-१४१) अधोमुखी मुद्रा



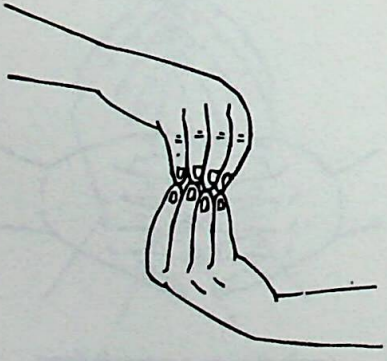
(श्लोक-१४२) व्यापकाञ्जलि मुद्रा



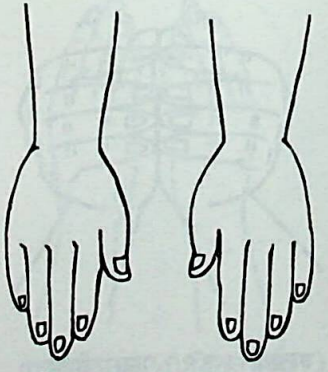
(श्लोक-१४४) यम-पाश मुद्रा



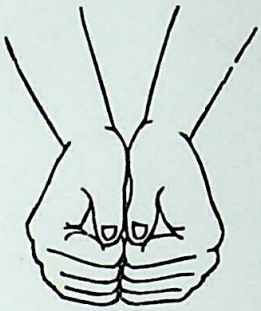
(श्लोक-१४५) ग्रन्थित मुद्रा



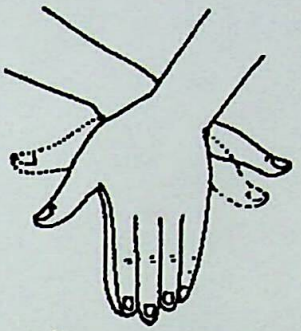
(श्लोक-१४६) सम्मुखोन्मुख मुद्रा



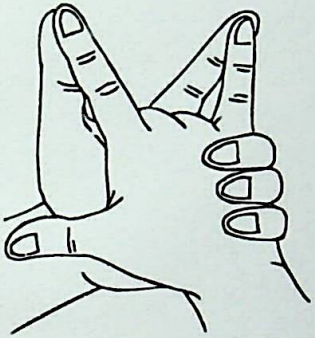
(श्लोक-१४७) प्रलम्ब मुद्रा



(श्लोक-१४८) मुष्टिक मुद्रा



(श्लोक-१४९) मत्स्य मुद्रा



(श्लोक-१५०) कूर्म (कच्छप) मुद्रा



(श्लोक-१५२) सिंहाक्रान्त मुद्रा







Translated & Written by
Giri Ratna Mishra

Sri Kali Tantra
&
Sri Rudra Chandi

Text with English
Commentary & Introduction

An acme assortment of various mantras, variegated worship rituals and tantric practices of Sri Dakshin Kali, along with glory saga and worship ritual of Sri Rudra Chandi.

Bhootdaamar Tantra

Text with English
Commentary & Introduction

An authoritative Tantra of Sri Krodha Bhairava along with his; mantras, variegated mandal worship, rituals and accomplishment rituals of Bhootinis, Yakshinis, snake-girls etc.

Uddish Tantra

Text with English
Commentary & Introduction

An authoritative work on various exorcisms, Yakshini accomplishment, Bhootini accomplishment and black magic like Indrajaal compiled by Lankesh Ravan.

Sri Matrika Cakra Viveka

Text with English
Commentary & Introduction

An acme Sri Vidya mantra Shastra of Kashmir, correlating the creation and liberation of this world with Sri Yantra while describing the meaning of Sanskrit alphabets called Matrikas using Sri Yantra.

Sri Bagala Tatva Prakashika

A detailed study on philosophical and worship aspects of Sri Bagalamukhi as mentioned in Vedas, Upanishads, Puranas, Sri Durga Saptashati and Tantra.

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थ

एस.एन. खण्डेलवाल—अनुदित एवं लिखित

- नित्याषोऽशिकार्णव
- सर्वोल्लासतन्त्र
- नीलसरस्वतीतन्त्र
- भूतडामरतन्त्र
- सिद्धनागार्जुनतन्त्र
- अन्नदाकल्पतन्त्र
- राधातन्त्र
- सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्र
- कालीतन्त्र-रुद्रचण्डीतन्त्र
- तोडलतन्त्र-निर्वाणतन्त्र
- आगमतत्त्वविलास (1-4)
- श्रीसाम्बपुराण
- श्रीदेवीपुराण
- श्रीसौरपुराण
- शाबर मंत्र सागर (1-2 भाग)
- महाचीनक्रमाचारसार तन्त्रम्
- पुरश्चरणरहस्यम्

श्यामाकान्त द्विवेदी—लिखित एवं अनुदित

- श्रीविद्या-साधना (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- शक्तितत्त्व एवं शाक्त साधना
- ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना
- काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र
- भारतीय शक्ति-साधना
- स्पन्दकारिका
- मुद्राविज्ञान एवं साधना
- कामकलाविलास
- वरिवस्यारहस्य
- महार्थमंजरी
- शिवसुत्र : सिद्धान्त एवं साधना

श्री कपिलदेवनारायण द्वारा अनुदित

- लक्ष्मीतन्त्र (1-2 भाग)
- तन्त्रराजतन्त्र (1-2 भाग)
- श्रीविद्यार्णवतन्त्र (1-5 भाग)
- मेरूतंत्रम् (1-5 भाग सम्पूर्ण)
- देवीरहस्य : (रुद्रयामलतन्त्रोक्त) (1-2 भाग)
- महानिर्वाणतन्त्र
- बृहत्तन्त्रसार (1-2 भाग)
- रेणुकातन्त्र-प्रचण्डचण्डिकातन्त्र

श्री परमहंस मिश्र द्वारा अनुदित

- तन्त्रसार (1-2 भाग)
- कुलार्णवतन्त्र
- नित्योत्सव : श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ

राधेश्याम चतुर्वेदी—अनुदित एवं लिखित

- कृष्णयामल महातंत्र
- गायत्री महातंत्र
- नेत्रतन्त्र
- कामाख्यातन्त्र
- शक्ति संगम तंत्र (1-4 भाग)
- महाकालसंहिता : (कामकला-कालीखण्ड)
- महाकालसंहिता : (गुह्यकाली-खण्ड) (1-5 भाग)
- तारिणीय पारिजाततन्त्र
- वामकेशवरीयतम्
- श्री तंत्रालोक (1-5 भाग)
- श्रीस्वछन्द तंत्र (1-2 भाग)

श्री जगदीशचन्द्र मिश्र द्वारा अनुदित

- त्रिपुरारहस्य (ज्ञानखण्ड एवं माहात्म्यखण्ड)
- त्रिपुरार्णवतन्त्र

श्री रामप्रिय पाण्डेय द्वारा लिखित

- श्रीदक्षिणकालिका-सपर्यापद्धति
- श्रीमहाविद्यापुरश्चरणपद्धति
- कामकलाकालीसपर्यापद्धति
- कालसर्पयोग-शान्तिप्रयोग
- सार्द्धनवचण्डीपुरश्चरण
- श्रीप्रत्यंगिरा-पुनश्चर्या
- विपरीतप्रत्यंगिरापुनश्चर्या
- अष्टलक्ष्मी प्रयोग
- बटुकभैरवसपर्या
- विनायकशान्तिपद्धति

मधुसुदन शुक्ल—अनुदित एवं सम्पादित

- षट्कर्म दीपिका
- सांख्यायन तंत्र
- स्वच्छन्दपद्धति
- श्रीतत्वचिन्तामणि
- त्रिपुरासारसमुच्चय
- ललितास्तवरत्नम् एवं त्रिपुरामहिम्नस्त्रोत

श्री राम चन्द्र पुरी—अनुदित एवं सम्पादित

- प्रपञ्चसारततन्त्रम् (1-2 भाग)
- श्रीतंत्र दुर्गासप्तशती
- सांख्यायनतन्त्र
- षट्वामतन्त्राणि। (तन्त्र)
- ललितात्रिशतीस्त्रोतम्

सुधाकर मालवीय—अनुदित एवं सम्पादित

- रुद्रयामलतन्त्र (1-2 भाग)
- शारदातिलकम् (1-2 भाग)
- सौन्दर्यलहरी
- मन्त्रमहोदधि

अन्य पुस्तकें—

- विज्ञानभैरव : बापूलाल आँजना
- कृष्ण की तान्त्रिक पूजा : विष्णु आचाय
- गौतमीयतंत्र : श्री निवास शर्मा
- अभिनवस्त्रोत्रावलि : चतुर्वेदी
- अनुष्ठान प्रकाशः (भा.टी.) - अभय कात्यायन
- श्री तैलगस्वामी के तत्वोपदेश – केशव प्रसाद काया
- बृहन्नील-तन्त्रम् (भा.टी.) – स्वामी शत्रुघ्न दास
- सप्तशती तन्त्रसार – स्वामी शत्रुघ्न दास
- फेत्करणी तन्त्र
- श्री लक्ष्मी-प्रत्यंगिरार्चन
- रुद्रयामल उत्तरतन्त्र – श्रीमनोज कुमार रजक।
- श्री बगला ब्रह्मास्त्र–कल्पः–पं. विकास थपलियाल
- त्रिपुरोपनिषद्–डॉ. क्षितीश्वरनाथ पाण्डेय
- उड्डीशतन्त्रम्–डॉ. शशिशेखर चतुर्वेदी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001
chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com
www.chaukhamba.co.in
@chaukhambabooks @chaukhambabooks
CHAUKHAMBA
Whatsapp scan
ISBN : 978-93-89665-15-4
₹ 5000 set in 5 vols.